

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj)

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER'S No	DUE DATE	SIGNATURE

सृष्ट्युक्तिक

शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनीतिक
अध्ययन

U. G. C. BOOKS

सं० शासनालय द्विवेदी



विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

राज्य सरकार परामर्श द्वारा अल्पकालीन योजना के अन्तर्गत
१५ ~ अनुमानित

प्रथम संस्करण : १९८२ ई०

मूल्य : पचास रुपये

© विश्वकामी

प्रकाशक :

विश्वविद्यालय प्रकाशक, श्रीर, बाराणसी

मुद्रक :

रत्ना प्रिंटिंग वर्क, बाराणसी

प्रकाशकीय

पाँचवीं शती के अन्त और छठी शती के आरम्भ में जब बुद्ध साम्राज्य छिन्न-विद्ध हो रहा था और हर्ष का उदय हो रहा था, मृच्छकटिक की रचना हुई। बुद्ध युग इतिहास का स्वर्ण युग था। उस समय सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक सभी क्षेत्रों में समृद्धिपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। कला, साहित्य और संस्कृति सभी का विकास हो रहा था, सभी बुद्ध साम्राज्य का उदय हुआ और हर्ष युग का उदय हुआ। दो साम्राज्यों के सघिकाळ में शुरू होने वाली मृच्छकटिक ऐसे पूर्व एवं समुद्र नाटक की रचना की बिना उस युग का समाप्त, राजनीति और साहित्य महीमाँति प्रतिबिम्बित होता है।

पूर्वप्रबलित शास्त्रीय मान्यताओं के विपरीत नाटककार ने इस नाटक में लक्ष्मी, बतों आदि बर्बादबर्बादी दृश्यों का समावेश कर नई परम्परा आरम्भ की।

ज्ञान की परिस्थितियों में यह नाटक उस युग के समान ही प्रासंगिक है। राज्ञाप आरुत द्वारा बभिस्र (बेस्ता-बेसी) बतन्तसेना की युहिणी के रूप में अपना कर सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध चुनौती देना तथा शास्त्र द्वारा राजनीतिक पक्षयन्त्र से बतन्तसेना और आरुत के प्रेम-सम्बन्ध में अन्वेष उत्पन्न करके, राजनीतिक कृष्ण एव यम्भीर इमित किया के अनुपम उदाहरण है। आरुतनुद्ध बर्बादबर्बाद पर आघातित यह नाटक त्याग के प्रति आकर्षण और अनासक्ति में आसक्ति प्रकट करते हुए अज्ञान के अन्वकार को दूर कर ज्ञान के प्रकाश की ओर प्रवृत्त करता है।

अन्त में इस समुद्र नाटक के शास्त्रीय, सामाजिक तथा राजनीतिक पक्षों का विस्तृत अध्ययन कर नाटक तथा आत्मशास्त्र के मध्येक्षकों के लिए एक अद्वैतपूर्ण कृति प्रस्तुत की है।

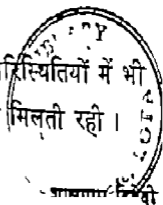
U. G. C. BOOKS

दिवंगता अर्धांगिनी
साध्वी श्रीमती शकुन्तलादेवी की
मधुर स्मृति के साथ

106385

जीवनसंगिनी श्रीमती उर्मिला देवी को
सप्रेम समर्पित

जिनसे पारिवारिक विषम परिस्थितियों में भी
ग्रंथपूर्ति हेतु सतत प्रेरणा मिलती रही ।



शाखा-
दिल्ली

तस्मात्सत्तामत्र न दूषितानि,
मतानि सान्येव तु क्षोषितानि ।
पूर्वप्रतिष्ठापितयोजनासु
भूषप्रतिष्ठाफलमामनसि ॥

साधार्य अभिनव गुप्त

पुरोवाक

बचपन की याद वाद में प्रिय लगती है। तब बच्ची सुनने में किताब जानन्द जाता था। फिर माता-पिता से बचिगयपुस्तक कृतियों की सुनने में तो विशेष रुचि होती थी। बचपन काळ में यही रुचि बचिगय में परिचल ही गयी। परिचलत इस बढती हुई बचिगय ने मुझे धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं बचिगय-सम्बन्धी साहित्य पढने की ओर प्रवृत्त किया। इसी से बचपन काळ में बाचार्थ और एच. ए. के परीछात्रों के सम्म बसुट नाट्य-साहित्य के बचपन की ओर इच्छा बढती गई। इस सभ्य में मूच्छकटिक के कला सुद्धि-सौन्दर्य की बचुमुक्ति से प्रभावित होकर मैंने कला जिज्ञासापूर्वक बचुओलन किया और फिर वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक प्रवाची से बचुसम्बान कर इसके बाल्लेचपसमक बचपन की ओर प्रवृत्त हुआ। मूच्छकटिक का शास्त्रीय, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से विवेचन तथा मूच्छक के समय का निर्धारण प्रस्तुत रूप की विशेषता है।

इस दिशा में आदरणीय डॉ० राममूर्ति शर्मा, बचपन, सस्कृत विभाण, पंजाब विश्वविद्यालय, लखीपुर से प्राप्त प्रेरणा के परिणामस्वरूप उनके निर्देशन में अपने विचारों को साकार करने में मुझे सफलता मिली। एतदर्थ में उनके उपकृत हैं, अपने पूर्ववर्ती भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों का भी कृतज्ञ हैं जिनकी हठियों से कुछ संकेत प्राप्त हुए।

अपने विभागीय बचिगयों का मैं हृदय से आभारी हूँ जिनका सुभाशीर्वाद सर्वत्र मेरे लिए समस्त रहा। डॉ० गोविन्दचरण त्रिपुराण, श्री गणेशरण शील, स्व० श्री ब्रह्मानन्द उग्रहृत्पाचार्य तथा डॉक्टर श्री० पी० बाल्मी के प्रोत्साहन के लिए मैं कृतज्ञ हूँ। साथ ही डॉ० रामसागर त्रिपाठी डॉ० श्रीवास मिश्र, डॉ० रघुवीर शास्त्री एवं श्री लालचर त्रिपाठी 'प्रवाची' के सहयोग के लिए भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ। इस दिशा में सुश्री श्रीमती बचपनो पाठक प्रयत्न, सस्कृत-हिन्दी, राजकीय बालिका इंटर काठेब का योगदान बाल्मि उग्रहृत्प है जिनसे टाइप की सुविधा हेतु प्रतिनिधि तैयार की।

बखिल शास्त्रीय सस्कृत विद्यापीठ पुस्तकालय, दिल्ली, केन्द्रीय पुरातत्व विभाण पुस्तकालय, बनारस, नई दिल्ली एवं के० बी० के० काठेब पुस्तकालय,

मुरारिबाबू के सहयोगियों का भी मैं जानबूझी हूँ जिन्होंने सम्बन्धित पुस्तकों के सम्बन्धन की सुविधा प्रदान की। पुस्तक के सुविख्यात प्रकाशक संस्कृत विद्या-
नुरागी भी पुरपोत्तमबाबू मोदी को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ जिनकी कृपा से पुस्तक यथा समय प्रकाशित हो सकी।

इस सम्बन्ध में राज्य सरकार उत्तर प्रदेश को भी धन्यवाद देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ जिसने पुस्तक का मुद्रणन उच्चकोटि की पुस्तक प्रकाशन बोर्डना के अंतर्गत करते हुए इसके प्रचारार्थ पाँच हजार रुपये की धनराशि अनुदान के रूप में स्वीकृत की।

अंत में सम्बन्धित अधिकारियों के सहयोग के लिए धन्यवाद देते हुए बधाई करता हूँ कि यह कृति सहृदय साहित्य प्रेमियों के रसास्वादन में वृद्धि करेगी।

बलीनंद

शासकपाम द्विवेदी

सूमिका

संस्कृत भाषा का नाट्य-साहित्य भारतीय राष्ट्रमय को समृद्ध निधि है। भारतीय लोकमानस, लोकधर्म, लोकवार्ता एवं साम्प्रदायिक ज्ञान का जितना मध्य अक्षरधनुषीय प्रतिबिम्ब संस्कृत नाटकों में परिष्कृत है उतना साहित्य की अन्य विधाओं में नहीं। भारतीय जन-जीवन की अपरिमित जीवनशक्ति, साहस, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मान्यताएँ, विश्वास, परम्पराएँ, संस्कार, अनुष्ठान, धर्म-धाम, आचार-विचार, श्रद्धा, वैश्वभूता, गीत-नायार्थ, बुद्ध-योग आदि संस्कृत कथक साहित्य में जितने सख, शिव और सुन्दर रूप में अवतीर्ण हुए हैं उतने अन्यत्र नहीं। अतः इसे संस्कृत नाटककारों के नाट्यविश्व का अनुपम चमत्कार ही कहना चाहिए। विश्व साहित्य में संस्कृत नाटकों को जो पौरव प्राप्त हुआ है उसका श्रेय महाकवि कालिदास, भवभूति तथा शूद्रक जैसे अग्रजों नाटककारों को ही है जिनकी मध्य रचनाएँ अमितामयाकुण्डल, उत्तरराघवचरित तथा मृच्छकटिक मात्र भी अद्वितीय हैं। फिर भी अपने कल्प, कलाशिल्प, चरित्रचित्रण, रसपरिपाक तथा अपने बुद्ध के सामाजिक और राजनीतिक जीवन की विस्मयनाश्रों पर तीव्र प्रहार करने वाले मयार्यपरक सच्चिदात्मिक दिव्य के कारण शूद्रक का मृच्छकटिक प्रकरण संस्कृत नाट्य-साहित्य को क्रान्तिकारी रचना है। परम्परागत सभी विही-विटी मर्यादाओं और व्यवस्थाओं का प्रतिहान्य करते हुए रचनाकार ने इसे मूलतः नाट्य रूप प्रदान किया है। प्रणयदम्पत्य श्री यह सुन्दर कथा संस्कृत नाट्य तथा रसमय का बीरव है। इस कोटी अमिबात प्रेरणा से प्रसूत चरचारी मनोरञ्जन की परिनिष्ठित कृति कहना वस्तुतः कला का अपमान ही होगा।

क्रान्तिकारी मृच्छकटिककार ने अपने युग में विद्यमान यथास्थिति से, चाहे यह नाट्यशास्त्रीय, सामाजिक, राजनीतिक अथवा सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में कहीं भी क्यों न हो, आदर्श के नाम पर पूर्ण समतावाद नहीं किया है। परिणाम-स्वरूप मयार्यवाद की स्थापना का प्रयत्न आशु और अनुपम मृच्छकटिक की अपनी विशेषता है। नाट्यशास्त्रीय और रसमयी परम्पराओं के अन्वये में अपने नाटक को अकल्य रत्न नाटककार शूद्रक की अमिबात नहीं है। इसीलिए उन्होंने अपने उदार, मानवीय, प्रयतिपरक तथा साहसपूर्ण दृष्टिकोण के अनुरूप

इस मूल प्रवृत्तियों और मौलिक उद्देश्यों से अनुप्राणित किया है। इसके सुक्तिबुद्ध विवेचन का प्रयत्न करते हुए इस नाटक की रचनाबद्धता का उन्मीलन करने का डा० छालग्राम त्रिवेदी ने सफल प्रयास किया है।

सूत्रक का प्रमुख लक्ष्य समाज की विविध मानिक विह्वलियों का निराकरण करना है। दारिद्र्य या अनाथप्रस्थ जीवन में रहना को व्यक्ति, सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों को आर्थिक दृष्टि से ऊपर उठाना, प्रेम सम्बन्धों में बन्धी और निर्बन्ध के बीच की खाई को पाटना, सर्व व्यवस्था के कठोर सम्बन्धों को विभिन्न करके सामाजिक एकता को स्थापना करना, राजनीतिक क्षेत्र में अत्याचार और अनाचार के खाने कारण-समर्पण न करके पौष्य और बुद्धिबल से सफलता के लिए समर्पण करना और अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति होने तक बढ़ते जाना आदि उदार उद्देश्यों के विषय में विविध समस्याओं और समाधानों का प्राणात्मिक विश्लेषण प्रस्तुत अध्ययन से उपायान किया गया है।

अर्थात् नाटककार ने सम्भवतः आत्मप्रख्यापन के बोध का उद्वरण करते हुए अपना पूर्व परिचय नहीं दिया है फिर भी प्रस्तुत अध्ययन में उसके स्थिति-काठ तथा अरिज आदि के विषय में प्राप्य अन्त सम्बन्धों और बहिःकालों के आशय पर मौलिक विवेचन किया गया है। साथ ही मूककटिक के कथानक के एहसासपूर्वक पलों का मौलिक विवेचन प्रस्तुत रूप की प्रमुख विशेषता है। अनाथप्रस्थ के लिए 'मिट्टी की बाड़ी' (मृत् + कटिक) के नाम से घटीर का मौलिक जीवन को और संकेत है। मिट्टी का पुठका मानव स्वर्णिम आशाओं से इसमें उलझता हुआ दिखाया गया है। समतामयी नायिका के स्वर्णमुचकों के त्याग से मिट्टी की बाड़ी स्वर्णमयी बन जाती है। इस प्रकार त्याग में ही अनुराग तथा अनासक्ति में ही आत्मिक मूककटिककार का परार्थ संदेय है। इस प्रकार नाटक की आत्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विचारधारा के अन्तर्गत से प्राप्त मौलिक विचार-रत्नों की प्रस्तुति इस अध्ययन को वास्तविक उपलब्धि है।

मूककटिक के मौलिक विवेचन द्वारा संरक्षित रूपकों में उसके वैशिष्ट्य का वैज्ञानिक अनुशीलन इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य रहा है।

अन्त में यह कहते हुए मुझे प्रसन्नता है कि मेरी बेकारस में साहित्यशास्त्र अर्थशास्त्र विद्यान् डा० त्रिवेदी द्वारा उपायित प्रस्तुत रूप के रूप में 'मूककटिक - आत्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक अध्ययन' सामान्य विद्यासूची एवं

बम्बेवालों के लिए एक उपयोगी उपहार सिद्ध होना। मेरा बड़ा विश्वास है कि यह ग्रन्थ साहित्य क्षेत्र में सर्वथा अमूल्य होगा। वास्तव में, मध्यिम में विद्या साधना के तपस्वी डा० त्रिवेदी इस प्रकार के ग्रन्थ प्रकाशना में प्रस्तुत करते रहेंगे।

प्रोफेसर तथा बम्बे,
संस्कृत विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय,
लखनऊ

रामनृति शर्मा
एच. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्., छात्रो

सम्मतिर्या

एक व्यक्ति 'मूच्छकटिक' संस्कृत साहित्य का एक अनुपम ग्रन्थ है। उस युग का भारतीय समाज इस प्रकार के पृथ्वी में इसने बंधन से उद्घाटित होता है कि देशवैशाली को आपत्त हुए विना गये रहता। इसके पात्र समाज के निम्नतर शीवस्त व्यक्ति हैं जिनके स्वल्प को देखकर आत्मोपक विस्मृत हो उठता है।

इस प्रसिद्ध प्रकरण की कही ही सुन्दर समीक्षा डा० शांतप्राम द्विवेदी ने की है। समीक्षा एकदम ही होकर संवर्षीय है। 'मूच्छकटिक' की यह समीक्षा बहुत ही सपादेय तथा आदरणीय है। विभिन्न दृष्टियों से ऐसे सब की यथार्थ में व्यप्रेषिता है।

मृतपूर्व निदेशक,

श्रीम-संस्थान,

संस्कृत विश्वविद्यालय, काशी

बालदेव उपाध्याय

'मूच्छकटिक' संस्कृत साहित्य में एक की प्रमुख रचना है। इसका सुजन शौच्य एव कला रीतिरूप बस्तुतः प्रभावशाली है। डा० शांतप्राम द्विवेदी के आलोचन, सामाजिक एवं राजनीतिक मध्यम से इसका स्वल्प और भी निश्चर है।

राज्यतन्त्र के विरोध, मन्त्रिकारिणों की मरमाती, सामाजिक विषमता, ऊच-नीच के भेदभाव, धनी-निर्धन की खाई तथा प्रलयकल्पन के बहरोध ने जिस मूर्ति सात्कालिक, सामाजिक और राजनीतिक द्रष्टि को कल्प विना; इसके विमर्शन के साथ इससे पूर्व प्रचलित शास्त्रीय परम्परा का नया रूप भी प्रस्तुत है। यथार्थवाद की स्थापना का प्रयत्न आम्ह एव अनुरोध इसकी विशेषता है।

वर्तमान अन्तर्ग में भी प्रत्येक को-लादेयता और प्रसन्निकता है। डा० द्विवेदी

इस अमिनन्वनीय कृति के लिए बर्बाद के पात्र हैं। जादा है साहित्य-अपठ में इस ग्रन्थ का स्थापठ ही होना ही चाहती संस्कृत भाष्य में इस प्रकार के भाष्यात्मक के लिए यह प्रथम प्रेरणास्रोत भी बनेगा।

कुलपति,
मुन्देसलखट विश्वविद्यालय,
घासी

हरबंसालाल शर्मा

मूल्यांकन पर आधारित 'मूल्यांकन सांख्यिक, सांख्यिक एवं राज-
नीतिक अध्ययन' शीर्षक-अध्याय अपनी विधा में एक सुन्दर कृति है। डा० शा-
हाम त्रिवेदी ने इसमें मूल्यांकन प्रकरण का बखीर आलोचनात्मक विश्लेषण
किया है। निःसन्देह मूल्यांकन अध्याय सम्यक् ढंग से समुपय रचना है। संस्कृत
भाषाओं में यह प्रथम स्वरूप है जिसमें आत्मज्ञान प्राचीन अर्थशास्त्र परम्परा के
विषय प्रकाशक के लिये परिच्छिन्न होते हैं।

इस महत् अध्ययन में लेखक ने प्रकरण के अन्तर्गत सामाजिक उत्थान के
साथ ही राजनीतिक विषय परिस्थितियों के बीच आतिथ्य सर्व-नीच के मेद-
माल की प्रमास कर आदर्श श्रेष्ठ परिष्कार की और अधिक उन्नत या प्रमत्त
किया है। वर्तमान परिस्थितियों में यह अध्याय सामाजिक विचारधारा के अनुप
है। सांख्यिक विचार से भी यह अध्ययन वैशिष्ट्य का द्योतक है। मूल्यांकन
की इन सभी विषयताओं को लेकर डा० त्रिवेदी ने यह निरालापूर्ण प्रमास
सहाय्य है।

अध्यय, संस्कृत विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़

रामसुरेश त्रिपाठी

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

मृच्छकटिक एक परिचय

	पृष्ठ
मृच्छकटिक से पूर्व भारतीय नाट्य साहित्य	१
मृच्छकटिक का रचनाकाल	३
नाट्यप्रवेष्टा सूत्रक का परिचय	६
सूत्रक के सम्बन्ध में किवदन्तियाँ एवं उनकी विरससमीक्षा	७
सूत्रक का समय निर्धारण	९
योग्य विचारकों के आधार पर मृच्छकटिक के लेखक के विषय में संशय	९
मृच्छकटिक के आधार कोश तथा उनका विश्लेषण	१५
सब नाटकों पर विह्वलन दृष्टि बाधते हुए विद्वानों का मृच्छकटिक को कथावस्तु के विषय में विचार	१७
मृच्छकटिक पर भास के प्रभाव का विश्लेषण	१८
मृच्छकटिक की मौलिकता एवं नाम का अर्थ	१९
मृच्छकटिक का लक्ष्य विषय निरूपण	२२
मृच्छकटिक के साहित्यिक एवं नैतिक वैशिष्ट्य की शक्ति	२२
मृच्छकटिक काहीन वातावरण	२३
मृच्छकटिक और न्यूनकोश सम्बन्धित	२५
सोपान विश्लेषण	३४
मृच्छकटिक का रहस्य एवं वैशिष्ट्य	३५
राष्ट्रीय रहस्य	३६
मृच्छकटिक को कथावस्तु एवं तर्क विषय	३६
प्रधान पात्रक एवं नायिका का विश्लेषण	४०
विरोधी नायक शत्रु की योजनाएँ	४३
मृच्छकटिक के अन्य पात्र एवं तर्कविष्ट	५१
मृच्छकटिक में नाट्य प्रतिभा का प्रस्फुरण	५५
मृच्छकटिक में काव्य प्रतिभा की व्यञ्जना	६१

मूञ्चकटिक में प्रकृति चित्रण	६४
मूञ्चकटिक में भावचित्रण एवं वर्णन वैशिष्ट्य	६७
मूञ्चकटिक में कथा समीक्षण	६९
मूञ्चकटिक में प्रमुख छन्दवैशिष्ट्य	७४
मूञ्चकटिक के व्ययन की वाचस्पत्याना एवं उपयोविता	७९
मूञ्चकटिक पर कुछ बाधेप एवं उनका निराकरण	७९
बन्धकटिक की प्रमुख विशेषताएँ	७७
शोभाय विस्तेषण	७९

द्वितीय अध्याय

मूञ्चकटिक का शास्त्रीय विवेक्षण

नाट्यशास्त्र एवं मूञ्चकटिक	८१
परमपुत्रि का नाट्यशास्त्रीय विधान तथा मूञ्चकटिक	८२
नाट्यकला की दृष्टि से विचारणीय वस्तु रस तथा पात्र	८४
नाटक कथा प्रकरण का साम्यवैक्य्य एवं मूञ्चकटिक प्रकरण की नाट्यविधा	८४
वस्तु के दो भेद—कथानक और सचिवालय	८९
कथावस्तु की भीमांसा	८७
(क) कथावस्तु में वर्ष प्रकृतियों का समन्वय	८८
(ख) कथावस्तुएँ उनका विस्तेषण तथा विवेचन	९१
(ग) सचिवालय और उनके भय	९४
सचिवालय दृष्टि से मूञ्चकटिक को भीमांसा	९९
मान्दीपाठ का वैशिष्ट्य	९७
सूत्रधार एवं उसका नाटकीय जीवन	९८
अभिनेय वीर्य एवमथ	१०१
मूञ्चकटिक में रसमयीय विधान का अतिरिक्त	१०२
शोभाय विस्तेषण	१०४
नाट्यशास्त्र के दो भङ्ग पात्र और रस	१०५
नाट्यशास्त्र में रसों का विवेचन एवं मूञ्चकटिक में उनका जीवन	१०६
(क) सूत्रधार	१०७
(ख) हास्य तथा अतिहास्य शोभना	१०८

(ग) कवय	१०९
मृच्छकटिक का अपीरस	११०
कर्म में ब्रह्मकार, पुनः, पीन, बहोक्ति एव ध्वनि का समन्वय	१११
मृच्छकटिक में ब्रह्मकार विनय	११३
मृच्छकटिक में ध्वनिप्रयोग	११६
मृच्छकटिक में बहोक्ति	११७
मृच्छकटिक में वृत्तियों का बोधित्व	११८
वृत्तियों से हो कर्म श्रेष्ठिकी तथा उपमापरिभाषा एव आन्तरिकार्थ का प्रत्यक्षबन्धी मत	११८
मृच्छकटिक में श्रेष्ठिकी वृत्ति, माधुर्य पुनः एव श्लेषक रसों का विवेचन	११९
मृच्छकटिक में आरम्भटी वृत्ति, बोधयुक्त अथवा कठोर रसों का विवेचन	११९
मृच्छकटिक में मादुर्य बोधों का विवरण	१२०
सोपान विस्मय	१२१

तृतीय अध्याय

मृच्छकटिक : सामाजिक अध्ययन

मृच्छकटिक का काल की धार्मिक एवं आर्थिक समस्याएँ

(क) धार्मिक स्थिति	१२३
(घ) वैदिक धर्म	१२५
(ङ) बौद्ध धर्म	१२८
(च) धर्म व्यवस्था एवं प्रकृत्युग आदि	१३१
(छ) गौ की महत्ता	१३८
(ज) मृच्छकटिक में अर्थव्यवस्था तथा शत्रुन विचार पर टिप्पणी	१३९
(झ) व्योमिष में लिखा	१४२

धार्मिक स्थिति

(क) समृद्धिवाञ्छिता के प्रतीक	१४५
(ख) करिकार्य एवं मून्स्वामी	१५१
(ग) धार्मिक एवं श्रद्धा तथा विकास	१५३
(घ) धर्मों और व्यवसायों की कुशाठता	१५५
अध्याय विस्मय	१५८

मृच्छकटिक काल का सामाजिक जीवन

सामाजिक विनय की स्त्री	१६०
काठि-प्रथा के कारण	१६१
शैथिल्य पटन एवं रक्षा	१६१
स्त्री-वर्ग की रक्षा	१६८
वस्त्रासीन विवाह प्रथा	१७१
कशिका जीवन और वैश्या श्रुति	१७१
सामाजिक रीति-रिवाज, सपासना, व्रत, उत्सव एवं मनोरंजन	१८१
समाज में धर्म का स्थान	१८६
शोभकता के विभिन्न प्रकार	१९२
दास प्रथा की दिग्घटि स्थिति	१९८
निर्वन वर्ग में शोभता से दुर्दशा	२००
उपभ्रष्ट एवं दिग्घटि वर्ग में मद्यपान की अविवेकता	२०५
सामाजिक विषयवस्तुएँ	२०७
अध्याय विवरण	२०७

पञ्चम अध्याय

मृच्छकटिक की विशिष्ट सामाजिक उपसभ्यताएँ

वैज्ञानिक एवं साहित्यिक शिक्षा का प्रकार	२०९
शक्ति के अभाव में शक्ति	२११
उद्योग	२१२
हस्तिकला, अश्वकला, विविध शिल्प, शोभा एवं वस्त्र-शिल्पों का ज्ञान	२१२
मद्य निषेध विधि एवं वास्तुशिल्प	२१९
सर्वज्ञ दास श्रेण्य	२२१
सैन्य सेवा, शिल्प कला, शिक्षा एवं काम कला	२२५
उत्कृष्ट जीवन, वेदशास्त्र, आशुभ्य एवं शिल्पकला	२३०
अध्याय विवरण	२४२

षष्ठ अध्याय

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

मूञ्जकटिक काठ में राज्य का छोटे प्रदेहों में विभाजन	१४४
स्वेच्छाभारिता की दरम सीमा	२४७
तात्कालिक काम्ययोजना	२५०
विभिन्न पशाधिकारी एवं प्रकारसक	२५९
नगर व्यवस्था समिति (नगरपालिका)	२६६
न्यायाधीशों की योग्यता एवं श्रेयकारी न्याय विभाग	२९९
विवाद के अक्षर पर साक्ष्य एवं विद्व सहयोग	३६४
विभिन्न भूमियोपे में मनुश्रा समर्पित दण्ड प्रचाली और राज्याधिकारियो (पुसिष्ठ) द्वारा लक्षकी व्यवस्था	२६९
अध्याय विस्तेरय	२७४

सप्तम अध्याय

शूद्रक एवं मूञ्जकटिक

संक्षिप्त समीक्षा

शूद्रक शीर्षादा	१७५
मूञ्जकटिक का नाटकीय स्वरूप	२७७
संविधानक सित्त	२८१
शास्त्रीय विद्याल	२८४
नाटकीय बन्धितियाँ	२९१
जनशोधन की शक्ति	२९२
सांसाधिक स्थिति	२९४
कारिक दशा	२९७
राजनीतिक व्यवस्था	२९८
वस्तुतः बाह्य प्रश्नों में मूञ्जकटिक का स्थान	३००
मूञ्जकटिक का अनुक्रम बसिहय एवं दृष्टिकोण	३०२
मूञ्जकटिक में वास्तविक जागृ की शक्ति	३०६
आधुनिक छायासिधियों को दृष्टि से मूञ्जकटिक की उपादेयता	३०७
मूञ्जकटिक की समुप्य देन	३०९

परिशिष्ट १

मृच्छकटिक की भाषा

नाटकीय भाषा की सीधित्व	- २११
मृच्छकटिक की भाषा	१११
संस्कृतभाषी पात्र	२१५
प्राकृत भाषा और इनके बोलने वाले पात्र	११५
प्राकृत के अन्तर्गत धीरुष्ठीनी भाषा बोलने वाले पात्र	११६
प्राकृत के अन्तर्गत अवन्तिका बोलने वाले पात्र	११६
प्राकृत के अन्तर्गत प्राग्वा बोलने वाला पात्र	२१७
प्राकृत भाषा के अन्तर्गत मगधी का प्रयोग	११७
अपभ्रंश भाषा-भाषी पात्र	११८
घाण्डकी का प्रयोग	११८
इन्की (बनेशरी की भाषा) का प्रयोग	२१८
मौगपात्र	११९
भाषा विस्मय	११९

परिशिष्ट २

मृच्छकटिक की प्रमुख शक्तियाँ

परिशिष्ट ३

मृच्छकटिक के विषय में पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के विचार

संबन्ध ग्रन्थ

मूच्छकटिक : एक परिचय

मूच्छकटिक से पूर्व भारतीय नाट्य साहित्य

मानव स्वभाव अमूर्तरूपको है। अमूर्तरूप की यह प्रकृति व केवल मानव में बरन् अन्य जीवों में भी पाई जाती है। इनका एकमात्र उद्भव वाक्य प्राप्ति एवं मनोरञ्जक है। बसन्त की नाट्य तथा कर्म की परिभाषाएँ 'अवस्थानुच्छति-बीज्यम्' एवं 'कर्मक उत्समारोपद्' को परिचोपक है। इस भाँति नाटक का एक मानव लक्ष्य मानव तथा अन्य जीवों की प्रकृति का विषय है।

इस उद्भव में यह स्पष्ट होना चाहिये कि नाटक के उद्भव में दो उत्पन्न विशेषण से प्रसुत हैं—एक उद्भव तथा दूसरा अभिनय। उद्भव वाले उत्पन्न को हम भारत के प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद में देख सकते हैं। इस भाँति नाटक के बीज वेदों में प्राप्त है। ऋग्वेद में अक्षय १५ सूक्त ऐसे हैं जिनमें उद्भव का उद्भव पाया जाता है। इनमें निम्न विषय हैं :—

इन्द्रमन्त्र उद्भव	१।११५, १।१७०
विश्वामित्रमन्त्र उद्भव	१।११
पुत्रवसुधर्मणो उद्भव	१।११५
वसुधर्मणो उद्भव	१।११०

दुधर उद्भव भी अक्षयमन्त्र है जैसे इन्द्र उद्भव तथा वसुधर्मणो उद्भव १।१८५, अक्षय तथा उनकी पत्नी अप्सामुखा का उद्भव १।१७९।

इन उद्भवों के आधार पर निम्नोक्त ने यह मत प्रकाशित किया था कि इन सूक्तों का पाठ यह के समय इस उद्भव से किया जाता रहा होगा कि अक्षय-वसुधर्मणो अक्षय-वसुधर्मणो (मन्त्र या उद्भव) वाले मन्त्र (उद्भवों) का उद्भव करते हैं। प्रायः उद्भव के ही में ही उद्भव की पुष्टि की है तथा ऋग्वेद काळ में अभिनय की स्थिति मानी है। उद्भव मत है कि उद्भव काळ में उद्भवों के उद्भव में उद्भव के समय नाट्याभिनय उद्भव होता होगा।^१

१. अक्षय अक्षय, डॉ० मोहनमकर व्यास, पृष्ठ ३, वि० उ०, १९१२ ई०।

ब्रह्माची के कथनानुसार इन्द्र के प्यत्रोत्तर में नाट्यरस तर्कप्रथम प्रयुक्त हुआ। इस अभिनय में देवों की विजय तथा रैत्यो की पराजय हुई। भव इस रैत्यो द्वारा विष्णु उपस्थित क्रिये अथे जितसे बचे रहने के लिए इन्द्र ने विश्वकर्मा को नाट्यमुद्र की रचना का आदेश दिया। ब्रह्मा ने ऐसी स्थिति में रैत्यो को धाम्य करने के लिए कहा कि नाट्यरस देव और रैत्य दोनों के लिए है और इसमें धर्म, श्रीश, हास्य और मुख आदि सभी विषय ग्राह्य हैं।^१

वैदिकोत्तर काल में नाट्यशास्त्र एवं नाटकों का विकास-रूप निरन्तर चलता रहा। रामायण में नट, नाटक, नर्तक, रंग तथा कुचोक्कन शब्दों का प्रयोग और महाभारत में नट, रम्याका आदि का प्रयोग इसके साक्षी हैं। धार्मिक उत्सवों पर मन्वन्तु धौराम और श्रीकृष्ण की सुन्दर छीसाएँ जान भी देखने को मिलती हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में भी अमृतमन्वन्त, त्रिपुरदाह, और प्रलम्बवच आदि नाटकों का उल्लेख है। बीहो में भी नाटकों का आभय अपने धर्मप्रचार के निमित्त लिया।

पाणिनि की ब्रह्मण्यायी में द्विकालिन् और कृशास्त्र नामक दो नटसूत्र-ग्रन्थ-सामों का उल्लेख है। संस्कृत नाटका का विकास इस प्रकार इस समय तक हीना निश्चित है पर आब इस बुध के नाटक उचलम्ब मदी हैं। महाभारतकाल परतबलि ने १५० ई० पूर्व के कथन कसवध और बलिद्वय नामक दो नाटकों की कथा की है। नागपुर की पहाडिवाँ में प्राप्त नाट्यशास्त्रा को देखते हुए यह निश्चित है कि २०० ई० पूर्व में नाटक रमयण पर अभिनीत होने लगे थे।

पर इनसे भी पूर्व मास के नाटक अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। जिनकी कथा सातवी सताब्दी के प्रारम्भ में को गई है।^२

१. बु आशीनां यथाशीनां शोकशीनां उपस्थितानाम् ।

विधानित्जनन काले नाट्यमेतन्मया कृतम् ॥ (१।१।१४)

धर्मं यथास्वयामुष्य द्वित् बुद्धिनिर्बन्धनम् ।

लोकोपदेशजनन नाट्यमेतद्भविष्यति ॥ (१।१।१५)

बहो नात्पमिह सम्यक् स्वया सृष्ट महावते ।

मन्त्रस्य च गुणार्थं च पुष्य बुद्धिनिर्बन्धनम् ॥ (४-१२)

नाट्यशास्त्र ' भरत मुनि

१. नूतनारहतास्मेर्नाट्यैर्बहुभुवि ।

सपताकीर्त्यो सधे आसी देवकुसैत्वि ॥

हर्षवर्ति : रामनट

मास के नाटकों में स्वप्नवासवदत्तम्, शिविज्ञानीलक्ष्मणम् एव प्रतिमा नाटक विद्येय प्रसिद्ध हैं। इसके पश्चात् महाकवि काकिलस्त हृदयारे सामने आते हैं। जिन्हें सस्कृत कवियों में बनिज्ञानप्राकृतक के कारण सर्वप्रथम स्थान दिया जाता है। विक्रमोर्वशीयम् इनकी एक प्रसिद्ध कृति है। इसमें राजा पुकरवा तथा उर्वशी नामक व्यष्टय की प्रपय कथा है। शृंगेर में भी इसकी बर्णना है। माण्डिक्यनिकमित्र इनकी एक और सुन्दर कृति है।

इसके पश्चात् बौद्ध नाटककार महाकवि ब्रह्ममोच की बर्णना है इनका शारि-पुत्र प्रकरण प्रसिद्ध है। इसमें महात्मा मौत्तम बुद्ध द्वारा शारिपुत्र और मौद्ग-लायन नामक दो मुक्तों के बीच वर्णन में दीक्षित होने की रोचक कथा का वर्णन है।

इनका समय ब्रह्म घटायो के पूर्वार्ध में (१-५० ई०) सम्भवतः समझा गया है।

तत्पश्चात् दिवाक्यदत्त की बर्णना है। इनकी सुप्रसिद्ध कृति मुद्राराक्षस है। इसमें सुन्दर राजनैतिक वर्णन है। इनका समय बराहमिहिर (समय ४९० ई०) से पूर्व माना जाता है।

मृच्छकटिक का रचनाकाल

सांख्यिक महत्त्व—किसी भी कृति की सामयिक उपयोगिता जानना बड़ा आवश्यक है। जिस परिस्थिति में उसका निर्माण हुआ होना वह एक विज्ञप्ति का विषय है। रामचरित-मानस और मूरुझागर विश्व मूर्ति इस बात के लेखक हैं कि वह समय मर्कों का युग रहा एवं विश्वी छतर्द्ध की शृंगारनाका विश्व प्रकार इस बात की परिष्कारिता है कि वह समय शान्ति का शरीक बना राजा एवं प्रजावर्ग में शृंगार की शक्ति का विषय रहा लेखक लक्ष्मी प्रकार बनिज्ञानप्राकृतक, उत्तराचमवर्षि और मुद्राराक्षस भी अपने अपने युग की सत्क प्रदर्शित करते हैं। मृच्छकटिक की भी हम इसका अपवाद नहीं मान सकते। इसके ब्रह्ममोच की इस बात के निर्धारक हैं कि उस समय की सांख्यिक स्थिति की से प्रेरित होकर ही लेखक ने ऐसी रचना को प्रस्तुत करने का साहस किया होगा।

निर्माण का—मृच्छकटिक का समयनिर्धारण करने के दोब मार्ग हैं। एक तो इस समय में कहीं कुछ शक्य हो, इसके पक्षों का समय कहीं माहुर हो

१. मृच्छकटिक : सं० श्री कामरानन्द साहनी संकलन, मृच्छकटिक समीक्षा, पृ० ८-१०।

बाए, तीसरे आन्वतर अथवा बाह्य प्रमाणों की कसौटी पर इसको परखा जाए । पर न तो इसके सबब में कहीं से इसकी निर्माण विधि का निश्चिन पता बन सका है और न र्णयकों का ही निर्माण हो सका है । अतः इन दोनों के अभाव में अब तीसरी बात आन्वतर एवं बाह्य प्रमाणों पर ही अवलम्बित है । विद्वानों के विचार से मास का बरिष्ठ आशुवत्त मृच्छकटिक को अपेक्षा प्राचीन है । यह भी निश्चित है कि मृच्छकटिक का निर्माण मास के बरिष्ठ आशुवत्त के आधार पर हुआ है । ऐसा लोच लेने से मास मृच्छकटिक के निर्माता से पूर्ववर्ती है । मास का काष्ठ काश्मिरान के काष्ठ पर निर्मित है और काश्मिरास का काष्ठ अभी तक संरिग्न है । कहा पही जाता है कि यह ई०पू० १०० से लेकर ई०अ० १०० के बीच हुए थे । कुछ का कहना है कि ई०पू० १०० से लेकर ई०अ० ४०० में यह हुए । यदि उन्हें ई०पू० १०० में माना जाये तो मास को ई०पू० २०० में मानना ठीक होगा । और यदि उन्हें ई०अ० ४०० में माना जाये तो मास को ई०अ० १०० में मानना ठीक होगा । अतः मृच्छकटिक के निर्माण के सबब में यह समझा जाता है कि यह ई०पू०, २०० या ई०अ० १०० में लिखा गया होगा । यह उपरिष्ठत सीमा है । इस सबब में कई विविध मत हैं ।

आचार्य वामन की मान्यता

अलकार शास्त्र के उद्धरणों के आधार पर वामन ने सूत्रों को एक शास्त्र के रूप में माना है ।

काव्यालकार सूत्रवृत्ति में मृच्छकटिक का उल्लेख है । यह समय ई०अ० ८०० माना जाता है । अतः मृच्छकटिक के निर्माण काष्ठ की यह विम्नतम सीमा है ।^१

श्री बसुदेव उपाध्याय का अनुमान

उपाध्याय जी के अनुसार दण्डी के काव्यादर्श में मृच्छकटिक का 'सिम्पतीक तर्कान्तरि' पद्य मिलता है अतः उन्हीं के समीप इसकी रचना होनी चाहिए । दण्डी की विद्वान् ई०अ० ७०० में मानते हैं ।

डा० देवस्यमी का मत

इसका अनुमान है कि मृच्छकटिक और पंचतंत्र के दो स्लोक तथा एक पद मिलता है । पंचतंत्र का काष्ठ ई०अ० ५०० माना जाता है, अतः इसका निर्माण उन्हीं समय होना संभव है ।

१. केशी, टी० आई०, अ० १९०, वामन सू० २४ ।

बराहमिहिर के आधार पर निर्णय

ज्योतिष शास्त्र के विद्वान् बराहमिहिर ने बृहस्पति को मंगल का मित्र माना है किन्तु मृच्छकटिक लक्ष्मण से 'अपारक विद्वत्स्य' इत्यादि श्लोक में बृहस्पति को मंगल का शत्रुग्रह माना गया है अतः बराहमिहिर से पूर्व ऐसा माना जाता रहा होगा। बराहमिहिर का समय ई०पू० १०० माना जाता है। अतः मृच्छकटिक का निर्माण काल ई०पू० ६०० से भी पूर्व ठहरा है। कुछ विद्वान् 'अपारक विद्वत्स्य' का दूसरा अर्थ मानते हैं। उनके अनुसार इस श्लोक का तात्पर्य इतना है कि जिस पुरुष का मंगल ग्रह विरह्य है और जिसका बृहस्पति भी शत्रु है उसके पास बुद्धि की शक्ति क्षय ग्रह का उदय हुआ। इस अर्थ में मंगल और बृहस्पति के परस्पर विरोध की कोई बात समझ में नहीं आती। अतः मृच्छकटिक के निर्माण काल में इसको आधार मानना कुछ युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता।

मनुस्मृति के आधार पर निर्णय

मृच्छकटिक के लक्ष्मण से 'अथ हि पाठकी मिश्रो म पश्यो मनुसवीत्' कहने से कुछ विद्वान् कहते हैं कि यही मनु का नाम है। अतः मृच्छकटिक मनुस्मृति के बाद रचा गया है। मनुस्मृति का समय ई०पू० २०० या १०० प्रतीत होता है। अतः इसके मृच्छकटिक के काल की अपरिचित सीमा निश्चित होती है। साथ से भी यही अनुमान होता है। अतः दोनों में साम्य होने से कोई विशेष बात कहा नहीं जाती।

भाषाविधान एवं भाषाकला के आधार पर समय निर्धारण

कुछ बतौपियों ने मृच्छकटिक का समय निर्धारण भाषाविधान और भाषाकला के आधार पर किया है परन्तु इन कल्पनाओं से कोई नवीन तथ्य सामने नहीं आता क्योंकि इसमें दिन भाषाओं का प्रयोग है और जिस प्रकार भाषाकला विकास प्रवृत्ति पर है उसे सूक्ष्मता से देखने पर भी जिस समय का निर्णय करते हैं वह भी ई०पू० १०० से ई०पू० ६०० के बीच का है और इस समय अन्य भाषाओं में भाषा और कला संबंधी विकास क्रमशः दिखाई देता है।

अन्य विद्वानों के विचार भी डॉ० नाट ने इन संबंधों में व्यक्त किये हैं:—

"It can be seen that these widely different views do not bring us any nearer to the solution of the problem. Keith and

Do are in a way right when they say that the dates are insufficient to assign any precise date"¹

Dr Bhat

The conclusion that is possible from the discussion is as follows

(a) That Mricchakatika cannot be put later than the 8th century A D

(b) The earlier limit is rather uncertain. But the internal evidence brings us some where to the 3rd or the 4th century A D²

निष्कर्ष

वनेक प्रकार से निर्णय करने पर भी इस सम्बन्ध में किसी निश्चित आचार पर पहुँचना सम्भव नहीं है। अठ मृच्छकटिक को सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से देखकर ऐतिहासिक दृष्टि से यही प्रतीत होता है कि मृच्छकटिक-कालीन स्थिति मुद्र साम्राज्य के पतन के पश्चात् और हर्ष के साम्राज्य से पूर्व की होगी। अनुमानतः इन दोनों के बीच का समय ही इसका निर्माण काल रहा होगा क्योंकि इस समय देश में कोई प्रभावशाली साम्राज्य न था। राजा दुर्वाचिन था। राज्य प्रभाव समाप्त हो चुका था। धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति पर अकुल नहीं था। राज-प्रथा का धारणात्मक विरोध बढ़ रहा था। बह्व्यवहार प्रारम्भ हो चके थे, सर्वत्र अराजकता थी। मृच्छकटिक की रचना इसी की एक झलक है। अठ अंधविश्वास के आचार पर यह कहना सर्वथा संश्लेषपूर्ण है कि मृच्छकटिक का समय ई० स० ५०० का अन्तिम तथा ई० स० ६०० का आदि भाग है।

नाट्यप्रणेता सूत्रक परिचय

दो-एक सङ्घट्ट विद्वानों को छोड़कर किसी ने भी अपने सम्बन्ध में यह अथवा नहीं कहा कि वे जहाँ पैदा हुए वे और क्या उनकी जीवन कथा है। यही कारण है कि सङ्घट्ट विद्वानों का एतत्सम्बन्धी परिचय केवल अनुमान पर निर्भर है और यह अनुमान तत्कालीन शास्त्रीय ग्रन्थों पर आधारित है। सूत्रक के सम्बन्ध में भी यही बात है।

1. Dr G K Bhat * Mricchakatika, p 191

2. यही, पृ० १९६।

मृच्छकटिक की प्रस्तावना में राजा शूद्रक की खर्ची माती है। उनके विषय में विविध विचार हैं। प्रस्तावना के अनुसार शूद्रक जाति के द्विज हैं। यह देखने में बड़े सुन्दर थे। कवि भी उष्ण कोटि के थे। इनकी नाट्यसाधन की विद्वत्ता के प्रमाण में तो स्वयं मृच्छकटिक इनकी कृति है। यह आश्वमेध, स्यामनेर, नावित, वेत्याकों की कथा जयवा मन्त्रिदेवकथुत जयुपट्टि कथा और हस्तिनात्य के पण्डित थे। इन्हें शकर की कृपा से परमवत्स का शाल प्राप्त हुआ था। यह बड़े मछी और पराक्रमी थे। इन्हें बड़े-बड़े जयुओं से जयवा बड़े-बड़े हाथियों से बाहु-युद्ध करके वे विजय न थी। अनुमालय सप्रामश्रिय राजा होने से द्विज के रूप में यह क्षत्रिय थे। यह प्रभावशून्य और उपोनिष्ठ थे। इन्होंने ब्रह्मर्षि यज्ञ किया था। ११० वर्ष की इनकी आयु हुई। अन्त में अपने पुत्र को राज्य देकर इन्होंने जन्म में प्रवेश किया।

यह तो कहना उचित प्रतीत नहीं होता कि कवि राजा शूद्रक उपर्युक्त विशेषताओं से युक्त न होंगे पर स्वयं अपने विषय में उन्होंने ऐसा कहा हो—यह सम्भव नहीं है। यह प्रशिष्ट वंश है बिसे जन्मले प्रकाश में जाने के लिए और यह स्पष्ट करने के लिए कि मृच्छकटिक उनकी रचना है किसी कवि ने इसमें सम्मिश्रित किया है।

शूद्रक के सम्बन्ध में क्लियवन्तिष्ठा एवं उनकी विषयसनीभ्यता

दुःस्यकाम्य रचना का समशीप परिणाम क्षामिजातवन्ति उचित रचना पर अवलम्बित रह्य है। इस औरवक्ष्यकित्ती परम्परा में कावित्वात तथा जयभूति जयवय है। हर जयवे आरक्षभाव के कारण साधारण जनसमुदाय का वे अपेक्षित मनोरंजन न कर सके। इसी से संस्कृत दुःस्यकाम्य में एक ऐसी कौकलित परम्परा का अनुभव किया गया जो प्रतिष्ठित वैश्व परिपटी की उपेक्षा कर और क्षामिजात आरक्षिणी की अवहेलना कर सर्वसाधारण का मनोविनोद कर सके। शूद्रक इस परम्परा के समुचित श्रोत हैं। इन्होंने मृच्छकटिक के आसार पर मिट्टी के कावाक्षी रूप पर जीवन यात्रा का न केवल दुर्गात पम शस्तुत किया है बल्कि अपने स्वयं की उपलम्बि उषी को सुपम रूप प्रसस्त बनाकर की है।

शूद्रक सम्बन्धित यह विषय अभी तक विचारारस्यर बना हुआ है। क्लियवन्तिष्ठा के आसार पर कुछ विचार इस सम्बन्ध में जसले रहते हैं जिस पर साधित होकर किसी विश्वास पर पहुँचने का प्रयास किया जाता है। क्या वे राजा थे या नहीं? बाह्यम, क्षत्रिय, शूद्र में किस जाति के थे? क्या मृच्छकटिक

के प्रमेयता यही थे ? क्या सूत्रक का व्यक्तित्व कास्मिक है अथवा ऐतिहासिक ? क्या वास्तविक मूञ्जकटिक का सङ्गठन स्वयंसेवक स्थापना है अथवा मूञ्जकटिक वास्तविक का परिवर्तित स्वरूप है ? यह प्रश्न प्रायः मेधावी विद्वानों के यस्तित्त में चर्चा कर फटता रहता है और एक समस्या बना हुआ है ।

सूत्रक के वास्तविक ज्ञान के लिए विद्वानों ने साहित्य तथा इतिहास के आधार पर भरसक प्रयास किये हैं पर फिर भी निरवधारक बुद्धि से कुछ नहीं कहा जा सकता । प्रारम्भिक श्लोक के आधार पर एक ओर तो प्रवृत्ति अति-रजसमूर्ण है और दूसरे 'सूत्रकोशमि प्रविष्ट' कहकर भ्रम फैल कर दिया है । इन श्लोकों में 'त्रिजमुच्चतम', 'समरभ्यसनी' तथा 'सिद्धिपान्त' के विशेष उल्लेख सम्भव प्रतीत होने हैं । पर 'द्विनेत्रवतिरक्षकोरनेत्र.' में प्रवृत्ति ही स्पष्टी है ।

इस सम्बन्ध में सूत्रक-विषयक निम्न निष्कर्ष विश्वसनीय प्रतीत होते हैं .—

- (क) मूञ्जकटिक का रचयिता सूत्रक ही है जो त्रिजों में सर्वश्रेष्ठ बर्ण का अर्थात् वास्तविक है ।
- (ख) यह सूत्रक राजा या जो अन्य प्रजासत्तों की सौति राज्यसत्ता का उपयोग करता रहा पर कदाचित् बहुत प्रख्यात न हो सका ।
- (ग) उसका व्यक्तित्व रोमांटिक या और समर-भ्यसनी होने के साथ-साथ प्रगदी था ।
- (घ) सूत्रक ने राज्यसत्ता का उपयोग उस अर्थ में किया प्रतीत होता है जो गुप्त साम्राज्य के पतन से आरम्भ होता है और हर्षवर्धन के उदय काल पर समाप्त होती है ।

इसमें भी शक्य नहीं कि मूञ्जकटिक का रचयिता कुछ कवि और नाटककार रहा जिसने अपनी कृति में सूत्रका विचित्र अंकित किया है । क्यों न आर्यक और पातक की सौति सूत्रक शब्द में समाप्त थाये । सूत्र के निर्मित सूत्रक नाम के ही कारण त्रिजमुच्चतम विशेषण अनुपसृक्त सम्भवता उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि सूत्रक तो प्रसिद्ध और ऐतिहासिक नाम है फिर राजा के लिए प्रयुक्त हुआ है । 'सूत्रकोशमि प्रविष्ट' की प्रसिद्धता अर्थात् बार में बोझ हुआ अनुमान किया जाता है ।

वास्तविक और मूञ्जकटिक सर्वथा भिन्नरूप में भिन्न है :—

- (अ) भास रचित वास्तविक वर्तमान रूप में अनूर्ण एवं मूञ्जकटिक से पूर्व की रचना है । मूञ्जकटिक उसका परिवर्तित एवं सुतल सामग्री से युक्त नव स्वरूप

है। (आ) माघ के शताब्दियों बाद सूत्रक ने अपनी निराली नाटकीय सूत्र से मूठकटिक का निर्माण किया और विद्वे को शास्त्री के नाम से साधारण चित्र प्रस्तुत किया।

सूत्रक का समय निर्धारण

सूत्रक के समय-निर्धारण के अनुसार मूठकटिक का कालक ऐसे समय को जोर संकेत करता है जब बौद्धधर्म अपने प्रचार के पूरे शीतक पर था। बौद्धमिथु अपने धर्म का पूरे सावधानी से पालन करने से। जगता उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखती थी। चारों ओर मन्दिरों की मति बौद्ध विहारों का भी निर्माण हो रहा था। कालान्तर में ई० सवन् के धारम्भकाल में बौद्ध धर्म ह्रासीमुख हो चुका था। अतः यह निश्चित है कि सम्बन्धित रचना ई० सवन् के प्रारम्भिक काल के पूर्व सम्पादित ही हुई थी।

मूठकटिक ने विष्णुकाये राजाओं का वर्णन देसते हुए ऐसे युतयुव के पश्चात् तथा हर्षवर्षन के पूर्व की रचना मानना ही पानव्यपत है। नाथ का अतिशय इस बात का साक्ष्य है कि युव राजाओं के पश्चात् तथा हर्षवर्षन के पूर्व तक इस देश में कोई सार्वभौम राजा उत्पन्न नहीं हुआ था। उस काल में नाथ की समाजिक, धार्मिक तथा सामिक तथा अस्त-व्यस्त थी। राजा बुद्धरिच हो गये थे। प्रजा में राजा के निरुद्ध कोई न कोई पद्यन बसा करता था। मूठकटिक द्वारा ऐसे ही अज्ञान समाज और कुत्सित राजनीति का विवरण करना निर्माणा सूत्रक का उद्देश्य था।

इसके अन्वय पर सूत्रक का समय १वी-४ठी शती के मध्य मानना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

योग्य विचारकों के आभार पर मूठकटिक के लेखक के विषय में मतभेद

इस सम्बन्ध में पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने विभिन्न विचार व्यक्त किये हैं पर वे कहीं तक मान्य हैं यह विचारणीय है।

(क) पाश्चात्य विद्वानों के विचार

१. डा० स्मिथ का मत

स्मिथ के अनुसार सिमुक का समय ई० पू० २४० के लगभग है। और अलिशास का समय ई० पू० १०० के लगभग है।

भास के प्राचीन होने से उल्टा तर्क ई० पू० २०० के अन्तर्गत्त समझा जाए। यदि यह सत्य है तो निश्चय ही भास ने दूदक से मुख्यकटिक से कथा पुनरुक्त करके वास्तव की रचना की है पर दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से ऐसा ज्ञात नहीं होता।

भासा और कथा की दृष्टि से बरिष्ठ वास्तव अथवाकृत पुराण्य है। दूदक कालिदास से प्राचीन नहीं है। बरिष्ठ प्राचीन होते ही वे अपने नाटकों में विद्येयत मानविकान्तिमित्र में भास, सोमिस्त, कविपुत्र आदि प्रसिद्ध नाटककारों के साथ दूदक का भी उल्लेख करते। दूदक के विषय में भीत होता इस बात का सूचक है कि जब समय तक दूदक का कही नाम नहीं था तब यह कालिदास से परवर्ती है। इस विचार से दूदक को विमुक्त से अस्मिन् व्यक्ति मानने की सम्भवा निर-पेक्ष है।

२ प्रोफेसर कोनो का मत

इसका विचार है कि बामीर बसा के राजा शिवदत्त का दूसरा नाम दूदक है। डा० फ्रीड के अनुसार राजा शिवदत्त जबका उसके पुत्र ईश्वर टैन ने अन्तर्गत के अन्तिम राजा का नाम किया। राजा शिवदत्त का काल ई० अ० २४८ के लगभग है। यह सम्भवा इसलिए निस्संशय है कि क्यों तो शिवदत्त का नाम दूदक हुआ और क्यों फिर मुख्यकटिक के साथ वास्तविक नाम शिवदत्त संबंध न हीकर दूदक हुआ। यदि यह कर सत्य कर हैं कि बामीर दूदक का ही मत यह दूदक कहलाया है तब यह नहीं जाना जा सकता कि कवि अपनी कृति को एक सुन्दर नाम से प्रसिद्ध न करके अपमानजनक नाम से प्रसिद्ध करे। फिर यह कहकर यदि सदैव का निराकरण करना चाहें कि प्रस्तावना के एकोक किसी वृत्ते के हैं वा प्रसिद्ध हैं तब भी बात नहीं बनती, क्योंकि प्रस्तावना से यह नहीं समझता कि कलौज निर्माता नाटककार को हेय वृत्ति से बंध रहा है अथवा अपेक्षाकृत अपना बेजिह्वप दिया रहा है। वहाँ तो उल्टी स्तुति स्पष्ट रूप से मालूम हो रही है। ऐसी स्थिति में वास्तविक नाम के अभाव में विदा-जनक नाम सबेह की वृत्ति ही करणा है उल्टा निराकरण नहीं करता।

अन्त में इसकी पुष्टि के लिए मुख्यकटिक के बोपाठशरक बार्बक में बामीर राजा शिवदत्त वा सामञ्जस्य भी जोक नहीं अथवा क्योंकि प्राचीनकाल में पोपाठ और पाठक नामों की प्रसिद्ध की दृष्टि से देखा गया है, निराकरण की वृत्ति से नहीं। बात के प्रतिआशीम्बराम में अम्बिनी से राजा प्रद्योत के पुत्रों के रूप

में भी योपास और पाकक का उल्लेख है। ऐसी निराधार कल्पनाएँ सब में इति-
हास को बिलम्बाह का विषय बनाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

३. श्री पिसेल साहब का मत

श्री पिसेल साहब सभी को मूञ्जकटिक का कर्ता मानते हैं। उनका कहना
है कि बणकुमारचरित और काम्यादर्श केवल दो ही वे दण्डी के प्रथम उपसम्ब
हैं अतः तीसरा यही मूञ्जकटिक है।

धीनेस्टर भास की मूञ्जकटिक का कर्ता समझते हैं पर दोनों ही विद्वानों
की इस बात को मानने में बड़ी उत्तम होयी है कि जब अन्य विद्वानों की अन्य
कृतियाँ उनके नाम से प्रसिद्ध हैं तो मूञ्जकटिक में उन्हें अपना नाम परिवर्तन
क्यों करता पड़ा। अपने प्रसिद्ध नामों में अन्य कृतियों की धीरे इसको भी
उन्होंने क्यों नहीं अपनाया, फिर मूञ्जकटिक को प्रस्तावना में मूद्रक को पचा
कहा गया है। दण्डी और भास कहीं भी पचा के नाम से प्रसिद्ध नहीं हैं।

४. डा० सिन्धवालेवी का मत

उनका विचार है कि मूञ्जकटिक मूद्रक की कृति नहीं है बरन् किसी अन्य
नाटककार ने मूञ्जकटिक बनाकर मूद्रक के नाम पर चला दिया है और यह
संभवतः इसलिए किया गया है कि मूद्रक प्राचीन से और उनके नाम की प्रतिष्ठा
के चल पर इसको भी प्राचीन समझकर किया जाये। डाक्टर साहब की यह
कल्पना सर्वथा विस्तर है। मत्वा कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो अपनी कृति को
दूसरे के नाम से प्रसिद्ध करे? हाँ, इसके विपरीत यह तो देखा जाता है कि
दूबरो की कृतियों को भी अपने नाम से प्रकाशित करने के लिए उतावले
रहते हैं।

५. डा० शीष का मत

डा० शीष मूद्रक को मूञ्जकटिक का कर्ता नहीं मानते। यह तो उन्हें एक
कल्पित पुरुष समझते हैं। उनके विचार से यह नाटक भास के बाद का नाटक
है। डा० शीष का कहना है कि भास के बरिद चारुदत्त के साथ वार्तिक के
विरोध की कथा सिवाकर मूञ्जकटिक किन्वा पचा और अपना नाम मुद्रक रखने के
विचार से इसे मूद्रक के नाम से प्रसिद्ध किया गया। कोई उन्हें इस समय में
उन्होंने प्रस्तुत नहीं किया। डा० शीष के अनुसार मूद्रक को मूञ्जकटिक का कर्ता
न मानना भी विचारणीय है। समझ है भासकृत बरिद चारुदत्त को वैदिकरूप से
वर्णन जानते हुए अपनी बरिद के अनुसार किसी कवि ने इसकी कथा के साथ

अपनी कल्पित अथवा गुणाद्य को मूहत्वा से भी हुई नोपाभारक कार्यक के विरोध की तथा सम्मिश्रित कर दी हो। उसके अपने नाम की छिपाने की बात इससे तो और बुरा हो जाती है। प्रस्तावना में मूहक के साथ क्विप्ति का प्रयोग किया गया है। इसके पश्चात् प्रथम अक्ष के पाँचवें और साठवें पद में भी मूहक के साथ क्विप्ति आया है। इसका प्रयोग प्रायः बलीकृता, समावना वा ऐतिहासिक के लिए आता है। बभ्रु और अकार के प्रकाश में क्विप्ति अक्ष ऐतिहासिक आदि अर्थों का हो बोध कराता है।

डा० श्रीय के मत से मूहक कास्वदिक पुरुष है और उसके विचार से मूच्छकटिक के कर्ता मूहक नहीं बरन् कोई अन्य व्यक्ति है। तब तो यह है कि मूहक का नाम संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों में आया है। तब उन्हें कास्वदिक बताना उचित नहीं जान पड़ता।

(क) भारतीय विद्वानों के विचार

१. स्कन्धपुराण के कुमारिका खण्ड में राजा मूहक का उल्लेख किया गया है। कुछ विद्वान् इन्हीं को मूच्छकटिक का कर्ता मूहक मानते हैं। फिर इन्हीं मन्त्र पद्य के प्रथम राजा विमुक्त से अभिन्न व्यक्ति माना है। इस कल्पना के आधार पर काञ्चिदास और मास दोनों मूहक से प्राचीन विद्व होते हैं।

२. पण्डित चन्द्रवर्दी पाण्डेय का मत

श्री पाण्डेय भी ने मूहक को आर्य समाज का बलिष्ठपुत्र पुत्रुमात्रि माना है क्योंकि वहमिन्नुन्वरीकवातात में इन्द्राणीमुप्य का इतरण नाम मूहक है। अत्र बलिष्ठपुत्र पुत्रुमात्रि ही इन्द्राणीमुप्य अथवा मूहक है जिन्हें मूच्छकटिक का निर्माता कहते हैं पर मूहक की पुत्रुमात्रि का उपनाम सिद्ध करने में पाण्डेय जी का परिश्रम मुक्तिदाता तो है पर है उभयहीन, क्योंकि नामों से इन भाँति परस्पर समन्वय में अनेक अन्य शेषों की समावना है। फिर नामों की ऐसी सवति लो कही भी न्यायी वा उकरी है।

३. डा० देवस्वामी का मत

इनके विचार से मूच्छकटिक की प्रस्तावना के क्लेश मूहक के नहीं है पर इन बात को अप्रमाणित करने के लिए इनके पास कोई ठक नहीं अथ वे बरम्भण से प्रभावित है और अपना पृथक् से कोई मत नहीं रखते।

४. शकरोचर का मत

इसका कहना है कि शक्ति और सोमिष्ठ ने शूद्रक कथा नाम का ग्रन्थ लिखा था। वाणमट्ट ने कादम्बरी और हर्षचरित में शूद्रक की चर्चा की है। बघी से दशकुमारचरित तथा लक्ष्मिसुन्दरी कथा में शूद्रक का नाम लिया है। सोमदेव ने कव्यामरिसंग्रह में, कण्ठभूष ने राजतरंगिणी में शूद्रक के विषय में लिखा है। बेतालपत्रविद्यति में शूद्रक का नाम आया है। इसके अतिरिक्त शूद्रक बघ, विक्रान्तशूद्रक और शूद्रकचरित नाम के ग्रन्थों का भी शूद्रक से स्पष्ट सम्बन्ध प्रतीत होता है। यद्यपि ये ग्रन्थ प्राप्य नहीं हैं पर अन्य उपलब्ध ग्रन्थों में इनका प्रासंगिक बर्णन है। कादम्बरी के शूद्रक को हम मले ही कल्पवृक्ष नाम से बघथा यह समझें कि श्री वाणमट्ट ने मरुत्त प्राचीन किसी इतिहास-वर्षिष्ठ राजा के नाम से अपने पात्र को शूद्रक की संज्ञा दी हो पर अन्य इतने ग्रन्थों में बार-बार शूद्रक की चर्चा यह समझे के लिए विवश करती है कि निश्चय ही शूद्रक नाम के कोई व्यक्ति अवश्य रहे हैं।

५. हार्डिं-शेखर का मत

It is also mentioned in MHH that the Kshatriyas afraid to Parasurama took to hiding. Since they could not perform the regular religious rites and caste-functions, they had to be graded as Sudrabhiras. Manu says that a child born of a Brahmana ambastha from a (Sudra) Mother is Abhira. All the above evidence indicates that the Abhiras were regarded a low class. Intercourse between the wandering tribes of Abhiras and their more civilized Aryan neighbours must have upset the priestly class. It is possible that lured by the physical charms of Abhir girls, the Aryan youth endangered the sanctity of the Aryan race and thus may have incurred the displeasure of the priests. Krishna and Gopala legends believed to have been added later, support this admixture of races. By showing preference for this community of the low born, Sudraka exhibited his own bias in no small degree¹

1. Shekhar Sanskrit Drama : Its Origin and Decline, p. 119-20

ब्राह्मणादुद्भवस्यापाबाहुणो मान जायते ।

काशीरीश्वर कव्यामामोचनाना तु विग्रह ॥ अनुसृष्टि १०-१५

निष्कर्ष

वास्तव में जब मुञ्जकटिक के निर्माता सूत्रक न होकर अन्य कोई व्यक्ति है तो सूत्रक के नाम से इसे क्यों प्रसिद्ध किया गया, यह भी एक जिज्ञासा का विषय है। इसका एक कारण तो यह माना जाता है कि जिस कलाकार ने यह नाटक लिखा होगा उसके मन में भास की अपूर्वता सटक रही होगी। अतः उसने इसे पूर्ण किया पर वह सोचा कि इसका पूर्वाह्न भास द्वारा रचित है किन्तु उत्तरार्ध ही तो भेद है। ऐसी रचना में पूरे नाटक को यदि अपना कहा जाये तो खोटी क्या दौड़ है। इससे अपने नामोल्लेख का उसने विचार ही नहीं किया।

यह भी प्रतीत होता है कि नाटक में कलाकार ने जो बटनाचक्र रिससया है वह उस समय सामान्य जनता के मनोवृत्त विचारों का एक साकार रूप है जिसे उसने सादृश के साथ प्रदर्शित किया है। भास ने तो बसन्तसेना के बादरत के घर पहुँचने पर ही नाटक की दृष्टिही समाप्त की पर मुञ्जकटिक-निर्माता ने तो पाण्डित्य और अतिरिक्त दो-दो ब्राह्मणों का वैश्याओं के साथ विवाह करा दिया। इस बात से नाटककार को अप्रत्यक्ष सहमति इस सम्बन्ध में प्रकट होती है। इतना ही नहीं, इन्होंने दो ब्राह्मणों को भीट, बुजारी और वैश्याओं के समीप में अनुरक्त रिससया है। नीच श्रेष्ठि के ब्राह्मणों का चरित्र ही ऐसा नहीं दिखाया गया है वरन् उच्च कोटि के ब्राह्मणों को भी इसी प्रकार दिखाकर सारे ब्राह्मण समाज को ही घण्ट रिससया गया है। क्षत्रिय भी अपनी मान-भर्यादा को खो चुके थे, उन्हें क्रूर और दुष्टवारी रिससकर तात्कालिक परिस्थिति का सम्यक् प्रदर्शन किया गया है। मनुस्मृति और समी धर्मशास्त्र के उच्च वर्गों की अपेक्षा उस समय एक साधारण बात थी। प्रकार को नीच जाति की दासी रखने वाला रिससकर होना का प्रदर्शन ही नहीं किया है वरन् उसे गोपाक के हाथ मरवाया है। इतना ही नहीं, राज्य के उच्च वर्गों पर औरक और पण्डितक जैसे दूरी को माहीन रिससाना, बौद्ध, शोपाक और चण्डालों तक को उत्सुकों के रूप में चित्रित करना उस समय के समाज के मूल चित्र को प्रस्तुत करना नहीं तो क्या है? ऐसा कलाकार यदि कृति के साथ अपना नाम प्रसिद्ध करता तो निश्चय ही अश्विजारी के रूप में राजा और राजा का शोपमात्रक बनता।

जब यदि यह कहा जाए कि नाटक तो सूत्रक का है और बटनाचक्र के बलक किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा प्रसिद्ध है तो ऐसा मानने पर स्वभावतः यह बात मन में आती है कि सूत्रक ने अपने नाम के बिना नाटक जैसे प्रस्तुत हुआ फिर 'बकार

बौर 'बजूब' के आधार पर यदि यह मानना उचित ही कि पृथक ही मृत्यु के अनन्तर बहुत समय बाद प्रस्तावना के क्लृप्त किये गये तो फिर नाटक किसी का और स्लोक किसी के यह भी संभव है। अतः दशोकी का प्रशिक्षण होता भी कुछ ठीक यही संभवता। सब कुछ सोचते हुए डीक बो यही जगता है कि यह मूञ्चक द्वारा संपादित है पर यह सूत्रक मार्गक बौर योगात्मक को मॉडि वासक ही है हुए एक दासिवात्म्य कवि हैं। यह वाक्य मछे ही नये न हो पर स्वच्छम स्मोवृति के निर्दुःख अन्वेषणों कवि बनस्य है।

मूञ्चकटिक के आधार छोट तथा उनका विश्लेषण

कथात्मक का उद्भव—किसी भी कथात्मक के पीछे कोई न कोई प्रेरणा आवश्यक कार्य करती है। नाटक, कहानी, उपन्यास यहाँ तक कि कविता, निबन्ध आदि में भी कथात्मक के साथ कुछ रूप में उसका सद्भाव कहीं से निरन्तर ही समक है। इसका आधार इतिहास एवं कोई सामाजिक घटना-वस्तु होता है जिसके आधार पर इनकी मूञ्चमूर्ति रहती है। जब यह विचार करना है कि मूञ्चकटिक का कथासाम्य हमें कहीं से उपलब्ध होता है। हम देखते हैं कि मास का बटिदा चारुचन्द्र, दशो की बहकृमारचरित और सोमदेव का कथासरित्सागर इससे मिलता जुड़ता है। कालिदास के अमिशानशाकुन्तल और मुद्राराक्षस की घटनाओं का भी साम्य मूञ्चकटिक की घटनाओं से है। अतः इन नाटकों पर विचार करके यह निश्चय करना है कि मूञ्चकटिक की कथाकस्तु वास्तव में किस समय के आधार पर है।

सब से पूर्व हम इस सर्वथ में मूञ्चकटिक की अतिरास के अविज्ञान-अज्ञानता से मुक्तना करेंगे।

कथा स्रोत : (क) अमिशानशाकुन्तल और मूञ्चकटिक^१

ये दोनों नाटक परस्पर बहुत कुछ मिलती हैं। जिस मॉडि अज्ञानता पूर्वासा की कौम भावना बनकर बनेक कट्टों में पलकती है इसी प्रकार अतन्तरेषा की प्रकार की कोपबासन होकर बनेक कण्ड योग्यता है। अमिशानशाकुन्तल में मापक और नायिका का मिलन दो बार होता है, इतर मूञ्चकटिक में भी चारुचन्द्र और अतन्तरेषा दो बार मिलते हैं। अतः अज्ञानता और अज्ञानता परस्पर प्रेय करते हैं।

१. श्री कान्दानाथ दासनी वैर्षय : मूञ्चकटिक की सपीसा, पृष्ठ १०-१२।

द्वय बसन्तसेना और चाहरत भी आपस में प्रेम करते हैं। अग्निज्ञानब्राह्मण्डल के पंचम अंक में राजा के दरबार का दृश्य मूञ्चकटिक के न्यायालय के दृश्य के समान है। दोनों नाटकों में इस भाँति मुख्य बटना की दृष्टि से साम्य है पर यह एक हीसे हुए भी यह कहना उचित नहीं करता कि मूञ्चकटिक रामानन्द के आचार पर रचा गया है अथवा वे परस्पर प्रभावित हैं। सामान्यतः बटनाओं का ऐसा मेल तो नाटकों में दिखाई दे ही जाता है। वास्तव में दोनों नाटकों की कथावस्तु में बहुत अन्तर है। सबसे बड़ा अन्तर तो स्पष्ट ही है कि अग्निज्ञान-ब्राह्मण्डल में शकुन्तला से मिलने का प्रयत्न पहले दुष्यन्त की ओर से होता है और फिर द्रुपदका की ओर से, पर मूञ्चकटिक में आरम्भ से अन्त तक मिलने का सारा प्रयत्न अपेक्षाकृत नायिका पक्षतःसेना करती है, चाहरत तो बाह्यरूप से एक नायक के रूप में आरक्ष पुंस्य की भाँति अपने को व्यक्त करते हैं।

मूञ्चकटिक को समता अन्वय भी है। विशाखदत्त के मुद्राराक्षस से भी कुछ दूर्य मिलते हैं।

(ख) मुद्राराक्षस और मूञ्चकटिक—मुद्राराक्षस के पंचम अंक के अन्त का दृश्य जहाँ मलयवेतु राजस पर विश्वासघात का आरोप समता है बहुत अर्थों में मूञ्चकटिक के न्यायालय के दृश्य के समान है। मुद्राराक्षस के सप्तम अंक में चाण्डाल चण्डलवाह की शूली पर चढ़ाने के लिए बन्धस्नान से आते हैं। इसी भाँति मूञ्चकटिक में भी चाण्डाल चाहरत को बन्धस्नान में ले जाते हैं। बटनाक्रम के इस साम्य से यह न समझा जाए कि मूञ्चकटिक पर मुद्राराक्षस का प्रभाव पड़ा है। अधिकतर विद्वान् तो इस पक्ष में हैं कि मुद्राराक्षस मूञ्चकटिक की अपेक्षा अर्वाचीन है।

पंचार्थ में मूञ्चकटिक की कथावस्तु सर्वांगीण और मनोबैधानिक है जिस भाँति तुलसी का रामचरितमानस सभी रामचरित प्रणेताओं का प्रतिनिधित्व करता है ठीक उसी प्रकार यह मूञ्चकटिक सभी नाटकों का प्रतिनिधित्व रूप है।

कथासरित्सागर, ब्रह्मभारतचरित और मूञ्चकटिक—यह सोचना कि सोमदेव ने कथासरित्सागर से और बन्धी के ब्रह्मभारतचरित से मूञ्चकटिक की कथावस्तु को कुछ सहारा मिला हो, ठीक नहीं है। कथासरित्सागर में कपचिन्ता और एक बरीब ब्राह्मण सोहृदय के प्रेम की कहानी है। इसका मूञ्चकटिक से कोई सम्बन्ध नहीं मिलता। ब्रह्मभारतचरित में राममंजरी की एक ब्राह्मण के साथ

प्रेमलीला की कथा है जो मूञ्चकटिक की कथावस्तु से विभन्ना है। मतः इस कथामें जो मूञ्चकटिक की कथा का मूळ कहना सर्वथा असंभव है क्योंकि सोमदेव ई० श० ग्यारहवीं शती के दो और बड़ी सख्खी पत्नी के। मूञ्चकटिक के कर्ता सोमदेव और बड़ी दोनों से पुराने हैं।

सब नाटकों पर बिल्हणम दृष्टि डालते हुए विद्वानों का मूञ्चकटिक की कथावस्तु के विषय में विचार

(प) हरिश्चन्द्र और मूञ्चकटिक—बैठे-बैठे माल के नाटक प्रकाश में आए बैठे-बैठे मूञ्चकटिक के मूळ के सम्बन्ध में भी विद्वानों का विचार बदलता गया। अब प्रायः सभी एकमत हैं हरिश्चन्द्र को मूञ्चकटिक की कथा का मूळ मानते हैं। हरिश्चन्द्र के चतुर्थ अंक के अंत में बसन्तसेना मरतिका को धर्मिक के साथ बिला करती है। इसके बाद पद्म अपनी बेटी को मुठारत करना स्वप्न कहती है। इस पर बेटी कह बठती है—'मियं मे बसुताक नाटकं समुत्तम्', तदनन्तर बसन्तसेना बामुपगों के साथ चारदत्त के घर बचने की चर्चा करती है। बेटी मनुष्य बनकर का समर्पण करती हुई तैयार हो जाती है। बसन्तसेना हंसी से डाँटकर उससे कहती है—'हठाये। मा समुत्तम्'। इस पर बेटी कहती है—'एतेवन्मुका'। अब बही नाटक की समाप्ति है।

माल के चारदत्त की हस्तलिखित प्रति के चतुर्थ अंक के अन्त में लिखा है—'बसन्तितं चारदत्तम्' इसको आधार मानते हुए नाटक की समाप्ति वहीं मानते हैं। दूसरे विद्वान् इसे अपूर्ण मानते हैं और कहते हैं कि इसमें कम से कम एक अंक और रहा होगा।

मूञ्चकटिक में मरिचकों को सुप्तमाने का प्रवास किया गया है। अन्य नाटकों की भाँति मादक और नाशिका के सेवन प्रेम को कहानी पूर्ण करना ही उसका मुख्य उद्देश्य नहीं है। बिलना सुन्दर इसका अंत है जहाँ कि बसन्तसेना के सामने जाने से चारदत्त के प्राणों को रखा होती है और चारदत्त के इस समाचार को सुनकर पत्नी परती दुःख सती होने का विचार छोड़ देती है। एक की शानरसा और दो की वीरबदान देती है। फिर चारदत्त का अस्तित्व भी क्या कम बनीचा है जहाँ कि उससे प्रेम करने वाली बसन्तसेना के साथ उसकी पत्नी मुठ की उससे कम प्रेम रही मरतिका और बसन्तसेना के प्रति कोई ईर्ष्याभाव नहीं दिखाती।

मूच्छकटिक पर भास के प्रभाव का विवेचन

मूच्छकटिक एक अनूयम रचना है। कथानक की दृष्टि से इसका कथेपर मौलिक है। इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। पारशास्य विद्वान् इस विषय में प्रायः टिप्पणी करते हैं। कुछ भारतीय विद्वान् भी इसी का समर्थन करते हैं, पर सब तो यह है कि मौलिकता का अविभाज्य यदि ऐसी रचना है तो अपनी विद्या में किसी की अपेक्षा नहीं रखती और उसका कोई अर्थ भी नहीं उपलब्ध नहीं होता सब छो बात और है किन्तु सब में यह भी है कि ऐसी रचनाएँ हैं किन्तु जिन्हें उँचली पर बिना जा सके। जैसे बड़े-बड़े कवियों के महाकाव्य और गद्यग्रन्थ जिन्हें मौलिक कहा जाता है यदि उनके आचार को देखा जाए तो कहीं न कहीं ऐतिहासिक आध्ययन का अवलम्ब दिखाई देता। यही आचार स्रोत एक नीबू है जिस पर विद्वत् का साहित्य बना है। इसी प्रकार मूच्छकटिक का भी आचार भास का बलिष्ठ आश्रय है। यदि कथानक की भूमिका किसी और रूप में रखी होती और पात्रों के नाम बरखे हुए होते तो मूच्छकटिक पर बलिष्ठ आश्रय के प्रभाव की धका ही किसी को न होती।

संस्कृत साहित्य के पारशास्य तथा अग्रणी ज्ञाता विद्वान् जैसे कोलो, विष्टर-मिद्व, डेवी, लीच, मैकेन्ड्रेक, विसवाल्कर और लुकवाकर इस बल में हैं कि विवेचनम संस्कृत शीरीष के प्रकाशित नाटकों में आश्रय का ऐसा स्वरूप देखने को मिलता है वह मूच्छकटिक जैसा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मूच्छकटिक भास के आश्रय का परिष्कृत एवं विस्तृत स्वरूप है।^१

श्री बी० बी० पराशरे ने भास और सूत्रक की इस समस्या का गहराई से अध्ययन करने के बाद सिद्धा है कि प्रोफेसर सी० आर० ईश्वर ने भास के नाटकों का विवेचन करते समय यह दिखाया है कि विवेचनम संस्कृत शीरीष के भास के तेरह नाटकों की सँती विभिन्न है फिर भी कुछ बातें उसमें मिली-जुली हैं। यह देखकर निश्चय होता है कि यह किन्हीं एक रचनाकार की कृति है। इन नाटकों के विषय में यह भी कहा जाता है कि यदि इन्हें एक ही कृति मानें तो यह कैसे सम्भव है कि स्वयंवासवस्तु का निर्माता प्रतिभा नाटक, पञ्चरात्र और अविमारुह का भी निर्माता हो जहाँ एक-दूसरे से कुछ देखा नहीं दिखाई देता।

भास का समय तीसरी शती और मूच्छकटिक का समय पंचम शती माना गया है। अतः मूच्छकटिककार भास के परवर्ती हैं। दलिप्त आश्रय मूच्छकटिक

१. श्री० बी० पराशरे : मूच्छकटिक की भूमिका, पृ० ८।

से पूर्व की रचना है पर यह कहना कि भास का प्रभाव मूञ्जकटिक पर है मुक्तिसेवण नहीं बर्तीत होता। यही एक ठो ठीक है कि मूञ्जकटिक में वासुदेव और वसन्तसेना नामक पात्र नायक-नायिका के रूप में दृष्टि वासुदेव के उन्नी नाम जाने पात्रों से नाम में मिलते हैं पर सैव कहानी तो मूञ्जकटिक की अपने अंग थी है।

सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर यह निश्चित है कि वासुदेव मुख रचना है और मूञ्जकटिक उसका परिष्कृत संस्करण है। मूञ्जकटिक के विस्तृत सम्बन्धों को देखकर ही यह कहने का साहस किया जाता है कि वासुदेव मूञ्जकटिक का अक्षिप्त रूप है पर यह मानना गिरापर नहीं है क्योंकि विवक्षा मूञ्जकटिक वासुदेव की अपेक्षा विस्तारयुक्त है चला वासुदेव मूञ्जकटिक की अपेक्षा सर्वथा संकुचित नहीं है। यदि मूञ्जकटिक में कही विस्तार कम भी है तो इसका कारण मूञ्जकटिक के रचयिता की रचि है निरुक्त सिद्ध्य किरी सर्व की मान्यकता नहीं।^१

मूञ्जकटिक की मौलिकता एवं नाम का अचित्य

मूञ्जकटिक नाम चुनने में बड़ा अस्वामयिक उक्तता है। सरभवा से वो इसका अर्थ समझने में नहीं आता। संस्कृत भी इनको सवि-दिग्धेर करने पर जान पाते हैं मूठ समर्पित, से सम्यो से निकलर यह बना है जिसका अर्थ है मिट्टी की पाटी। उन्ने को प्रसन्न करने के लिए वसन्तसेना ने अपने सोने के भाभुवन उतारकर इसमें रख दिए थे। आधिकर्यिक (अज) को वासुदेव के अत्रिपौत्र का प्रत्यय प्रभाव में इसे देखकर ही मिला था। इसी से आनिका-रजिक को निरचय हुआ था कि वासुदेव ने बरमय ही वसन्तसेना की हत्या की है। इस रूपक में यह बठना बड़ी महत्वपूर्ण है। इसी से इसका नाम मूञ्जकटिक रखा गया।

मूञ्जकटिक के छोटे अंक में ररनिका (वासुदेव की रासी) रोहसेव (वासुदेव के पुत्र) को खेम्ने के लिए मिट्टी की पाटी देती है पर वह उसे नहीं लेना चाहता और पदोस में देखो हुई सोने को गाड़ी लेने के लिए दुःखग्रह करता है। इसका छे नहीं, सोने की पाटी न मिलने पर वह रोता और नपकता है। जैसे ही वसन्तसेना ने उसके रोने का कारण माहूम होता है वह अपने सोने के भाभुवन उतार कर सोने की गाड़ी बनवाने के लिए उसे दे देती है। ऐस्य केवल छे प्रसन्न करने के लिए किया जाता है।

यहाँ यह अस्पष्ट होना स्वाभाविक है कि जब सोने की पाटी की बर्तों को इस रूपक में काई है तो इसका नाम 'सुवर्ण कटिक' रखना उचित क्यों नहीं समझा गया जबकि इसे दूसरा नाम 'वसन्तसेनाचार्यरसम्' क्यों नहीं दिया गया। ये दोनों नाम लिए जा सकते थे पर साहित्यवर्षन के पद्य परिच्छेद के अनुसार 'नाम कर्म कटिकस्य मन्त्रितार्थप्रकाशकम्' के अनुसार कटिक का नाम बतित कर्षे को प्रकट करने वाला होगा चाहिए। उपर्युक्त दोनों नामकरणों से यह स्पष्ट पूर्व नहीं होता क्योंकि उनमें रहस्य और समस्कार नहीं है। वरत मृच्छकटिक नाम इस दृष्टि से सर्वथा उचित है।

सोने की पाटी की अपेक्षा मिट्टी की पाटी का होना असंगत को व्यक्त करता है। इससे कटिक की प्रकृति में सहायता मिलती है और व्यवहार-बुद्धता, सख्तस्वभाव, मन्त्रित्व्यता आदि के साथ-साथ इसका कथानक भाग्यक होता जाता है।

साधारण परिस्थितियों से असन्तुष्ट जीवन बिताने वाले लोग प्रायः दूसरों से ईर्ष्या रखते हैं और जीवन में अनेक कष्ट मोचते हैं। सदुपार्थों द्वारा अपनी उन्नति के लिए प्रयत्नशील होता तो अच्छा है पर दूसरों की उन्नति से ईर्ष्या करना बुरा है। संसार में बही मनुष्य सुखी रह सकता है जो अपनी परिस्थिति से असन्तुष्ट हो और दूसरों की उन्नति देखकर हर्ष प्रकट करे। रोद्धैव अपनी मिट्टी की पाटी से असन्तुष्ट है और सोने की पाटी की ईर्ष्या करता है, यह एक दोष है जिसके कारण वह अपने और अपने पिता के लिए अनेक विपत्तियों का कारण बन जाता है। असंगतों इस कटिक का मूल है। अन्य मुख्य पात्रों में भी यह निरन्तर बढ़ता हुआ दिखाई देता है। वसन्तसेना राजा की अपेक्षा आसुरा को प्रेम करती है, आसुरा अपनी विवाहिता स्त्री पुता की अपेक्षा वसन्तसेना को अपनी प्रियसी समाना चाहते हैं। इस भाँति बढ़ता हुआ असंगतों रूपक के कथानक को प्रोत्साहित करता है।

सुवर्ण कटिकम् की अपेक्षा मृच्छकटिकम् को भी अधिक उपयुक्त है कि रोद्धैव जैसे ही मिट्टी की पाटी के स्थान पर सोने की पाटी लेनी को इच्छा करता है उसने परन्तु ही प्रबुद्ध परिवर्तन की बटना बटित हो जाती है और वसन्तसेना आसुरा द्वारा प्रेषित पाटी में न बैठकर ब्रह्म से राकार वाली दूसरी पाटी में बैठ जाती है और राजा के पास पहुँच जाती है। वरत वहीं से रूपक का

१ नागनाथ शास्त्री टीका मृच्छकटिक समीक्षा, पृ० २२।

स्वरूप बरकने कथना है और मूञ्ज घटनाएँ सामने आ जाती हैं। इस मीति रोह-
 सेन का मिट्टी की पाठी को लोहे की पाठी से बदलना जानामो प्रवहक-परिवर्धन
 का सूचक है। वास्तव में नियति भविष्य की दृष्ट या अनिष्ट घटनाओं का सम्बन्ध
 देती है। इस रूप में मूञ्जकटिक की सार्थकता वहाँ पुनः रूप से प्रतीत हो रही
 है। देखने में बाळक का यह दुराग्रह छोटे ही घटना है पर रूपक के नाम के
 विचार से यह बहुत महत्वपूर्ण है।

मास का चातुर्थ मूञ्जकटिक का मूल है। चातुर्थ में केवल चार अक्ष
 हैं। इसकी समाप्ति वही पर है जहाँ ब्रह्मस्मेता अपने घर में चातुर्थ में मिलने
 बस जाती है। नाटक के अंत में बेटी की उक्ति है, 'प्रिय मे वसुधाक नाटकम् सक्-
 सत्म्' और बसवसेना की उक्ति है 'हनाई या सखु बर्षम्'। इस नाटक की हस्त-
 लिखित प्रति में 'अखिल चातुर्थ' भी लिखा है। इनो परिक्रमों को देखकर कुछ
 विद्वानों का विचार है कि नाटक बहो समाप्त हो गया है। डॉ० बार० वेबेयर ने
 कहा है : I need only assert here my view that the Charudatta
 is abridged from the first four acts of the Mrochhasatika
 with a few additions and numerous alterations particularly in
 the verse portions पर कुछ विचारकोश लोगों का कहना है कि यह नाटक
 बर्षम् है क्योंकि इसकी समाप्ति ब्रह्माभारिक ही है। इसमें एक पंचम अंक और
 रहा होगा।

विद्वानों का एक तीसरा वर्ग भी है जिसका कहना यह है कि चातुर्थ और
 मूञ्जकटिक दोनों की कथा अलग है। ऐसा है इस लिए कहते हैं कि 'सुष्क-
 दुग्धपत्नी रोति' इत्यादि श्लोक चातुर्थ के अतिक्रम कृत में हैं। अतिक्रम का
 अर्थ नाटक के अंत में है। इस 'सुष्कदुग्धपत्नी प्लास' मूञ्जकटिक के पंचम
 अंक में अतिक्रम के रूप में है। अतः दोनों नाटकों में कथा और लकी की उत्पत्ति
 अलग-अलग रही होगी। यह तर्क निस्सार है क्योंकि कथा का अर्थ ही और अर्थ कथा
 दोनों परस्पर मही मिलते। फिर मूञ्जकटिक के पंचम अंक को कथा चातुर्थ के
 अभावित पंचम अंक तक रही होगी। इस मीति चातुर्थ पंचम अंक तक होना
 चाहिए। इन विचारों से मूञ्जकटिक को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है,
 एक पूर्ण पंचम अंक तक जिसकी चातुर्थ से निष्ठा हुआ कथा जाता है, दुगण
 उत्तरार्द्ध पंचम अंक तक जो कि मूञ्जकटिक नाटककार ही अपनी सूझ है।

रोहसेन द्वारा सोने की पाठी के लिए मचलने की कथा से नये भाव का
 आरम्भ होता है और रोचक बन के उसकी समाप्ति दिखाई गई है।

मूच्छकटिक का नवीन विषय निरूपण

मूच्छकटिक संस्कृत के सभी रूपों में विभिन्न है। इसमें बिना विषय का निरूपण है वह किसी भी संस्कृत कृति में उपलब्ध नहीं है। इस भाँति प्रचलित परंपरा का इसमें व्याग देखने को मिलता है। बैरवा को कुसुमपु खिलाना, पवि-कक शास्त्र की भी शीर्ष कार्य में प्रकृति खिलाना तथा बासी से उनका प्रेम रिमाकर उसे भी कुसुमपु का रूप देना, जस्ताह, साहस हवा शीर्ष को अपनाते हुए मिष्कपट मात्र से बागे बढ़ते रहना एवम् उनका को एक नया रूप देना मूच्छकटिककार का चरम ध्येय था।

मूच्छकटिक में संस्कृत के साथ विविध प्राकृत भाषाओं का प्रयोग और शर्तों की बहुलता भी उसका अपना एक वैशिष्ट्य है। शास्त्रीय परम्पराओं पर ध्यान न देते हुए जो अकोशित कल्पना गया वही इसमें अपनाया गया। माकक प्याररत का प्रत्येक अंक में उपस्थित होना, निद्रा और हिंसा का रचना पर प्रदर्शन आदि शास्त्रीय प्रतिबन्ध इसके रचयिता को न लगता सके।

मरत के नाट्यशास्त्रीय विधान के अनुसार प्रकरण में लौकिक वृत्त होना चाहिए पर संस्कृत के माटककारों ने इतिहास एवं पुराण का आश्रय लेते हुए लौकिक जीवन का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। मूच्छकटिककार ने इस आत्मनिक तथा भावार्थात्मक नाट्यपरंपरा में पादरत्न और वसन्तसेना की प्रेम कहानी को ऐसे रूप से चित्रित किया है जिससे लौकिक जीवन का पवार्य-वादी आभासरूप बना रहे।

विषय-वचन के साथ विषय-निरूपण भी मूच्छकटिक में निराला है। मास से प्रेरित होकर मूद्रक ने ऐसी स्फूर्ति और साहस दिखाया है जिससे परंपरा का विरोध स्पष्ट झलक रहा है। नाट्यकला के नियमों का प्रायः उल्लंघन, राजपक्ष पर मुबारियों की कटाई, लुप्त अंक में सविच्छेद का साहसपूर्व कार्य, छठे तथा नवम अंक में बीरक, चन्द्रक एवं शकार विदूषक का परस्पर संघर्ष, बाटवें अंक में वसन्तसेना का कठिनपीडन एवं अन्तिम अंक में चितारोहक का मयात्मक एवं पारथिव दृश्य संस्कृत रचयत्व के लिए सर्वथा नवीन है।

मूच्छकटिक के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक वैशिष्ट्य की झलक

अथवा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का संक्षेप प्रकरण में यथा-रथा है फिर भी लक्ष्यतः मूच्छकटिक की अरिभक्त विविधताएँ एवं वस्तु-विज्ञान निराला है। घटनाओं की विविधता और भावों की रोचकता भी अनु-

मदम्य है। नाट्यशास्त्रीय परम्परा के अनुरूप संस्कृत रंगमंच पर विस्तृत बर्चापर्वान्त कभी प्रस्तुत नहीं किया गया पर मूञ्जकटिक ने इस मर्बाई को ठीक-कर वास्तविक विवक्षित किया है। मूञ्जकटिक प्रकरण के विषय में कहा गया है—'प्रस्तुत प्रकरण सामाजिक एवं कलात्मक चुनौतियों का गटक है।'^१

मूञ्जकटिक की रंगमंचीय अभिलेखिता भी सुन्दर है। षट्मा विन्यास के सम्बन्ध में कालकलात्मक और कलात्मक पद्धतियों के कसौटी पर परखने से यह स्पष्ट है कि मूञ्जकटिक में कालकलात्मक पद्धति का अनुसरण किया गया है। इसका अर्थार्थ तो यह है कि कामदेवामृतन सञ्चाल वाली बटवा की बालकरी वाद में ही गयी है। इस प्रकरण में काव्यात्मक छत्रिद्य भी प्रचुर मात्रा में है। इन भाँति इसमें नाट्याभिनय के आनन्द के साथ रसिकों को काव्यरसगुणभूति भी कम नहीं होती।

मूञ्जकटिक के आरम्भ में वस, उपवास को बर्चा क तत्कालीन समाज की आर्थिक आस्था का परिचय विकटा है।

मूञ्जकटिक-कालीन वातावरण

घाहिल्य समाज का वर्णन है। इस उक्ति के आधार पर मूञ्जकटिक अपने समय का प्रतिबिम्ब है। इसके अन्तर्गत का ही उद्देश्य ही सम समय का चित्र प्रस्तुत करना था। वर्चस्ववस्था इस समय प्रचलित थी पर बाँटारों की बचन पचम वर्ग में ही जाती थी। रबीनित कामों में कुछ शिथिलता आने लगी थी। तत्कालीन कुछ आहत्य नापिज्य कार्य में रति कैते दे। पाकरत स्वयं ऐसे व्यक्ति थे।

गाविक अवस्था सुन्दर थी। राजमार्ग बन्धे से पर रात में सड़कों पर खेंबेरा रहुता था। चौकीदार नगर की रक्षा के लिए नियुक्त थे फिर भी सड़कों पर खेंबेरे में पनिका, बिट, चेट भाँति बस्कर उजाते थे। सड़कों पर मारपीट भी हो जाती थी। रंभपादियों की अधिक प्रवा थी। जोड़ों का भी उपयोग होता था। बन्धियों के पास हाथी भी थे। बहन्तरीना के पास झुटपीटक नामक हाथी था।

सर्वत्र विवाह की प्रथा थी पर असर्वत्र विवाह भी किसी विशेष स्थिति में होते थे। मनु के अनुसार आहत्य को चारों बर्षों की किरियों से विवाह करने की सूट थी।^२ आस्वस-वसन्तरेवा का विवाह और घणिक-परनिका विवाह इस बात के प्रतीक है। सेवा और गणिका भी विवाह कर सकती थी।

१ G. R. Devadhar : Charudatta, Introduction, p. 51

२. मनुस्मृति।

बेरया घसा उरु समर बरे पर ये हो प्रकार की होती थी । एक कविता को मापन, गान बाहिर से बासीनिका करती थी और दूसरे बेस्मार्क को कप-बीजन द्वारा बन करती थी । यद्यपि श्रित्तिष्ठ पुरुष को सप्त समय बेसाजों से सम्बन्ध रखते थे पर सामाजिक दृष्टि से वे सम्मानित नहीं माने जाते थे । दसम अंक में जब न्यायाधीश आरुबत से पूछने हैं कि तुम्हारा बसतवेना से सम्बन्ध है या नहीं, उस बह उत्तर देन में सजुजाते हैं ।

इस समय की स्त्रियों का मन आभूषण था । वे नूपुर, हस्ताकरप, करबनी बाहिर आभूषण पहनती थी । कूणो से बेनी सजाती थी । मुख पर किसी प्रकार के पाठकर क भी प्रयोग करती थी । ग्युमार एर प्रसाधन में बर्ष साम्ब का विशेष ध्यान रहुता था । काल बर्ष को साधो पहने हुए बसतसेना काकबर्ष के कमलों से अपने को तुमन्त्रित करती थी । उस समय के कोई-कोई पुरुष बैस भी रखने थे पर यह विद्विष्ट व्यक्ति होत थे । शकार इसका उदाहरण है । इसके सम्बन्ध में नरें अरु के प्रारम्भ में कहा गया है कि यह ज्ञप में बाको को बाँध केता था, सप में बुडा बता केता था, सप में उरुँ विखेर केता था तथा सप में बैनी बना केता था ।

सूतश्रीवा का प्रकार था पर निम्न बर्ष के लोग ही बुडा खेसने थे । यह अत्यन्त कप में होता था । मद्यपान भी भी प्रथा थी । अष्टम अंक में शकार सिगु से कहता है—

‘आपानकमप्यप्रविष्टस्येव रक्षुमूलकम्ब घीपं ते महस्पामि’ (मनु) । यहाँ आपानक का अर्थ है पागबोछो । दान प्रथा प्रचलित थी पर वनउरि द्राघ दास-माय से मुक्त भी करया जा सकता था । धर्मिक ने शीरी से आभूषण प्राप्त करके मरनिहा को घसी के कार्य से मुक्ति रिखाई । कला के विचार से भी यह पुन बहा उन्नत था । तबीत कला के साथ अन्य कलाओं का भी पर्याप्त विचार हो चुका था । इन सबको बर्षा यमाबसर भाग भी मनी है ।

नमात्र में आदिज विपमता भी थी । कुछ साथ अत्यधिक घनी थे तो कुछ बरे निर्धन । बौद्ध और बौद्ध बर्ष दोनों ही प्रचलित थे । शोधों का जहाँ पाल था वहाँ उनका दर्शन अपजकुन माना जाता था । सप्तम अंक में आर्षिक के सम्पन मुक्त होने पर बीर्षोदान से जाते समय आरुदत के सामने सिगु के जाने पर बही प्रकट किया गया है ।

देन को राक्षसिक रसा थी उस समय अध्यस्तियर एर अद्यान्तिपूर्व थी । उस समय देन में कोई सजाट न था । देन बनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ

का और साधन-व्यवस्था सिद्ध थी। राज्य-सेवा में सब जातियों को नियुक्ति के लिए जातिबन्धन नहीं था। व्याप-व्यवस्था समुचित थी पर ग्यायालोंको को स्वच्छता न थी। मृत के अपराध का दण्ड बड़ा कठोर था। प्राग्दण्ड से पूर्व अपराधी को सात चन्दन और करवीर मीठा से सजामा जाता था। इसी सबका सर्वन यथार्थ रूप में मूञ्जकटिक ने किया है।

मूञ्जकटिक और नाटकीय व्यक्तित्वियाँ

'आग्नेयु नाटकं रूपम्' कल्पों में नाटक एतनीय है। इस काव्य के दो स्वरूप हैं—दृश्य और व्यय। कथक (नाटक) की गन्ता दूर काव्य के अंतर्गत है। जनता पर अभीष्ट सामूहिक प्रभाव डालने के लिए नाट्यवस्तु का रमणीय प्रयोग कथका अभिनय अन्यायनक है। पारंपार्य विज्ञानों में इसकी सङ्गठना के लिए तीन प्रकार की व्यक्तित्वियाँ (three unities) बटाई हैं। इसे संस्कृत-काव्य भी कहा जाता है। ये व्यक्तित्वियाँ बेगुनाह तथा कार्य की सीमा को इस सीति संकुचित कर देती हैं कि यहाँ पूरे व्यापलु को हुरमंम कर वाञ्छित नाम प्राप्त कर सके।^१ स्थान, समय तथा व्यापार के अन्यव्यक्तित्व होने से बेपेक्षित प्रभाव नहीं होता। अतः बहु जाणस्वर समता क्या कि नाटक की घटनाएँ स्थान, सीमा तथा कार्य की दृष्टि से मर्यादित हों—इस विचार से सुरुज नाटककारों ने निम्न व्यक्तित्वियों की व्यवस्था की :-

१. स्थान की व्यक्तित्वि अथवा स्थान संकथन (Unity of place)
२. समय की व्यक्तित्वि अथवा समय संकथन^२ (Unity of time)
३. कार्य की व्यक्तित्वि अथवा कार्य संकथन (Unity of action)

मुनाग के अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र (Poetics) में पहले पहल संकथन-पय के दिवान्त का निरुता किया। इसके परभाव १५०० ई० में अंस्टिक बेटटी ने काव्यशास्त्र में इसका विस्तृत विवेचन किया।

स्थान की व्यक्तित्वि से काश्य यशु है कि नाटकीय कृत्य ऐसी स्थान-सीमा के भीतर नियोजित किये जाएँ कि नाटक के पात्र अभिनय के लिए निर्धारित समय में योजित रूपों पर पहुँच सकें।

१. अ० सुधीसकुमार है : लिटरेचर, पृष्ठ ४८।

२. समय संकथन के लिए ध्यान रखें कि कैरल प्रदेश के पञ्जाङ्ग में महीना मुकल पत्र से आरम्भ तथा इत्यपत्र की समाप्तता का समाप्त होता है।

समय की अनिश्चिति इसलिए आवश्यक है कि नाटक के कार्य की पूर्ति के लिए २४ घण्टे से अधिक का समय न लगे। कार्य बचका व्यापार की अनिश्चिति से यह अभिप्राय है कि नाट्यविषय का आरम्भ, मध्य तथा पर्यवसान निश्चित हो और सभी पात्र सभी दृश्य नाटकीय व्यापार की पूर्ति में सहायक हों।

मूञ्चकटिक में इन तीनों अनिश्चितियों का सम्यक्त पाठन हुआ इसका यहाँ विवेचन है।

स्थान की अनिश्चिति

मूञ्चकटिक में नाटक का समस्त व्यापार सञ्चयिनी गपटी में होता है। पहले अंक का कार्यस्थल चाकरत का घर है जहाँ से कार्य का आरम्भ है। रदनिका एक मैत्रेय ब्रह्म पुरुन्दर के पास आती है वह वसन्तसेना एक उसका पोष्य करने वाले अक्षर आदि से उत्तरी भेंट होती है। अविष्टित कार्य घरवाले तथा घर के बाहरी प्रायण में होता है। दूसरे अंक का कार्यस्थल वसन्तसेना का घर है जहाँ प्रारम्भिक दृश्य वसन्तसेना के अन्तरण तथा से सञ्चय है। बुझारियों का खेल सड़क पर तथा भन्विर में होता है। सबाहक के वसन्तसेना के घर घर आकर आते आते से कार्य अन्तरण दक्ष और बाहरी की सड़क के बीच होने लगता है। वसन्तसेना की खटारी पर आकर चाकरत को देखते हुए कर्णपूरक के प्रवेश करने पर इस अंक का कार्य अक्षर के भीतर समाप्त हो जाता है। तीसरे अंक का कार्यस्थल चाकरत का घर है। यहाँ के दृश्य भी घर के भीतर सम्पन्न होते हैं। अन्वितेय, अक्षरक द्वारा मैत्रेय से आशुपथ की खोज प्रार्थना और चाकरत ने समयअक्षर में अक्षरक का आना यहाँ दिखाया गया है। चौथे अंक का कार्यस्थल वसन्तसेना के घर होता है। रदनिका तथा अक्षरक का पुराने जानवरों के सम्मान में सञ्चयण, मैत्रेय का आगमन और उसका वसन्तसेना के महुल के बाठ प्रलोभों का निरोधन इस अंक की विशेषता है। पञ्चम अंक का कार्यस्थल चाकरत का घर है जहाँ मैत्रेय का वसन्तसेना के घर से आगमन, चाकरत का बाहरी प्रायण में यूपी के मुरमुट में अर्पण, वसन्तसेना का चाकरत से मिलन एवं मूसलाबाद यूपी के बीच प्रेमी-प्रेमिका का मिलन इस अंक की विशेषता है। छठे अंक का स्थल फिर चाकरत का घर है। वसन्तसेना का अक्षर बिठाकर पुष्करण्डक उद्यान में लिए प्रस्थान यहाँ दिखाया गया है। यहाँ दृश्य बदल जाता है। प्रबहम विषयक एवं बीरव अन्तरण की सञ्चय आदि सभी कार्य अनिश्चितता वाली सड़क पर दिखाए गये हैं। सातवें अंक का स्थल यही पुष्करण्डक उद्यान है जहाँ चाकरत मैत्रेय के साथ

बसन्तसेना की प्रतीक्षा कर रहा था। धर्मिक-वासुदेव श्रेष्ठ एवं धार्मिक का पादो से भ्रम बनाया तथा वासुदेव का क्षेत्र के साथ उच्चान छोड़कर पड़े जाना यही प्रवर्णित किया गया है। आठवें अंक की बसन्तसेना के व्यभिचारी तथा प्राणरक्षा वाली पूरी बटना पुष्पकरवृक्ष में ही बटित होती है। नवें अंक में न्यायालय का विषय विनिर्दिष्ट किया गया है। धर्मिक अंक का धार्मिक उद्देश्य का उद्देश्य है। बहूँ वाक्यों द्वारा वासुदेव के व्यभिचारी की वीर विधेय प्रदर्शन के साथ छे बाटा हुआ दिखाया गया है। मुता के सती होने का अर्थ एवं वासुदेव वीर बसन्तसेना का मिश्रण इती में विस्तार प्रकरण की समाप्ति की गई है।

मूञ्जकटिक का समस्त कथानक उद्देश्यिनी के अंतर्गत पार्श्व की पट्टे के भीतर है। न्यायालय वाले वृक्ष में वीरक का चोटे पर बहकर जीवोत्थान में जाना और बसन्तसेना के वर के विषय में अपेक्षित सुचना लेकर जाना मूञ्जकटिककार की सफलता का प्रतीक है। इस रूप में मूञ्जकटिक में स्वयं की अभिवृत्ति की पूर्ण रक्षा हुई है।

समय की अभिवृत्ति

मूञ्जकटिक में समय की अभिवृत्ति के पाठन का प्रत्यक्ष विचारप्रस्त है। इस विषय में विद्वानों के विभिन्न विचार हैं। मूञ्जकटिककार द्वारा यद्यपि किस ऋतु एवं किस तिथि में नाटक के कार्य का प्रारम्भ हुआ स्पष्ट नहीं बताया है किन्तु भी अभिनेकों ने इसे जानने का प्रयास किया है। हम० बार० काठे ने इसका वास्तविक पक्षों से आरम्भ मानकर नाट्य-न्यायार की बर्णना की उद्देश्य बोध दिन के अन्तर्गत दिखाया है और अन्तुन सुनक एकरवृक्ष की उद्योगी उद्योगि दिखायी है।^१

काठे का अनुमान है, 'सिद्धिकृतवेदकार्यस्य' के स्थान पर 'पक्षिकृतवेद-कार्यस्य' का पाठ भारत में श्रेष्ठ विद्यते कार्यारम्भ की सही तिथि बड़ी ही मानना उचित है। वासुदेव के लिए जो उत्तरीय काया गया है वह चमेरी के फूलों की सुवर्ण के सुवासित है। चमेरी बरत में बड़ी बिछपी—'ब स्वाद् आटी बसन्ते'।^२ कार्य का आरम्भ ऋतु के प्रारम्भ में मानना उचित होया क्योंकि तभी 'आटीकुमुमनाहित-प्राकारकः' कहना उपयुक्त होगा। बसन्तसेना के चमेरी सुवर्ण से सुवासित उत्तरीय पर प्रमथतापूर्ण आश्चर्य भी प्रकट किया जा ।

१. हम० बार० काठे : मूञ्जकटिक, मुद्रिका, पृ० ४१ ।

२. साहित्यदर्पण ७-२५ ।

‘बहु जाती-सुसमाहित प्रचारक’ से तो इस बात का भी संकेत मिलता है कि चीत शत्रु अभी भी नहीं है क्योंकि शिगु रोहसेन प्रातःकाल घोट के कारण बाहों से कपता दिखाया गया है। इस कारण भी माटक का कार्यालय माघ महीने के वृष्यपक्ष की पक्षी की भांति उचित समता है।^१

मार० बी० करमरकर ने माटक के कारण के लिए एक मित्र मास का निर्देश किया है। उनका कथन है कि कामरेवायन में वसन्तोत्सव और गुडक अनुर्दशी बर्षदि मन्त्र अनुर्दशी की मनाया गया होगा और उसी दिन बठ-उत्सव एवं चारदश की पहली बैठ हुई होगी। इसलिए प्रथम वरु का व्यापार उस दिन के बाद और वृष्य पक्षी को बटित हुआ होगा। ‘निबिडुत्तरवकार्यस्व’ के वैकल्पिक पाठ पटीकुनवैकार्यस्व की स्वीकार कर पटीउत्त के लिए पुष्पोत्तर की इस टिप्पणी की सहायता भी बनी है कि वहाँ वार्ष्यपक्षों का उत्र से ममिप्रान सेना चाहिए जो ग्रीष्म ऋतु का उत्तर है। अतएव माटकीय कार्य और भी मध्य से प्रारंभ हुआ समझना चाहिए। पाँचवें वरु में जिस कामाधिक वर्षा इत्यादि का कथन हुआ है वह भी वैसा ही माघ की ओर मोड़ करटा है। इस प्रकार करमरकर, माट इत्यादि के अनुसार माटकीय व्यापार माघे और से लेकर लक्ष्मण माघे वैशाख तक बटित माना जाना चाहिए। यह सोना निश्चय समस्य तीन सप्ताह का समय मानते हैं।^२

‘एतस्या प्रदीपवेलाया इह राजमाघे’ एवं ‘सिम्पतोव तमोनानि’—आदि से ऐसा अनुमान है कि पहले वरु में कार्यालय माघ वृष्य पक्षी की रात को लक्ष्मण की ओर प्रारंभ होता है और समय से पहले बार समाप्त हुआ है क्योंकि वसन्तोत्सव के घर नीटते समय अग्रोदय ही जाता है और राजमाघे निर्जन प्रतीत होता है।

प्रस्तावना वाले दुग्ध का कार्य भी उस दिन समाप्त सायंकाल तक पना है। ‘विरसपीतोपामना’ वाली उक्ति से लक्ष्मण है कि शरीर का वायुमय बहुत हीर तक चलने के कारण शून्यपार प्रातःकाल का भोजन भी नहीं कर सता और मूस से व्याकुल है। त्रितीय वरु में शैली की उक्ति से ‘आर्वे’ माता आदि-उक्ति एलाता पूजा देवाना पूजा निर्बर्तय इति’ ज्ञात होता है कि वसन्तोत्सव के अभी समाप्त नहीं किया है। अतः निश्चित है कि दूसरा अंश दूसरे दिन प्रातः

१. डा० रमासकर विचारी महाकवि मूद्रक, पृ० २५०।

२. (अ) करमरकर मुम्बईटिफ मूद्रिका, पृ० २०-२१।

(आ) डा० बी० के माट श्रीपेश दुग्धमूद्रिका, पृ० १३९-३८।

अरु से मारम्भ होता है। इसी अंक में भागी बहकर बरापा बना है कि चारुत्त ने कर्णपुरक को सुगन्धित नहरिय पुरस्कार रूप में दे दिया है। इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह पूरी घटना पहले अंक के दूसरे ही दिन प्रातःकाल हुई है। बुवारियो वाले अमरु का समय ध्यान में रखते हुए और उसके बाद कर्णपुरक द्वारा श्रेष्ठ मिश्रु के ज्ञान बचाने वाले की घटना पर विचार करते हुए इस अंक का सम्पूर्ण व्यापार दो घण्टे के भीतर हुआ बात होता है।

तीसरे अंक में चारुत्त रात को रेडिक के घर जाना सुनने जाता है और मायी रात बीतने पर वापिस आयेगा है। 'बतिह्यमति अर्धरजनी' एव 'वशी हि दत्वा विमिरावकावमस्तं अनन्वुघतकोटिरिम्बु.'^१ वही सीप होती हुए अम्भमा के अन्वकार को अन्वय्य देकर अस्ताचल की ओर जाते हुए बताया है। इसके आचार पर कासे का कहना है कि यह अम्भमा अस्तुन के सुक्तपद्य की वहनी विधि का होना चाहिए। इस प्रकार दूसरे और तीसरे अंकों के बीच एक पक्षबारे से अधिक समय का बीतना समझ है।^२ विदूषक आमुषको की रजा के लिए कई पद्य जायता है और चारुत्त वरदेह-रूप में उसे अपहृत आमुषको को मुक्त सा जाता है। यह अम्भमा समय इस बात का चोत्क है कि दूसरे तथा तीसरे अंक के बीच एक पक्षबारे का समय व्यतीत हुआ है। तीसरे अंक का कार्य अर्धरात्रि के लगभग मारम्भ होता है और चारुत्तान्च घण्टे में समाप्त हो जाता है। इसी बीच चारुत्त और मैत्रेय का सीमा विज्ञाना गया है तथा अर्धरात्रि में सौंन टोयी है। सूर्योदय के होने पर सौंन का पत्ता कबता है। मैत्रेय को नसन्तसेना के घर रत्नावली के साथ सेजकर चारुत्त भावस्थक प्रातः क्रियाओं से विवृत्त होता है। चौथे अंक में दूसरे दिन संधिच्छेद के बाद शबिलक मदमिका की मुक्ति के लिए आमुषक देकर वसन्तसेना के घर गया है और अम्भमा से कहता है—'भाये ! प्रकले म्या म्युर्त म्येदिराखरे म्या पर्यंभण्ण्य अप्पत्तत्तत्त' इति । प्रातःकाल मैत्रेय हुआ कि वह आमुषक चारुत्त का है। इससे बात होता है कि प्रातःकाल आठ बजे के लगभग अर्धरात्रि वसन्तसेना के घर गया। इसी समय मैत्रेय द्वारा वसन्तसेना के प्रासाद के अन्तःप्रकोष्ठों का बरलोकर एवम् वसन्तसेना को रत्नावली देकर उसके सबाह या चारुत्त से कहना इस बात के सूचक है कि इसमें दो-आई घण्टे सगे होंगे। इस अंक की समाप्ति तक वसन्तसेना चारुत्त के घर कमिठार करती हुई भी दिखायी गयी है और बोला का समय अम्भमा की सूचीस्त

१. मूककटिक १।

२. एम० आर० कासे : मूककटिक भूमिका, पृ० ४४।

के आसपास भी होगा चाहिए जब मृन्मूलादि से युक्त होकर बसन्तसेना चाकरत के घर बनिवार करती है ।

पाँचवें अंक का कार्यात्म बोधे अंक के दिन की रात में होता है । अकार-दुर्दिन में बसन्तसेना चाकरत के घर पयी है । बाकी रात तक चठने वाले विछन सिद्धचार में क्वमम हो चठने का समय व्यतीत होता समय है । फिर बसन्तसेना ने वहीं चाकरत के साथ रात्रि भी बितायी ।

छठे अंक का कार्यात्म ठीक दूसरे दिन प्रातः अंक हुआ है । 'हृग्ने । मुमु न निष्यायो रात्रो उदय प्रत्यक्ष प्रेक्षिष्ये' रात मेंने उन्हें अच्छी प्रकार से नहीं देखा जाना दिन में कच्छी तरह देखूँगी । गाँवियों का परस्पर बदल जाना, चन्द्रक तथा वीरक की कच्छ एव मार्क के पसायन में बो-तीन चठने का समय यह सब कुछ समयगत प्रातः वात से स्पष्ट बने दिन का प्रतीत होता है ।

सातवें अंक का कार्य छठे अंक की समाप्ति के सिद्धिसे में आरम्भ होता है । मार्क की चाकरत से भेंट तथा चाकरत की गाड़ी में बँडकर जसका सुरक्षित स्थान में पहुँचना, एक चठने में बाजू बने तक समाप्त होना चाहिए ।

आठवें अंक का कार्यात्म समयत. पिछले अंक के दिन ही हुआ है । इसी समय बीच मिश्र का उद्यान में प्रवेश चाकरत के पीछेचाल छोड़ते समय विद्यमाना गया है । बसन्तसेना का वहीं पहुँचना, उसका चठ निपीडन, उवाहक समय द्वारा कसकी प्राय रखा—इन सभी कार्यों के सम्पन्न होने में तीन-चार चठने का समय लगा होता । स्वाचरक चेट का दिनम्भ से गाड़ी छोड़कर पहुँचना, मकार का यह कहना 'बिरमस्मि बुभुक्षित मध्याह्ने न सक्यते पाशाम्ना बन्तुम्' दीपहर के समय फिर वहीं अंक सन्नेना, सूर्य आकरत के मध्यमाह में पहुँच गया है । इस स्थिति में समय का अधिक बीत जाना इन बात का परिचायक है कि इस अंक का कार्य मध्याह्न के लगभग आरम्भ होकर अपराह्न में लगभग चार चठने तक समाप्त हुआ है । अठारव छठे से आठवें अंक तक कार्य एक ही दिन में समाप्त समझना चाहिए ।

वीरक की इस कृति में 'मनुजोचत इम क्वमपि रात्रि प्रजाता' में चन्द्रक से अपमानित होकर उठने एव रात बिताई है । जान होता है कि वही अंक दूसरे दिन के प्रातः वात से आरम्भ होता है । ममियोप के विचार और निर्बंध में बो-तीन चठने का समय ही लय समता है । तदनन्तर चाकरत चाकरतों की देखमात्र में हीन दिवा जाता है और उन्हें माया हो जाती है कि वे अपने

कर्तव्य सम्पन्न के लिए प्रस्तुत हो जायें। इस भाँति बस-म्प्राण बने दिन तक यह काम सम्पन्न हुआ होगा।

विपत्त के बाद आशुत आशुतो द्वारा स्नान ले जाया जाता है, मत्तः बस्यै तं कश्चिद्वा आत्मन तत्रे अक श्री समान्ति के कुछ घण्टों बाद बसठना चाहिए।

डा० राधकृष्ण इत्यादि कुछ विद्वानों का कथन है कि यह कार्य तब तक के दूसरे दिन सम्पन्न हुआ किन्तु ऐसा समझना मुक्तिवन्त नहीं है, कारण कि यदि प्राशुत के निर्जन के दूसरे दिन इस अक का कार्यक्रम होता तो प्राशुत जैसे सत्वगिष्ठ एवं चदारमना व्यक्ति के मृत्युदण्ड का संभाव संपूर्ण समय में मिमटों में फेंक दिया और सब संसंसेना एवं संवाहक मिमटु उत्काल उसकी प्राशुतया के निमित्त संपास्वत हो जाते पर ये दोनों प्राशुत की विपत्ति का सबार प्राशुतों की मोपपा द्वारा सङ्क पर सुनते हैं। पुन यदि बसें तथा दस्यै अंको के बीच एक दिन का अंतराल बना होता तो प्राशुत और उसके पुन की भेंट को संवेर द्वारा सपन्न करई का रही है। राजमार्ग पर नहीं मपितु उस अण्ड पर हुई होठे नहीं राशुत आशुत बनीपुह में रखा गया था। इन दोनों तन्मों के मालोक में यही बलमा उचित है कि प्रस्तुत अंक विठने अक की पीठ पर ही बसी दिन अपराह्न में बटित हुआ है।^१ अकार के भोजन का सबार, प्राशुत की मृत्यु का कम्पा अमुस तथा सन्निभ्य द्वारा यद्यथा से राशुत की हत्या अपराह्न की ओर उचित करते हैं। प्रस्तुत अक का घटना-समय तीन-चार घण्टे का ज्ञात होता है। मत्तः प्रकृत होता है कि घटक का संपूर्ण व्यापार सूर्यास्त तक उस दिन चलता रहा है।

इस भाँति कलाभग तीन घण्टा की अवधि में नाटक का कार्य समाप्त होता है। संस्कृत के नाट्याचार्यों के नियमानुसार एक अंक ही घण्टाओं के लिए एक दिन से अधिक का समय अपेक्षित नहीं है। सभी घण्टाएँ जो समय सीमा में समाहित नहीं होती उन्हें ब्रह्मसक में विजाया जाए। प्रवेतक के लिए भी विधान है कि उसमें विगत घण्टाओं की अवधि एक अर्थ से अधिक न हो^२। प्रवेतक-

१. एम० धार० काठे : मूञ्जकटिक मुद्रिका, पृ० ४९।

२. दिवसावसानकार्यं यद्यद्ब्रह्मोपपद्यते सर्वम्।

अंकच्छेदं कृत्वा प्रवेतकं तद्विवाद्यम् ॥

अंकच्छेदं कुर्यात् माघहर्षं वर्षकचितं वापि।

उत्सवं कर्तव्यं तयोर्दुर्वं न तु कदाचन ॥ नाट्यशास्त्र २०।२८-२९।

सम्बन्धी विधान के जस्येख को छोड़कर संसूत नाटककारों ने विद्वानों का प्रायः पाठ्य दिया है। सूक्ष्मकृतिक के किसी भी लक्ष में ऐसी घटनाएँ समाविष्ट नहीं हैं जिनकी अवधि एक दिन से अधिक हो। घटनाओं का सामान्य परस्पर सुन्दर है। दूसरे तथा तीसरे अर्थों के बीच सम्बन्ध एक पक्ष का व्यवधान है। भारतीय विधान के अनुसार सूक्ष्मकृतिक में समय की अवधि का पालन हुआ है पर पारश्चात्य नाट्यकारियों के अनुसार समय की अवधि बचावत नहीं हुई है। पारश्चात्य नाटककार शीघ्रशीघ्र बसे स्वयं भी इसके अपवाद हैं जैसे सूक्ष्मकृतिक का अन्तिम देखते समय जबवा उसे पढ़ते समय प्रेक्षक जबवा पाठक इतने लीन हो जाते हैं कि उन्हें समय का ध्यान नहीं रहता।

व्यापार की अवधि

सूक्ष्मकृतिक का प्रधान उद्देश्य वास्तव तथा वसतसेना का प्रथम परिपाक है। इसमें वास्तविकता वसतसेना अपने हार्दिक प्रेम को सच्चाई के कारण ब्राह्मण सार्वभौम की बंध बन्नी है। यह प्रकरण अपनी योजना एवं उद्देश्य में एकदम निराला है। इसमें प्रदर्शित प्रेम अपनी उपस्थिति में जोन-निरपेक्ष एवं एकान्त नहीं है। एक ओर वसतसेना के प्यार को बसपूर्वक प्रतीकों के प्रकार के पक्ष में बाधित रूप में जीतना चाहता है। दूसरी ओर वास्तव निर्भर एवं लक्षित है जो वसतसेना को जीतने के लिए स्वयं जाने लगे बढ़ता। वसतसेना भी प्रणयव्यापार में लक्षित रहती है। उसकी प्रिय श्रेणी वसतिका अविच्छिन्न में अनुरक्त है। अविच्छिन्न ओर होने के साथ-साथ उभरीही भी है। पात्रों में एक संवादक बुझारी है जो वास्तव से सम्बन्धित है। राग्य-परिवर्तन की योजना भी नाटककार के मन में है। यदि शकार के कारण यह सम्बन्ध है कि वास्तव वसतसेना का विलय सुगम एवं निरापद नहीं है तो अविच्छिन्न के वचन से यह स्पष्ट है कि राजा वास्तव के अन्त के लिए हिंसा भी समर्थ है। कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है कि अल्प, कष्ट एवं हिंसा के प्रतिबुद्ध वातावरण में प्रणय-पाषण सुख प्राणा। एक ओर वास्तव सम्बन्ध एवं उद्योग है तो दूसरी ओर शकार दुष्ट एवं नृपस है। वसतसेना का अन्वय वास्तव की ओर है। शकार से उसे भूषा है पर एक तो वैसा होने के कारण, दूसरे विषय परिस्थितियों में घटती हुई यह अविच्छिन्न माथा के सहारे जाये बढ़ती ही जाती है। सम्बन्धित से उसका मनोरथ पूर्ण हो जाता है। सूक्ष्मकृतिक का अन्तिम अन्वय यह सम्बन्धित है कि भारतीय व्यापार में अवधि ही रहता ही भी लक्ष्य। प्रस्था-वना में नाटक के अन्तिम प्रतीक ही ओर लक्ष्य, वास्तव एवं वसतसेना का

सुर्योत्थान, नीति-प्रचार, दुष्ट व्यवहार, पुर्न-स्वभाव एवं चाप्य की बनिवर्धित कीसर्गे प्रेसको एक पाठको को छात्रों ने डाक देते हैं कि किस नाति बहुमुखी प्रयोजन को सिद्धि के साथ कार्यान्विति की रक्षा होगी।

तभीरिई स्तुतुरतोसबाधर्भ, नयप्रचार व्यवहारवुष्टान् ।

स्वस्वभाव मरिठभवा तथा लक्ष्य सर्व किञ्च दृष्टको दृष्टः ॥^१

कुछ बतावश्यक प्रश्नों को छोड़कर यह निश्चित है कि मूञ्जकटिक में वस्तु-संबन्धन सम्बन्धित है और उसके विभिन्न कृष मूख व्यव की पुत्रि में सलभ है। यद्यपि राजनीतिक विचार बाता मन्त कषावक कुछ असबध नयस्य लषता है पर मूञ्जकटिककार ने अपनी प्रतिभा से उसे ऐसा संबन्धना है कि सपूर्ण भाटक मे म्यापार की बनिवर्धित सुन्दर शरीर होगी है। बवाहक एक और नुमायी है। बापक से भी उसका सपर्क रह चुका है। विनिन इन से यह नसतसेना से सन्धित हो जाता है। इस भाति व्यवहत्त से उपहृत होकर यह सनकारी के रूप में सामने आता है। सन्धित्त वास्वत्त के यहाँ एक धोर सविष्णैर करता है तो हुमरी और राजगोह का बापक बनकर उसे मन्त में कुशाक्ती राज्य के दान से पुरस्कृत करने के लिए उत्सुक है। अपहृत बामुपगो को भेंट है यह वसन्धसेना द्वारा भवन्धित को प्राप्त करने में भी सफल हो जाता है। बाह्यम वास्वत्त और ससतसेना के प्रेम को न्यूनी समस्त राज्य और राजधानी से सम्बन्धित होकर प्रकरण की समन्धि पर राज्यविन्ध के साथ दुष्टर रूप में निलीन हो गयी है। नाठकीय बटनामी की तीव्र गति के साथ म्याम मूस्य न्यूनी एवं पावो की धोर शिमटता जाता है। यद्यपि बापके अक के पबनात न्यमानक को प्रगति में विराम सा सन्नकता है पर न्यर्भ-संरुजन में इससे कोई बाधा नहीं होबती। प्रकरण का नारन्ध विन परिस्परिधो में हुमा है उसका निर्वाह मन्त में सुखद विचारों देता है।

कार्यान्विति का एक धोर रूप भी हमारे सामने है। साठवें अक में राज्य-बिरीय का केंद्रीय म्यन्धि बावर्क है पर यह पास्वत्त से उपहृत होकर उसके सामने गतमस्तक हो जाता है और मीरी के प्रतिदान रूप में वृत्तता प्रकाशित करता है। रयमन पर बावर्क के उपस्वित न होने के कारण भी वास्वत्त का मयूस बट गया है। उसकी बामुपस्विति है वसतसेना के कार्य-नसाप उसे स्मृति में बोसत नहीं होने देते। माध्यकार्य की प्रगति इस रूप में म्यापार की बनिवर्धित में दोषक और नहायक बन जाती है। स्तुतुर की छोड़कर सभी नद वास्वत्त से लीहारे हैं। इसीविषय से मार्य वाठवत्त के नाम से प्रसिद्ध किया गया है। बाठवें

अंक में सस्पातक द्वारा हत्या की खमकी से बहसमेला चारदस को पुकारती है। टीवी से चित्रकार यह उल्लास बना घोंट देता है। इस भाँति साध नाटक हो चारदस के कार्य-कलापों से जोलप्रोठ है। नाटकीय कार्य-संरचना की रसा में इन महत्वपूर्ण घटनाओं का सहयोग सपहनीय है।

समस्त प्रकार के नवानर, उपकरणक एवं पात्रों के कार्य-व्यापार नाटकीय बन्नितियों के पापक है।

सोपान विद्वेषण

'काम्येषु नाटक रम्य' इस उक्ति के अनुसार काम्यो में नाटक रमणीय है। नाट्यकला भी कला के अन्तर्गत है और कला के विविध रूपों में इनका प्रमुख स्थान है। आनन्द की ओर मानव की प्रवृत्ति स्वभावतः खी है जिसकी उपलब्धि कला के द्वारा होती है। यद्यपि अल्प काल्य रस के माध्यम से इत दिया में उपबोधी हैं किन्तु रूपक (दृश्य काल्य) बर्णक को समझे भी नहीं क्षमिद और शीघ्र समाप्ति में मग्न कर देते हैं। नाटकीय पात्रों द्वारा उनके शिवा-कलाप बर बालों से प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं तथा उनका प्रभाव निश्चय ही स्थायी होता है। अतः नाट्यमाहित्य ज्ञान बुद्धि के लिए बहुत उपयुक्त है। नाट्यकला का उद्भव सृष्टि के प्रारम्भ में ही समझा जाता है। मानव की ज्ञान-बुद्धि के साथ इतका विकास निरन्तर होता रहा है और किसी न किसी रूप में होता ही रहा है। ऋग्वेद में ओर वैदिकोत्तर काकीन साहित्य में इसकी बर्ण विभिन्न रूपों में देखी जाती है।

अपन के अन्तर्गत मूच्छकटिक एक प्रकार है। यद्यपि मस्कृत में अनेक रूपन लिखे गये पर इसके रचयिता ने व्यापक बुद्धिकोप अपनाया है। यही कारण है कि जहाँ अन्य रूपन केवल प्रणय अथवा राजनीति अथवा सामाजिक विषय लेकर आये गये हैं वहाँ मूच्छकटिककार ने यह कुशलता रही है कि उसमें एक ही प्रकार में सबका समन्वय दिखाया है और साथ ही यह व्यक्त किया है कि इत दिया में व्यापक सुधार होना चाहिए जिससे केवल एक मानव की अभीष्ट निधि नहीं बरन् मानव-समुदाय की अभीष्ट सिद्धि हो। मूच्छकटिक-कार ने सपार्यवाद के द्वारा पाछित आदर्शवाद को प्रस्तुत किया है। अन्तर्गत समान का इनमें अपना विषय है।

अतःनाथ्य एवं बहिःकार्य के द्वारा इनका रचनात्मक अनुबलन मुक्त-साम्राज्य के पतन से आरम्भ होकर हर्षवर्धन के उदयकाल तक प्रभावित समझा गया है। मूच्छकटिक के लेखक का जहाँ तक सम्बन्ध है वह भी एक विवाद

का विषय बना हुआ है। यदि इस्लामीन किसी प्रसिद्ध राजा पुरूष को इसका लेखक मानते हैं तब तो इसकी दृष्टि नहीं होती, यदि नहीं मानते तो और कोई युक्तिस्वरूप प्रमाण भी उपलब्ध नहीं होता। अतः मूच्छकटिक की पारिभ्रमपूर्ण रचना को देखकर यह निश्चय होता है कि इसका लेखक मकर्य ही कोई अनुपम साहित्यकार विद्वान् होना जिसे उल्लासलेन प्रचलित सभी भाषाओं का ज्ञान होना और जिसके मन में उस समय की स्थिति को प्रकाश में लाने के लिए एक अन्त-द्वन्द्व रहा होना। ऐसा मानने से मूच्छकटिक की कथावस्तु और उसके सविधान का लीखित्य ऐसे बहामानस के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

जहाँ तक मूच्छकटिक नाम का सम्बन्ध है यह क्यूना भी अनुचित न होता कि इस नाम का कोई गोपबन्ध, आर्थिक की भाँति पुरूष भी राजा रहा होगा अतः इस विचार को लेते हुए मूच्छकटिक के सम्बन्ध में साहित्यात्मक विचार राजा पुरूष का मानना सर्वथा समीचीन है।

आदरत और मूच्छकटिक के सम्बन्ध से प्रतीत होता है कि राजा का प्रमाण पुरूष पर स्वाभाविक है किन्तु कथावस्तु और सविधान की दृष्टि से राजा ने जिसको सर्वोत्तमक प्रस्तुत किया, पुरूष ने उसी को अपनी विद्वता के आधार पर निःसंकोच स्वीकृत किया। प्रकरण का 'मूच्छकटिक' नाम भी धारणित है। इसके अन्त एक मिट्टी की गली में रखे हुए मासूषण आरुहस और मन्तवैद्या को इस प्रकार विमुक्त और संमुक्त करने में साफल्य बने रहे कि यही जानना कठिन हो जाता है कि इस प्रकरण का अन्त सुखाद होना अथवा दुःखान्ध।

इसके अन्तविध्यास एवं कासकर्म का भी लीखित्य अत्यन्त ही है। यही कारण है कि इसमें अत्यन्त ही ध्वनिबोधों का निर्वाह सुन्दर हुआ है।

मूच्छकटिक पर प्राप्त साहित्य पर्वत है और इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि विवेचो में इस कृति का सम्मान अत्यन्त ही कहीं अधिक हुआ है। इसका एकद्वयन कारण इसकी असाधारणता है।

मूच्छकटिक का रहस्य एवं वैशिष्ट्य

भारतीय संस्कृत कर्मों में मूच्छकटिक का अत्यन्त एक विद्वान् स्थाप है पर पारिभ्रम मानकों से सुलभ्यत्वक विवेचन करते हुए परिचामीय नाटककारी ने मूच्छकटिक को सर्वोत्तम भाषा है। बहामानस काठिरास के अविज्ञानसंस्कृत के अन्तर्गत अत्यन्त मूच्छकटिक इनकी दृष्टि में बँधा है। बिना किसी पारिभ्रम विद्वान् की अत्यन्त ही असाधारणता मान लेने के लिए ही मूच्छकटिक की असाधारणता में आने। कई स्थाओं पर विद्वानों ने यह नाटक संभव पर खोजा गया है।

इसका प्रमुख कारण यह है कि यही एक ऐसा नाटक है जो हमारे बर्बर जीवन को आदर्श की ओर प्रस्तुत करता है।

माटकीय रहस्य

मूच्छकटिक में उस समय के शासकों का पतन, बीछ बर्म के प्रति एकांगी दृष्टिकोण, राजा के सबदियों का त्यागालस्य एक पुच्छित पर दयाव आदि इस नाट्य के लोचक हैं कि उत्तमसूरी सामाजिक स्थिति एव राजनीतिक स्थिति बहुत विषम पुरी थी। अतः अस्तिकारी रचयिता उसी है जनता को मजबूत कराना चाहता था।

मूच्छकटिक एक प्रकार का है। पट्टीसी के पुत्र के पास सोने की बाणो देखकर पाण्डव के पुत्र रोहसेन के मजल जाने है और बमतसेना द्वारा अपने जानपुण्यों को उसे प्रसन्न करने के लिए उसकी मिट्टी की बाणो पर आर ३५ से इसका नाम मूच्छकटिक रखा गया।

य वैशाल लच्छत साहित्य में बरन् विभ के रूपों में मूच्छकटिक का स्थान महत्वपूर्ण है। इसकी लोकप्रियता इसी से स्पष्ट है कि विभ की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है।

मूच्छकटिक की कथावस्तु एवं अंक परिचय

प्रसिद्धि के नाते बरि काश्मिरास के एक लौर कम्म, माटक और वीरिण्ड उपलम्ब हैं तो दूसरी ओर प्रकरण के रूप में मूच्छक का मूच्छकटिक है। इसमें अंक एक है। प्रथम का नाम 'असवार' बास' है। इसमें राजमिनी की प्रसिद्ध पत्निका बससेना को राजा का स्वागत शकार अपने त्रेम-पाष में खंसना चाहता है। उसका अनुमन करते हुए शकार के रूप से बससेना को आत हो जाता है कि वह आर्य पादरत्न के मजल के पास है। वह उसी मजल में प्रसिद्ध ही जाती है और शकार निद्रक के सिद्धने से बाहर रह जाता है। पादरत्न से समापन के पश्चात् बससेना अपने जानपुण्य परसे बर रल जाती है। यहाँ अंक की समाप्ति है।

द्वितीय अंक का नाम 'पुच्छक सराहक' है। इसमें आर्य में दूसरे दिन प्रात दो बटनार्ये होती हैं। आर्य की सेवा में उत्पन्न रहने वाला सराहक बार में पत्निका बुझारी बन जाता है और पुण्य में बहुत सा धन हारने के बाद मागकर बमतसेना के घर पहुँचता है। वह उसे पादरत्न का पुराना मृत्यु समझकर अपने हातामरण द्वारा पुण्य के अज्ञ से मुक्त कर देती है। सराहक बीछ मिलु बन

पाया है। संयोग से उन्नी दिन प्रातः काल बसन्तसेना का सुष्टमोदक-हाथी मार्ग में किसी बिन्दु को कुचलना ही चाहता है कि उसका ध्वज कर्णपुरक उसे बना देता है। चाहे वह इस उद्यम के लिए कर्णपुरक को अपना बहुमूल्य कुसाका गेंद में रखा है। अथवा वह अपने पराक्रम का बृहत्त मुनाते हुए बसन्तसेना को मणित कर देता है। बसन्तसेना इसे पाकर खुशी से लूरी मही उमाती और उसे मोद कर अपने महल की सबसे ऊँची छत पर पहुँच जाती है। यही अर्थ को समझिए है।

द्वितीय अर्थ का नाम 'अधिविच्छेद' है। इसमें अधिविच्छेद बसन्तसेना की बासे मरनिका को सेवा कार्य से मुक्त कराना चाहता है पर बसन्तसेना को मरनिका की मुक्ति हेतु बिना कुछ किए उसे मुक्त नहीं करवा जा सकता, यही सोचकर शाङ्गण होती हुए भी अधिविच्छेद ने आर्ष आश्रय के पर सेष सगाकर साङ्गण पुराए और उन्हें बसन्तसेना को सीपकर मरनिका को अपनी प्रेयसी बनाने की इच्छा पूर्ण करनी चाही। दूसरी ओर बृता अपने पति आश्रय को अपना से बचाने के लिए अपनी रत्नमाला विदुपक को इसलिये देती है कि वह उसे बसन्तसेना के सुवर्ण भाण्ड के बदले उसके घर भेज दे। आश्रय विदुपक के साथ उन्हें बसन्तसेना के घर भिजवा देता है और वर्षमानक की सेवा बन्द करके का आदेश देता है। यही अर्थ को समझिए है।

तृतीय अर्थ का नाम 'मरनिक अधिविच्छेद' है। इसमें अधिविच्छेद बसन्तसेना के घर पहुँचता है। मरनिक से मेट होने पर वह अज्ञानकारणभी बोरो भी पूरे कहानी उसे सुना देता है। मरनिक अधिविच्छेद को पहचान भेतो है और स्वयं उन्हें बसन्तसेना को देने के लिए अधिविच्छेद से कहती है। अधिविच्छेद अपने को आश्रय का आदेशी बताते हुए बैसा हो करता है। बसन्तसेना मरनिका को इसकी वस्तु बनाकर पाहो में उसके साथ बिछकर बिबा कर देती है। इनर विदुपक आश्रय द्वारा भेजी हुई ख्याली बसन्तसेना को सीप देता है। बसन्तसेना रत्नमाला पहन करके विदुपक को छोड़ने के लिए कह देती है। साथ में आश्रय के लिये वन्देय बिजबाती है कि वह सार्वकाल अपने मित्रने भाएगी। इसी अर्थ में विदुपक ने बसन्तसेना के मुखर महल के प्रकोष्ठों को महीमंति देखा और उसकी सहायता की। यही अर्थ समझा हो जाता है।

चतुर्थ अर्थ का नाम 'वृद्धि' है। इसमें वृद्धि का विस्तृत अर्थ है। आश्रय बसन्तसेना के विच्छेद होने पर अपना स्वागत करता है। विदुपक से बसन्तसेना के आश्रय का कारण पूछे जाने पर वेटी कहती है कि

कि बसन्तसेना का बच करती वाका वाहरता नहो बरन् बकार है । बकार बच यह सुनता है तब वाग्दामो को बिधात रिभावे के किये स्वावरक को अपना सुवर्णस्तेवी बटाकर बपराबी ठहराता है और उसके अपने त्रिदिगुल बोलने का कारण भी यही बटाता है । वाग्दाम इसको सत्व भाग लेते है । इतने में मिशु और बसन्तसेना वाग्दाम के प्राणरथ को घोषणा सुनते है । वे तेजी से बम्प-स्पान की ओर बढ़ने है । उनके पहुँचने से पूर्व ही एक वाग्दाम वाहरत बर बरन बसाता है पर सख्त नही होया । फिर बीसे ही वाग्दाम वाहरत को चुकी पर बहाना पाहते है मिशु और बसन्तसेना बहो पहुँच जाते है । वह देख कर सभी वाग्दामर्यकिय हो जाते है तथा वाग्दाम यह समाचार रामा को बेटे है । बकार यह बेलकर माय जाता है । बसन्तसेना और मिशु को बेलकर वाहरत बुने नही समाते ।

इसी समय राज्य-परिवर्तन हो जाता है तथा रामा वालक के स्वाव पर आर्षक रामा हो जाता है । वह वाहरत को मुक्ति तथा बकार की प्राणरथ का आदेश देता है । वाहरत अपने उदार स्वभाव के कारण बकार को मया कर देता है ।

इपर बरनक यह समाचार देना है कि वाहरत की पत्नी भूता तती हो रही है । वाहरत भूता को मती होने से बचा लेते है । भूता प्रसन्न हो जाती है तथा बसन्तसेना का आनिजन करती है । वाहरत तथा बसन्तसेना का विवाह हो जाता है । मिशु समस्त विद्वारों का कुकपति बना दिया जाता है । स्वावरक को बकार की बासता से मुक्त कर दिया जाता है । बम्पलक को पृथ्वी स्वप्नपाठक का पद दे दिया जाता है और बचपौम्य बकार को बकाकर बसका बचिकार बस्थानो रूप से पुर्बवत् बना दिया जाता है । इती के साथ शम्ब की समाप्ति है ।

प्रधान मायक एव मायिका का विवचन

वाहरत—अपेद्यावृत् रूपक में मायक का विशेष स्वाव है । बचावस्तु का धारा बमकार मायक बर ही निर्मर है । यद्यपि भव्य सभी पाशों का सवे सहयोग प्राप्त होता है फिर भी उसका अपना बँधितक न हूे तो सभी कुछ ब्यर्थ रहता है । मायकावत् के अनुसार स्वर का मायक विवची, प्रियवर्तन, स्वापी, दसा, जोकप्रिय, मधुरमायो, पबिन्न, बाम्पी, भुलीन, रिपर, विचारवान् भुवक, बुद्धिमान्, उस्ताही, बेपावी, बलाकार, स्वाविकारी बीर, दुइ, तैजस्वी, धारवान्-

याथे वीर धामिष्ठ होना चाहिए ।^१ नावक बार प्रकार के होते हैं—बोरोबास, बोरसलित, बोरप्रशान्त और बोरोदत ।

इस प्रकार का नव्यक चादरत है । वह नायकोचित सभी गुणों से युक्त है । बिहारी ने इसको बोरप्रशान्त नामक माना है ।^२ दशरथ के धनुस्तर भी बोरप्रशान्त का विष्णुसहित अक्षर है—“सामान्यगुणैर्पुंलङ्गु बोरप्रशान्तो द्विवचिकः ।”

यह अक्षरवाचक है । प्रस्तावना में सुनवार ने कहा है—“अवन्तिपूर्वा द्विवचार्थवाहः” द्विवच शब्द का अर्थ बोकाकारों ने दाहण किया है । दसम अंक में आश्रय ने भी अपने को ज्ञात बताया है । अपने पुत्र की दास के रूप में मचना बहोपमोत्त सेते हुए वह कहता है—

‘अमोक्तिकमसीदर्थं ब्राह्मणा विमूषकम्’, पर वह सर्ववाह है अर्थात् व्यापारियों के काफिले का नेता है । उद्योग अपने पूर्वजों से अपार धन-सम्पत्ति प्राप्त की । निर्जन यथा में भी वह अपने बात, बरोपकर, सवारता और दयाशीलता आदि गुणों के कारण नगरबाहियों के रूप में अज्ञात का पात्र बना हुआ है । प्रथम अंक में उसके सम्बन्ध में कहा भी गया है—‘दीनातान् रूपपुत्रः’ । इत्यादि । उसे प्रियदर्शन भी बताया है—‘यस्तादृश प्रियदर्शन’ । न्यायाधीश से लेकर आश्रयपर्यन्त यथा बित, सैद आदि सभी उसके प्रति सादर तथा जगाध स्नेह रखते हैं । वह अपने छोटी से स्नेह मानता है और बड़ी के प्रति सम्मान बिताता है ।

आश्रय स्वभाव से अत्यन्त उदार और दयावान् है । जब कोई प्रदासनीय कार्य करता है अथवा उसे घुम घमाचार सुनाता है तब वह उसे बरबस बुरसकृत करता है । कर्मपुरुष को उसने अपना हुआला उक्त प्रेम में दे डाला । अपनी सवारता के कारण शबिलक द्वारा माधुवध पुराणे जाने पर भी वह सम्पन्न है । उसे निर्दयता के कारण अपनी कीर्ति भी बड़ी पिल्ला है । यह कहता है—

१. नेता बिहारी मपुरस्तयायी दक्ष प्रियकर ।

रक्तलोकः पुनिर्वाग्नी रुद्रवह स्वरो युवा ॥

कुम्भ्युत्साहसूक्तिष्वाकृताश्वनननन्वितः ।

शूरी बुद्धन तेनस्वी शास्त्रचतुर्वच धार्मिक ॥ बहुरूपक २-१,२

२. सामान्यगुणैर्पुंलङ्गु द्विवचिको धीरप्रशान्तः स्वस्य ॥ सा० अर्थन (१-१४)

कं अथास्यति मृतायै तवो मा तूतविष्यति ।

धननोया हि कोकेऽस्मिन्निष्पताया हरिद्रता ॥ मृ० क० ३-२४

अर्थात् वास्तविकता पर नौन विश्वास करेगा ? सभी मुझे दोषो कहेंगे क्योंकि इस ससार में निर्धनता सभी आलकाओं का एकमात्र कारण है । विद्वान् के प्रेरित करने पर भी वह झूठ बोलने को उद्यत नहीं है । वह कहता है —

भैरवेणायर्चयिष्यामि पुनर्वासिप्रतिश्रियाम् ।

वन्द्य नामिवास्यामि चारिन्द्रजकारणम् ॥ मृ० क० (१-२९)

अर्थात् भिक्षा के द्वारा पटौहर योग्य धन का उपार्जन करना उसे ठीक समझता है पर चरित्र को नकारित करने वाले मिथ्या भावण से बूढ़ा है । हाँ, कभी-कभी अपनी कीर्ति भी रचा करने, दूसरों की मलाई करने एवं अपने को दूसरों की दया का पात्र बनने से बचने के लिए वह झूठ भी बोल देता है । विद्वान् के द्वारा वह वसन्तसेना से कहलाता है कि मैं तुम्हारे आशुपत्र अपने समसकर गुण में हार गया हूँ । उनके बरतने में यह रत्नावली स्वीकार की जाए । कहने की यह झूठ है पर दूसरों को हानि पहुँचाने वाला झूठ नहीं है । यह तो अपनी कीर्ति की रक्षा करने, वसन्तसेना को धर्म की हानि से बचाने तथा अपने को वसन्तसेना की दया का पात्र बनने से बचने के लिए बोलना गया झूठ है । वह धेवकों के प्रति दयालु है इसी से सभी हुई एतिका को अपना नहीं चाहता 'अथ सुमन्त्र प्रथोवसिदुम्' । पशु-पक्षियों के प्रति भी वह करुणा दिखाता है । अपनी उदारता के कारण ही वह हरिद्रता को मीठ से भी अधिक कष्टदायक समझता है

एतत्तु मां बह्वि, बहुबृहत्समस्रीय

धीभार्षितित्पठिष्य परिचर्चन्ति ।

सगुष्क-आन्त्रमरुतैश्चमिद भ्रमन्त,

काशात्पये मनुकृता करिष्य वपोकम् ॥ मृ० क० (१-१२)

तत्र न मे विमलमताहृतास्ति चिन्ता,

माभ्यस्मीम हि यतानि मयन्ति यान्ति ।

एतत्तु मां बह्वि महामनाश्रयस्व,

यस्तीहृदादपि वना निबिडीनवन्ति ॥ मृ० क० (१-११)

अर्थात् आरुच को इस बात से डरा है कि बीनता के कारण अनिधियों ने उसके मही आना छोड़ दिया है । उसे निर्धनता का दुःख नहीं क्योंकि धन तो

धावे-बाने वाली वस्तु है पर उसके मित्रों ने उसकी ओर से मुझ मोह सिमा, बहो मानसिक कष्ट है।

बास्वत घरपापठ को रखा करता है। जार्यक को उसने रखा की तथा धकार के उरण में बा धाने पर उसे प्राप्ति का समयदात किया। मृच्छकटिक पाठ पर भी उसे सब नहीं है, केवल बुद्ध है तो अपनी प्रतिष्ठा के सब होने का ही है—

न बीजोमरणावस्मि केवल दूषित यथाः । मृ० क० (१-२७)

बास्वत की कुछ ऐसी ही विशेषताओं ने बतलसेना को उसकी ओर आकृषित किया।

बतलसेना से प्रेम करते हुए भी बास्वत ने चरित-सम्बन्धी दुष्टता है। वह अपनी विवाहिता पत्नी सुखा से उदासीन नहीं है, बतसे भी प्रेम करता है। बतलसेना के आभूषणों को वह माम्मन्तर प्रवेश के योग्य नहीं समझता। वह कहता है—

ममं चतुष्पादमिमं प्रवेश्य प्रकाशमारीकृत एव यस्मात् ।

तस्मात्स्वव चारव निम तावथावत्त तस्याः शक्यं नैव सम्पत्ति ॥

मृ० क० (२-७)

अर्थात् बलिगा के धुवर्णपात्र को है निरूचक तुम स्वयं रत्नी। ऐसे चतुष्पादा में मत फूँटनाओ। जनबाने में बतलसेना से स्वयं हो जाने पर वह विदुषक से कहता है—'न पुक्तं परकल्पवर्त्मनम्'। वह गार्हस्थ्य धर्म का पूर्ण पालन करता है। शयन कम में वह आण्डाली से पुन-बर्धन की बमिसावा व्यक्त करता है। रोहसेन के आगे पर वह उसे अपना पशोपवीत देता है। वह एक चतुर मानसिक है। वह जानता है कि प्रिया का अनुमय फिर प्रकर किया जाए। बतलसेना से वह कहता है—'धवति बतलसेने ! धनेत्यवित्रलादपट्ट्यातपरि-बलोपचारेण अपरच्छोर्ग्रस्मि । धिरसा मन्तीमनुमयप्रि ।' उसकी प्रार्थना भी गूढ व्यय के रूप में उस समय आती है जब वह कहता है 'तिष्ठतु प्रलय'। बतलसेना उसके आग्रह को समझ जाती है। पंचम अंक में वह बतलसेना का स्वागत करता है। बावलो की धर्तना को यथावसर अपने ऊपर प्रसाद मानता है तथा अपने को बन्धु समझता है—

भो मेध ! मदीरवर नव स्व तव प्रमादात् स्मरणीर्धितं मे ।

संस्पर्शोमाधितवातपाग कश्चिदुत्सवमुपैति वाचम् ॥

मृ० क० (५-४७)

वर्षंघतमस्तु बुद्धिमविरतवार गतहृदा स्फुरतु ।
अस्मद्विचदुर्लभया यद्दृष्टं प्रियया वरिष्वाकृत ॥

मू० क० (५-४८)

अस्यानि तथा अतु भीवितानि ये कामिनीनां गुरुपावताणाम् ।
आर्दाभि मेघोदकशीतलानि वापाणि यात्रेषु परिभवन्ति ॥

मू० क० (५-४९)

अर्थात् हे मेघ ! तुम और अधिक बरबो । तुम्हारे कारण मेघ कादालत
सरीर बसतसेना के स्पर्श से पुकड़ित हो रहा है । अविरल कृष्टि मुक्त बिजली
की शक्ति बाला वह बुद्धि सँकरो क्यों ठक रहे क्योंकि हम जैसे निषर्तों के
लिए दुर्लभ प्रियतमा बसतसेना का समामम ऐसे समय में ही हुआ ।

उन्हीं मनुष्यों का जीवन चरम है जो स्वयं घर में आमी हुई कामिनीयों के
वर्षा बरस से शीतल बरबो का अपने बरबो से आश्रित करने हैं ।

श्यायाकव में जब श्यायावीस उरसे बसतसेना के विषय में पूछते हैं तब वह
अनिरत हो आता है परन्तु बाधुन होन के नाते अवियोग की स्थिति में उरका
वह सक्रोध क्षम्य कहा जा सकता है ।

वह नरकाग्नेयी है । उसने ऐश्वर्य के सहीत की रात, कम तथा मुठना
इत्यादि का विस्फेपन करते हुए सपनाही की है । अविरल की कवामी सेंच को
बेसकर वह पकड़ता नहीं बल्कि उसकी नलात्मकता को सपनाही है । धर्म की ओर
उसकी प्रवृत्ति है । उष्या बरन आदि नित्य कर्मों का वह नियमपूर्वक अनुष्ठान
करता है । मीरिष को वैश्रूवा का महत्त्व समझाते हुए वह कहता है—

तपसा ममसा वाग्भिः पूजिता बलिधर्मिणि ।

तुष्यन्ति शमिनां निरय देवता किं विचारिणी ॥ मू० क० (१-१९)

वह विमोहो भी है । बसतसेना के सुदर्भमाण्ड को अविकल दाप पुराणे
जान पर वह कहता है 'बही वराक - वृतायो वर' । वह माय्यवारी भी है—
'माय्यवमेव हि जनानि भवन्ति यान्ति' (१-१९) । वह तो अवरी कृति है ही
पर कार्यक से भी उरसे कहा है—'स्वर्माय्ये परिनितीर्षि' । अकरण की
समाप्ति पर उसने विधि के विधान की दुर्हार् वैरी हुए कहा है —वह माय्य
नृपवर (रघु) की बटिवालों के समान है जो कमी मानव-ओवन को रिक
(मुञ्च) और कमी पूर्ण करता है । साथ ही कमी सञ्च और कमी भवनत
करता है । वह धनुन इत्यादि पर भी विश्वास करता है ।

१. वाग्भिः पूजिता 'प्रवृत्ती विधि ।—मू०कटिक १०।१०

स्वस्वरं वाचति वावसोभ्यममास्यमृत्स्या भुद्राह्वयन्ति ।
 वध्यं च नेत्रं स्फुरति प्रसह्य ममाभिमित्तानि हि खेद्यन्ति ॥

म० क० (१-१०)

अर्थात् जोबा स्वे स्वर से बीजक रहा है, मच्चियों के सेवक बार-बार बुला रहे हैं, मेरी बाँयो बाँस वनपूर्वक पत्रक रही है। ये अपचक्रुण मुझे क्षिप्त कर रहे हैं।

स्वस्वति वरय गुमी न्यस्त च चार्द्रतमा मञ्जी,
 स्फुरति नयन वागो बाहुर्मुहुश्च विकम्पते ।
 सकुनिरपररचाम श्लाघित्यैति हि गैकम्,
 कचवति महाधोरं मृतुं च वाच विचारया ॥ म० क० (१-११)

अर्थात् सभी कुछ अपचक्रुण है। भूमि गीली न होने पर भी पैर फिन्न रह्य है, बाँरे बाँस फटक रही है और बाँरे मुका बार-बार काँप रही है। फिर दूसरे बन्धी भी अनेक बार धोखे रही है। यह सब गम्यकर मृत्यु की सूचना दे रही है। इस विषय में कुछ पढ़ेह नहीं है।

वास्तव के विचार इतने स्पष्ट हैं कि किसी भी विषय में उनके ज्ञान की बारिमा देखी जा सकती है। बलकारपूर्वक निष्ठा की परिमाणा कितनी सुन्दर है।

इयं हि विद्या नयनापलम्बिणी ललाटेऽसादुपसर्पतीव माम् ।
 अक्षुब्धरुपा अपञ्चा शरेव मनुष्यसत्त्वं परिमुय वधति ॥

म० क० (१-८)

अर्थात् का सहाय सेनेबाधी यह नीच मस्तकप्रवेश से मेरी शीर या रही है। यह अक्षुब्ध रूपवाधी अक्षुब्ध बुद्धावस्था के सम्मन मनुष्य का सब अपहरण करके बुद्धि को प्राय हो रही है।

वास्तव के विषय में यह कहना उचित होया कि यह प्रियदर्शन, लोकप्रिय, उदार, दानी, ब्याकु, बूढ़ चरित्रमुक्त, अनाश्रित और नार्मिक प्रवृत्ति का नायक है। यही कारण है कि उसने निम्नारोपण से मृत्युपत्रक वाकर भी बकार को मृत्यु से मुक्ति दिखाने के लिए कितना सुन्दर कहा है—

अनु कृपापरायः शरनमुपेत्य पादयोः वसति ।
 शरनेन न हन्तस्य उपकारहृतस्तु कर्त्तव्यः ॥ म० क० (१-१५)

अर्थात् यदि अपराध करनेवाला अनु शरण में आकर चरणों में गिर गय तो उसे शरण से न मारकर उपकार के हाथ मारना चाहिये।

सब तो यह है कि उठना अतिव्यक्तता में अतितीव्र भाव है ।

वसतसेना

“नायिका कुञ्जला वशापि वेद्या वशापि इव वसित्” (भा० ८० १-२२५)
इस उक्ति के अनुसार मूच्छकटिक ऐसा प्रकार है जिसमें कुञ्जली और वसिका
को नायिकाएँ हैं । कुञ्जली वृथा है और वसिका बसतसेना है ।^१ बसतसेना का
ही अतिव्यक्तता इतने मुख्य रूप से चित्रित है । नायिकाएँ तीन प्रकार की होती हैं ।
स्वकीया, परकीया और साधारण स्त्री ।^२ वसिका साधारण स्त्री है । वह कला,
प्रपञ्चता और भूर्तला से युक्त होती है ।^३ प्रकृत्य इत्यादि कथनों में वसिका को
अनुरागा दिखाया जाता है ।^४ यही बसतसेना का आचरण के प्रति ऐसा ही
प्रेम दिखाया गया है, वह जन्म वसिकाओं में ही है ।

यह उच्छ्वसिनी की समृद्धिशास्त्रिणी वसिका है । पतुर्ध्वज में उठना वैभव
देकर विदुषक उसकी श्रेणी से कहता है—“बहुत प्रकार के भाव, पद्म, पद्मी-
युक्त बसतसेना के बाठ प्रकीट वाके भाव का देकर मुझे सब में विश्वास हो
गया है कि मैंने एक ही स्वान पर स्थित स्वर्ग, मर्यं एवं पाताल लोकमय विमु-
चन देह लिया है । मेरी वाणी में इनको प्रपञ्च करने की क्षमता नहीं है । क्या
यह वसिका का घर है ?” इस भाँति इस अर्थ में मूच्छकटिककार ने उसके वैभव
आदि का विषय वर्णन किया है । यह सुदरी नवयुवकी है और उच्छ्वसिनी का
भुवण है । अकार के बसतसेना को भारत के लिए बित्त से कहने पर वह जानों
पर ह्रास रखकर उसके सम्बन्ध में कहता है—“यदि मैं बाला स्त्री, उच्छ्वसिनी का
विमुचन एवं वेद्याओं के विरुद्ध कुञ्जलिनी ने उमान प्रेम-परायणा इव
निरपराध वैद्या बसतसेना को मारता है तो परलोक क्यों नही को छिन्न भाव से
पार करेगा ।”

आचरण ने भी उसके कम-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहा है—यह तो
अदृष्टासीन मेव से आच्छन्न अश्रुता की भाँति दुष्टिबोचर होती है ।^५

१. वेद्योमृति लौञ्ज्याभोवमिति वेद्या । उच्छ्वसो वसिका ।

२. स्वाभ्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका विद्या ।

मुग्धा जन्मा प्रपञ्चैति स्त्रीया शोकाजंवारिमुक्त् ॥ अष्टक (१-१५)

३. साधारणस्त्री वसिका वसात्रावस्त्वधोर्त्यमुक्त् ॥ अष्टक (२-११)

४. एकैव स्वप्रहसते नैवा दिव्यनृवाचये ॥ अष्टक (२-११)

५. बाहो दिव्य व उच्छ्वस्ये । मूच्छकटिक (८-२१) ।

६. “अविज्ञातावसन्ते दुस्ते ।” मूच्छकटिक (१-५४) ।

यकाट के वह कहने पर कि बसतसेना को मैनै बारा है, बिट करणा ये बिसय करते हुए कहता है—'बसतसेना उमके बिचार से सदारता का लोठ है। बौन्दर्य से रति है, सुमुभी है, बामुपनो को भी बामुपित करनेवाली है एवम् सीजन्प की धरिता है।'^१

बसतसेना पर लक्ष्मी की लुभा है। अतः वन से बिराग्य होनेवाली भावतिनी को टालने के लिए वह सर्वप्रथम उद्यत रहती है। द्वितीय अंक में सनाहक नव उसकी बरण देने पहुँचता है तब पहले तो वह अपने महक का छटक बन्द करा देती है पर नव जैसे यह जाट होता है कि धनिक के भय से उरन ठेके भावा है तो वह छटक तुम्बा देती है और अपरिचित होने पर भी वह उसे अमयबान देती है। यह स्वभाव से इतनी उद्यत है कि कृपणता का अक्ष उसमें सामान्य को नहीं है। सनाहक की लवणहट को देखकर वह कबचा से प्रकित हो जाती है और सीधता में उसकी आपत्ति जानने को उत्सुकता भी व्यक्त नहीं करती। लोठ शूचनूक कराने के लिए वह अपना सोने का कबा भेज देती है और कच्छाही है कि इसे सनाहक ने लो भेजा है। वह अपने कार्य का श्रेय नहीं चाहती और न अपकार का प्रत्युपकार चाहती है।

चतुर्थ अंक में वन उसे श्राप होता है कि धनिकक सच में बरनिका से प्रेम करता है तो वह अपनी उद्यता के ही कारण उसे बाधता से मुक्त करके उस को लोप देनी है। सच में वह बड़ी उद्यत है। सुवर्णमाण्ड बरोहर रखकर कई दिन तक वह बाह्यत के बर इसलिए नहीं जाती कि कहीं बाह्यत उसे बरि-स्वस्त्य न समझ बैठे। बाह्यत के पुत्र रोहसेन को सोने की गली के लिए वह रोता-मचल्ला नहीं केवल छकती और अपने बामुपन से देती है। उसकी मत्ता बनने के लिए वह सब कुछ करने को तैयार है। उसका बाह्यत स्वयं सदाहनीय है। बाह्यत को पत्नी मृता से उसे अक्षमाल ईर्ष्या नहीं है। वह उसके साथ बहुत स्नेह मगती है और बहिन जैसा मृता समझती है। जेटी के द्वारा उसे एलाबको सोपते हुए वह कहती है—यह दासी बसतसेना बायें बाह्यत के नुपों के बसोभूत है। इस प्रकार भाव लोभो के लो बधीभूत है। अतः वह रत्नावली जार्वा मृदा के ही कण्ठ में सुसोमित हो।

बसतसेना बुद्धिमती एव कछानुभूत है। यद्यपि बीजपाळ में उसने प्राकृत का प्रयोग किया है पर वह संस्कृत मगती है। पद्य अंक में बिदुपक से उत्कृष्ट

में समावेश ही नहीं करती बरन् चाइल्ट के विषय में संसूत छन्द भी कहती है। वह व्यवहार-निपुण है। जब चाइल्ट उसके ज्ञान भ्रम से परिचय का सा व्यवहार करने के कारण समझे अपराध को समाशापना करता है तब वह भी अपने अपराध की समाशापना करते हुए कहने लगती है—एक व्यक्ति के साथे पञ्जाब से मरान में प्रवेश करने के कारण अनुचित कार्य होने से मैं अपराधिनी हूँ अतः ठीर से प्रमाण करके क्षम्य को प्रसन्न करती हूँ। वह चाइल्ट की बूढ़ एवं मध्यम प्रथम श्रेणी का सा अध्ययन मूल समझती है। जब चाइल्ट बसतसेना से कहता है—यह धरोहर रखने योग्य घर नहीं है। तब बसतसेना कितना मुबार छत्तर देती है—क्षम्य। यह असम्य है। योग्य पुरुष के यहाँ धरोहर रखी जाती है, न कि योग्य घर में। बसतसेना की इस उक्ति ने चाइल्ट के सम्मान में चार पाँच कमा दिए हैं और इस बात की पुष्टि कर दी कि 'कुशा पूजास्वान मुषिबु न च न्यि न च मय' अर्थात् व्यक्ति का वैशिष्ट्य पुरुषों से है। केश प्रसाधन में भी वह कुशल है और अपने भेषों को सुसज्जित फूलों से प्रसाधित रखती है। धकार उसे मच्छी सानेवाकी बहुता है। चित्रकला में वह प्रवीण है। चतुर्थ अक्ष में चाइल्ट का विषय, जो उसने मदनिका को दिखाया, समस्त क्षत्री का बनाया हुआ है। पंचम अक्ष में उसके द्वारा किया हुआ वर्षम बड़ा स्वाभाविक एवं अनोख है। उसकी तर्कशक्ति भी इतना एक इच्छकोटि की है।

चतुर्थ अक्ष में विदूषक को अपने उद्यान में खाना हुआ देखकर लक्ष्य परो होकर वह उसका स्वागत करती है—हे इन्द्र! तुम्हारे बरतने, बरतने मचरा पक्ष छोड़ने से भी मेरा रक्षणा क्षम्य नहीं और है विद्युत्। मेरा ही पुस्तिक होने से निष्पन्न है, तू तो अपनी स्त्री काष्ठि का ध्यान रख।^१

चाइल्ट के प्रति बसतसेना का आठरिक्त प्रेम है। वह उसपर आशक्त है। यह भी कहती है—विचित्र व्यक्ति है प्रेम करने वाली देखा जिससेह समार में निम्ननीय नहीं होती।^२

बसतसेना अपने विचारों में कितनी बुद्धि है वह क्षत्री से सात होता है कि जब पुष्करच्छक उद्यान में धकार उसका गधा भोटने लवता है तो वह चाइल्ट का नाम गिरी हुई करने को उद्यत है, पर धकार की प्रेक्षणी होना नहीं चाहती।

१. अर्ध वा दृ ल न जानामि। मूष्णकटिक (५-११, ३२)

२. दत्तितु इतस्यस्यस्यना. क्षतु दक्षिणा लीरैः प्रचक्षीया तद्वति। मू० क०

बसल्लोना उधरों में भी भागी बटती हुई जाती पयो । उसने कभी साहस नहीं छोडा । यह बाततियों से बहराने वाली नहीं थी बल्कि सामुपयग्यास, इतिहास में इतिहास, पुण्यकरणक मयन आदि सभी बातों के प्रति भी उसे मरणासन्न होते हुए भी ठिठकते हुए ही मही हो जाती बरन् प्रेम के बावजूद उसे उसके हृदय पर पछाड खाती हुई फिर जाती है । इसमें एक में उसका मनोरथ पूर्ण हो जाता है और वह असम्मान कुचकरी की पदवी को प्राप्त कर लेती है । यही उसके जीवन का अन्त था जिसकी पूर्ति में वह सभी कष्टों को भुगटती है तथा असीम ध्यान का अनुभव करती है । पण्डित को कुचकरी बनाना ही मृच्छकटिककार को अभीष्ट था । वास्तव में मृच्छकटिककार को मृच्छकटिक पर निर्भर है । बसल्लोना में उच्चतर चरित्र, उदारहृदयता, अनन्य त्याग और अपूर्व प्रेम कूट-कूट कर भया था । यही बाधा से बिन्होंने उसके पण्डित होने की कानिमा की थी बिया ।

106385

विरोधी नायक शकार की योजनायें

पण्डित इन मृच्छकटिककार का प्रतिनायक है । मृच्छकटिककार का यह चरित्र भी विचित्र है । यह प्रतिनायक लोभी, बीरोद्धत, यह प्रकृति बाधा, पापी और अज्ञानी मन्ना गया है ।^१

यह मूर्खता, झूठता, कायरता, प्रवचन और पापवृत्ति आदि दुर्गुणों से पूर्ण है ।^२

प्रथम अंश में विट इसको अज्ञेयता कहता है, कामेधे उधर का कुछ टीकाकारों ने अविवाहिता बयपा अविचारिणी अर्पे किया है । यह राजा पाकक का सत्य है और उसकी अविवाहिता स्त्री (रत्नेयो) का भाई है । इन सम्बन्ध से इसे राजसयासक कहा गया है । इसे राजा के सत्य अपने सम्बन्ध का बड़ा पर्व है । नवम अंक में जब न्यायाधीश इसका अभिषेय सुनने का

१. बीरोद्धत. पापकारी अज्ञेय प्रतिनायक:—शा० दर्पण (२-१२१)
२. लुम्बो बीरोद्धत स्तम्भ: पापकृन् अज्ञेयी रिपु—बभ्रव-दशरूपक (२-९)
३. मूर्खतामिमानो बुध्नुन्दीर्यवर्षयुक्तः ।
 लोभमनुबोधाता, राज्ञः अज्ञः शकार इत्युक्तः ॥ शा० दर्पण १-४४
 उच्चतर बस्यामरुचः कृत्वमिमिच्छत प्रसीदति च ।
 अज्ञमोमाममयापी मर्दति शकारो यदुपिहातः ॥ मृच्छकटिक ३४-५९

विवेक करते हैं तो उन्हें यह कहकर बचकाता है कि मैं अपने बहनोई राजा से कहकर तुम्हें बटुपुत्र कराकर दूसरे न्यायाधीश की नियुक्ति करा दूँगा। इसको अपने धनी होने का बड़ा बर्क है। अतिशय होने से यह सिष्टाचार मूम्य है। यह प्रकारो प्राकृत भाषा बोलता है जिसमें सस्वर के स्थान पर अकार का उच्चारण होता है। सम्भवत इसी कारण इसका नाम अकार है। इनके कार्य मनमाने हैं। वह अपने आपकी देवपुत्र्य ममूय्य बानुदेव कहता है। यह अक्ष प्रकृति है। इसकी मूर्तता तो इसी से ज्ञात होती है कि उसने पौराणिक एवं ऐतिहासिक आस्वातों के लिये सीले अक्षर देये हैं। 'शोचपुत्रो जटायु' यह विद्वत् कथन उसका हास्यास्पद नहीं तो क्या है। 'जमूता रजयवा' यह कहना भी एक अनर्थक प्रकाश है। इनके पर भी जैसे अपने ज्ञान का दम है। अकार सिर स्वभाव का नहीं है। वह बुराग्रही एक कायर है। उसके निरजय में बृद्धा नहीं है। अथ लय सर में उनके विचारों में परिवर्तन दिखाई देता है यहाँ तक कि उसके साथी बटु और शेट भी उसकी ओर से अक्षिप्त रहने हैं। उन्हें इस बात का भय रहता है कि न याम बटु कमी भी क्या वह बड़े अथवा कर बैठे। अष्टम अक्ष में पहले तो यह बटु से पादो में बैठने को कहता है और फिर बाद में उसका अपमान करने लगता है। इसी भाँति स्वाचरक (शेट) के पाण्डवीवारी के दूरे भाग में पादो साने का आरोप देता है। इस प्रकार की अक्षियाँ निरजय ही उसकी बहुमन्यता को प्रकट करती हैं।

अकार लक्षणवशात् को अपनी प्रियसी यलाना चाहता है परन्तु वह उसे सेवका भी नहीं चाहती। जन ओर वस से वह सने वस में रुला जाता है पर उसे लक्षणा नहीं मिलती। प्रथम अक्ष में यह बटु से कहता है कि मैं बटुसेना की दिना लिखे गद्दी बर्खाना पर-तु बटु के बसे जाने पर स्वयं भी वहाँ से चल रहा है। ऐसे ही उसके बुराग्रह है जिससे उसका अक्षिप्त दूषित है। यह भी है अष्टम अक्ष में बटुसेना को अपनी बाड़ी में देखकर यह बटु जाता है। अष्टम में मूत्रु के मय में आचरक की अक्ष में जानर रता माचना भी करने लगता है। अथ अक्ष में अकार आचरक से कहता है—'मद्वारक आचरक अक्षयतो अस्मि। अक्षरिभावस्व अक्षिभावस्व अक्षिभावस्व। मत्तव लक्षुष लक्षुष। पुनर्न-दुम अक्षिभावस्व।' इसी से उसकी कायरता स्पष्ट होती है।

वह मियुमों का बटु विरोधी है। अष्टम अक्ष में यह मियु से कहता है—'तिष्ठ, रे दुष्टममगक। तिष्ठ। आपातक मध्य प्रविष्टस्यैव एतन्मूलकस्य दीपस्य मद्रवामि। अर्थात् दुष्ट अक्षयक बटु अक्षिप्तम में बने हुए मद्यु के एतन्मूलक के समान मैं तुम्हारे मस्तक को भव करता हूँ।

वह अपने मित्रों से भी प्रेम नहीं करता और न उनमें विश्वास रखता है ।

इन सब बातों के होते हुए भी उसमें समझे बड़ा दुर्बल यह था कि उसने यह समझ कर कि मैं राजा का साधक हूँ चाकर को मारने की योजना बनाई । वह हृदय का बड़ा कपटी था । बसन्तसेना को वह चाहता था । चाकर उसकी अप्रतिपत्ति में बाधक है—ऐसी उसकी धारणा थी पर उसने यह नहीं सोचा कि उसकी यह योजना समझ देने हो सकती है । वही तो बसन्तसेना को प्रेमी बनना चाहता था पर बसन्तसेना तो उसे नहीं चाहती थी । उधर चाकर और वसन्तसेना परस्पर एक दूसरे से प्रेम करते थे । इतना ही नहीं बसन्तसेना ने तो चाकर के लिए बहुत कुछ त्याग की विधियाँ और चाकर ने जो उसके लिए कोई कमी उठा कर नहीं रखी । ऐसा दया से चाकर का बसन्तसेना को बहाना निरी मूर्खता नहीं तो और क्या था । उसका स्वभाव बुराबुरो था और वह कैवल्य की स्वप्न दृष्टता था कि मैं राजा का साधक हूँ कोई मेरा क्या विघ्न देगा । अपनी कपट योजना से मैं न केवल चाकर को मारने में सफल हूँगा बल्कि वसन्तसेना के साथ अपना जीवन ब्रेव के साथ विताऊँगा । वह चाकर का हृदय से घबुसा । वह इतना क्रूर और निरंकी था कि चाकर को फँसी पर चढ़ते हुये देखने की क्षमता उत्पन्न करने के लिये उसका मग उठावना चाहता था । वसन्तसेना को प्राप्त करने के लिये जब सभी प्रयास उसके निष्फल हो गये तब वह बिड़क पया और उसे मारने के लिये उत्सुक होकर उठना चाहता था उसे सितक नहीं हुई । बिट और कैट को कपट पूर्वक हटाकर बसन्तसेना का बला उखरने बाँट ही हो दिया । बिट ने जब इस दुस्वित्त कृति की मूर्खता की तो वह उस पर हरे हरे का आरोप करने लगता है । कैट को वह चाकर राजा बैठा है और चाकर पर बसन्तसेना को हत्या का अभियोग लगाता है । अभियोग के मध्य में जब बिट उसके पाप का उद्घाटन करता है तो वह उस पर आरोप का आरोप मगा बैठा है । वह बातों से कहता है कि चाकर को बुन रहित समझ कर दो । यह बातकी कृता की पराजय है ।

चाकर का सारा चरित्र दुर्गुणों से पूर्ण है । वह स्त्री कपट, मूर्ख और घृणितो है ही नाम हो/मानवता से दूरता फिर क्या है कि वह मनुष्य रूप में किम्प ही दम्प नहीं बल्कि ही व्यक्तित्व न होती । प्रतिपक्ष के रूप में उसका विपण यथार्थ है ।

मृच्छकटिक के अन्य पात्र एवं चरित्र

किशोरी की रूप में पात्रों की सजुबित्त्व व्यवस्था स्पष्ट है । रूप की

सफलता के लिये यही एक आधारधिया है। मूच्छकटिककार ने चटनाओं के पाठ प्रतिपाठ में, तथा के श्रमिक विकास में, पाठों के विन्यास में और पाठों के अनुसार भाषाविस्तार में दखता दिखाई है। इस प्रकार के सभी पाठ मौखिक भाषापूर्ण हैं। निरतिशय कोशल को दिखाने में वे अत्यन्त चतुर हैं। उनका सामाजिक ज्ञान और सूक्ष्म मनो कुछ अेक है। यहाँ क्रमशः पुरुष पाठों और स्त्री पाठों का परिचय दिया जा रहा है। प्रस्थापना के चारित्र्य में हमारा परिचय सूचना से होता है। यह अभिनयमयवस्थापक तो है ही साथ ही प्रमाण नट भी है।

मैत्रेय चारित्र्य का मित्र है। यह विद्वपक है और अपने समाज से दया-वसर मनोरजन करता है।

विट चकार का सहचर है। यह सहचर एक बुद्धिमान है। बसतसेना की सच्ची प्रेम भावना से प्रभावित होकर वह केवल ससकी प्रकृति ही नहीं करता बल्कि यथासक्ति सहायता भी करता है। बर्नजोर होने से वह पाप का विरोधी है और इसी से अकार को छोड़कर चला जाता है।

चेट चकार का सेवक है इस स्थावरक भी कहा गया है। इसे परलोक का भय है। लुब्ध से यह सज्जन के प्रति स्नेह और आदर दिखाने की प्रयत्न करता है। वह स्वयं आपत्ति घस्त होने पर भी कोई अनुचित कार्य नहीं करता। आपदत की रक्षा का प्रयास उसे अभीष्ट है।

द्वितीय अंक में हमें नवीन पात्र अवाहक के दर्शन होते हैं। यह चारित्र्य का भूतपूर्व सेवक है। जुए में सर्वस्व छोड़कर निर्बल है यह बाद में विद्व हो जाता है। विद्वु अंक से भी हमें संबोधित किया गया है।

माधुर सभिक है। यह प्रमाण चूतकार है। दुर्दुरक भी चूत प्रेमी है। कर्षपुरक बसतसेना का सेवक है। इसका वैवाचिक सराहनीय है। तृतीय अंक में नवीन पात्र अविनाक से हमारी मेंट होती है। यह मन्त्रिका का प्रेमी है। पाठि का आग्रह होने के साथ साथ यह बड़ा साहसी है पर दोष यही है कि यह एक प्रसिद्ध चोर भी है। यह भीम विद्वान में अत्यन्त कुमन है।

चतुर्थ अंक में चेट एक नवीन पात्र है। पर यह चेट चकार का सेवक न होकर बसतसेना का दात है। इसका वाच्यमात्र सुन्दर है। अन्तुक्त मन्त्रिका पुन है। बसतसेना के आत्मन में रहते हुएी में अपना जीवन मापन करते हैं। इन्हीं के विषय में इनके मुस से परिचय प्राप्त करिये।—

परगुहकृतिता परगुह्या वरपुर्णवर्जिता परमताहु ।
परफनामिच्छा पुष्येववाभ्या वनकठया ह्य वन्मुका कलाम ॥

मू० क० (४-२८)

परामे वर में पके हुये, पराम से पोषित, परदृश्य एवं परस्त्रियो में उत्पन्न परामे वन का उपयोग करने वाले हम वन्मुक्त गण हाथी के बच्चे के समान स्वच्छन्द विहार करते हैं ।

पवन एक में नवीन पाव कुम्भीकक भी बर्ण है । यह वसतसेना का सेवक है ।

बिट वसतसेना का परिचारक है । एक बिट वीर भी है जिसकी पूर्व बर्ण भी बर्ण है । यह सकार का सहचर है ।

पद्म एक में तपोत पाव रोदुहैव का वस्त्रेय है । यह वासुदेव का पुत्र है । भद्रपि यह वासुदेव है फिर भी समस्तदार है । पितृमोह से बधोमृत होकर यह स्वयं इनके स्थान पर प्रागदध केकर उन्हें मुक्त कराने का इच्छुत है । इसी द्वारा वास्यावस्था में मिट्टी की पाटी के स्थान पर सोने की पाटी के सिरे आसह करने के कारण इस प्रकार का भाव मूकशक्ति पजा ।

स्यावरक चेट सकार का वास है । यह प्रसका वानवाहक भी है । मोच कुच में उत्पन्न होते हुये भी जिन्वनीव कायों के करने में यह भयभीत रहता है । वासुदेव के वच की पोष्य को सुमकर उसके प्राणों की रत्ता के किमै महल से फिरते हुये इसने अपना कर्तव्य वाक्य किया ।

मार्क यह घोषक वाक्य है । धारण में यह राज्यापाकक का बन्धो है । उत्पन्नवद् राजा हो जाता है ।

वीरक भी राजा पाकक का सेनापति है । यह मगर रसक है ।

पन्वमरु भी राज्यापाकक का सेनापति वीर वचर रसक है ।

बहम एक में मिसुक्त दूतव नवीन पाव मासूम पठता है पर सब में यह नवीन बहो है । यह बौद्ध सम्प्रायी है और द्वितीय एक में पूर्व वायव्य का सवाहक है । पहले क्षत्री बर्ण हो चुकी है ।

नवन एक में नवीन पाव घोषक से हमारी भेंट होती है । यह ग्यावात्म्य का रत्ता सेवक है ।

अधिकरचित यह नाराधीन है । यह हृष्य से पवित्र है और ग्याम विव है । यह स्वमान से सम्बन्ध है और सम्बन्धता का धारण करते हैं । दोषों के दूष्ये में और सचार्थ की धोख में यह उत्तर रहते हैं । यह सब कुछ होते हुये भी

धीरे होने के कारण और घोघरावस उचित न्याय नहीं कर पाते । यकार रामा का सासा है अतः उसके यह करते हैं ।

येही यह नगर का एक प्रतिष्ठित सेठ है विवाह निर्घ्न में बहु खिचकरनिक का सहायक (Assistant) है । इसे व्यवहार प्रत्येका भी कदा मया है ।

कायस्थ यह व्यवहार केवल कर्मी न्यायालय का सेवक (वेणुकार) है ।

दयम अक में कैरत हो मने पात्र वाच्यता है । इनका कार्य अपराधी बातों को सूची पर पढाना है । वाच्यता होने हुये भी ये समझदार हैं । इन्हें कस्तार भी करते हैं ।

कुछ पुस्तक पात्र ऐसे भी हैं जो मन्त्र पर सामने तो नहीं आते पर सबकी बर्षा यथावत्तर की गयी है ।

पात्रक—यह अकम्ती का पात्र है ।

रेमिल—यह उद्योगियों का एक व्यापारी है, वास्तव का मित्र है और सर्वोत्त साधन का आचार्य है । पाने में अपनी समता नहीं रखता ।

सुपंकुट—यह वास्तव का मित्र है ।

सिद्ध—यह कार्यक की सम्पत्ति का मन्त्रिय करता है ।

इसी पात्रों में प्रस्तावना में सूत्रकार के पत्रात् मटी की बर्षा है । यह सूत्रकार की स्त्री है । सम्भाषण कथा में यह कुसुम है और पण्डितशिव भी है ।

प्रथम अक में बल्लभसेना पृथ्वी स्त्री पात्र है । निम्नकी बर्षा आत्म में की बयी है । यह एक नगिका है और इस प्रकार की नायिका है । मुष्ककटिक की सफलता इस पर बहुत कुछ निर्भर है ।

रत्निका—यह वास्तव की परिचारिका है ।

द्वितीय अक में नवीन पात्र खेटी का उल्लेख है यह बल्लभसेना की सेविका है ।

मन्त्रिणा—यह बल्लभसेना की मित्र दासी है और अविश्व की प्रेक्षी भी है ।

पृथ्वी अंक में नवीन स्त्री पात्र वृद्धा की बर्षा है । यह वास्तव की बर्षा-परनी है और धार्मिक की साहाय्यी है । नवम अक में उद्योगियों का उल्लेख है । यह भी बल्लभसेना की परिचारिका है ।

नवम अक में वृद्धा माता का बर्षन आता है यह बल्लभसेना की माता है ।

पात्रों की संख्या सब से मुष्ककटिक में अधिक है पर सभी अपने अपने स्थान पर ठीक है । कोई भी अर्थ या भरती का नहीं मान्य होता ।

मूञ्जकटिक में नाट्यप्रतिभा का प्रस्तुतकरण

मूञ्जकटिक की कथावस्तु बतौरिक है। इसमें सामाजिक इतिहास का चित्रण करते हुये सुबाह्यत्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। छाया ही नृपस राजा का वास्तव चित्रण तक समभव नहीं है। इस ओर भी ध्यान बाह्य किम्बा पया है। इस परिवर्तन के साथ मूञ्जकटिककार के ससृष्ट नाट्य कालन की परम्परा का परित्याग भी एक बहुत्वपूर्ण इतिहास है। मूञ्जकटिककार ने जिस साहस के साथ इस ओर पदार्पण किया है वह असाहसीय है। शास्त्रीय नर्तिकाओं से मुक्त म्यापक बोधा के अन्तर्गत अपने नयेक प्रयोग किये हैं। वेसायें पुरातन भारत के नाट्य-रिक्तों के मध्य सम्मान तो पाया रहो किन्तु किसी कुनोन व्यक्ति के साथ कुल-पधु होने का औरत उन्हें प्राप्त न था। बापयभायें प्रेयसी तो हो सकती थी किन्तु किसी अथव वर्ष के व्यक्ति की पत्नी होने का सोनाम्य उन्हें प्राप्त न था। नृपक ने ससृष्ट बटोर कर प्राधान्य नायक को गणिका मुबती बसन्तसेवा के साथ पति पत्नी रूप में प्रदर्शित कर तत्कालीन समाज के सिधे असन्मय को सम्भव कर दियाया है। कथावस्तु को पुष्टि के सिधे अन्तर्गत में बीब रूप से बाह्यम-प्रतिबन्ध के द्वारा बीबा निरुद्ध कार्य कराके भी वेसा रासी मयमिका की रूप के रूप में उसे स्वीकृत कराना भी कलाकार का एक बमत्कार ही है। इतना ही नहीं उतने कल्पित राधा राती खादि की कृत्रिम जेम कथाओं की उपेक्षा कर एक नूतन बन्धु का निर्माण किया जिसमें ल्रेक जीवन का परिष्कृत रूप प्रस्तुत किया गया है। सब में मूञ्जकटिककार ने निर्भीकता का परिचय दिया है उसका साहस सरय की ओर करने में केवल परम्परा के कारण विचलित नहीं हुआ।

कलाकार की यत्नीरता और उसका भीचिय प्रकरण के नाम से ही इतत होया है। उसकी निचली भौतिक प्रतिभा सर्वत्र प्रस्तुतित हो रही है। कानि-वास का अभावार्थ यदि सुबसृष्ट सुवर्ण की उपनखि या बीबा नि रपुवरा के प्रथम वर्ग में बनकी रात "हैमः सबावपते ह्यमो विदुषिः ययामिकापि बा" के द्वारा स्पष्ट प्राप्त होता है तो मूञ्जकटिककार इसके विरोध में था। उसने स्वयं कला के स्वयन पर मुक्ति को कला का रूप दिया। इस भीचि वृत्ति का नाक-करण बाह्य रूप से बाकपि धीर्यक द्वारा न करके मूञ्जकटिक के रूप में किया। कानिनाम के अथक नायिका ने बाह्य स्वर्गम और सामाजीय बापयवप में साह लिया वही मूञ्जकटिक के नायक नायिका इस धरती के ही पात्र बने। बसन्तसेवा अनुकला से कम सरत और भासी नहीं थी पर वह जीवन से विर-

एक दृढ़ताई जाती रही यही तक कि समाज का धारणाओं को बदलने के लिये उसे सर्वप्रथम में अपने प्राचीन ठक को स्वीकार करने के लिये प्रस्तुत रहना पड़ा। संस्कृत साहित्य में समस्त किसी महिला को इतने बहुत बुरा का साधना नहीं करना पड़ा। मूञ्जकटिककार की दृष्टि में बर्चार्थवादी होने के नाते मिट्टी की गाड़ी का सोने की बाटी की अपेक्षा बड़ा महत्व है। इसी से नामक नायिका के नाम पर अपनी रचना का नामकरण न करते हुये मूञ्जकटिक नाम रखा। वास्तव में मिट्टी से परती के हुए मानव का सम्बन्ध है जो वही कला जीवन को आर्कषित कर सकती है जिसका सम्बन्ध परती पर उत्पन्न होने वाले प्रत्येक जीव से हो। सोने का इस दृष्टि से खैर सीमित हो जाता है। मनुष्य जीवन की गाड़ी अतिव्यथा पर निर्भर है। समस्त इसी भावना से प्रेरित होकर मूञ्जकटिक नाम समुचित लगता गया। अपने सत्सौख्य पात्रों में केवल पाँच को संस्कृत बोलते हुए और दो को प्राकृत बोलते हुये दिखाकर मूञ्जकटिककार से जनसाधारण आशावरण को प्रस्तुत किया। हमसे स्पष्ट है कि उसने नाटकीय परम्परा के अनुसार साम्प्रदायिक आशावरण से अपने को पूर्णक रिखाया है।

मूञ्जकटिक में प्रयुक्त छन्दों का वही एक सम्बन्ध है उनकी देखन से ज्ञात होता है कि रचयिता को कुछ तथा सरल छन्द ही विशेष प्रिय है। सबसे अधिक संख्या अनुष्टुप की है। उसके पर्याप्त बसंतविक्रम का तथा सादृशकविश्रुति है। अन्य छन्दों में इन्द्रवज्रा, बधस्व तथा उपजाति प्रमुख है। प्राकृत ने छन्दों में अधिक विविधता प्राप्त होती है। गुणोत्तर के आधार पर इसके प्रमुख प्राकृत का विद्वेय किया गया है। इसके पर्याप्त मूषधार, बतततैवा, बर्षततैवा की मात्रा, कर्षपुरक, घोषक तथा रदिका धोरैनी बोलते दिखाये गये हैं बुद्धा और तथा चन्द्रक मण्डिका बोलते हैं। विषुवक शब्दा बोलता है। अवाहक, स्वावरण, गुणोत्तरक, बर्षमानक तथा रोह्येन मायवी बोलते हैं। शकार सकारी बोलता है। आण्डाल आण्डानी बोलते हैं और पुमागी इसकी बोलते हैं। प्राचीन बंधा-करण बरतचि मे दीरैनी, मागधी, महात्तरी तथा पैमाधी इन चार प्राकृतों की ही चर्चा की है। इनमें से महात्तरी तथा पैमाधी का प्रयोग मूञ्जकटिक में नहीं देखा जाता। बर्षमण्डिका, प्राच्या आदि उपमेय परवर्ती बंधाकरणों ने प्रतिपादित किये हैं। बीच के दिवार से पूर्वीवर की साह प्राकृत कायार्थे दीरैनी तथा मायवी के अन्तर्गत है। प्राकृत की बहुलता को देखकर यह निश्चित है कि संस्कृत के किसी अन्य नाटक में प्राकृत का इतना विविध प्रयोग करने को नहीं मिलता।

संस्कृत रसमय की परम्पराओं को भी मूत्रकटिककार ने उल्लेख किया है। साम्प्रदाय परम्परा के अनुसार नायक वाक्यतः प्रत्येक शक में उपस्थिति नहीं दिखाती है। यद्यपि निद्रा तथा हिंसा का रमण पर प्रदर्शित करना निषेध है पर ऐसे प्रतिबन्धों का पालन इसमें नहीं है। इस दृष्टि से मूत्रकटिक सर्वथा ओक है। इसे यदि सञ्ज्ञाननाम का नाटक (A drama of invention) कहा जाय तो उचित होगा। अन्य संस्कृत नाटकों ने लौकिक कथावस्तु को न अपनाकर दक्षिण एवं पुरुष का आशय दिया है। यदि कहीं लौकिक जीवन का प्रतिबिम्ब भी प्रस्तुत किया है तो वह राजाओं, मंत्रियों तथा महलों की घटनाओं तक सीमित रहा है। वाक्यतः और वस्तुतः के प्रयोग को कथा यथार्थवादी व्याख्या बिना प्रस्तुत करती है।

मूत्रकटिक न केवल विषय वस्तु में वरन् विषय निरूपण में भी निराला है। परम्परा विरोध की प्रवृत्ति इसमें कई रूपों में देखने को मिलती है। नाट्य-कला के तकनीकी विषयों का उल्लंघन रचयिता ने निःसंकोच किया है। वृद्धों के रूप में व्यस्य पर जुबानी कथन किये दिखाये गये हैं। छठे और नवें अंकों में कृष्ण, नीरक-वन्दनक तथा प्रकार-विकल्पक बरस्वर समझते हैं और उच्चरित का रूप ग्रहण कर लेते हैं। तीसरे शक में शक्तिशाली का साहसपूर्ण कार्य रात के समय सम्पन्न होता है। गैरेब और वाक्यतः नहीं सोते रहते हैं। अष्टम शक में तरुणी वस्तुतः का कष्ट निवृत्त होता है और अल्पकाल के एक निर्वोच एवं उदारवैरागी वाक्यतः के सुखी पर अटकने का दुःख उपस्थित होने के साथ साथ एक छोटी छाँची गाय के चित्तापेक्षक मयावक एवम् कथापूर्ण दुःख प्रस्तुत होने को भीषण का बाधो है। संस्कृत रसमय के लिये यह सब कुछ आश्चर्यचकित है।

इसके अतिरिक्त भी विविध है। वाक्यतः निर्धन होने के साथ साथ अन्ध एवम् शिष्ट है। वस्तुतः वन्दन होते हुये भी कुक्ष्याय के सुखी के मुक्त है और अपने प्रेमी को मृत्युमुख से बचाकर ही जीव लेती है। नीर, स्वादरक सरल और स्वादप्रिय सेवक है जो एक निरपराध व्यक्ति की प्राणरक्षा में ऊपर अट्टालिका से कुबकर अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं। यद्यपि एक छोटी तथा निराशास्त्र सामान्य शक्ति है जो यथोचित कार्य करने में संकोच नहीं दिखाती। नीरक पुत्रिक शक्तिशाली अपने कर्तव्यों के पालन में इतना कठोर है कि अपने पिता को भी छोड़ने के लिये उत्सुक नहीं है। शक्तिशाली शक्तिशाली होने में और तथा किन्नाशाशो में अनुरक्त है पर राजनीतिक दृष्टि का अन्वय

है। दुर्बल निर्धन है पर उसका हृदय अस्वाचार के प्रति बल रहा है। दोनों पाण्ड्याण्य बन्धु और भृति से अत्यन्त पाण्ड्याण्य है पर सहृदय है। मेरेय भी अपने पिता एवम् स्वामी आचरत के दृष्टि में निरन्तर चिन्तित है। दुष्ट परिचय आकार भी अपने अनुकूल निर्मम, बुद्धिनीय तथा हिसक विचारों से मोठप्रोत है। सब में वास्तविक जीवन को प्रस्तुत करना मृच्छकटिककार भी प्रतिभा का परिचायक है।

मृच्छकटिक का वस्तु विन्यास भी अनुपम है। पात्रपूर्व घटनाओं की विविधता बड़ी इसमें है वही अन्य उत्कृष्ट नाटकों में नहीं है। उत्कृष्टापूर्व विनयन के साथ यह विविधता हर्ष, आश्चर्य, क्रम, शय, हास्य इत्यादि भावों को उत्पन्न करती हुई विधीन हो जाती है। रात की राजनार्म पर युवती बसतवेना का पीडा किया जा रहा है। युगे में हारे हुए एक बुबारी का पीडा करते हुए मारपीट का दुःख उपस्थित किया गया है। रात के अचकार में सम्पिष्ठेय किया जाता है। बैरवा के प्रासाद में एक चोर और युवती कुम्हरे की श्रेय लीला का प्रदर्शन भी है। अचिरा बसतवेना रक्षा और तुफान की अवहेलना करती हुई अपने श्रेयी आचरत से मिलने के लिए अन्वितार करती है। पाण्डियों के बन्धन जाने से पुत्रिम के दो अन्वितारी दृश्य पर बल्लू करते हैं। लयान में एक सुन्दरी शास्त्री मद्रिका की निर्मम हत्या का प्रयास किया जाता है। न्यायालय में अन्वितेय के सन्ध निर्दोष आचरत के सिद्ध अचराय पद दिया जाता है पर लहसा बह बल जाता है। घटनाओं के विविध रूप एक भावों की अनुमति के लयी परस्पर युगे हुए हैं।

मृच्छक की एक विशेषता उत्कृष्ट यथार्थवाद है। उत्कृष्ट नाटकों में यथार्थवाद आमतौर रूप से शक्य हो विज्ञानी वेता है कि पौराणिक कथा की मानचोब रूप दिया गया है अथवा राजमहल के भीतरी जीवन की कुछ शक्तिवी दिशापी बदी है। वास्तव में उत्कृष्ट रचनाय पर विगुण यथार्थ कभी प्रदर्शित नहीं किया गया। मृच्छकटिक में मृगश्रुत एव साहस के साथ उत्कृष्ट यथार्थ का आचरक चित्रण किया गया है। द्वितीय धंक में बुबारियों का दुःख अन्वितार है। उनके पाठे वैशमा, अचदह का होला, अन्वित बुबारी का मन्दिर में भाव कर टिण बाना यदि बाते जीवन की यथार्थता को बताती है। इनमें विनय स्तरीय जीवन की शक्य से मुक्त यथार्थवाद का यही अन्त नहीं होता बल्कि विविध घटनाओं दुर्बल एवम् अनेक आन्वितिक यथार्थों में यह निरन्तर आन्वित जाता है। उन्वितिनी का आन्वितरालीन जीवन भी अनुपम है अन्वितेय राजा के लगे लम्बनी तथा अन्वित बान लहकी तथा अन्वितों में अन्वितेय में अन्वितेय है और अन्वित अन्वित अन्वित

वस्तुतः को बरते तथा परेशान करते हैं। उद्विग्नता का विषय भीड़भाड़ से युक्त राजपथ पर बसने वाली यात्रियों का चित्र जिन्हें हाकले वाले पैजो को चिन्ता चिन्ता कर भागे बह रहे हैं। बहूत-बहूत के चोकर हैं। बध्मत्वात् पर बाधित को ठे जाते हुए बाध्यालो द्वारा राजमार्ग पर बमारोह के हृदयविचारक दृश्य वहाँ लम्बा भाँसू महा रही है यथार्थवाद के सच्चे प्रतीक है। नर्वे लक्ष का अश्रियौव वासा दृश्य एव दुर्दिन की वर्षा में वस्तुतः का पाठ्य के पर के लिए प्रस्थान भी बधार्थवाद का बन्ना चित्रण है। वास्तवमोचिज्ञान की दृष्टि से रोह्येन का मिट्टी की बाटी से खोजने को मना कर खोने की यात्री से खोजने के लिए मरुज्जा भी स्वाभाविक विषय है। डा० माट के अनुसार यह वास्तविक जीवन से काटा गया एक छोटा टुकड़ा (A slice cut from real life) प्राप्त होता है। इसके विपरीत डा० कीच का विचार है मूष्ककटिक किसी भी धर्म में जीवन की नकल (in no sense a transcript form life) नहीं है। अपनी अपनी बमह डा० माट और डा० कीच की बातें ठीक हैं। मुख्य चरित्रों में निष्ठा, उदारता तथा स्वयं के साहस के वादर्थ स्वल्प को यदि निकालें तो वे तो इसमें जीवन की नकल प्रथम प्रतीत होती हैं और यदि इसे बना रहने दें तो यह वास्तविक जीवन से दूर बन जायेगा। यह प्रकार सामाजिक एव कलात्मक चुनौतियों का एकमात्र परिणामक है जो यथार्थ की ओर से जाता हुआ मार्ग को प्रस्तुत कर रहा है।

इसकी दूसरी विशेषता हास्य परिहास की योजना है। यह शब्द सम्बन्धी, चरित्र सम्बन्धी और परिस्थिति सम्बन्धी है। उल्लेख हास्य श्लेष और विद्वानता के रूप में प्रकट होता है। ऐसा और परतपरतों को सोटकर खोजने के निर्देश को मैत्रेय यह समझता है कि सचे अपने पैर चलाने को कहा जा रहा है। पौराणिक पात्रों की अकार प्राय विपरीत रूप से उद्धृत करना हास्य के प्रतीक तो हैं ही साथ में उसकी मूर्खताओं को प्रकाशित करते हैं।

चरित्र सबकी हास्य मैत्रेय और अकार में विशाल है। इन दोनों के चरित्र की विशेषतायें हास्य उत्पन्न करती हैं। मैत्रेय निवृत्त परंपरा का परिणामक है इसी कारण उसके चरित्रिक गुण हास्य उत्पन्न करते हैं। स्वादिष्ट जीवन की लोभ्यता के कारण वह अपने कमे हँसी का पात्र बनाता है। साम्राज्य के समय बलि खाने के लिए पर से बाहर न जाना भी उसकी शोका को प्रदर्शित करता है। इसे भी बसकर हँसी जाती है। अकार के चरित्र में भी ऐसी विशेषतायें हैं जो कि हास्य उत्पन्न करती हैं। वह भी बाहर और मूर्ख

है। जब वह यथास्थान अपना परिचय देते वहाँ के पति या माता-पिता के साथ के रूप में बैठा हुआ घर से फूट जाता है तब हमारी हँसी देखने से भी नहीं रुकती। परिस्थितियों का हास्य की योजना बहुत ही है। पाँचवें अंक में एक प्रहसनपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गयी है जहाँ वैधव्य और वधुसेवा के चेट के बीच मनोरञ्जक दृश्य उपस्थित हो जाता है जिसमें वैधव्य परिहास का पात्र बनता है। सकार और वधुसेवा के बीच होने वाले प्रेम के दृश्य भी प्रहसन पूर्ण (Farical) बन जाते हैं। इसमें सकार प्रेम का प्रदर्शन भी करता है और वधुसेवा के प्रति हिंस्रता का प्रदर्शन भी करता है। दूसरे अंक का बुझारियों का दृश्य भी हास्य चोटक है। घृतात्म्य भाग्य एक अन्य बुझारियों के साथ सहायक का पोछा करता है क्योंकि वह जुए में हाथ हुआ सुबक उन्हें नहीं लौटा सका है। सहायक उनसे बचने के लिए अंक हास्य सेव्यता करता है और वे चेट्यमें अत्यन्त विचित्र पूर्ण हैं।

मूककटिक रसमय पर अभिनय के सिद्धे नहीं एक शक्ति है इस सब में भी आनन्द आवश्यक है। चटना विन्यास के सब में सामान्य रूप से ही पद्धतियाँ प्रचलित हैं। पहली पद्धति कालक्रमत्मक (Chronological) दूसरी कलात्मक (Artistic) है। कालक्रमत्मक पद्धति में चटनार्थ एक के पश्चात् दूसरे क्रम से आनन्द आती है। कलात्मक पद्धति में कथा प्रवाह के मध्य कथा अंत के किसी बिंदु से आनन्द आरम्भ करता है और विचित्र चटनाओं को अत्यन्त प्रभावपूर्ण रूप से विचित्र-मिश्र रीतियों में चित्रित करता है। विद्यालय के मुद्राचरण में कलात्मक पद्धति का सुन्दर विनियोग है पर मूककटिक के कालक्रमत्मक पद्धति का अनुसरण है। इसका अर्थ है कि कालक्रमानुसार चटन वाली चटना की आनन्दकारी रूपों बाद में हुई है। इस सीधे चटति के कारण चटिचार्ड का सामना भी करना पड़ता है। कारण यह है कि कथानक को कुछ चटनार्थों का सामना चटती है और कुछ पूर्णतर क्रम से विचित्र स्थलों में चटती है जिससे दृश्यों का आनन्दपूर्ण परिवर्तन हो जाता है। अभिनय के सब में इन बातों का ध्यान उपस्थित हुई है।

आधुनिक रसमय पर इसकी उपाधि के लिये एक अंक को विचित्र-मिश्र दृश्यों में बाँट देना वैधव्य पर उत्कृष्ट नाट्य में अत्यन्त दुर्लभ विभाजन की चटति प्रचलित नहीं थी। अतः यही होता था कि या तो दृश्यों का अनुवाद देते ही की कल्पना पर छोड़ दिया था या फिर रसमय की कथित रीति से (Componential Diversion) बाँट दिया था। जिससे विचित्र विवेक एक अंक के भीतर

बाते वे दृश्य बहिर्गीय जिसे वा सर्वो बो परस्पर निव बाते हैं बचना एक ही समय में बटित होते हैं ।^१

मूत्रकटिक में काव्य प्रतिभा की व्यंजना

सम्बन्ध नाटकों की रचना दृश्य काव्य के अन्तर्गत की जाती है । अतएव रचने के योग्य प्रदर्शन के साथ समझे ऐसा विषय किया जाता रहा है जो कान्तामरु साहित्य से झोल-झोल हो । यह निश्चय है कि उत्कृष्ट नाटकों में प्रदर्शन योग्य रूप की अनेक शान्तिपूर्ण सौन्दर्य बहिर्गीय रचनाएँ होती हैं । मूत्रकटिक इस रूप में ही बनी है । इनमें प्रदर्शनयोग्य रूपों की बहिर्गीय रचनाएँ विषयके अस्वरूप इसकी रचनेयोग्य प्रकृति की ही प्रतीति नहीं होती हैं और भी इनमें काव्यरस सौन्दर्य पराति रूप में हैं । जितने जूने सुन्दर पदों के प्रयोग से पूर्व कथानुसंग को बहिर्गीय करने की कला में मूत्रकटिककार बड़े निपुण हैं । विद्वान् बहिर्गीय रूप में बने वाली वस्तुओं के सम्पूर्ण जीव का बड़ी सुन्दरता से चित्रण किया है । 'बसतसेना बिना कमल की लक्ष्मी है । कामदेव का कल्पित अस्व है । कुम्भपुत्रों का शोक है । मदनकी खेड वृद्ध का स्योरम पूर है बीर सुख के समय सज्जा की दिव्य सृष्टि है ।'^२

'बनना लक्ष्मी कहकर वसतसेना के उत्कृष्ट सौन्दर्य की, बनर का मन्थित प्रहरण कहकर सौन्दर्य की आकाशकलाकी, कुम्भपुत्रों का शोक कहकर लक्ष्मी के विरहित पुरुषों को बनने बाध में पँसाने की बन्दूक बनना की, मदन वृद्ध का कुम्भ कहकर सौन्दर्य की सुकुमारता की तथा रति स्नय लक्ष्मी प्रयत्न की कहकर बहिर्गीय वस्तुओं की मोहक माधुरी की बहिर्गीय व्यंजना की गई है ।^३ दोनों के रस-रस से मयावक रसि की प्रतिक्रिया बहिर्गीय वस्तुओं के स्नेहपूर्ण व्यक्तित्व में रूपा होती है । इसका रूप सर्वथा निताउ मोहक रस में परिणत किया गया है—'हे सुख ! यदि मेरा काल (बाकाय) परस्पर छेदे, पूर पयोधरों (भारत तथा स्तन) वाली मृग जिन्के साथ समय हर रहा है तो इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन ? इस प्रकार ही दाहन्त वैकर राउ बने पर्वतों से मुझे बनने बहिर्गीय के जिसे बना करती हुई मैरा मार्ग रोखती है वहीं वह मैरी कोसमने मन्त्रों हो ।'^४ विरहप्रद पयोधरता का भाव है ऐसी पयोधर

१. Dr. Ehsa: Preface to Mricchakatika. p. 142-51.

२. बनना—अनुवत्ता । मू० क० ५-११ ।

३. मुने—सपत्नी । मू० क० ५-१५ ।

अर्थात् स्नान बचवा बाह्य तो इतने पुष्ट एवं विकसित हैं कि उनके बीच में केवलात्म भाव अन्तर बचवा साठी बचह नहीं है। ब्रह्मसूत्रको बँडरामे विविध बाह्यों से अपने पुष्ट बजोबर्षों को याद ही जाती है। उसे लगता है कि जैसे रात अपने जमड़ते हुए शीतल में आकाशरूपी विद्युत् से रजककर रही है और उनके अधिष्ठाता से बिजुत्त माया रोक रही है। बिजुत्तों से इस पक्ष की व्याख्या में यह अर्थ बताया है कि अग्नि रात्रि तथा ब्रह्मसूत्रको परस्पर अलगनी बना रहा है और यह दिखा रहा है कि यदि रात्रि अपने कान्त के साथ एक कर रही है तो ब्रह्मसूत्रको उसके लिये दुःख नहीं होगा चाहिये क्योंकि उसका अर्थात् रात्रि स्त्री विद्युत्मा का भी तो बही अधिष्ठाता है। दुःख को एतद्विषयक दिव्यगी रोचक है।^१

वास्तव में विद्या सपत्नी है नहीं कीप उनका अलगनी जैसा है। राजनी का विद्युत्मा आकाश ही है जिसके विद्युत् शक्ति में यह अपने शीतलरूपी पुष्ट शक्तों के साथ लिपटी हुई है।

अपनी की आकाशों के बिले एव विद्युत्तों परमस्व के रूप का ब्रह्मसूत्रको ने सुन्दर वर्णन किया है। सजस समाज पत्रों के तुल्य इन शक्तियों से सूर्य एकदम फिर बना है जैसे आकाश ने उड़े पी लिया हो। अर्थात् की आकाशों के बिचकर अर्थात् ऐसे पीरित हो रहे हैं जैसे वानों की बीजक से हाथी पीरित हो जाता है। बहूतों की अट्टास्त्रियों में सपरज करने वाली विद्युत्तों ऐसी लोभा है रही है अर्थात् अर्थात् निमित्त दीपक अलगनी रहा हो। अर्थात् द्वारा अलगनी अट्टास्त्रियों आकर अलगनी उसी प्रकार हर भा गरी है जैसे बुद्धि पनि की पत्नी दूसरों के द्वारा अलगनी अलगनी कर भी जाती है।^२

एक एक बिच देखने शीतल है। सूर्य की आकाश भी पदा है। अस्त हाते हुए सूर्य की आकाश द्वारा अलगनी अलगनी पदा है। अर्थात् की आकाशों तथा वानों में साम्य दिव्यमा भी आकाशिक है। अर्थात् की आकाश अर्थात् अलगनी होने के अर्थ अलगनी का बुद्धि द्वारा से पीरित अलगनी दिव्यकर अर्थात् अलगनी के अलगनी में अलगनीकरण का सुन्दर अलगनी किया है। अलगनी अलगनी अलगनी

१. 'It is not a happy idea to make the night Charudatta's beloved and Visant's rival. There is nothing to support such a supposition except the quibbling on'.

M.R. Kale (Ed.) Mūcchakatika, Notes p 102

२. एतद्विषयः ... अर्थात्, पृ० ५०५।

कही जा रही है। बिजली का कुछ छिपकर चमत्कार तथा काननसौप्तिका का व्यमयमाना शोभो रूप सादृश्य रूप में सुन्दर है। इसी प्रकार ज्योत्स्ना की चमिता बताना और उसे मेघों द्वारा बलपूर्वक धनहत विद्यावा बुर्जस पति की पत्नी के हरबे के समान है। यह छाती कल्पना स्वयं एक अनोरम है। ज्योत्स्ना का पति चंद्रमा मेघों के सामने कितना दुर्बल है।

बादलों में बिजली चमकने तथा उनमें पानी की वाराओं के पृथ्वी पर बिरसे का रूप भी कितना मनोरम है।

बिजली के चमकीले भागों से बिजली कमर कसो हुई है ऐसे पानी की वारायें बरसाने वाले बारल परस्पर क्षपटने वाले हाथियों के समान मेघराज रूप की बाधा के मानो रजत की रज्जुओं से पृथ्वी को ऊपर उठा रहे हैं।^१

कवि की कल्पना भी कैसी विचित्र है। काले लमड़े के बाल के मत्तवाले हाथी हैं। बिजली की चमकती लकीरे ऐसी खोमित हैं जैसे चमकीली रस्सियों से बादलों की कमर कसो हुई हो। हाथियों की कोख में छोटे की बच्चीरें लपकी हैं। इनसे बिजली की चमकती हुई लकीरों का आभास होता है। बल की पिछो स्वच्छ वारायें रजत की रस्सियां हैं और स्वामी ठीकी से वारायें भूमि पर पिर रही हैं कि उनका रूप टूटता नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह चमकीली रस्सियां नीचे आकर पुनः पृथ्वी को ऊपर लीच रही हैं। वे वारायें आकाश से कद अलग होती हैं और पृथ्वी को कद छूती हैं। बरसात वर्षा को प्रतिभास नहीं होता। वापछार वर्षा का सच में यह सुन्दर वर्णन है।

सादृश्यविशेषित रूप में वर्षा वाले आकाश का अछना, हैसना, बुट करना इ यदि अनेक कार्यों का चित्रण है।^२

साध्य बिजली से बल रहा है, सैन्डो बगुनों की पत्तियों से हँस रहा है, रजतबुध से बलघाराओं के साथ छोड़कर बुट कर रहा है, बदगताहट की चमिता से चमक कर रहा है, पवन के द्वारा कूट होकर भूमि रहा है और संपतबुध बादलों से काले बुधे की राशिवाँ छोड़ रहा है।

इस वर्णन की विशेषता यह है कि इसमें वर्षा से पूर्ण साध्य चम कल्पनाओं सहित सुबलित चित्रण है। बिजली, बगुने, इन्द्रधनुष, वारिमारु, बलबोध, वायु का बुधित बवाह एक काले बारल सभी का पवार्य वर्णन यही प्रस्तुत किया गया है।

१. एते हि समुद्ररति, मू० क० १।२१।

२. 'विद्युद्भिः बन्धम्', मू० क० १-२७।

मूच्छकटिक में काव्यप्रतिभा की व्यवना बड़ी सफ़ल है। इसमें यदि एक ओर बर्षा का बुद्धि बौद्ध काव्यात्मक सुन्दर वर्णन है तो दूसरी ओर बसन्तसेना के प्रकोष्ठों का बदात्मक समीचीन विवेचन है। निम्न ही सूत्रक का भाषा पर पूर्ण अधिकार है।

मूच्छकटिक में प्रकृति विभाग

मूच्छकटिक में कुछ स्थानों पर विशेषता: पंचम अंश में बाह्य प्रकृति का भी विवरण किया गया है। कुछ समीक्षकों का विचार है अष्टम अंक में पुष्प-करणक उद्यान का सुन्दर विवरण सम्भव था पर उसकी उपेक्षा की गयी है। ऐसा प्रतीत होता है कि घटनाओं के प्राधान्य के कारण इतर ध्यान नहीं दिया गया। ठीक भी है किस्तुतः प्रकृति वर्णन से घटनाओं की स्वामाधिक बलि में बाधा ही नहीं पड़ती बल्कि कथा वस्तु का स्वरूप भी पौष्ट प्रतीत होने लगता है। अतः कभी कभी प्रकृतिवर्णन की उपेक्षा मान्यून कर की गयी ही जात होती है। पंचम अंक में बर्षा का वर्णन नाटकीय विचार से अधिक बह गया है। काव्य की दृष्टि से तो हमको अत्यन्त मनोरम कथा का लक्ष्य है।

उद्दीपन विभाष के रूप में मूच्छकटिककार ने प्रकृति वर्णन को अपनाया है। एक ओर स्थानों पर प्रकृति का सुन्दर विवरण बहुत मान्यंक है। अष्टम अंक में बभ्रुवन का वर्णन अतिरिक्त है।

उद्योग के कपोल के समान मोरवर्ध बन्धुमा राजमार्ग का वीरक बनकर अपनी किरकों से दूध को घाराओं के समान प्रतीत होता है।^१

पनाम्भकार में मैघों से बिछी हुई रत्नमयी स्वेतवक्रवारा का वर्णन भी बड़ा स्वामाधिक है जो विद्युत् की चपक से अक्षर को दिखायी देती है और फिर दृष्टि से बोधन हो जाती है।

विपलते हुए चांदी के द्रव बीसी विमली कपी बीरक की ली में कभी कभी दिखायी देने वाला बर्षा का घारा-प्रवाह जाफ़ारा कपी वस्त्र से दूध कर गिरते हुए छोर बिला प्रतीत होता है।^२

मैत्राकारित कावाच ने विपल में भी वस्त्रधारों का जाफ़ देसने योग्य है।

पञ्चम अंक, विधि द्वारा विधित, कावाच वायु द्वारा छिन्न मैघों से, बभ्रुवन के ओहों के, उद्योग हुए हँसों के, समुद्र मयल के वेद से उँके हुए मरुत्तमुद्योग

१. उद्योगि . . पठन्ति । मू० अ० (१-५०) ।

२. एता . . पठन्ति । मू० अ० (५-४) ।

के, मारों के एव समस्त बद्धात्मिकाओं के समान सुसोमित हो रहा है ।^१

पहल बंधकार का भी प्रस्तुत किया हुआ चित्र वात्सल्य मनोरम है ।

अधकार बंधों में स्थाप्य हो रहा है । वात्सल्य क्लेशक बरता रहा है । दुष्टों की सेवा की भाँति मेरी दृष्टि भी व्यर्थ हो रही है ।^२

इस भाँति के स्वाभाविक प्रकृति चित्रण से यह निर्दिष्ट हो जाता है कि मूञ्जकटिक प्रकृति चित्रण के लिए स्वर्णों में आदर्श रूप है । इसके रचयिता प्रकृति के ज्वालक थे । अधिकांश स्वतः ऐसे ही मिलेंगे वहाँ मूञ्जकटिक का प्रकृति-चित्रण बद्धकारों में इतना दम पया है कि सतही स्वाभाविकता ही समाप्त हो करी है । पाँचवें बंध में इस सम्मेलन में अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं ।

बद्ध के आरम्भ में ही सागरकण्ठ बद्धकार के द्वारा मेघ का कैवल्य से साम्यमाय दिखाया गया है ।

जलपूर्व महिष के पेट के समान एव घनर के समान कुण्डलर्ष का मेघ विद्युत् क्षणित से निर्मित पीठावर पहले हुए सत्व ही बकपतिस्त्री संस्य चारुष क्रिये हुए बामवरूपी दूसरे विष्णु के संवृथ यह आकाश में स्थाप्य होने को प्रवृत्त हो गया है ।^३

मेघ से आच्छादित आकाश को कहीं दूरगच्छ के मुख के समान बताया गया है ।

दूरगच्छ का मुख भी बाँधे न होतै से अधकारपूर्व वा । इपर आकाश में भी सूर्य चन्द्रम्य के बाँधों में छिप जाने से बँधेय है ।^४ ऐसे स्थानों पर प्रकृति वर्णन की अपेक्षा बद्धकारों का होना काव्यत्व की दृष्टि से प्रधान बन गया है । वहाँ प्रकृतिचित्रण बद्धीजन के रूप में है वहाँ मानव हृदय के बाध उसका मनोरम सामकस्त है । बसठसेना के हृदय को मेघों ने विदीर्ष कर दिया है । एक ही वह दूरिन में अभिघरण कर रही है दूसरे बबुका सन्द करवा हुत्रा बाध पर बमक सा छिदक रहा है ।

अर्थात् विभक्तिओं के हृदय में एक ओर गच्छते हुए बादल कीर बमकनी हुई विवक्षिया की ही बेरवा उत्पन्न कर रही है, उस पर भी दब के समय

१. संसर्जद्विह बामुना । मूञ्जकटिक (५-५)
२. क्षिप्तयेव गता । मूञ्जकटिक (१-३४)
३. मेघो प्रवृत्तः । मूञ्जकटिक (५-२)
४. पठव् गता । मूञ्जकटिक (५-९) ।

बजने वाले नगाड़े के समान यह पूर्ण बुद्धि बगुला बर्षा की रट से बाल पर नमक छिड़क रहा है ।^१

बसंतसेना फिर अरुण को बमकी बेनी है कि तुम्हें लगना नहीं जाती जो प्रियतम के घर जाती हुई मुझे हाथों से स्पर्श करते हो ।

अर्थात् है बरकवर प्रियतम के घर जाती हुई मुझे तुम वर्जन से डराकर निर्लज्जता से अपने शारा कपी हाथों से छू रहे हो^२ ।

वर्तिस्त्र्याकपो इन्द्र की बहू इती भक्ति प्रसाहण्य बेती है ।

अर्थात् बिच प्रकार शीतल की स्त्री वर्तिस्त्र्या वर है इन्द्र । अपने मित्रता भावक किया था कि मैं शीतल हूँ उसी प्रकार वास्तव के लिए कामातुर मैरे बुल को समझकर इस बाधक बीच की भी रोक दीजिये ।^३

बसंतसेना अपने विचार में कितनी दूब है यह उसके निम्न बचन से ज्ञात होता है । उसने इन्द्र को शीतावनी देने हुए कहा है—

हे इन्द्र ! चाहे विजयी भी कितनी बरके, वर्षा भी मूसलाधार हो किन्तु तुम कामिनीको प्रियतम के प्रति बाटे हुए नही रोक सकते ।^४

कही नहीं तो प्रकृति वर्जन स्त्रीय एव स्वनक से पुष्ट होकर लज्जक उठ्य है । बामु के तुल्य वैभवान् अतिरिक्त अनकारा से बाधकपी बृंहि करत बाबा बुल के लक्षकों रीमा ध्व्य करता हुआ एव अस्मत्क पताकर करी विद्युत के मुक्त मेव मैम्य रत्रित धपु के बबर के मध्य विजयी राजा के समान बाधाय में अन्धपा को फिरमों को डक लेता है ।^५

प्रकृति वर्जन के सम्बन्ध में यह कहना सर्वथा असम्भव होगा कि प्रकृति की ओर से मृच्छकटिक प्रमेता तबाहीन थे । एक कारण इस सम्बन्ध में अलकार हो सकते हैं क्योंकि यहाँ-यहाँ प्रकृति वर्जन है यहाँ अलकारों की मर्यादा दिखाई देती है पर देता यह गया है कि अस्तुत में कवियों ने प्रकृतिवर्जन यहाँ-यहाँ भी किया है यहाँ-यहाँ या ती स्थित वर्जन है या फिर अन्य अलकारों का बाधक किया है । महावि कवि बामोकि ने भी अपनी रामायण में प्रकृति वर्जन करते

१ एतरेव प्रणिपत् । मृ० क० (५-१८) ।

२ अरुणर परावसनि । मृ० क० (५-२८) ।

३ यद् अरुण । मृच्छकटिक (५-३०) ।

४. पर्व प्रति । मृच्छकटिक (५-३१) ।

५. बचनवपलवेन ' यथा । मृच्छकटिक (५-१७) ।

वसय ब्रह्मकारों का मायम किया है। उपमा, रूपक बादि उनके प्रकृति वर्णन में पड़ी उड़ी मिलते हुए दिखाई देते हैं।

सूक्ष्मकटिककार का प्रकृति वर्णन वास्तव में मनोरम प्रतीत होता है। हाँ, इतना बयस्य है कि हममें केवल बर्षाभास का ही वर्णन है।

सूक्ष्मकटिक में भावचित्रण एवं वर्णन वैशिष्ट्य

भावभिन्नण

नावा की लम्बाता ने सूक्ष्मकटिक के काल्य सौन्दर्य में बमूहपूर्वक वृद्धि की है। इतना मुख्य कारण यह है कि सूक्ष्मकटिक के निर्माता ने इसमें मानवीय भावों का स्वाभाविक विषय किया है। आभरत बीना व्यत्यस्त उदार व्यक्ति बनने वैभव और सम्पत्ति के आगे मैत्रीभाव को अधिक महत्त्व देता है। यह वह वह बेचना है कि दिनों का समाप्त भी इनके व्यत्यय विविध ही आता है तो वह व्याकुल हो उठता है।^१

प्रथमक शीर्ष काय क सम्बन्ध में सोचता है कि हम कर्म की भी स्वों म बज्जा कहा जाये जिसमें वासना का समाह है और बन्धनवादी जैसे महारथों ने भी हम कार्य का मार्ग प्रशस्ति किया है।^२

शोर के सन्देहग्रस्त मनोवृत्त भाव का भी वर्णन कवि ने सुन्दर किया है।^३

नारी के हृदयचित्रण में तो सूक्ष्मकटिक का उपेक्षा व्यत्ययिक सफल हुआ है। दुर्दिन में क्षमिस्वरु करनेवाली बसन्तसेवा को निरा सपानी के सदृश प्रिय-

१. अल्प न ये चिसवदाप्रकृत्यास्ति विन्ता
मायममेषा हि धनानि मबन्धि पालित ।
एतत्तु मां वृद्धि मङ्गलायवस्य
ससौहृदावपि अदाः सिद्धिहीमवसित ॥ सू० क० (१-११)

१. काय भीषमिह वरन्तु पुस्वा स्वप्ने न यद्वर्तते
दित्तस्तनु च बचनापरिमनरवीर्षं न शीर्षं क्षि तनु ।
स्वाभोगा बचनीमतापि हि वर वदो न प्रेषावनि-
मायो ह्ये नरेन्द्रश्रीमित्त्वये पूर्व कृतो शीलिनः ॥ सू० क० (१-११)

२. यः कश्चित्स्वर्तिवर्तिनिपैतौ मा
सन्नाम्न हुतमुपसर्पति स्मित वा ।
त एव तुमबन्धि इविनेष्टतरुणा
स्वर्पयिमवर्ति हि सकिशो मनुष्य ॥ सू० क० (४-२)

मिस्र में बाबक लभती है। अतः वह उसे उपाकर्म देती हुई है।^१

बर्कों का घस्य उसे और भी पिदासेनाका लगता है।^२

बैँसे तो पुत्रय स्वभावतः कठोर होता है। वह नारी के हृदय की बेरुग्ण क्या समझ सकता है पर आश्चर्य तो यह है कि बहलसेना के प्रति विदुष्य भी नमस्देना नहीं रखती। उपाकर्म के रूप में उसी को वर्तसेना म्यक्त करती है।^३

इसी मति अनेक स्वर्णों पर मानवभावनाओं का सुन्दर और स्वामाधिक चित्रण मुष्ककटिक में किया गया है। ऐसा लगता है कि बैँसे इनके निर्माता ने अपनी अनुभूति द्वारा मानव हृदय में भुसकर अनेक सूक्ष्म धारों को व्यक्त किया है।

वर्णन वैशिष्ट्य

मुष्ककटिक में मल्लव जीवन की दशाओं का भी मार्मिक चित्रण है। बहिष्ठा यदि अपनी चरम सीमा पर है तो बहलसेना के मुखे सद्यः वैभव का भी वर्णन है। ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन और उसके धर्मों का वर्णन भी यत्र में सुतुह्य उत्पन्न करता है—दूतकर्म का विषय वर्णन भी सूक्ष्म निरीक्षण का परिचायक है। सबाहक के घर्षों में आश्चर्य यदि प्रियदर्शन है तो आश्चर्य के विचारों के अनुसार घसकी दृष्टि रमणीय है। बहलसेना उसके रूप तीर्थ पर मोहित हो जाती है। न्यायाधीश ने भी आश्चर्य के तीर्थ वर्णन में कहा है।^४

आश्चर्य ही उँची आलोक एवं विद्याक कीनों बाँके वेन बहिष्ठा मुक्त को धारण करता है। निष्पत्ति ही यह बहारन दोषारोपण का पात्र नहीं है।

१. मुडे निरन्तरपयोधरया बयैव

शान्त लहामिरयसे यदि कि लवान ।

यां पत्रितेयं मुह्यनिवारयन्ती

मयं शक्ति कुपितेव निष्ठा सपत्नी ॥ (५-१५)

२. प्राबुट प्राबुविति लवीति सठवी लार लतेत्रयिपन् ॥ सू० क० (५-१८)

३. यदि वर्जति वारिषरो वर्नतु तप्राम निधुरा पुरुषा ।

धवि विद्युत्प्रमहालां ल्यवनि च दुःखं न बल्लासि त (५-३२)

४. वीथोप्रस मुक्तमपविषिद्यल्लनेत्रम् ।

मैतद्वि धावनमकारणदुवचानाम् ॥ सू० क० (५-१६)

बिट वे बसतसेना की कल्पित गति का भी समार्थ विवचन करते हुए कहा है
 छाक रेखमी बरनों के अचल को हवा में खड़ाती हुई एव एकजमकों की
 कछियों को बरती पर बिखेरती हुई तीव्र गति से कहीं जा रही हो ।'

शक्तिमक के स्वयं कवच में उदाह निम्न में दिव्यीय व्यक्त का स्वामयिक
 विष भी मनोरम है ।^१

प्रगाढ निद्रा के कारण श्वास और बोलो की स्थिति सामान्य है इस शरीर
 के अणु भी चम्पा से नीचे नटक रहे हैं । यदि निद्रा उन्मूर्ण रह्ये होती तो
 शोचक का प्रकास उसके किन्ने सहा नहीं होता ।

मूञ्जकटिक में कला समोचन

मूञ्जकटिक एक ऐसा रूपक है जो बस बको में उदाहृत हुआ है । जन्म
 संस्कृत गणकों की अपेक्षा इन्द्रा कपावक बड़ा अवश्य है पर वादि से अन्त
 तक यह कुर्विपूर्व है । बसतसेना के प्रासाद कलो का और दुर्दिन का वर्णन
 भले ही विस्तृत हो पर है सन्ध कोटि कर ।

प्रकरण का पूर्व नाम समार्थवही बातावरण को बगल में सहायक है । जिस
 संवाहक ने अन्त के रूप में बसतसेना की विहार में सेवा-शुभ्र्या की थी परका
 और विषु रूप यही से आरम्भ होता है फिर अविशिष्टै प्रकरण मन्त्रिका का
 अविचक से हीम का आचार बना और चाकुरत का सत्यनिष्ठ चरित्र प्रकाश
 से माना ।

१. कि यासि बालकबसीव विक्रममाणा,

रजागुक परमसौख्य बहन्ती ।

रत्नोत्पलप्रकर कुठमन्मृतसुबन्ती,

टर्कमन चिन्तगुहेव दिव्यार्थभाषा ॥ मु० क० (१-२०)

आधुनिक काल की प्राति मूञ्जकटिक अर्थ में भी बस दुर्बतिया वर्णसाम्य
 का अर्थ रखती थी । यह कारण है कि बसतसेना अन्त रेखमी पत्नी
 के साथ अन्तकवक पुत्र ही पारण किये हुये हैं । यह इस बात का प्रतीक
 है कि प्राचीन काल से ही रंगी का सादृश्य शृङ्गार की रेखभूषा के किन्ने
 सुन्दर एवं आकर्षक भाषा बाता रहा है ।

२ नि आसौअस न शक्तिवः सुदिशस्तुम्बाम्तर बठते,

दृष्टिर्दनिमीलिता न विक्रमा नाम्पत्तरे पचत्वा ।

गानतस्तुचरीरसचिचिचिस शम्पाप्रमाणाविके,

वीर चापि न मयैरनिमुहंस्यात्कम्ब सुप्त मधि ॥ मु० क० (३-१८)

अभिन्न की वृद्धि है करक को बलिष्ठ करने के लिये एक मदा रूप भी दिया जा सकता है। इनके द्वारा चारदत्त के प्राप्ति को बाँटे-जाने दबते हुए दिखाया सम्भव है। आन्वेषण की बरोहट, जसकी बोरी तथा पुन. प्राप्ति एवं चारदत्त बठठठेया के मिश्रण को मिश्रकर आचार्य से म्लोचक रूप में भी इसरूप प्राप्त करना सम्भव है। इस रूप में विस्तृत वर्णन और बनाकरक विस्तार को रोका जा सकता है। ऐसी रचना रणमय के विचार से तो सर्वथा उपयुक्त होगी किन्तु मुद्राकटिकवार को बन्धोद न होया। उन्होंने तो इठे विभिन्न रवियों के पार्श्वों से बनेक प्राकृत आचार्यों से काव्योचित वर्णों से बककृत किया है। यदि इन सब बातों का ध्यान रखते हुये इतनी दो कथानकों से विनाशित किया जाय तो सबसे केवल एक ही दौम होया वह वह कि इसको दो बँटकों में प्रस्तुत किया जा सकेगा। इस रूप में प्रथम बक है पचम बक ठक इन कथानक और इठे बँक से दसवें बक ठक दूसरा कथानक प्रस्तुत करना समीचीन होया। प्रथम रूप में पचिसा वर्णसेना का मिश्रण आधत्त है कुछ मिश्रण परिस्थितियों में दिखाया जा कर समाप्ति करवा सम्भव है। दूसरे रूप में पुष्पकरक उद्यान की पत्नी करते हुये राजनीतिक विद्रोह के साथ बठठठेना का मुद्राकटिक रूप दिखाया जा सकेगा।

रूपक के समस्त बनेपर को देखते हुए यह कह सकते हैं कि इसके विभिन्न बक बकवा इत्य एक विविध योजना में परस्पर मूँये हुए हैं। यदि इसे दो कथानकों में बाँटा जाय तो पहला भाग बके हो निरपेक्ष रूप है रणमय पर प्रस्तुत किया जा सकता है पर दूसरा भाग पहले भाग से स्वतंत्र रूप में उपस्थित नहीं किया जा सकता। रचना से बलम्न होने वाला प्रभाव पुष्प रूप में नहीं बरम्न समस्त रूप में विभिन्न रूपों के समोय रूप से सामने आता है। यदि मादक के विस्तार को कुछ बँट छाँट करके कर किया जाय तो उद्यकी मीळिका को बलम्न आचार्य पहुँचेगा।

मय तो यह है कि पश्चिमी भाटकों के समकक्ष चारदत्त सत्कृत भाटकों को सुकनायक वृष्टि से रचना एक बसकण प्रयत्न है। राष्ट्रीय भाटकों की एक विशेष अपनी दौको है जिससे उन्हें पश्चिमी भाटकों के आचरण एवं आचार्य की सुकना में रचना समन नहीं है। पश्चिमी भाटक बुनामी भाटक कना की विविध बलिष्ठियों (Tactical Utilities) के आधार पर निर्भर है। इसे मुद्राकटिक की बमौटी पर सर्वथा नहीं कहा जा सकता। चारदत्त मादक केवल कथानक को बलम्न देते हैं जबकि भारतीय महकृत भाटकों में सामान्य

सौन्दर्य और शिष्यवृत्ति का भी नाबिम्ब सम्मिश्रित रहता है। इतने न केवल रंगमंच की अपेक्षित समस्त हो होतो है वरन् साहित्य प्रतिभा के प्रदर्शन का ध्यान रखने को मरपूर होता है। फिर इस रचना में अनेक विषयों तथा प्रयोजनों की पूर्ति का प्रयास किया गया है। प्रस्तावना में इसकी सामक्य स्वरूप है।^१ मूषककटिककार का संयोजन कौशल निरूपण ही प्रधानकारी है।

वस्तुविन्यास कला भी मूषककटिक की गिरामी है। इसमें अनेक विषयों के स्थापन पर परीक्षा प्रणाली की ब्यपनाया गया है।^२ इसी कारण से इसमें पुनः स्थापना के समझने के लिए बाहर से भीतर की ओर जाना पड़ता है। वस्तु-विन्यास की इसी परीक्षा पद्धति को मूषककटिककार ने स्वीकार किया है।

एक ओर इसके पात्र चाहरत और बसन्तसेना की प्रथमकथा के योग्य ही दो पुत्री और बसन्तसेना से प्रतीत होते हैं। इन पात्रों में साथ सम्मिश्रित नायिका के सम्बन्धों को हम जब भीतर की ओर समेटते हैं तब ही उनके मित्रों और सहचरों के अस्तुट विषयों को सम्मिश्रित विषय के अन्तर्ग सम्मिश्रित करते हैं तब चाहरत और बसन्तसेना के मित्रों सम्बन्ध की पुनः एक एक पद्धति की हमें जानकारी हो जाती है। वहीं नायक और नायिका दोनों के चरित्रों में अनेक अच्छे गुणों का चित्रण हुआ है और उन्हें पारस्परिक आकर्षण का निस्संशय आचार मानाया गया है। यथायथाये होते हुए भी इसकी आभास-पुनः मानना आदर्शवादी है।

106385

मूषककटिक की धृती मनोरम है। इसके अंक में हीन गुणवती चरित्र पर परस्पर हास्यते हुए दिखायी देते हैं। पर धीमे ही धीमे से एक पक्षधरता के आभास में प्रवेश करता है और हमें ज्ञात है कि वह सवाहक है और चाहरत का स्वामिपक्ष सेवक है। उसके द्वारा चाहरत का धाम सुनते ही बसन्तसेना मन्त्र-मुग्ध सी हो जाती है। चाहरत विषयक सम्भाषण से उसे सन्तोष प्राप्त होता है। एक ओर चाहरत की दृष्टिसे से सवाहक असहाम या वृत्तकीर्ण में प्रवृत्त होकर चरित्रघट्ट हो जाता है। फिर धीमे ही धीमे ही बसन्तसेना को स्नेहपूर्ण बदारता से बौद्ध समय वृत्ति स्वीकार कर लेता है। अन्त में यही जब बसन्तसेना को अन्धनिरोधित देखता है तो अपनी सेवा सुभूषा से न केवल उसके प्राणों की रक्षा करता है वरन् उसकी कृपा के विन्यास आरोप के अविशेष में अन्त चाहरत को भी अंतो के अन्त पर स्वरूप से बनाता है।

१. मूषककटिक ११५-७

वसन्तमेता के बहकारों का प्रथम भी मुख्यकपालक के बायींहाथपट्ट में विसिष्ट्यपूर्ण है। ये आमुपव कर्मो बन्दिन प्रकारण का संवेत नहीं होते बल्कि वस्तुनिन्वास कुछ इस प्रकार से सम्पन्न हुआ है कि घटनाएँ मन्दिन प्रकारण की ओर न होकर विमुख होती दिखाई देती हैं। तृतीय अंक के सन्धिच्छेद के प्रकारण में सन्धिच्छेद की अविनाय नहीं तब कमाने को उभयता में ही दिखाई नहीं है। अन्त में सस्की प्रेयसी मन्दिनका का इत्नेक है। यह सब देखकर सहसा समझ में नहीं आता कि सन्धिच्छेद का नमानक है क्या सम्पन्न माने नहीया। आमुपवों को जोरी कमावस्तु को जाने बढ़ाने को अपेक्षा वावित ही करती है। समीच से ही यह आमुपव वसन्तमेता के दर में पहुँच जाते हैं। इसी भाँति बड़े पुमाव के साथ नमानक की कल्प्यपुष्टि देखने को मिलती है। समा घटनाएँ यममाने इस से परस्पर उभय कर सुकृती जाती हैं। ये आमुपव आगि वातक के मनोरजन के लिए उसके दौड़ने की पाठी में रख दिखे जाते हैं। समीच से नरें जब में अविनायियों के समझ संवेत की जोख से नीचे गिरकर वे सबसे अधिक कर देते हैं। इन्हीं बहकारों की बने में बाँध कर आकृति बन्ध स्वस पर पहुँचता है। इन भाँति बहकार नमानक के विकास के साथ संबंध प्रतीत होते हैं।

मुख्य नमानक के साथ उपकमानक भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वस्तु बहकार का सबसे सुदृढ़ एव मुख्य पाव राजनीतिक बह्यव है। समी पात्र उग्रजन आर्थिक के साथ सहानुभूति रखते हैं। इन्हें बुझस पाठक से घुसा करते हैं। अविनाय का साहस भी विठना अरम्य है कि यह एक ओर यदि घर को दीवारों की तोड़ने में कुछ है तो कुछ ही ओर बन्धीकुह की भी दीवारों को तोड़ने में और आर्थिक को मुक्त कराने में सर्वथा सपक रहा है। सम्पन्नित राजनीतिक बिरोध के संवेत जो नमानक के नुबौट में ही मिलने आरम्भ हो जाते हैं। पर छठे अंक से इनका रूप निश्चित दिखाई देता है। आर्थिक की बर्षा साथ बह में है। अविनाय की दृष्टि से स्वस पर प्राधान्य आकृति का ही रहता है। बड़ी बन्धीकुह से जाने हुए आर्थिक के साथ मीत्रोपूर्ण व्यवहार करता है और उसे मुरला का आन्वयन देते हुए सपक कामना करता है। आर्थिक को स्वस अपने व्यवहार से आघात प्रकट करता है। वरषा राज्यपरिवर्तन की दृष्टि से आर्थिक बह महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु उसके बार्ब नमान्य आकृति के वेवक महत्त्वही रहे हैं। प्रकट रूप में तो वयलक के नमी साथ आकृति और वसन्तमेता की प्रेयसका को पूर्ण रूप देने सपक हुए है। यह बढ़ना अनुचिन न होगा कि आर्थिक की विषय का योग

बाबरत का वरद हस्त का । धार्मिक ने सत्कार्य होकर बाबरत की न केवल सम्प-
मुक्त किया वरन् उसे कुसावनी का राज्य सौंपकर ईश्वर एवं सम्माल प्रदान
किया । हमारी सारी ममता बाबरत के प्रति है क्योंकि उसके बिना धार्मिक का
दर्शन राज्य के रूप में नहीं मिला मिलता । फिर न ही बसन्तसेना की प्रायस्था
में और न बाबरत को अस्त्री के लक्ष्य से हटाने में राजनीतिक शक्ति किसी
प्रकार से सहायक सिद्ध होती । वर में बसन्तसेना संवाहक के द्वारा रचित हुई
जिसे वह स्वतः उपभूत कर चुकी थी । बाबरत की बर्षासमय बसन्तसेना के
पहुँच जाने के लक्ष्यस्वरूप सम्पत्ताम से लौटने में सफल होता है । वर राज्य-
शक्ति का मुख्य प्रणय कथा की पूर्ति में कोई विशेष योगदान नहीं है जैसे दोनों
कथामें वरस्वर सम्मिश्रित रूप में समाप्त हुई है और प्रधान कथातक में पर्येस
उप-कथातक सुन्दर ढंग से मिलीन हुआ है । डा० कीप जैसे विद्वानों का यह
कथन कि दोनों कथाओं के कारण माटक में मान्यता का हाथ हुआ है उचित
नहीं है ।

"These merits and the wealth of incidents of the drama
more than compensate for the over luxuriance of the
double intrigue and the lack of unity, which is unques-
tionable."¹

संयोजन कथा के विचार से वस्तु विन्यास वर एक बाबरतुत सिद्धांत यही
प्राप्त मीठा भी है । बाबरत में सकार एवं लड़के सेवको द्वारा अंधेरे में नगर की
गलियों में घुसनी हुई बसन्तसेना समीप से बाबरत के घर जाकर उसमें प्रवेश
करके बच जाती है । बुबारियों वाले दुख में संवाहक समीप से बसन्तसेना के
घर में पहुँच जाता है और सजिक के माध्यम से मुक्त हो जाता है । प्रसन्न
विपर्ययवाला समस्त एक नियति के लक्ष्य पर निर्भर है । धार्मिक का बाबरत की
माटी पर बर जाना और बसन्तसेना का लक्ष्य की माटी पर बर जाना एवं
कुछ माय का बच ही कहा जा सकता है । इसके बढकर और कहा कहा जाय
कि विद्वानों की कथा में दक्षिण बाबरत के अविशेष के सुनने के समय
संवाहक में भी वरती पर बिसरक पड़ते हैं । अन्त में यह ज्ञात है कि
विपर्यय बाबरत सुनी पर लक्ष्यमाय अन्त में भी सहाय्युक्ति उसके साथ
है पर कोई माया नहीं है भी उसके बचने की नहीं दिखाई देती । म्यामापीत भी
बिसर होकर उसे न बचा सके । सकार की भी माया न थी कि बसन्तसेना
जीवित होती । वर बाबरत का लक्ष्य पर लक्ष्यमाय मिश्रित ही था और वह

1. A. B. Keith : The Sanskrit Drama p 136.

आश्रमों द्वारा इस निमित्त वही पहुँचा जो हिमा क्या या वर यह नियति नदी का श्रेक है कि सहसा सबाहक श्रेय प्रियु के साथ बसन्तसेना वास्तव के समय उपविषय ही जाती है और शकार की सारी योजनाओं पर पानी फिर जाता है। 'सत्य विभयते नानृतम्' वाक्य यही पुनर्तया चरितार्थ होता है और ईश्वर के प्रति विश्वास की बृद्धता में जनता की मास्वा बलवती होती है। फिर ईश्वर के अस्तित्व में सर्व-वितर्क की अपेक्षा नहीं होती। एक ओर आश्रमों के हाथ से सभार का अचानक फिर जाना और दूसरी ओर सामने सबाहक समय के साथ बसन्तसेना का सदा दिखाई देना क्या मास्य पर विश्वास का प्रतीक नहीं है ?

सब समय वास्तव ने कहा है—मिसे तुम्हारे ही कारण मृत्यु मुझ में जाती हुई यह मेरी बेह तुम्हारे ही द्वारा रक्षित हुई है। महो प्रिय समाज का कैसा प्रभाव है मरकर भी कौन बीता है ?^१

विवाह के समय जिस प्रकार प्रियतमा की प्राप्ति के लक्ष्य पर वर की सजावट होती है उसी प्रकार का यह साठ बरस और मास्य है। वर के समय की नवयों की ध्वनियों विवाह के समय की बाघों के ध्वनियों के समान मोहक बन प्यी है।^२

दूर पश्चिम की इन सत्य कहने की विषय हो जाता है कि मुझ से आबद्ध मोक्ष के समान सुखोला प्रियतमा बसन्तसेना ने विपत्ति रूप अपार म्हात्मानर के वास्तव को पार कर दिया। बरएव राहु क ग्रहण से मुक्त अग्निहोत्रात्मक बन्ध के समान प्रिया मुक्त वास्तव की बहुत दिनों के बाद देख रहा है।^३

कलाकार का प्रयास यह दिखाने में स्तुर्य है कि इसमें अथक परिश्रम को दिक्कत नहीं दिखाया और साथ ही विपरीत बाधरनों द्वारा ईश्वर के प्रति विश्वास में कमी नहीं जाने दो। कबानक की सक्रमता के नाते उसने बीच बीच में सामाजिकों की अनुमानित विचार धारा को बदल कर मास्य के सहारे अपनी लक्ष्य पूर्ति में सक्रमता प्राप्त की है।

मूञ्छकटिक में प्रमुक्त छन्द वैशिष्ट्य

मूञ्छकटिक में उत्कृष्ट और प्राकृत दोनों का प्रयोग है। प्राकृत यहाँ अनेक रूपों में देखी जाती है। स्त्रीक लक्षण और प्राकृत दोनों में ही पर्याप्त रूप में है। उन्हीं की विविधता दोनों प्रकार के पदों में देखने की मिष्टी है।

१. स्वस्वमेतद्... पुनर्मिषेत । मूञ्छकटिक १०-४३ ।

२. रक्तरेव' समाना । मूञ्छकटिक १०-४४ ।

३. दिष्ट्या... मुक्तम् । मूञ्छकटिक १०-४९ ।

एक छन्दों के बेलने से जात होय है कि छन्द तथा सरल छन्द ही कवि को विशेष प्रिय है। स्वभावतः प्रिय छन्द ब्लोक अनुष्टुप् है। यह छन्द लिपि लीको के लिये उपयुक्त है और कबोपकवन की प्रगति को जाने पहचाने के लिये अनुकूल पठता है। इसका प्रयोग ८१ बार हुआ है। दूसरा प्रिय छन्द मनोहर बसंत त्रिछन्दा है। यह ३९ बार प्रयुक्त हुआ है। शार्ङ्गसिद्धिद्वय का प्रयोग ३२ बार किया गया है। अन्य महत्वपूर्ण छन्दों में इन्द्रवज्रा का प्रयोग २९ बार, वंशस्प का ९ बार और बोलों के मिश्रितरूप उपवाचि का प्रयोग ५ बार बेलने को मिलता है। पुष्पिदाघा, प्रह्वसिनी, मृत्सिनी, विद्युत्माछा, वैश्वदेवी, सिद्धरिपो, अम्बर और हरिणी तथा एक विषमवृत्त का प्रयोग भी हुआ है। आर्षा के इन्कीस उदाहरण हैं। इन्हें एक नीति भी समर्पित है जिसके प्रथमार्थ तथा पठन में तीस मात्राएँ हैं। दो उदाहरण औपचारिक के हैं प्राकृत छन्दों में पर्याप्त विविधता पायी जाती है। आर्या शंखी के ५३ तथा बभ्रु प्रकार के ४४ पद्य प्रयुक्त हुए हैं।^१ विविध छन्दों के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि मूच्छकटिककार का छन्द रचना पर स्वाभाविक अधिकार था।

मूच्छकटिक के अध्ययन की आवश्यकता एवं उपयोगिता

संस्कृत के नाटक ग्रन्थः महाभारत एव रामायण पर भाषित है। अतः हमें अधिकार में आसंबाध की शक्य है। किन्तु ये आदर्श प्रेम है तो किसी में वादर्थ त्याग है। दोनों के सामञ्जस्य से मूच्छकटिककार ने अपनी ऐसी कृति प्रस्तुत की जिसमें आसंबाध के सहारे एक नवीन आसंबाध अपनाया गया। यही कारण है कि इसमें सभी के हृदय में स्थान ग्रहण किया। यदि यह कदा काये तो अनुचित न होया कि संस्कृत के सभी नाटकों के पढ़ने के पश्चात् जिस आत्म की उत्पत्ति एव ज्ञान प्राप्ति पड़ी होती मूच्छकटिक को पढ़कर वही सुख हो जाती है। इसमें प्रणय के साथ उत्साहीन सामाजिक और राजनीतिक तथा का पास्तविक चित्रण है।

वर्ष्य कला की दृष्टि से सरल छन्दों का प्रयोग, सुन्दर प्रकृतिवर्णन, स्वाभाविक का पदार्थ चित्रण, धार्मिक स्थिति एवं कार्मिकभाव के आधार पर पात्रों का समुचित चरित्र चित्रण आदि सभी कुछ हममें सुन्दर है।

नाट्यकला की दृष्टि से देखा जाय तो यह सर्वश्रेष्ठ है। प्रायः सभी संस्कृत नाट्यप्रेमियों ने जलम धेनी के जलसमुदाय को अपने नाटकों का पात्र बनाया है पर यदुक्त ने प्रथम बार मध्यम धेनी के लोको को अपने नाटक का पात्र बना

है। उसके पास प्रतिदिन हमारी माँति सड़कों पर और बहियों में अपने ठिठके बाँधे हैं। इसे सकोई प्रकार की इसी छिए कइत जाता है कि इसमें लुभने, जुबारी, चोर, बिट घोर बेस्वार्थों की बर्ना है। आस्थान तथा बातावरण को स्वार्थ बाँधता और स्वामाबिकता के कारण ही इसकी वातवायु आत्मोचकों के भूरि-भूरि अगसा की है।

इसके अपयोगिता इसलिये भी और बढ़ी कि यह न केवल सङ्कट भाटकों में बरन् विश्व नाटक साहित्य में अपने रूप की अनुपम कृति है। बरस्वर के प्रेमभाव को मियाकर विखरे हुये समाज को एक मून में बूँदने के ठिठके को आदर्श स्वार्थभाव के आधार पर सूत्रक ने प्रस्तुत किया है वह सध में समापनीय है।

मूञ्जकटिक पर कुछ व्यासोप एवं उनका निराकरण

मूञ्जकटिक को गहराई से देखने पर कोई आसोप उचित नहीं प्रतीत होता। पञ्चम अंक में बर्पावर्जन से यह कहना कि कथावस्तु को एकता मन हुई है और नाटकीय व्यापार में विविक्तता आई है सर्वथा भ्रम है। प्रकृति बर्षव तो सामयिक होने से स्वाभाविक है फिर कबि हूबव होने से सूत्रक बर्पा काल की मनोहरता से रीत उठता है।^१ इसके साथ ही वसंतसेना का आस्त के प्रति प्रेम और चरीस हुआ है।

(क) डाक्टर राइटर^२ के अनुसार मूञ्जकटिक एक लम्बा प्रकरण है पर उसके कथानक पर बिचार किया जाने तो यह अनुचित प्रतीत नहीं होता कि आनन्द का पैग ता निरन्तर बना हो रहा है।

(ख) डा० राईटर का फिर यह कहना कि इसमें दो स्त्रियों की सामग्री है इसलिये ठीक नहीं लगता कि उनके अनुसार कथावस्तु के विभाजन से मूञ्जकटिक का सर्वैय मह हो जाता है।

(ग) डा० राईटर तस्यानक, मंत्रेय और महनिष्ठा को विश्व के नायक मानते हैं और आस्त, वसंतसेना इत्यादि को भारतीय (हिन्दू) समझते हैं पर ऐसा कहते हैं यह यह ध्यान नहीं रखते कि तस्यानक मंत्रेय तथा महनिष्ठा भी तो भारतीय परिच हैं। सम्भवत यह यह समझते हैं कि इनके कार्यकाल भारतीय और भारतीय पात्रों से भेद खाते हैं पर पम्बीर दुष्ट इसका समर्थन नहीं करती।

आज भी मासुर जैसे समिक तथा उसके सहयोगी न केवल कठकता और बर्षव की बहियों में दिखाई देते हैं बरन् कन्दन ने ईस्ट बरष में भी वे

१. इतरेय उपान्याय : सङ्कट साहित्य का इतिहास (गुप्तक)

२. डा० बी० वे० बट्ट : प्रीफेस टु मूञ्जकटिक (८-गुप्तक)

भूमि हुये देखे जा सकते हैं। वहीं पुबारियो का घड़ा (गिम्बलिंग डेन) बाल की बुल्लि की तरह बसाकर दिन बहाड़े बसा करता है।

मूच्छकटिक की यह भी एक विशेषता है कि इनमें संस्कृत के अन्य नाटकों की बनेजा खनिक पात्रों का समावेश है। कथावस्तु को देखते हुए इनका शैक्षिक चार्ज है।

‘यूक्त में अपने प्रकरण में सत्ताईस पात्रों का सन्निवेश किया है जो एक ऐसी कथा है जिसमें समाज के कर्मग प्रत्येक स्तर तथा प्रत्येक समुदाय के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं पर विशेषता यह है कि मूच्छकटिक के समस्त पात्र अपनी वर्गीय विशेषतायें रखते हुए ऐसे रूप में विवृत हुए हैं जिससे उनकी वैयक्तिक विशेषता भी जलक जाती है।’^१

मूच्छकटिक की प्रमुख विशेषतायें

संस्कृत रूपों में मूच्छकटिक का कथन एक आश्चर्य विस्तृत स्वप्न है। इसकी महत्ता इसी से स्पष्ट है कि अनेक प्रसिद्ध भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने इस पर उत्तम टीकायें और विस्तृत भूमिकायें लिखकर इसे पौरव प्रदान किया। आज इस पर कई अंग्रेजी अनुवाद भी उपलब्ध हैं। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से इसकी विशेषतायें हैं। फिर संस्कृत साहित्य का कोई इतिहास ग्रन्थ ऐसा नहीं है जिसमें इस पर प्रकाश न डाला गया हो। समय-समय पर पद-व्यतिरिक्तों के लक्ष्य में भी इसकी विविध विशेषतायें सामने आती रहती हैं।

यह सब कुछ होते-हुये भी प्रस्तुत शोध ग्रन्थ का एकमात्र उद्देश्य मूच्छकटिक का विस्तृत विश्लेषण है जिसके अन्तर्गत उत्तम आश्चर्य, सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यांकन किया गया है।

इसके विभागात्मक अंशक सूत्रक के सम्बन्ध में भी यहाँ पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत प्रकरण में यथार्थ कथन का विश्लेषण यहाँ तक बखूब हुआ है इसकी भी इसमें एक छलक है।

शासकृत शास्त्र से मूच्छकटिक का साम्य, कथावस्तु की मौखिकता एवं इसके नाम की साक्षरता भी इसमें स्पष्ट की गई है। नाटकोप अस्थितियों का औचित्य भी सिद्धात्मा गया है।

प्रधान नायक एवं नायिका के विश्लेषण के साथ विशेषी शब्दक की कुशेष्टाओं पर यहाँ प्रकाश डाला गया है। मूच्छकटिकशास्त्र की नाट्य प्रतिभा

१. डा० रत्नाकर तिवारी : बृहत्कवि सूत्रक (वसिष्ठ टिप्पणियों के अन्तर्गत)।

एव काम्य प्रतिभा की व्यवस्था के साथ प्रवृत्ति विनय, भावविनय एवं लक्ष्मणोत्त स्वापरय कला का भी इसमें सुन्दर विवेचन है।

नाट्यशास्त्र के प्रथम में शास्त्रीय विधेयताओं के कुछ मूककृतिक में जब प्रवृत्तियों, कार्यव्यवस्थाओं और सन्धियों समीचीन रूप से दिखाई गई हैं। पूर्ववत् नान्दोपाठ, मूककार, प्रस्तावना, विष्कम्भक आदि का भी इसमें सम्यक् विवेचन है। छन्द, रस, बलकार और वृत्तियों का वैशिष्ट्य दिवाते हुये इसमें व्यक्ति एवं कलात्मिक की भी चर्चा है।

भाषा के विचार से इस प्रकार के पात्र तीन प्रकार के हैं बल्लभ भाषा-भाषी, प्राकृतभाषी एवं मीमांसी। इनका यो इसमें विवेचन है।

संस्कृतिक शास्त्रीय धार्मिक स्थिति का परिवर्तित रूप भी इसमें बौद्धों का सम्मुख दिखाते हुए चित्रित किया गया है। इस युग में प्राचीन संस्कृत का स्वरूप बदलने लगा था। पुराण आदियों के परिवर्तन स्वल्प तबीत भावनाएँ उद्भूत होती आ रही थीं। बर्तमानस्था के अनुसार अपने बापों की सीमाएँ टूट चुकी थीं। शास्त्रों में व्यापार करने लगे थे। धार्मिक वृत्तियों प्रचलन होता आ रहा था। इसकी यथास्थान यही विस्तृत चर्चा है। समाज के मत्स्यान में सब मौखिक परिवर्तन हो रहा था। जाति बन्ध टिगिल हो चुके थे। विवाह के लकीन आदर्श एवं केस्यारों की स्थिति में लकीनता का समावेश एक नई आश्रित के लोचक है। दूध, बोरी एवं मद्यपान का आश्रय समाज को बलनति की ओर चित्त आति के आ रहा था इन सब पर भी इसमें बर्तमान प्रकाश डाला गया है।

संस्कृतिक कालीन ऐतनीतिक परिस्थितियों की भाषे विन बदलने से दार्शनिक भी। स्वेच्छाचारिता चरमनीमा बर थी। अश्रित की योश्रयों बलती और विगदती थीं। पञ्चाधिकारी एक प्रकारलक वर्तमानपरलक एवं विभिन्न मूर्तों के। म्याप्यपीसों को म्याप में स्वेच्छमरुता नहीं थी। यह सब भी इसमें स्पष्ट किया गया है।

इन सबके साथ-साथ प्रकारक की कुछ काम्य विवेचनार्थ हैं। वैज्ञानिक और साहित्यिक निता बौतों का ही इस समय प्रकार था। बसुविद्या, बलननिर्माण-विधि, सपीठ विद्या, बालुबला, विचकला और केबलकला आदि सभी का उक्त युग के जन समुदाय की लकीनीन ज्ञान था। इन सब का इस लोच में सम्यक् विवेचन है। एक ही यह है कि लक्ष्मणोत्त हिन्दू राज्य और विविध समाजिक का यह नाटक एक बलनित लक्ष्यक है।

सोमान विश्लेषण

मूच्छकटिक सब में तत्कालीन समाज का एक वास्तविक छायाचित्र है। भास ने यद्यपि बाह्यतः किञ्चित् इस दिशा में भास का प्रदर्शन तो किया पर न जाने किन महात्त कारणों से उन्होंने उसकी कथावस्तु को बधुता ही छोड़ दिया। मूच्छक का प्रथम इस सम्बन्ध में स्तुत्य है जिसने अतिरिक्त कथानक के रूप में वास्तविकता को प्रस्तुत करने का बहम्य साहस दिखाया। जो रूप केवल प्रथम कथा अंक करने वाले सावन भास समझेवाले थे मूच्छकटिककार ने उनको एक बड़ा मोड़ दिया। अपने प्रकरण में उन्होंने कुछ ऐसी सामान्य भावना दिखाई वही यह प्रथमकथा अतिरिक्त रूप से राजाओं एवं समूह पुरुषों को चर्चा का विषय न बनकर ठाका के व्यवसायारथ का अंग बनो।

प्रस्तुत प्रकरण के नायक, बायिका, प्रतिनायक एवं सभी पात्र अपने-अपने स्थान पर बड़े कुशल एवं मर्यादित विशेषताओं से युक्त हैं।

मूच्छकटिक के अतिथानिक चित्र को चर्चा में उसके सरोजन के दिग्गज से यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि प्रकरण अपने बपट विलुप्त होते हुए भी दो कथाओं से सम्बन्धित होने के कारण अत्यन्त विचार से मर्यादित है। काम भी इसका सारभिमित है फिर भावा, सबाह और अन्ध भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। यह प्रकरण कुछ ऐसी परिस्थितियों में आये बजता है जिसमें सहा माय्य सम्बन्धी बन्तारों से कथानक भास के विपरीत परिवर्तित होता गया है। विचारपूर्वक देखा जाय तो आलोचनात विवरण भाग्यवीर्य पर ही निर्भर है।

रंयमनीय दिवान विह रूप में पहले से बसा या रजा या अक्षय भी अति-कम्य वही देखने को मिलता है। वास्वीर रंयमन के दिवान की उमेरा कर मूच्छकटिककार ने इस ओर एक अतिकारी परच बडमा है। विषय निस्मान की दृष्टि से यह अपने में अर्था पूर्ण है। सभी अंकों के कथानक अपने अपने स्थान पर सर्वथा ठीक है पर आलोचना परिभाषाओं से सोमा का उच्छेदन कर बधुता रूप में परिण सृष्टि करण मूच्छकटिककार को नाटकीय प्रतिभा का वैशिष्ट्य है। बडमाओं का ठारतम्य वही हवे, भासचर्य, कथा, घव, हास्य इत्यादि से समाविष्ट है वही उत्सुकता और विस्मय को भी उत्तेजित करता है।

इसका मपार्थकार भी वास्तव में सराहनीय है जो वास्तविकता से भासों से ओर से आते हुए समाज सुधार की ओर प्रवृत्त करता है। बडमा विस्थाप से अर्थात काठ कथात्मक और कथानक पत्रादि में देखने योग्य है। पहली

व्यक्ति में भट्ठायें उठीं कम से विन्यस्त होती हैं जिसमें वे एक के बाद निरंतर चरित्व होतीं गूँ। क्लामरमक पद्धति में कथाप्रवाह के मध्य कथका अंत में किसी विग्रह से नाट्यकार प्रारम्भ करता दिनाकर विच्छेदी घटनाओं को बरबत मूल्य-पूर्ण रूप से निम्न-निम्न रीतियों से चरित्वित करता गया है। फिर इसकी यह भी विशेषता रही है कि इसमें संस्कृत नाटको की भाँति कथावस्तु के साथ-साथ क्लामरमक सीदर्य भी बरबतस्वान बरित्त है। दरिद्रता का बर्नन, दरौकालोन दुदिन का विशेषण, बसतसेना विपबक बरनहुत बर्ना एवम् उठके प्रासादों का बरलेख इसके कलेबर को विरसूत कर देता है। बर्ना बर्नन में प्रकृति विपब की बपूर्ण लक्षक देसने को मिलती है। दरिद्र बर्नन, बौर्यचित्रण एव बरबतसेना के हृदयोद्वार भावारमक बृष्टि से इसके क्लमन्त पदाहरण है।

धुनं कथानक की बृष्टि से यदि कुछ उपर्युक्त बाठों को बरबतस्वक समझा जावे तो रनबध की बृष्टि से बरबत उठे लपयक बधया वा सक्ता है पर इन सबके अभाव में उसमें कृत्रिमता ही दिक्ताभी देवी स्वामाबिकता बष्ट हो जायेगी। बतः कथानक को संक्षिप्त करते समय इन सबका प्रलोमन भी छोडा नहीं जा सक्ता।

उँठों की बृष्टि से संस्कृत एवम् प्राकृत पद्यों में प्रतिष्ट उँठों को बपनाकर कवि ने अपनी विज्ञता का परिचय दिया है। विष्णुभावा उँठ का प्रयोग तो इसी में देखने को मिलता है अन्य बाभिमात्य नाटक में उपलब्ध नहीं होता।

मूञ्जकटिककार ने बहुत निष्ट से बौवन की महुराई को देखते हुए अपने उद्वारों का प्ररचन किया है। उठका बरिप्राय एक बरता फिरता रूपक प्ररक्षित करता मही वा वरन् मनोबंशानिक बृष्टि में उसमें बाबस्वक उपादानों का उभाबिच भी उने अभीष्ट था।

द्वितीय अध्याय

मूच्छकटिक का शास्त्रीय विवेचन

प्रथम-सोपान

नाट्य-शास्त्र एवं मूच्छकटिक

ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर यह निश्चित है कि नाट्य का शास्त्रीय निष्पन्न अन्तकार विरूपण से कहीं प्राचीन है। वास्तविक के समय में ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे जिन्होंने मठों की शिक्षा, दीक्षा तथा अभिन्न से सम्बन्धित विषय थे। इनके मुक्तों में शिवाकि और इच्छाएँ द्वारा रचित नटयुक्त इसके प्राचीन हैं।^१

पद्यबलि ने महाभाष्य में कल्पवृक्ष तथा वास्तविक नामक नाटकों के अभिन्न की चर्चा की है। भारत के सुप्रसिद्ध नाट्यशास्त्र में अक्षरशास्त्र से सम्बन्धित चार अक्षरशास्त्र, चतुर्गुण, एवं दश शोषों का वर्णन छोड़कर अध्याय में किया गया है। इस भाँति अक्षरशास्त्र नाट्यशास्त्र के सङ्गठक शास्त्र के रूप में पहले से नाट्यग्रन्थों में है। सर्वप्रथम मातृह को इसे स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में समित करने का ध्येय है। इन्होंने पहले से स्वीकृत अक्षरशास्त्र के विद्वान्तों का उल्लेख किया है। मेघादी शब्द नामक भाषा का तो स्पष्ट ही उल्लेख है। काम्यान्तों की टीका के अनुसार उसकी रचना से पूर्व काव्य तथा वरुचि आदि वाचार्थों के द्वारा अक्षरशास्त्रों की रचना हो चुकी थी। इसी ही दूसरी टीका अक्षरशास्त्रों के अनुसार काव्य, वक्ष्य तथा नभिसुखानी लक्ष्मी तथा काम्य के पूर्ववर्ती नि.सन्धेह प्राचीन व्याकरणिक से परम्पु इनके मठों की प्रथा से आज भी परिचय समझ नहीं हो सका। वेने इस सम्बन्ध में कौटिल्य का अर्थशास्त्र सही है अक्षरशास्त्र के प्रकरण में अर्थशास्त्र परिपूर्णता, मातृह, दीक्षा तथा स्पष्टता नामक गुणों का उल्लेख है। मातृह तथा लक्ष्मी में

१. पाराशरसिद्धमन्त्रिणा सिद्धान्तसूत्रयोः । कर्मण्य इच्छापरिनि ।

२. य एतद्देन सोमनिका त्रयैने प्रत्यक्ष सप्ताहमणित, प्रत्यक्ष न शक्ति व-व-यन्तीति ।

उपलब्ध बलकार शास्त्र सामग्री कालक्रम से मरत से खर्बाबीन जैसे ही हो, पर सिद्धान्त दृष्टि से मरत से मरतगत प्राचीन है। इस प्रकार बलकार शास्त्र का शास्त्र विक्रम मरत से मरतगत प्राचीन हुआ यह निश्चित है।

काम्योपय पहले नाटक के रूप में था। इतलिए प्रथमतः बलकार शास्त्र नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत था, पर प्रागे बलकार जैसे-जैसे साहित्य उन्नत हुआ उसमें नाटक का अन्तर्भाव होने लगा। अतः संस्कृत के अनेक शास्त्र का इतिहास सुविधा हेतु निम्न तीन अवस्थाओं में अध्ययन के लिए समझ है।

१. पूर्वावस्था जब बलकार शास्त्र नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत था।

२. दूसरी अवस्था जब बीते पर स्वतन्त्र विचार होता था।

३. तीसरी अवस्था जब नाट्यशास्त्र बलकार शास्त्र के अन्तर्गत था।

तीसरी स्थिति में साहित्य शास्त्र अपनी पूर्णता को प्राप्त हो गया और नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत मान, कालिदास, अश्वघोष आदि प्रसिद्ध नाटककारों की रचनाओं सुविख्यात होने लगी। यद्यपि इन रचनाओं का अन्तर्भाव पर बलकार प्रभाव पड़ा किन्तु भी कृतियाँ सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से प्रमुख न थी मूञ्छकटिक इस विचार से एक नई रचना है।

मरतमुनि का नाट्यशास्त्रीय विधान तथा मूञ्छकटिक

मरतमुनि नाट्यशास्त्र के प्रणेता हैं। इनका ग्रन्थ नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत इस शास्त्र का अन्तिम ग्रन्थ नहीं है परन्तु यह बलकार शास्त्र का विस्तार है जिसमें नाट्योत्पत्ति, नाट्यपद्धति, बलकार, छन्द, नृत्यरत्ना, रस, अभिनेय तथा सौन्दर्य आदि का विस्तृत सुन्दर वर्णन है। यद्यपि मरत के पहले बलकार शास्त्र की उत्पत्ति हो चुकी थी, किन्तु भी बलकार और उस के सर्वप्रथम विवेचन का योग मरत को ही दिया जाता है। श्री राजशेखर की काम्यमीमांसा के आधार पर काम्य के १८ अध्यायों में एक अध्याय नामक अध्याय तिसरे का योग मरत को है।

मरतमुनि के नाट्यशास्त्र से स्वयं ब्रह्मा नाटक की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि यह पञ्च वेद (नाट्यवेद) सम्पूर्ण ब्रह्मण्य के भागों का अनुकरण है।^१ इस सूत्र को आगे ब्रह्मा ने और भी अधिक स्पष्ट किया है।^२ शास्त्रार्थ यह है कि इस वेद से समस्त ज्ञान और ज्ञानियों को ही अर्थात् गयी है, अपितु इसका विषय

१. श्रीलोकव्यासस्य मरतस्य नाट्य भाषानुकीर्तनम् । ना० पा० (१-१००)

२. अथर्ववेदं अथर्ववेदोक्तं अथर्ववेदः अथर्ववेदम् ।

अथर्ववेदस्य अथर्ववेदोक्तं अथर्ववेदम् ॥ ना० पा० (१-१०८)

समी के हित और सुचार में है। अब तक के निर्णय से भरत को ऐतिहासिक
 व्यक्ति न मानकर एक प्राचीन कल्पनिक मुनि के रूप में समना जाता है।
 इन्हींके नाम पर नाटक के ज्योत्सना नट भी भरत मुनि के नाम से संस्कृत
 साहित्य में विख्यात हैं। भरत का नाट्यशास्त्र इनके सिद्धांतों का ही पोटक
 अनेक ऋषियों एवं अनेक सत्तारिणियों का सग्रह ग्रन्थ है। इनके द्वारा रचित मूल
 ग्रन्थ नहीं हैं।^१ विगुड एव विश्वसनीय संस्कृत स्रोतों के प्रकाशित भरत
 के नाट्यशास्त्र में ३६ अध्याय हैं और अगमय पाँच हजार श्लोक हैं जो अधिकतर
 मनुस्मृति छन्दों में लिखे हैं। कहीं-कहीं अध्याय १, ७ तथा २७ में कुछ गद्य अंश
 भी हैं। कहीं-कहीं छन्दों के छाप छोटे अध्याय में रस लिख्य के अन्तर्गत पर
 कुछ सूत्र तथा उनके गद्यान्तक व्याख्यान भी उपलब्ध होते हैं। भरत में अपनी
 कारिकाओं की पृष्टि में अनुबन्ध (विषय परम्परा से जाने वाले श्लोक) संवृत
 किये हैं जिसकी रचना भरत के भी प्राचीन है। नाट्यशास्त्र का विषय विवेचन
 तथा विस्तृत तथा व्यापक है पर साथ ही छन्दशास्त्र, मञ्जर शास्त्र, सवीत
 शास्त्र आदि सम्बन्ध शास्त्रों का भी विवरण इसमें उपलब्ध है। यह एक प्रकार
 से प्राचीन समित कलाओं का विश्वकोष है। जिसमें एतत्सम्बन्धी सभी सामग्री
 उपलब्ध है।

नाट्यशास्त्र के अन्तिम अध्याय की देखने से ज्ञान होता है कि कोहल नामक
 किसी वाचार्थ का भी इसमें उल्लेख है। भरत ने कहा भी है—

शैवं प्रस्तावतान्नेव कोहलः कथयिष्यति ।

श्री कोहल के बतिरिक्त नाट्यशास्त्र में शाण्डिल्य, भरत तथा सुविठ नामक
 नाटक के माताओं के नाम भी उल्लिखित हैं।^२ आदिभरत तथा सुभरत के
 भी नाम इस ग्रन्थ में आते हैं।

मान प्रक्रमण के अन्तर्गत प्राचीन नाट्यशास्त्र बारह हजार श्लोकों में
 लिखे जा, परन्तु वर्तमान नाट्यशास्त्र विषय की सुगमता के लिये इनका भाषा
 ही ग्रन्थ है।

भरत एव नाट्यशास्त्र के निर्माण का विषय शोचनीय है, पर कवि काठियास
 द्वारा भरत के ग्रन्थ में विष्णुधर्मन इस बात का पोषक है कि वह काठियास से
 पूर्व के थे

१. श्री अन्धेव उपाध्याय 'भारतीय साहित्य शास्त्र' (ऐतिहासिक विकास) ।

२. नाट्यशास्त्र १०।२४ ।

मुनिना मरतेन य प्रबोपो यवतीष्वन्धरसाभय प्रयुक्त ।
सद्विवाभिनय उभय सर्वा मस्ता इष्टुमना त लोकात्सः ॥

बिहमोर्बशीम, बल २, लोका १७

पर्वमान नाट्यशास्त्र में एक, कवन, पल्प्य तथा अन्य वैदिक जातियों के वर्धन से भरत नाट्यशास्त्र का रचनाकाल विश्वपूर्व द्वितीय घटक में समझ है ।

नाट्यशास्त्रान्तर्गत विषयो का मन्वासर मूञ्जकटिक प्रकरण में सुन्दर सम्यक् है अतः इती पर आचारित इसका अपना वैदिक्य भी साधोनाय है । भरत मुनि का नाट्यशास्त्र एक कल्प ग्रन्थ है तो अन्य लपकों के साथ मूञ्जकटिक ग्रन्थ ग्रन्थ है ।

नाटककला की दृष्टि से विचारणीय वस्तु रस तथा पात्र

अप्रेमी शब्द क्राम्य ही संस्कृत साहित्य में रूपक नाम से प्रसिद्ध है । नाटक रूपक का एक प्रमुख भेद है जो उसके रस प्रकारों में से एक है । यह काव्य के अन्तर्गत है । काव्य के दो प्रकार काव्य और दृश्य हैं । पहले का लक्षण बदने-भ्रिय से और दूसरे का मन्व देखने के लिये रस से है । काव्यकाव्य यदि काव्यमय कला की वस्तु है तो दृश्यकाव्य रसमय की वस्तु है । इसका उदाहरण अभिनय के द्वारा सामाजिकों का मनोरंजन और उनमें रसोद्बोध उत्पन्न करना है । यही दृश्य काव्य रूपक कहता है । इसमें बट पर उत्तम पात्र का आरोप कर दिया जाता है । रूपकों के रस भेद वस्तु, नेता तथा रस के आचार पर किये जाते हैं । किसी एक रूपक प्रकार की कथावस्तु (Plot) उसका नायक, नायक की प्रवृत्ति तथा उत्तम प्रतिपाद्य रस जैसे काव्य रूपक प्रकारों से भिन्न करता है । दृश्यरूपककार की पठति के अनुसार पहले वस्तु, नेता तथा रस का विस्तार काव्यकाव्य है । इन तीन भेदों के विषय में अविचरत यह समझा जाता है कि ये नाटक के रस ही तीव्र तत्त्व हैं जैसे भरतु ने रूपक के ९ भेद माने हैं । भरतु के मतानुसार रूपक के ९ भेद इतिवृत्त, वाचाट, दर्पण दीप्ति, विचार, दृश्य तथा नीव हैं । कुछ विद्वान् इन्हें उत्तम न मानकर भेदक करते हैं और रूपक के उत्तम उनके मत से कथा, सम्भार और रस-निर्देश हैं । इन्हीं तीनों में भरतु के रूपक के छहों भेद अन्तर्भावित हो जाते हैं ।

नाटक अथवा प्रकरण का साम्य वैषम्य एवं मूञ्जकटिक की प्रकरण माटयविधा

नाटक कथनित दृश्य काव्य दो प्रकार के होते हैं :—एक रूपक और दूसरा अरूपक । साहित्यदर्पण के अनुसार रूपक दो प्रकार के हैं और ज-

रूपक बट्टाए प्रकार के हैं। इनके के भेरे हैं—नाटक, प्रकरण, भाग, महान, विम, व्यायाम, समककार, बोधि, अरु और ईहामुन^१।

उपलक्षक के भेरे हैं—नाटिका, नोरक, गोष्ठी, सङ्क, नाट्ययुक्त, प्रत्यान, कल्याण, काम्य, प्रेक्षण, रासक, सञ्चयक, भोगरिठ, सिल्यक, विद्या-सिका, दुर्मसिका, प्रकरणी, हल्लौच और नाविका।

नाटक का पृताउ लोकविषयत होना चाहिये। इतका नायक वीरोराउ कञ्चनयुक्त होने के साथ साथ प्रत्यात वीर का रामा कपया कोई दिव्य वृत्त होना चाहिये। इसमें शृङ्गार और वीर में से कोई एक रस कपी कपया प्रयाग होना चाहिये। दूसरे रस अरुप में होते हैं। कुछ लोगों के मत में कञ्चन और सन्त रस नाटक में अगी हो सकते हैं। इसमें नाटकों की पाँचो सधियाँ और कय से कम पाँच और अधिक से अधिक रस अरु होत हैं।

प्रकरण में कवि कल्पित लैकिक बुलात होया है। इतका नायक वीर प्रत्यात सपमयुक्त कोई ब्राह्मण बभाल्य कपयन कपिक होया है। इसमें कपिका कुतीन्य रही और बेत्या में से कोई एक होयी है। कमी-कमी दोनों ही होयी हैं। इस प्रकार नाविका के बाधार पर प्रकरण तीन प्रकार के होने हैं। विम प्रकरण में दोनों प्रकार की नाविकार्ये होया है जतमें कित्त (घुई) दूठक, कविक, विट, चेट वारि भी मय पर बरत हुए रिखाये जाते हैं।

कञ्चनयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मूञ्जकटिक एक प्रकरण है, क्योंकि इसमें प्रकरण के सभी अङ्ग मिलने हैं। नाटक का इसमें कोई अङ्ग नहीं मिलता अतः इसे नाटक न कहकर प्रकरण ही कहना उचित है। बसन्तककार और अरुप्रकार न भी इसे प्रकरण ही माना है।

१. (क) नाटक सञ्चयक विम ईहामुनोर्धि वा।

वेयं समदकारक चरेण महसुवस्तथा ॥

'महर्षि कृष्ण द्वैपयान व्यास' कल्पिवृत्तम्, पृ० स० ४९०, १९६६

श्रीधर्या सन्तुत शीरीष नाविक, वाराणसी।

(ख) नाटक प्रकरण च नाटिकप्रकरणमय।

व्यायामः समककारो वाच्यः प्रहसन विम. ॥

अरु ईहामुनी वीवी चत्वार सपेवृत्तय।

त्रिवृत्तय परे स्पष्टी कैरिणी परिवर्जनात् ॥ सुन ३१२-४

वी रामचन्द्र पुनवद—नाट्यदर्पण।

प्रकरण का नायक और प्रधान होता है। मृच्छकटिक का नायक ब्राह्मण चास्वत भी और प्रधान है। इसकी कथावस्तु भी नाटक की भाँति प्रकट नहीं है बल्कि कविकल्पित है। मृच्छकटिक का कथानक शूद्रक के मस्तिष्क की सुन्दर उपमा है। इतिहास, पुराण आदि में यह प्रसिद्ध नहीं है। अतः प्रकरण के अनुसार इसकी कथावस्तु लौकिक जगत् के रूप में कविकल्पित है।^१

मृच्छकटिक की नाट्यविधा शास्त्रसम्मत है। इसमें वस्तु के विचार से कथानक और सविधानक दोनों ही सर्वथा उचित हैं। कथावस्तु में अर्थ प्रकृतियों का समन्वय, कार्यावस्थाएँ, सभियाँ और उनके अथ छास्वीय दृष्टि से यथास्थान सुस्पष्ट हैं।

सविधानक के विचार से पूर्वदण्ड, नामोपाठ, सूत्रधार इत्यादि सभी का अभाव निःसन्देह सुलभ्य है। किसी प्रकार की कही कोई विचित्रता इसकी नाट्यविधा में देखने को नहीं मिलती। सुगठित रूप से अमानुषार उनका अधिपत्य सराहनीय है।

वस्तु के दो भेद : कथानक और सविधानक

वस्तु के दो भेद कथानक और सविधानक रूप के अन्तर्गत हैं। इसे ही कथा, इतिवृत्त एवं कथावस्तु आदि नाम से पुकारते हैं। यह वस्तु दो प्रकार की है—एक आधिकारिक और दूसरी आसक्तिक। आधिकारिक कथावस्तु मुक्तवस्तु है। प्राकृतिक कथावस्तु गीत है। रूपक में नायक के कर्म की प्राप्ति से सम्बन्ध

१. अ—मनेषु प्रकरणे वृत्त लौकिक कविकल्पितम् ।

शृगापयो नामकस्तु दिप्रोऽद्यात्स्योऽनवा बलिष् ॥

सापावधर्मनामार्थपरीचोर प्रशान्तक ।

नामिका कुटजा क्वापि वैस्या क्वापि क्वचिद् इवम् ॥

तेन भेदास्त्रयस्तस्य तत्र भेदस्तुतीयक ।

किञ्चनूतकापदि विट शेटक उच्यते ॥

साहित्य दर्पण (१५१३)

आ—प्रकरणं क्वचिद्विद्य सचिबस्वाम्यतकरान् ।

मन्त्रयोनावन विद्यानादितं मय्येष्टितम् ॥

दास्येष्टिर्द्वैतं क वेदाङ्गं तन्व सप्तधा ।

कल्पेन क्वावस्तुनामेव द्विविधावत् ॥

भा०१० सूत्र ११७ (१) १९ (२) १७

होने के कारण आधिकारिक वस्तु कही जाती है। इसका प्रमुख स्वान है। प्राथमिक वस्तु आधिकारिक वस्तु को सजायिका है और उसे प्रति देने वाली है। उदाहरण के लिये मूच्छकटिक में वास्तव और वस्तुसेना की प्रणय कया आधिकारिक वस्तु है और कार्यक पाठक की कया प्राथमिक है।

पताका एव प्रकरी मेर से प्राथमिक वस्तु भी दो प्रकार की है। पताका उसे कहते हैं जहाँ कया काश्य या रूपक में बराबर चन्ती है और सानुबन्ध होती है। इस पताका कयावस्तु का नायक अणग से होता है जो आधिकारिक वस्तु के नायक का साथी होता है एव उसमे मुणों में कुछ ही गुण होता है। इसे पताका मायक कहते हैं। जो कया काश्य या रूपक में कुछकाल तक चल कर रुक जाती है वह प्रकरी है।

क्यानक के रूप में यह वस्तु पाच कार्य प्रकृतियों पाँच अवस्थामा और पाँच सम्बन्धों में विभक्त हो जाती है। इन नीति क्यानक सञ्चल बना रहता है।

सभितानक की दृष्टि से भी वस्तु का मजा महत्त्व है। दुरत काश्य रबमच की वस्तु है। उसमें रवबच की आरक्षकता के अनुसार, दुरतों का नियोजन करना होता है। बत पूर्वरेप, नाशोपाठ, सूचधार, प्रस्तावना, विष्कम्भक, प्रवैबक, पत्याकास्वानक, आकाशमापित इत्यादि से उसकी सम्मन्ध व्यवस्था करते हुए उसे सञ्चालना जाता है। मूच्छकटिक में इसका समुचित विधान है। कयावस्तु की मीमासा

मूच्छकटिक को कयावस्तु के पूर्णाई का आचार यदि रचित पाठकत मान में तो तो उतपत्तं तो निम्न ही मूच्छकटिक के प्रयेता की समुत्पूर्व कल्पना है। यह रूपक लोहप्रसिद्ध प्रेम घटना को लेकर लिखा गया है। उपकरी व्यक्ति कहीं को सहकर और सटों में लैपकर भी सत्यपथ का ही अनुसरण करते हैं। यही इस नाटक का वास्तविक आधार है। आचार विचारों की दृष्टि औरत की सफलता के लिये अत्यावश्यक है। वास्तव उदाहरण के बस पर ही विषयकर्मों को प्राप्त करता है और वस्तुसेना सन्धी प्रयत्निनी बनकर वास्तव को अपनाकर इच्छत्य हो जाती है।

प्रकरण के उत्तरार्ध में तात्कालिक सामाजिक और राजनीतिक दशा का उल्लेख करना ही वस्तुतः नाटककार का ध्येय रहा है। उसी को बताने ऐतिहासिक आचार पर इस प्रकार सोचने में डाला है कि उसकी मौलिकता सर्वसम्मत है। रूपक की सफलता न केवल कयावस्तु पर ही निर्भर है बरन् परिदृश्य, नामाधिक स्थिति, राजनीतिक घना, भाषा और काव्यशैली आदि पर बहुत कुछ आधारित है।

उत्कृष्टीय सामाजिक व्यवस्था के विषय से भी कथावस्तु को बड़ा रक्त मिला है। ब्राह्मणों के व्यापारिक कार्य को अपनाते से एक मनीषता ही प्रतीत होती है। बौद्ध धर्म का प्रचलन मयो-मौलि उक्त समय था, पर वैदिक साहित्य भी कम सम्मानित नहीं था। राजनैतिक दशा भी इस समय साधारण थी। छोटे-छोटे राजा परस्पर एक दुसरे के राज्य को हड़पने की लड़ाई में। शासकों की अपने कार्यों में पूर्ण स्वतन्त्रता न थी। राजा का आदेश सर्वमान्य था। बादरत्त के निर्बल होने पर भी उसे प्राचरगड घोषित कर दिया गया, पर राज्य परिवर्तन से वह समष्ट से मुक्त हो गया।

मूच्छकटिक की कथावस्तु की अन्व प्रकरण एवं नाटकों से तुलना करने पर यह निश्चिन हो जाता है कि यह प्रकरण सर्वथा अद्वितीय है।

(क) कथावस्तु में अर्धप्रकृतियों का समन्वय

भारतवर्ष के विभिन्न भाषाओं के अनुसार कथावस्तु में बीज, विन्दु, पठाका, प्रकरी और कार्य नाम की पाँच अर्धप्रकृतियाँ होती हैं।^१

१ बीज कथावस्तु और कल्पित रूप के मूच्छकारण को कहते हैं।

२ विन्दु कथावस्तु पटनाका से विच्छिन्न मूच्छका को पुन जोड़नेवाला कल्पित या पटना को कहते हैं।

३ पठाका मूच्छका के अन्तर्गत किसी बड़े प्राचरगड इतिवृत्त को कहते हैं।

४ प्रकरी मूच्छका के अन्तर्गत किसी छोटे प्राचरगड इतिवृत्त को कहते हैं।

५ कार्य कथा में साम्य विषय को कहते हैं।^२

१ अ—बीज विन्दु पठाका व प्रकरी कार्यमैव च।

अर्धप्रकृतयः पञ्च पञ्च श्रेष्ठा अपि ज्ञेयात् ॥

अथ हि ह्यध्वर्यायक व्यास-अग्निपुराणम्, १४ ४९१, उत्तरखण्ड

प्रथम १९९९, बीजकथा सम्बन्ध सीरीज, भाषित, वातमयी।

आ—बीज पठाका प्रकरी विन्दुः कार्य कथावधि।

कल्प्य इत्यत्र पञ्च श्रेष्ठा श्रेष्ठात्मना ॥ भा० ६० (सूत्र २५-२८)

२ स्तोत्रोद्दिष्टं कथ्यन्तो हेतुर्बीज प्रतीकत्वम्। (सूत्र २६)

हेतोरुद्दिष्टेन कथ्यन्तं विन्दुपञ्चमात्। (सूत्र ३४१२)

अविमर्श पठाकाप्येतेन च परार्थम्। (सूत्र १०)

प्रकरी श्रेष्ठविन्दुश्चोत्तमोऽप्यथोत्तमः। (सूत्र ११)

साम्ये बीज महकारी कार्यम् मा० ६० (सूत्र ३५)

मृच्छकटिक के प्रथम अंक में बसन्तसेना का पीछा करते समय सकार की "भावे । भावे ।" एवा बन्मदायी कामदेवा मदनुपमायादी श्रुति ताह दडिह्वास्तु-असाह् अमुकताम या कायेदि १ इत्यादि उक्ति इस नाटक का बीज है । द्वितीय अंक के आरम्भ में बसन्तसेना और मदनिका के तबारा में इसी बात की छिद्र बर्षा जा जाती है । ऐसा प्रतीत होता है कि नाटक की कथा आरम्भ होने से पहले ही द्वितीय दिन मदन के कामदेवायतनोद्यान में बसन्तसेना और चादरत की पहिले देखा-देखी हुई । ज्योती दिन से दोनों में एक दूसरे से प्रेम हो गया । इस प्यार में चादरत की लपेला बसन्तसेना तकिक लागुर हुई । यही कारण है कि इस कथा में स्वामी सम्राज्य की शक्ति का अधिक प्रयत्न बसन्तसेना की ओर से होता है ।

इस नाटक को कथावस्तु के बीच के अन्वय में स्पष्ट पता नहीं चलता । द्वितीय अंक के आरम्भ में मदनिका बसन्तसेना के साथ बात-चीत के सिलसिले में कहती है—'आमिर । कि मो ज्येव ? ज्येव अरबरा सरथा अवा लम्बुववग्ग्या' २ छिद्र बर्षा प्रथम अंक में सकार की इस उक्ति में इस नाटक का बीज है । वहाँ यह संकेत है कि बसन्तसेना उसे नहीं चाहती बल्कि कामदेवामन्दोद्यान के मदन से लेकर वह बरिज चादरत से प्रेम करने लगी है ।

द्वितीय अंक में कर्णभूरक के वृत्त में कर्मभूरक बसन्तसेना को चादरत से प्राप्त आगे कुसुमवाहित श्रावणक देता है । बसन्तसेना इसे पहचान कर बहुत प्रसन्न होती है । यही से पुन मूठकथा का आरम्भ होता है । अतः कर्णभूरक के वृत्त को इस कथा का विन्दु समझना चाहिये ।

तृतीय अंक में अविच्छेद को पठना पटती है । यहाँ से अविच्छेद का चरित्र आरम्भ होता है । पहले तो अविच्छेद चादरत के घर चोटे करता है परन्तु पीछे वह चादरत का सहायक बन जाता है । अविच्छेद की कथा का मदनिका शक्तिस्वी फल अत्युत्तम अंक में ही प्राप्त हो जाता है छिद्र भी यह वृत्तान्त मूठ-कथा के अन्त तक रहता है । अन्त में अविच्छेद ही इस अन्त को धोयगा करता

१. आब धाव । एवा बन्मदायी कामदेवायतनोद्यानाद् प्रभृति तस्य बरिजवास-
वसस्य अमुरस्ता म या कामयति ।

२. आतम् कि स एव ? येभावां अरबराताम्पुपग्ग्या ।

है कि राजा ने बसन्तसेना को आश्रय की बसु मान लिया है।^१ इस कारण इसकी मूर्तस्था की पताका मानना ठीक होगा।

अष्टम अंक में पारिव्राजक विष्णु की कथा बारम्बार होती है। इस विष्णु की सप्ताहक के रूप में हम द्वितीय अंक में देखते हैं। मन्वन्त यह बड़ा परिचयक है जिसे वनपुरक हाथी से बचाया है। सप्ताहक के रूप में यह कुछ दिनों तक आश्रय का मुक्त रहा। परिव्राजक होने के बाद भी यह बसन्तसेना और आश्रय का सहायक बना रहता है। यह विष्णु के वृत्तांत को मूच्छकटिक की कथा की प्रकृति मानते हैं। इसके अतिरिक्त अष्टम अंक के वृत्तांत को भी मूच्छकटिका की प्रकृति कह सकते हैं। यद्यपि यह राजा राजक का वैभव है फिर भी आश्रय का प्रयत्नक है।

आरम्भ में मूच्छकटिक को बहुत से ऐसा ज्ञात होता है कि बसन्तसेना को आश्रय की प्राप्ति ही इसका मुख्य काम है, पर विचार करने से ऐसा नहीं लगता। बसन्तसेना एक यक्षिणी है। वह स्वतन्त्र जीवन जीपन करती है। वह आश्रय से प्रेम करती है और आश्रय भी उसे चाहता है। ऐसी स्थिति में दोनों का सम्बन्ध जुगुप्सु है। वे जब जाँच निकल सकते हैं पर बसन्तसेना सुदृढ़ है। प्रथम अंक के अंत में आश्रय के साथ बाँट करती समय वह अपने मन में 'स्वतन्त्र—चतुरो मनुरो ज भय उपपन्नासो पावा मूच्छकटिक' कहती है^२। इससे प्रतीत होता है कि उसके विप्राश्रय के साथ नहीं रहना समझ है परन्तु वह इस अवसर को टाल देती है। वह अपना अस्कार बरोद्ध रखकर खली जाती है। द्वितीय अंक में आरम्भ में मन्वन्त के साथ अपने बाँटगाप से वह बात स्पष्ट है कि आश्रय के साथ उसके मिल्न से कोई बाधा नहीं है। वह यदि चाहे तो वृत्ती भेजकर आश्रय को बुलवा सकती है परन्तु वह जानबूझकर ऐसा नहीं करती। प्रथम अंक में तो वह सप्ताहक रूप से आश्रय से पर पहुँच जाती है और एक रात उसके साथ निवास भी करती है। यदि वैभव बसन्तसेना और आश्रय का मिल्न ही इस नाटक का मुख्य कार्य होता तो प्रथम अंक में जाये नाटक को बढ़ाना व्यर्थ था,

१. भायें बसन्तसेने । परितुष्टो राजा भवती वपुष्मन्तानुगुप्तसि

मू० क० अ० ४०

२. स्वतन्त्र—चतुरो मपुरवपावमुपपन्नासो 'जावा मनुवरणि । सर्वहृत् अनुवाद

मू० अ० प्र० अ० ।

पर ऐसा नहीं किया गया। आगे के थड़े थुप कथानक से मासूम होता है कि बसंतसेना और चाखरत का मिलनमात्र इस नाटक का मुख्य कर्म नहीं है। इस नाटक का अंतिम उद्देश्य तो दशम अंक में भासूम होता है। जब नहीं राजा बार्बरु ने बसंतसेना की चाखरत की बधु स्वीकार कर लिया है। यही इस नाटक का एहसास है। अथवा द्वितीय अंक में बसंतसेना चाखरत को बूती भेजकर नहीं बुझवाती। वह इस बात से डरती है कि कहीं अपनी हीन आर्थिक बला से छिन्नित होकर अपना मुँह छिपाने के लिए चाखरत निम्नी ब्रह्मात स्थान में न चला जाये। यदि कहीं ऐसा हो गया तो स्वामी समाप्त अवसर हो जायेगा। अष्ट अंक के आरम्भ में बसंतसेना अपने को चाखरत के महस के अरर बधु-शासक में बेचकर आनन्दनिर्मित आनन्द में पड़ जाती है। उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ था कि चाखरत के हृदय में धीरे धीरे बनिष्ठा की अपेक्षा ठँका स्थान है क्योंकि इस समय के नियमों के अनुसार गणिका उच्च वर्ग के पुत्र के महस के अन्तर बधुःशासक में नहीं जा सकती थी। इसी अक्षर पर चोटी के साथ बर्ताकरण के प्रसंग में जब उसे मासूम होता है कि चाखरत के घर से उसके बसे जाने पर घर के सोवो को बड़ा सताप होगा तो वह कहती है कि यहाँ से जाने से पूर्व मैं स्वयं बहुत संतुष्ट हो जाऊँगी। इसी इस बात की स्पष्ट व्यति निम्नी है कि वह चाखरत के घर को नहीं छोड़ना चाहती वरन् उसकी बधु बनकर यही रहना चाहती है। वह चाखरत की भावी पुत्रा के साथ बहिन का सम्बन्ध मानती है और अपने की चाखरत और बूवा की गुण निरिवा दाती कहती है। आगे हमी अंक में वह चाखरत के पुत्र रोहसेन की पुनरु के नाम से पुकारती है। पहले तो उसे रोहसेन बर्ताप होने के कारण अपनी माता स्वीकार करने में हिचकिचाता है पर बसंतसेना उसकी सन्धी मा बनने के लिए अटपट अपने आनुपण उतारकर उसे सोने की चाबी बनवाने के लिए बे पैठी है। वे सब बातें इसी निष्कर्ष पर पहुँचाती है कि बसंतसेना के मन में चाखरत की बधु बनने की बनिष्ठा है। यह बनिष्ठा बने रहना ही इस नाटक का प्रमुख उद्देश्य है जिसकी पूर्ण सिद्धि दशम अंक में सिद्धाची गई है।

(स) कार्यावस्थायें उनका विप्लेपय तथा विवेचन

भारतीय विद्वानों के अनुसार पञ्चावस्तु के कर्म की पात्र अवस्थायें होती हैं जिन्हें आरम्भ, प्रकल, प्राप्त्यान्ता, निपत्यान्ति और पञ्चावस्तु के नाम से पुकारा

बाण है।^१

मूञ्जकटिक के प्रथम अंक में प्रकार अपने साधियों के साथ राठ के अंदरे में बसंतसेना का पीछा करते हुए आकर राठ के घर के पास पहुँचता है। इसी समय विदूषक रत्निका के साथ बाहर जाने के लिए घर का दरवाजा खोलता है। बसंतसेना पाकर बसंतसेना अपने आचल की हवा से रत्निका के हाथ का दीपक बुझा देता है और भुपके से नीचे लुप्त जाती है। आसन्न बसंतसेना को रत्निका समझ कर उसे रोहसेन से नीचे ले जाने के लिए कहता है। वह रोहसेन को खोलने के लिए अपना प्रयास करता है। बसंतसेना प्रयास की सुगन्धि से मस्त होकर मन ही मन आसन्न के जीवन की उपहृष्टता करती है। इससे बसंतसेना की उत्सुकता प्रकट होती है। इसी समय विदूषक और रत्निका बाहर से लौट आते हैं। विदूषक आसन्न से कहता है कि जिसे तुम रत्निका समझ रहे हो वही बसंतसेना है। आसन्न बसंतसेना को पहचानकर उसके सामने और जीवन की उपहृष्टता करता है। इससे आसन्न की उत्सुकता व्यक्त होती है। इस उत्सुकता को पराकाष्ठ्य आसन्न की उक्ति 'ममत्तु तिष्ठतु प्रथम' से होती है। इस उक्ति का सामान्य अर्थ तो यह है कि प्रेम बना रहे पर इस उक्ति के बाद बसंतसेना को कुछ अपने मन में (स्वयत्तम्) कहती है उससे प्रतीत होता है कि वह इस उक्ति को आसन्न की ओर से तबोध प्रार्थना समझती है। इस प्रकार प्रथम अंक में बसंतसेना भी अस्पष्ट है। "आरो कुमुम वातिशोभावारो"^२ इत्यादि उक्ति से उसी की "पतुरो मपुरो व अर्धं अण्णावो"^३ इत्यादि उक्ति से उसी के कथन में बसंतसेना और आसन्न की अस्पष्ट प्रथम उत्सुकता प्रकट होती है। यह इस अंक को नाटक का आरंभ कहना अपसुक्त है।

प्रथम अंक में अर्धपि बसंतसेना 'तिष्ठतु प्रथम' से व्यक्त होने वाली आसन्न की समीप प्रार्थना स्वीकार नहीं करती फिर भी उसके घर जाने-जाने

१. अ—आरम्भश्च प्रबलश्च प्राप्ति मद्भावं एव च।

निष्ठा च पश्यशक्तिः कम्पनीयश्च र्वचनः ॥

महर्षिः हृष्यहृष्यायन व्यास-मन्निपुराणम्—पृ० ४९१ प्र० सहायने

१९९९ श्रीराम्या उत्सुक सीरीज आश्रित, काठमान्डू।

आ—आरम्भश्च प्रबलश्च प्राप्ति मद्भावं एव च।

हेतुर्बले प्रथमै स्तु प्रयासनाम्बु कथाम् ॥ ना० ८० (पृ० ३७-३८)

२. वही जाती कुमुमवातिः प्रयासः । म० अनुवाद

३. पतुरो मपुरश्चामपुप-वास । सं० अनुवाद

का बहाना बनाते रहने के लिये उसके घर अपने आश्रय छोड़ जाती है। चास्वत को अपने मंत्र-बान्ध में फँसने के लिये बसंतसेना का यह प्रथम प्रयास है। द्वितीय अंक में मन्दिना के साथ बसंतसेना के वार्तालाप से भी इसी बात की पुष्टि होती है। अठः प्रथम अंक में बसंतसेना की 'मौदु, एवं दाव मविस्त्र'^१ इत्यादि उक्ति से मरु के मन्त्र तक मन्त्रकारण्यस्य की बटना की दस मन्त्र की प्रकृतत्वा का आरम्भ^२ कहना चाहिये। यह मन्त्रत्वा पंचम अंक के अठ तक पढ़ी जाती है। द्वितीय अंक में कथा केसमाप्त भी जाते नहीं बढती। तृतीय अंक में चास्वत के घर से बहकार चोरी हो जाते हैं। चतुर्थ अंक में वे बसंतसेना के हाथ लय जाते हैं। इसी अंक में चास्वत के द्वारा अठकारों के बरते मेची हुई रत्नावली भी उसे प्राप्त हो जाती है। पंचम अंक में बसंतसेना अठकार और रत्नावली लेकर चास्वत के घर पहुँच जाती है। वहाँ उसकी बेटी यह कहकर अठकार तोप देती है कि मेरी स्वामिनी आपकी मेची हुई रत्नावली गुप्त में हार गई है। उसके बरते ये अठकार ग्रहण करिये। चास्वत को फँसाने के लिये बसंतसेना का यह दूसरा प्रयास कह सकते हैं। यही सब विचारते हुए प्रथम अंक की मन्त्रकारण्यस्य की बटना से लेकर पंचम अंक के अन्त तक मुख्यकथा का कार्य पल^३ की व्यवस्था के अन्तर्गत समझना चाहिये।

छठे अंक के आरम्भ से अठार्वे अंक के अठ भाग तक वहाँ चास्वत को बरते सम्यक् आन्धान के हाथ से बहम कूट जाता है और बसंतसेना अठकार कहती है—'अम्बा एषा बह मन्त्रभाङ्गिणी चारु कारुणाशोणो वादारी बदि'^४, इस कथा को प्राप्तरासा का प्रतीक है। कथा के इस अंक में अठप्रवृत्ति भाषा और निराशा की व्यवस्था में रहती है। छठे अंक के आरम्भ में बेटी के द्वारा बसंतसेना को यह बात होने पर कि चास्वत पुन्यकरन्दक उद्यान गया है और उसे जो वहाँ मेचने के लिये कह गया है उसे चास्वत के मिलने को आशा हो जाती है। उपनन्तर प्रसह्य परिवर्तन के पश्चात् जब वह अठार के पास पहुँचती है तो उसकी भाषा निराशा में परिणत हो जाती है। इस भाँति चास्वत को भी उद्यान में यह आशा रहती है कि बसंतसेना यानी में बँठकर उसके मिलने सम्भोग पर उपयोग से जब शांति में आवेक बोधाल शरक जाता है और

१. मौदु, एवं दाव् मविस्त्रामि ।

२. अठार्वीत्पुन्यमारम्भः ।

३. अठार्वी व्यापृठो त्वरा । ना० ४० (पृष्ठ ११)

४. भार्या एषाह मन्त्रभाङ्गिनी यस्याः कारुणाशोणं मयापादते । स० अनु०

चाहरस के बिने ग्यायाज्य मे प्राणरुद का आवेस हो जाता है तो रुतकी भाषा निराशा मे परिवर्तित हो जाती है । फिर जब चाण्यास के हाथ से रुदन दूर कर गिर पड़ता है और बसठसेना मिक्षु के साथ वहाँ जा जाती है तो पुन रोनों मे आसा का वचार हो जाता है । वय यही प्रात्याजा है ।^१

दसवें अंक मे चाण्यास की 'त्वरितं का पुनरेपासवतता विकुरभारेण' (सं० बनु०) इत्यादि उक्ति से अक्षर की 'बाधवर्ष' । प्रत्युग्बोवितोस्मि' (सं० बनु०) उक्ति तक कार्य की निबताधि की वया रहती है । बसठसेना के आते ही चाहरस की प्राणरुदा और नायक नायिका का मिश्रण निश्चितश्राव हो जाता है । इसके पश्चात् अघिलक के मुख से मार्मिक के हाथ चाहरस को प्यरी की उमा देने आते हुए रामा पालक के मारे जाने का वृत्तान्त जानकर नायक-नायिका के मन मे कार्यसिद्धि की भासा और बसठसेना हो जाती है । बसठसेना के जीवित जा जाने तथा रामा पालक के मारे जाने के कारण अक्षर की उक्ति-हीन होकर चाहरस की शरव मे जाता है । इस भाँति धीरे-धीरे बयो सक्तों के टप जाने से कथा के उपयुक्त अथ में मुख्य कार्य अतिशयिक नियताति^२ की वया में बट जाता है । अथर दयम अंक की समाप्ति होने होते चाहरस समय पर पहुँचकर मुता की बलि में कुदने से बचा जाता है और मार्मिक हाथ बसठसेना की चाहरस की वयु स्वीकार बिने जाने की बोपचा कर ले आते है । वय यही कथा का अन्तपम है ।^३ इस भाँति कथावस्तु के कार्य की पाँचों अवस्थाओं का सम्बन्ध निर्वाह वहाँ सुचारु रूप से हुआ है ।

(ग) सन्धिर्मा और उनके अंग

राष्ट्रीय शास्त्रों मे नाटकों के अनुसूत निदाओं का विवेचन पूर्ण वैज्ञानिक है । अग्य शास्त्रीय सामग्री के साव-साव अंकों में पाँच सन्धिर्मा का विवेचन आवश्यक है । मूच्छकटिक मे ये पाँच सन्धिर्मा बहुत ही समीचीन है ।^४

१. कल सम्भावना विचिद् प्राप्त्वाजा हेतु मावत । मा० ४० (सूत्र ४०)

२. नियतगतिरुपायाना नाच्छवान् कार्यनिर्वाह । मा० ४० (सूत्र ४१)

३. सागादिप्यार्थं सम्भूतिर्वावकस्य पञ्चावसः । मा० ४० (सूत्र ४२)

४. अ—मुख प्रतिमुख यत्रो विमर्शश्च तदैव च ।

तथा निश्चलं चेति प्रथमं पथैव सम्भव ॥

महावि कृप्य हैपायन व्यास-भक्तिपुराणम् पृ० ४९१ प्र० उ० १९६६

श्रीकाम्या सरद्वठ सीरीज आफ्मि बायपरी

इन पाँच सन्धियों के नाम हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्बहुग । मूत्रकण्टिक की कथावस्तु के ये स्तूक सम्य कहे जा सकते हैं । शीघ्र और भारम्भ को मिठा देने पर मुखसन्धि^१ होती है । बिन्दु और यत्न को मिठाये पर प्रति-मुखसन्धि^२ होती है । गर्भसन्धि पटाका और श्राप्त्माछा को मिठा कर होती है, पर इत सन्धि में पटाका का होषा अपेक्षित नहीं है । विमर्श सन्धि में प्रकटी और वियतासि होती है, पर यह नहीं कि इस सन्धि में प्रकटी का होषा वल्लिचार्थ हो । निर्बहुग सन्धि में कर्म्य और उच्छादन आवश्यक है ।

मूत्रकण्टिक में यथास्थान सन्धियों जैसी देखी जाती है उन्ही का स्वरूप निम्नलिखित रूप से यहाँ प्रस्तुत किया जाता है ।

प्रथम अंक से लेकर वसन्तसेना की 'अनुपेयवृक्षधायमुपप्याप्त' (स० अ) इत्यादि स्वयत्तम् की सन्धि तक मुखसन्धि है । दशो अंक में वसन्तसेना की भार्या 'यत्नेवमहमार्यस्य' (स० अनु०) इत्यादि प्रश्वसम् की उक्ति से लेकर पंचम अंक की समाप्ति तक प्रतिमुखसन्धि है । पष्ठ अंक के भारम्भ से लेकर दशम अंक के इस स्थान तक वहीं वाग्शाल के हाथ से सर्वत्र छूट जाता है वसन्तसेना की—'भार्या एवाह मन्दमायिनो यस्याः कारभारैव श्यापाचटे' उक्ति तक गर्भसन्धि है ।^३

दशम अंक से ही वाग्शाल की 'त्वष्टिं का पुत्रेया' इत्यादि उक्ति से लेकर शकार की 'बालचरं प्रतुष्टोविद्योऽस्मि' (स० अनु०) उक्ति तक विमर्श सन्धि है ।^४ इसी दशम अंक में नेपथ्ये कण्ठक —इत्यादि से अंक की समाप्ति तक निर्बहुग सन्धि है ।^५

नाट्य की कथावस्तु के भागों के सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों ने कोई धना नहीं की किन्तु पाश्चात्य विद्वान इसके पाँच भाग मानते हैं । उनके विचार से

जा—मुख प्रतिमुख पर्वो विचर्तनिर्बहुगत्वयो ।

हन्मवो मुखवृक्षाःप्रधावस्यानुपा क्रमाद् ॥ ना० ६० (सूत्र ४१)

१ मुख प्रधातवृक्षायो बीजोत्पत्तिरद्यात्रम ना० ६० (सूत्र ४४)

२. प्रतिमुखं क्रियन्त्वस्य बीजोत्पाद समन्वित ॥ ना० ६० (सूत्र-४५)

३. बीजस्योत्पत्त्यनुपा पर्वो कामाकाशपवेपथे ॥ ना० ६० (सूत्र ४६)

४. उद्दिग्म वाप्यविलाला विमर्शो व्यसवादिभिः । ना० ६० (सूत्र ४७)

५. सर्वत्रविच्छेदावस्था-नालाभावा बुद्धादयः ।

उच्छेद्योविनो यस्मिन् कवी निर्बहुगो ज्ञवम् ॥ ना० ६० (सूत्र ४८)

इन शब्दों के नाम आरम्भ, आरोह, वेग्न, अवरोह और परिणाम हैं। आरम्भ उस भाग को कहा जाता है जहाँ दृष्ट की उत्पत्ति होती है। आरोह कथा का वह भाग है जहाँ उच्छ्रान्त बढ़ती ही जाती है। वेग्न वह बिन्दु कहा जाता है जहाँ उच्छ्रान्त अपनी सीमा को पार करती हुई विद्यमान होती है। इसके बाद कथा का उत्तरार्ध आरम्भ हो जाता है। अवरोह कथा का वह भाग है जहाँ उच्छ्रान्त एक एक करके मुनझने लगे और कथा ऐसी के साथ परिणाम की ओर बढ़कर होती हुई विद्यमान है। अर्थात् में इनके क्रम को ही परिणाम कहते हैं। यह एक दृष्ट या अदृष्ट को कथा में सम्मिलित है। परन्तु वेदों में कथावस्तु सुखान्त या दुःखान्त दो रूपों में देखी जाती है पर भारतीय रूपों में कथावस्तु सुखान्त पायी जाती है। यही कारण है कि यहाँ सदा दृष्टप्राप्ति ही परिणाम होता है।

मूच्छकटिक के अध्ययन करने पर हमें यह पाँचों बातें समुचित रूप से ब्याख्यार देने की पिकती है।

प्रथम अंक के आरम्भ से आरम्भ को—'भवतु तिष्ठतु प्रथम' उक्ति तक कथा का आरम्भ कहा जा सकता है। अस्मत्प्रयोग की (स्ववचनम्) 'अतुरीमपुत्र्या-यमुपन्यास (स० अनु०) इत्यादि उक्ति से लेकर दशम अंक में आरम्भ की 'आरम्भ आरम्भ । स्वाभिनिमोकोऽप्यसि न सतु नव आख्याता. तत् स्वर पत् 'स्मर्त्तव्यम्' उक्ति के बाद आरम्भ को 'किं नहुता' इत्यादि उक्ति तक कथा का आरोह कहना उचित है।

दशम अंक में ही आख्याता की (अवरोहमाह्वय) 'आरम्भ—आरम्भ । अतानी मुखा सम तिष्ठ' (स० अनु०) इत्यादि उक्ति से लेकर—'प्रथम भवतु एव कुर्व' (इत्तुमी आरम्भं चूके समारोपमितुमिच्छत) आरम्भता (अवरोह—इत्यादि पुन पठति) तक कथा का वेग्न कह सकते हैं। इसी अंक में सिद्ध और अन्त-सैना की 'आर्वा मा तावत् मा तावत्' । (स० अनु०) उक्ति से लेकर अकार की 'आरम्भं प्रत्युञ्जीवितोऽस्मि' (स० अनु०) उक्ति का कथा का अवरोह विद्यमान होता है। इसके पश्चात् (निवच्ये कथनम्) से दशम अंक की समाप्ति तक कथा का परिणाम है।

सुविधान की दृष्टि से मूच्छकटिक की मीमांसा

शास्त्रीय विधान के अनुसार शृंगार मूच्छकटिक का अवरोह है। अर्थात् अरम्भ, हास्य और बीमत्स एतौ से उभय सुखर सम्भव भी यहाँ हुआ है। नाम्नी से आरम्भ कर प्रस्तावना तक सभी का इसमें विचित्रत्व उपयोप हुआ है। अर्थात् के शोभना सम्झानी विद्यमान का इसमें उचित पालन है। अरु की पटना

निर्धारित समय के अन्तर्गत एक दिन से अधिक समय में उपवास नहीं हुई है।^१ प्रवेष्टक अथवा निम्नस्तक का अर्थात् एक मोर इसमें अनास है वही इंगरी मोर भरतवाचक का समुचित विधान है।

कुछ बातों में इसमें शास्त्रीय विधान की खोज भी है। कुम्भपू तथा यजिका दोनों का संवर्धन पर एक साथ मिलकर शास्त्रनिषिद्ध है।^२ फिर जो मुना और बर्तलुकेना का मिलन दिखाया गया है। इस विषय में किञ्चिदन्ती है कि सरह संवर्धन शौककक नानक अन्य व्यक्ति का प्रथित मस है। मनएव दूरक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है। जहाँ तक प्रकरण के नाम का सम्बन्ध है वह भी नामक-नायिका^३ के नाम पर न रहकर स्वेच्छा से छोटे अंक के एक छोटे से प्रथम के आधार पर, जहाँ मिट्टी की पाखी की चर्चा है, मूञ्जकटिक नाम रसा है। रूपक के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक अंक में नासक का चरित व्यवहृत जामा चाहिए, पर मूञ्जकटिक के इस अंकों में से चार अंकों (१०, ५०, ५० एवं ५५) में चासक के चरित की चर्चा ही नहीं है।

इन सबके साथ-साथ अनासक रूप से विचार करते पर जब इस विषय पर पहुँचते हैं कि शास्त्रीय विधान का यदि मूञ्जकटिक में अतिशय है तो इसका पालन भी है। राश्विद्रोह और पालन के रूप का परोक्ष रूप से मानास करते हुए नामक-नायिका का प्रस्तुत प्रकरण में अन्तिम पुस्तक विधान दिखाया है। इस रूप में मूञ्जकटिक ने अन्त में भारतीय साहित्य यथासा की रखा करते हुए अपने पाणिपत्र का परिचय दिया है।

पूर्वरण, मान्दी, सूतवार, प्रस्तावना आदि का यथावसर मूञ्जकटिक में सुन्दर वर्णन है।

नाम्नोपाठ का वैशिष्ट्य

रूपक के अर्थात् में मन्ताचरण के रूप में दर्पणों और पाठकों की रक्षा के लिए इहदेव से ही हुई प्रार्थना मान्दी कट्टकरी है।

१. एकाहाचरिर्द्रोहोपिस्त्वमासद्वयम् ।—व्याख्या (१-१६)

२. यज्ञवादी यत्र भवेत् न तत्र वेद्याजना कार्या।

यदि वेद्ययुक्तिमुक्त न कुञ्जकटिकमो भवेत्तत्र ॥—नाटाशास्त्र (२०१५-५६)

३. नायिका नामकप्रधानात्सजा इकरणादिषु । यथा नाटोपाख्यार्थात् ।

—साहित्यवर्षक (६, १४२)

सूत्रधार बड़ेचतन मध्यम स्वरमाधितः ।

नाम्नी पद्वैद्विद्यामिरय्यामिवीन्वकृत्तम् ॥ ना० शास्त्र (५११०७)

नाटक के आरम्भ में बारह बजबा आठ पद, छन्द या वाक्यों से बलकृत नाम्नी का सूत्रधार को चाहिये कि मध्यम स्वर से बात करे ।

मृच्छकटिककार ने नाटकोचित शास्त्रीय विधियों का पालन करते हुए अपने प्रकरण को नाम्नीपाठ से आरम्भ किया है । आरम्भ में आबरा वृत्त द्वारा आशीर्वाद के रूप में छन्द को सम्पत्ति और फिर अनुष्टुप् वृत्त द्वारा आशीर्वाद के छान्द बीसकृष्ट के मते में पदों की शरीर की भुजसता का मनोरम वर्णन किया है ।

नाम्नीपाठ^१ वास्तव में प्रस्तुत नाटक के कथानक की निर्वाह ध्वनि को व्यक्त करता है । यदि यह कहा जाय तो अनुचित न होगा कि उसके द्वारा कथानक की मुख्य रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है । बात कुछ भी हो, पर आम्नेषक नाटककारों ने एकमत से यही सिखाया है कि मस्कृत का प्रत्येक नाटक अपने नाम्नीपाठ द्वारा नाटकीय वस्तु का समुचित प्रकाशन करता है ।

मृच्छकटिक में नीलकण्ठ और पीरी क्रमशः नायक और नायिका के स्वप्न को प्रतिपादित करने हैं । इनका मिलन नाम्नीपाठ के अनुष्टुप् के द्वितीय पदम द्वारा व्यक्त किया गया है । 'श्यामाम्बुदोपम' और 'विद्युत्केता' द्वारा यह सूचित होता है कि जैसे कोई आपत्ति का अज्ञातता आया हो । एक ओर वाले नाटक और उनमें विजयी की ऐजा इस बात की चोटक है कि नायक नायिका के आपत्तिग्रस्त जीवन में अज्ञातसेना विजयो की क्रिया के समान उसे आशीर्वाद करती रही । दूसरी ओर छिब के लिये नीलकण्ठ कहना, जिसमें उनके विपत्तन का अविश्राम वृत्त है इस बात का चोटक है कि जैसे उन्होंने दिव को भीतर दूसरों को अहित से बचाया और स्वयं भी दिव को मले से ब छठार कर अपना हित किया, ठीक उसी प्रकार इस नाटक के नायक का भी यही पुत्र है कि उसने औरों का अहित न होने दिया और अन्त में स्वयं का भी हित किया पर एक मर्यादित रूप में, मर्यादू वसंतसेना को इस मांति अपनाया कि औरों के सम्बन्ध भी पूर्ववत् रहें और बड़ीं किती का अवीधिरप प्रतीत न हो ।

सूत्रधार एक उसका नाटकीय अधीनस्थ

प्रत्येक मस्कृत नाटक में सूत्रधार को यही आरम्भ में जाती है । नाटक

१. Dr G. B. Devasthali : Introduction to the Study of Mricchhakatika p. 45

का आरम्भ नाम्दीपाठ से होता है और यह नाम्दीपाठ सूत्रधार^१ द्वारा किया जाता है। बृहत्कटिक में भी पश्चात्तनी नामक नाम्दीपाठ सूत्रधार करता है। किसी-किसी नाटक में यह नाम्दीपाठ के पश्चात् बना जाता है तथा वृत्त प्रथम नट शिबे स्वायम्भु^२ कहते हैं कवि और उसकी कृति का परिचय देता है। बृहत्कटिक में सूत्रधार ही स्वायम्भु का कार्य करता है। यह सूत्रधार भारतीय वृत्ति^३ का ज्ञायक होता है और कवि का परिचय देते हुए कल्पार्थ की सूचना देता है।

कट का यह नाम्द्याहार, जो अधिकांश संस्कृत भाषा में होता है, भारतीय वृत्ति कहलमता है। यह चार वृत्तियों में से एक है।^४ भारतीय वृत्ति के चार अंग

१. (घ) सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति सूत्रधारः । ठबुक्तम्—

नादयोपकरवाचीनि सूत्रमित्यत्रिषोयते ।

सूत्रं चारवतीत्यर्थे सूत्रधारो नियम्यते ॥

मु० क० पु० ३ पादद्विप्यथी, श्रीसम्भा चारावती ।

अर्थात् नाट्यवस्तु का श्लोक करने वाला सूत्रधार होता है ।

(भा) वाचुमुसाचार्यं कृत्त सूत्रधार इत्युक्तम्—

चतुष्टोयनिष्प्रासोऽनेकनात्पासमावृतः ।

नानाभाषमत्तत्सक्तो नीतिज्ञास्वार्थतत्त्ववित् ।

नाभाषतिप्रचारको रसमावर्षिचारवः ।

नादयत्रयोपनिपुणो नावाहित्यकृत्तान्वितः ॥

छन्दोविदाश्चरवत्तः शर्वसास्त्रविद्वज्जवः ।

उत्तदीतानुभवया कसाताकोवधारवः ॥

अवपात्र प्रयोक्ता च योक्तुभामुपदेशकः ।

एव पुनश्चोपेत सूत्रधारोऽभिधीम्यते ॥

२. बूर्धरय पिपासीव सूत्रधारो विवर्तते ।

प्रविशय स्वायम्भुस्तद्वत् काम्बुनाम्भुपदेत् उदः ॥—सा० ६० (१-२६)

३. वा वाचप्रवाचापुस्तप्रयोज्या स्त्रीवर्जिता सस्कृतवाचययुक्ता ।

स्वनामधेर्वैर्नर्ततः प्रवृत्तः, वा भारतीयानाम मधेतु वृत्तिः ॥

—म० वा० वा० (२२-२६)

४. भारतीय सास्वती कैटिपवाच्यती च वृत्तया ।

रससम्भाविनयनाश्चरती नाट्यमातरा ॥

—वा० सर्वेच (सूत्र १५५१) १०३

होते हैं—प्ररोचना, दीर्घ, प्रहसन और आमुल । प्ररोचना का अविप्राय नाटक-
 आदि की प्रशंसा के द्वारा सामानिकों को आह्वान करना है । मूच्छकटिक के
 पारम्भ में 'एतत्कवि किञ्च पृथको मूप.' यह प्ररोचना है । इसमें कवि की
 प्रशंसा है तथा काव्यार्थ की भी सूचना भी दे दी गयी है । रूपक में सुनभार
 अपनी पत्नी नटी के साथ बार्वाक्याप करते हुए प्रहस्य वस्तु की ओर कतिपय
 उल्लेख करता है और मीमेय के प्रवेश की सूचना भी देता है । दसस्कन्द के
 अनुसार यह प्रस्तावना तीन प्रकार की है—कबोद्घात, प्रवृत्तक और प्रयोगा-
 तिष्ठय । साहित्यवपय के अनुसार प्रस्तावना पाँच प्रकार की है—उद्घातारम्भक,
 कबोद्घात, प्रयोगातिष्ठय, प्रवृत्तक और अननसिष्ठ । यहाँ प्रयोगातिष्ठय नामक
 प्रस्तावना है । अविप्राय वस्तु की सूचना देकर अथवा नाटकीय पात्र का प्रवेश
 करके पश्चात् सूत्रधार रसमय से बच्चा जाता है और प्रस्तावना समाप्त हो
 जाती है । प्रस्तावना के पश्चात् सांख्यिक नाटकीय कार्य आरम्भ होता है ।
 इसमें दो प्रकार की घटनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं—दुःख और सूच्य । दुःख के
 सरस घटनाएँ हैं जिनका नायक से सम्बन्ध होता है और जिनका रसमय पर
 अविप्राय किया जाता है । ऐसी घटनाओं का समावेश अकों में किया जाता है ।
 प्रत्येक अंक में प्राय एक ही दिन में, एक ही प्रयोग के किये गये कार्यों का
 समावेश होता है ।

सूच्य घटनाएँ वे हैं जो नीरस होती हैं एवं वर्षपर्यन्त चलने वाली होती
 हैं तथा अकों में वर्णनीय नहीं होती । यदि कथाप्रवाह के सिद्धे आवश्यक होता
 है तो ऐसी घटनाओं की अर्थोपलक्षणों (वर्ष की सूचना देने वाले अर्थ) के द्वारा
 सूचना मात्र ही जाती है । ये वर्षोपलक्षण पाँच प्रकार के होते हैं—विष्कम्भक,
 प्रवेशक, भूमिका, अकावहार और अङ्गमुच्य । विष्कम्भक इत्यादि का विषय
 विवेचन साहित्य वर्ष के आदि अर्थों में उपलब्ध है । यहाँ भूमिका (अव्यय के
 वस्तु की सूचना) का मूच्छकटिक में यत्र तत्र पर्याप्त प्रयोग किया गया है, वर
 अन्य विभाजन की ओर ध्यान नहीं दिया गया है ।

अष्टक नाटकों की समाप्ति मयल-वाठ से होती है । मयल-वाठ नाटक
 की समाप्ति पर किया जाता है और इसे मरुत वाचय कहते हैं । मरुत वा
 अथ मरु होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय नाट्य शास्त्र के प्रथम
 आचार्य मरुत के नाम पर इस अठितन अर्थस्थि का नाम मरुत वाचय रख दिया
 गया है । इसमें आशयवाता राजा या स्वयं कवि के वस्त्राण की वाचना की
 जाती है अथवा मातृत्ववत्वा प्रब्रामाण के वस्त्राण की वाचना की जाती है ।

‘मुञ्जकटिक के अरुण बाण में व्यापक का से प्राणिमात्र के कथ्याय श्री कामना की गई है—‘अणुमात्र मोक्षदाय’। साब ही ब्राह्मणों के सशरारों होने और उपायों के धर्मातिष्ठ होकर मुनिपाठन करने की भी मयस्यप्रयत्ना है।

अभिनययोग्य रंगमंच

संस्कृत रूपकों के अभिनय के लिए बने भारतीय रंगमंच और उनके विकास पर दृष्टिपाथ की आवश्यक है। अभिनय वास्तव में नाट्यकला का सर्वप्रमुख अंग है जिसके सिधे रंगमंच की उपयुक्तता बहुत आवश्यक है। भाषा के समान यह कहना उचित है कि इसका आरम्भ कम हुआ।

नेपथ्य भी रंगमंच का आवश्यक भाग है जहाँ (परदे के पीछे) सब पात्र एकत्र होने हैं और नाटक में भाग लेने के लिए तैयार रहते हैं। प्रेक्षकों के समक्ष बिना स्थानबिधेय पर अभिनय किया जाता है बहुरंगीण कहलया है। इन दोनों के मध्य का भाग संबन्धीय कहलाता है जहाँ कि पात्र नेपथ्य से आकर विभाजित करते हैं।^१

भारतीय रंगमंच की बाह्यरूप पर विचार करने से यह रंगमंच विधेय महत्वपूर्ण बात होता है। इसकी स्थिति में पात्रों के जाने-जाने का अनुस्य दर्शकों को सरलता से ज्ञात नहीं होया था। अभिनय सम्बन्धी कुछ आवश्यक पराणों के रहने की व्यवस्था भी इसकी सहस्यता से ही बादी थी। मुद्रोचोय विद्याओं ने स्वर्ग और पाताल के दृश्य अभिनय की दृष्टि से अनुपयोभी बताया है। वे भी रंगमंच के बुद्धिके होने से अह्व में अभिनय के योग्य हो जाते हैं। यहाँ से आया हुआ पात्र बहने का अभिनय कर सकता है।

प्राचीन काळ में वर्णव्यवस्था बहुत कठोर थी। यही अरुण वा ति रंगमंच के समस्त बैठने वाले वर्णों के लिए वर्णों के अनुसूक्त स्थान निपट थे। इन स्थान के अकेल के लिए ब्राह्मणों के लिए सुस्तरक का, क्षत्रियों के लिए माल रंग का, वैश्यों के लिए पीले रंग का तथा सूत्रों के लिए पीले रंग का स्थान प्रदाया था। इसी प्रकार राजानुस्यो, त्रिषों एवं मालकों के बैठने के लिए पुष्क पुष्क स्थान निर्धारित होने जाते थे। प्रेक्षादृष्ट के पूर्व ज्ञान में राजा का भाग्य होता था। उसके बायों और मही, कवि, ज्योतिषी एवं व्यापारवर्ग तथा साहिबी और महिकार्यो बैठती थी। राजानुस्य ठका बन्धों के स्थान उठर में और राजानुस्य, पाट, बाटोबक एवं रक्षकों के स्थान किनारे पर विद्यत थे। संसार

१. नेपथ्य इत्यादिका उपनिः प्रधावनम् (अथय-वाच सर्व)

यें भारतीय रसमय का इतना विकसित और विस्तृत रूप प्रारम्भिक अवस्था में ही पाया जाना निःसन्देह संस्कृत साहित्य के इतिहास में एक अत्यन्त कीरम-पूर्वक एवं शक्तिकर विषय है।

भारतवर्ष के मध्यवी सभ्राट् महाप्राय हर्षवर्धन का राज्यकाल सन् ६०६ से ६४८ ई० तक माना जाता है। इस समय भरत मुनि की नाट्यशास्त्री का कर्मांत प्रचार रहा। यन्त्रों के आविष्कार एवं प्रमुख स्थापित होने के अनन्तर संस्कृत को राजकीय प्रोत्साहन मिलना समाप्त हो गया और अचरोत्तर नाट्यकला के साध-साध सांख्यीय रसमय की स्फुरण भी बरकती पयी। केवल अन्तःपुराण में राम तथा कृष्ण के जीवन का तथा अन्य धार्मिक कथाओं के आधार पर नाटकों का अभिनय चलता रहा। इसके सिवा कहीं विशेष मय का विकास न था। अब तो कौच सुनि मंडलों या बाजारों में ही उत्सव मना प्येते हैं। यूरोप-पश्चिमो के संपर्क से हमारे देश में यूरोपीय संस्कृति के आचार पर रसमयों की स्थापना हुई। फिर इस समय तो सिनेमा के प्रभाव से स्थिति ही बदल पयी। वर्धमान में सिनेमा आविष्कार इस दिशा में नाट्य का पूर्णतम विकसित रूप है।

मुञ्जकटिक में रसमयीय विधान का अतिशय

युव काल के अन्तर्गत केवल पड़े जाने वाले नाटकों को नञ्जनाटक (Closest Drama) कहते हैं। इनके केवल यदि स्वच्छ है और कहीं कुछ नाटकीय नियमों को उपेक्षा भी करते हैं तो वे इतने बसरने वाले नहीं होते जिससे कि दर्शनीय, क्योंकि वे कथिमात्र दर्शकों की शक्ति के प्रतिफल होने से अशक्ति हो जाते हैं। अब, रसमय के सिद्धे से ही अन्तःपुराण होती है जिसकी कथावस्तु अधिक विस्तृत नहीं होती। कथोपकथन भी लम्बे न होकर सीमित होते हैं और वृत्तों का विधान भी रसमय के अनुकूल होता है। यह अवश्य है कि मुञ्जकटिक सांख्यीय विधान के अन्तर्गत एक प्रकार है पर नहीं-कहीं इन्हें हीमाओं का अतिशय हुआ है। संस्कृत रसमय की परम्पराओं का अतिशय भी अन्तःपुराण से एक है। सांख्यीय परम्परा के अनुसार नाटक का अन्तःपुराण अत्यन्त अन्तःपुराण नहीं होता। निश्चय और हिता का रसमय पर अन्तःपुराणीय प्रदर्शन भी किया गया है। प्रेम-सम्बन्ध में भी मुञ्जकटिक का साहस अन्तःपुराणीय है। सांख्यीय कथाओं के प्रतिफल दुर्दिन की कथा में अन्तःपुराण तथा अन्तःपुराण का अन्तःपुराण अतिशय विधाना पया है। सुखचार प्रारम्भ में संस्कृत में अन्तःपुराण प्रारम्भ पर फिर नहीं से अन्तःपुराण में अन्तःपुराण है। वे तब वार्त्त अन्तःपुराण को प्राप्त से सिद्धे अन्तःपुराण, पर अन्तःपुराण अन्तःपुराण अन्तःपुराण अन्तःपुराण

प्रयोजित किया है। यही उद्योगी एक महत्ता है जहाँ उसने शास्त्रीय विधान के बगैरे बनने हो विधान के बाँधिये को प्रकट किया है। जैसे मूच्छकटिक को जब दुग्ध स्तन की कठोरी पर बरसते हैं तो सर्वथा मखरक पाने हैं। इसकी कपा-बस्तु इसी विस्तृत है कि इसका अविमन एक बैठक में सम्भव नहीं है। यद्यपि कपाबस्तु प्रातिवृत्त है, फिर भी उसमें एक दोष यह है कि वह पूर्ण रूप से सम्भव नहीं है। चतुर्थ बंध में विद्वक ने बसन्तसेमा के बचन का ज्ञान अधिक विस्तृत वर्णित किया है जिससे सामाजिक दर्शक ऊब जाने हैं। पंचम बंध में सर्वा-वर्णन भी स्वाभाविक रूप से कुछ अधिक हो गया है।

षष्ठ बंध में वादरथ का सोचो हुई बसन्तसेमा को छोड़कर बात-पुनःकरणक उद्योग में पके जाना भी ठीक नहीं पँवता। केवल यही कहा जा सकता है कि पंचम बंध की कथा को अन्वये की कथा से सम्भव करने के लिये यह एक वाच्यम है। अष्टम बंध के अन्त में वादरथ का वह कहकर उद्योग से विद्वाना कि मैं जब न्यायालय में बाहर निकलना करूँगा किन्तु यही दूसरे दिन पहुँचना अवश्य प्रतीत होगा है। बचन बंध में न्यायाधीशों के बार-बार पूछने पर वादरथ का ज्ञान रहना भी एक प्रकार की कमी को व्यक्त करता है। इसके बाँधितिक वादरथ की बसन्तसेमा इतियाँ भी कुछ बखरने वाली है। एवमत्र पर वाच्य में शरिषक का वादरथ के यहाँ बँध उद्योग भी कुछ सम्भ्रा नहीं समझा जाता। अन्तरा और वादरथविशेषीति बँध बडे उन्म भी ठीक नहीं समने। इन्ही दोषों से कपाबस्तु की रीपकता कम हो जाती है। डा० वादरथ का कहना है कि मूच्छकटिक में सम्भवता (Proportion) का अभाव है, फिर भी यह बहुत विस्तृत है।¹

कपोपकमन जैसे तो कई स्वामी पर विस्तृत है, पर विद्वक ने बसन्तसेमा के महान-बर्षम में तो बाँधियेकिक कर दी है। ऐसा लगता है कि जैसे किसी घट काम्य का वर्णित विषय हो।

दुस्रो के बहुविध विभाजन का यहाँ तक सम्भव है, मूच्छकटिक के अत्येक बंध में अनेक दुस्य है। कई दुस्यो को योजना एक ही समय में की गयी है। यी दुस्यो को एक ही समय में एवमत्र पर रिखणाय्य क्या है। प्रथम बंध में एक मोर वादरथ के पर का दुरर प्रस्तुत किया गया और दूसरी ओर बसन्तसेमा का अनुसरण करते हुए वादरथ का दुरम भी विहित किया गया है।

1. M. R. Kale: *Mruchchhakatika*, Introduction, p. 35.

सब से इन सब बातों के होते हुए भी मृच्छकटिक की बरतत रोचक और आकर्षक कथा के सामने यह बालेय नबन्ध है। क्रिडा-व्यापार की परिचोमना इसमें पायी जाती है। अभिनय के विचार से यह है भी आश्चर्य। यदि कुछ अर्थों को छोड़ दिया जाय, जैसे वर्णा-वर्णन, भवन-वर्णन आदि तो यह कथा समीक्षित हो सकती है। द्रुपद विवाहान का क्रम भी बोड़े परिवर्तन से अभिनय के अनुकूल किया जा सकता है। इस अर्थ में यह सर्वथा समझ है कि मृच्छकटिक के कमेन्टर की तथा रूप देते हुए अर्थात् परिवर्तन के साथ उसी अभिनय-बोध्य बनाया जाय। डा० देवस्थली ने मृच्छकटिक के सवाल में बहुत कुछ कहने के परचात् अर्थ में इसकी प्रशंसा ही की है —

"It then by dramatic poems is meant drama not fit for the stage, we must differ from Ryder and say that Sanskrit plays are dramas with poetic charms and qualities added to them"¹

सोपान विदल्लेषण

बो तो रूपक का आरम्भ वैदिक काष्ठ से ही हो जाता है। फिर अड़े पीरे-पीरे इतना महत्त्व दिया जाने लगा कि अतः विषय पर ही पुष्प से समस्त प्रयोगों का निर्माण होने लगा। मरुत मुनि का नाट्य शास्त्र इस विषय में एक अत्यन्त प्रमाण है। वैसे तो उसमें नाट्योपयोगी सभी विषयों पर सुन्दर विवेचन है, पर नाट्यकथा की दृष्टि से विचारयोग्य वस्तु, उस तथा पाप का समीचीन वर्णन है। इनका सुन्दर सम्बन्ध रूपक की एक ऐसी नींव है जिनपर ही सब कुछ आकारित है।

रूपक के अर्थ नाटक की सर्वप्रथम मृच्छकटिककार ने अपनी कथावस्तु के लिए उपयुक्त नहीं समझा। अतः प्रकटन के रूप में उसको प्रस्तुत किया। वास्तविक प्रकरणों में मृच्छकटिक एक अलग प्रकार है। इसकी नाट्यविधा सर्वथा समुचित है।

कथानक और सविधानक की दृष्टि से हम उसने औचित्य को स्वीकार करते हैं। मृच्छकटिक एक प्रकार से दो आत्माओं का एक प्रतिबिम्ब है जिसने आरम्भ में आसुरीय आचरण का प्रकाश ही ही जामे मृच्छकटिक का प्रयत्नार्थ है।

१. Dr G B Devasthali Introduction to the Study of Mricchbhakata, p 132.

मूच्छ्रितिक में रंगमय पर-बाधरत और बधन्तसेना का बुद्धि की बर्षा में व्यक्तित्व और युवा कुम्बधु एवं बधन्तसेना गणिका का बरस्तर मिश्रित यद्यपि सांख्यीय दृष्टि से उपपुत्र नहीं समझे जाते, पर ज्ञान के सिनेमा-संसार में यह सब मान्य है। छायाचित्रकारों का तो यह विश्वास है कि बिना इसके बिना में भी बन नहीं जाता।

द्वितीय-सोपान

माध्यमशास्त्र के दो अंग : पात्र और रस

पात्र और रस रूपक के प्रमुख अंग हैं। पात्रों में नायक और नायिका प्रभाव हैं। नायक को माध्यमशास्त्र में चार प्रकार का कहा गया है। वे चारों में नायक की शक्ति के आधार पर हैं। यद्यपि वे चारों भाग्य बोर तो होते हैं पर हीरक के अतिरिक्त इनमें अपनी-अपनी शक्तिवश विशेषताएँ क्रमशः कथित, साम्य, अज्ञान और अज्ञान होती हैं।

नायक का अनु प्रतिभाष्य होता है। यह बोरोगत शक्ति का होता है। मूच्छ्रितिक में जैसे नायक का सकार है।

विदूषक संस्कृत नाटक का एक महत्वपूर्ण पात्र है। हास्य और व्यंग्य से वह नाटकीय बोरोगत का साक्ष्य करता है। कभी-कभी वह हीरक बुद्धि का परिचय देता है। यह ज्ञान्य भावि का होता है और माध्यम भाषा बोलता है।

विट एक ऐसा पात्र है जो देशियों के व्यवहारदि से परिचित होता है और कथप्रवीण होता है।

नायक की नायिका का भी अपना महत्व है। यह स्वीया, बध्या और सामान्या के नाम से अपने-अपने अतिरिक्त अती तीव्र प्रकार की होती है। सामान्या से विशेष अभिप्राय साधारण स्त्री या नायिका से है। मूच्छ्रितिक में नायिका बधन्तसेना गणिका है।

कथामस्तु को प्रवर्धित बनाने के लिये रूपक में और बहुत से पात्र होते हैं। मूच्छ्रितिक में अग्य पात्रों का भी सुन्दर निर्वाह हुआ है। अपने-अपने अर्थों में सभी कुशल हैं। यह एक ऐसा प्रकार है जिसमें पात्र बनना बहुत अविश्व है।

माध्यम शास्त्रशास्त्र में रस सर्वोपरि है। बिना रस के सब हीरक है।

इसकी व्यवस्था इस काल का प्रमुख लक्ष्य है। इस काल में मनों का वही उद्देश्य है कि उनके अभिप्राय द्वारा सामाजिकों में रसोद्बोध हो। काल के पड़ने, सुनने बचपना रूपक के रूप में रचन है जिस आनन्द का अनुभव हमें होता है वही आनन्द रस कहलाता है। भारत मुनि के अनुसार इस रस की निष्पत्ति विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी के संयोग से होती है। 'विभावानुभावव्यभिचारिनसोपाद् रसनिष्पत्ति' (नाट्यशास्त्र)।

बार-बार देखने पर या सुनने पर मन पर लगी हुई भावप्रति काल्य से वर्णित विभावानुभाव द्वारा पुष्ट होकर रस रूप में परिणत हो जाती है। ये भाव शैतन और लक्ष्य मन की कुछ समय के लिये एक करके उनके बीच के व्यवधान को हटाकर हमें हृदय की इस चरम सीमा तक पहुँचा देते हैं जहाँ हम मनोरम्य में विपरव्यक्त करते हुए परम आनन्द की अनुभूति करते हैं। रसकों के मन में यह आनन्द, जिसे रस की सजा दी गयी है, शौनिक होते हुए भी शौनिक है, दिव्य है तथा ब्रह्मास्वास्वहोदर है।

नाट्यशास्त्र में रसों का विवेचन एवं मूष्ककटिक में उनका त्रिविध

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार रस रूपक का मुख्य जन है। पाश्चात्य सभ्यताओं ने प्रभावानुभूति की ही नाटक का जीवन बताया है। नाट्यशास्त्रों का कहना है कि इन दोनों में बहुत समानता है। विभाव, अनुभाव और लक्ष्य भावों के संयोग से सहृदयों को उत्पन्न होने वाली शौनिक आनन्द की अनुभूति ही रस है। रसकों का प्रयोग हमें रस की प्रतीति कराता है। विविध रूपकों में रसों की प्रभावता और अप्रभावता निम्न-निम्न प्रकार से होती है। प्रकरण में शृङ्गार रस प्रबल बचपना लगी होता है तथा अन्य रस इसके लक्ष्य बनकर रहते हैं। शृङ्गार के ही रूप हैं। एक साम्योप बचपना संयोग शृङ्गार और विप्रलम्भ बचपना संयोग शृङ्गार। मूष्ककटिक में लक्ष्य शृङ्गार ही रस है एवं विप्रलम्भशृङ्गार, कथन, हास्य, मय, भीमत्स, वीर और शान्त आदि रहते हैं।

मूष्ककटिक की कथावस्तु इस प्रकार है कि इसमें पाश्चात्य अन्य रसों का भी वर्णन होता है। वस्तुतः कथा का लक्ष्य लक्ष्य बोट दिना भाषा है और यह मूर्च्छित हो पाती है जब भीमत्स रस का प्रादुर्भाव होता है। सुष्टमोदक हाथी की बचपना के समय मयात्मक रस का रूप उत्पन्न हो जाता है। बचपना के कारण में शौनिकों की उत्पत्ति में शान्त रस प्रवाहित होने पपता है। शौनिक की उत्पत्ति में सुष्टमोदक एवं पाश्चात्य ने रसों में शान्तोदक का

धारात होता है। मत्स्यके पञ्चमन से कर्णपुरक द्वारा मित्र की रत्ना किये जाने पर अद्भुत रस देखने को मिलता है।

(क) शृङ्गार

प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य में नायक नायिका इतने बार ही परस्पर मिलते हैं। यहाँ समोग शृङ्गार का उदय स्वह है। यह समोग अनेक उल्लासों के साथ प्रथम अंक में पूर्ण हुआ है।

द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य में बसन्तसेना और मरुतिका का सभायम आरम्भ होता है। इस दृश्य में विप्रकम शृङ्गार की प्रतीति होती है। यही बसन्तसेना की उदारता और चारवत्त के प्रति उसका प्रेम अभिव्यक्ति होता है।

चतुर्थ अंक के प्रथम दृश्य में बसन्तसेना और मरुतिका भारत के पितृ के सम्मुख में आर्शान्वित करती हैं। यहाँ विप्रकम शृङ्गार का आरम्भ मिथ्या है।

प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में विट और बसन्तसेना दुर्गि का वांग करत हुए चारवत्त के यहाँ पहुँचते हैं। चतुर्थ दृश्य में चारवत्त और बसन्तसेना फिर मिलते हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि यहाँ समोग शृङ्गार की पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति सिद्धायो गयी है।

अब अंक के प्रथम दृश्य में बेटी और बसन्तसेना का सम्वाद चलता है। यहाँ चारवत्त से दुःख मिटने के लिये बसन्तसेना की उस्तुतया स्पष्ट होती है। यह भाँति कई स्थानों पर समोग और विप्रकम सामने आते हैं।

आरम्भ में समोग शृङ्गार का उदय विप्रकम हत्यादि से योग्य प्राप्त करता हुआ अन्त में परिष्कार रसा को पूर्ण बनाता है। अतः यहाँ समोग शृङ्गार अग्रेसर है। शकार का बसन्तसेना के प्रति दुःख, बहना पीड़ा करना, अनुत्तर करना और इन दर्शित करना हत्यादि शृङ्गारमात्र है।

समोग शृङ्गार की भाँति विप्रोप शृङ्गार भी मूत्रकटिक में अनेक स्थलों पर अनुभवा के साथ स्पष्ट हुआ है। द्वितीय अंक के आरम्भ में बसन्तसेना विप्रोप उल्लासित है। मूत्रकटिक में कुछ सोच रही है (हृदयेन निमग्नमिच्छन्ती) और लाल भाँति में भी उसकी रति मही है। यह मूत्रकटिक ही कितने को लगना करती हुई प्रतीत होती है। चतुर्थ अंक के आरम्भ में बसन्तसेना चारवत्त के चित्त की रचना में निमग्न दिखाई देती है। प्रथम अंक के आरम्भ में जब विद्वेष चारवत्त से मरुतिका प्रथम डोहर की बात करता है तो उस समय बसन्तसेना के प्रति चारवत्त की उस्तुतया प्रकट होती है।

(स्वयम्) 'न कुचहासो ह्यसौ एव' साव मे विरहो भेदना भो व्यक्त होती है।

(प्रकाशम) 'वयमर्थे वदित्यथा ननु त्वनीव सा मया'

मृ० क० (१-१)

पह और सप्तम अंक में दोनों ओर से यह की उत्कृष्ट व्यक्त होती हुई दिखाई देती है। इस प्रकार मृच्छकटिक में निम्नकम शृङ्गार का भी बहुत सुन्दर चित्रण है।

रस-विवेचन करते हुए यह कहना सर्वथा उचित होगा कि मृच्छकटिक में शृङ्गार रस के साथ साथ करुण और हास्य रस का सुन्दर सम्मिश्रण है। अन्य रस नहीं के बराबर हैं छिद्र भी बीमत्स भवानक, वीर, अद्भुत वीर शान्त रस के वर्धन महास्वान होते हैं।

भारतीय साहित्य में नाटक का एक ही प्रकार है और यह है मुहान्त। मृच्छकटिक में समाप्ति नायक नायिका के मिलन के साथ दिखायी गयी है। अतः यह मुहान्त प्रकार है।

(स) हास्य एवं परिहास योजना

हास्य रस का भी मृच्छकटिक में सुन्दर विवेचन है। जब तो यह है कि हास्य और व्यंग्य की दृष्टि से मृच्छकटिक का उत्कृष्ट नाटको में अत्यन्त बीरव-पूर्ण स्वभाव है। मूढक द्वारा यह हास्य पुनः-पुनः कर्मों में इसमें व्यक्त हुआ है। बिनोदी तथा हास्यप्रिय विदूषक और सकार के अनेक कार्यों एवं उपायों से समस्त प्रकरण में हास्य की व्यवस्था हुई है। सारा हास्य सकार के मूर्खतापूर्ण कार्यों से व्यक्त ही रहा है। हास्योत्पादन तो विदूषक के द्वारा भी हुआ है, पर वह सकार की भाँति मूर्खतापूर्ण नहीं है। कही कही विदोषपूर्ण परिस्थितियों द्वारा जैसे द्वितीय अंक के द्वितीय दृश्य में सकारों के सपने में हास्य रस का वृत्त है एवं बहुरस्येना की स्मृन्मया माता के वर्णन में हास्य की उत्पत्ति है। बीरक एवं चम्पक का आपस में जातिगुणक संकेत देना भी हास्य को बढ़ावा देने वाली घटनाएँ हैं। कर्मो-कर्मो व्यंग्यपूर्ण उक्तिओं से भी यह प्रकट होता है जैसे—

'भवति किं कुम्भाकम् पादपाशानि भवन्ति इत्यादि से मधुरहास्य अति स्पष्टित होता है। यह भी देखा गया है कि अद्भुत प्रलोत्सव द्वारा जैसे बहुरस्येना के पैर और विदूषक के अनीतारों से हास्य रस प्रस्फुटित होता है। इस अवसर पर विदूषक की मूर्खता एवं उसके पर-परिवर्तन पर 'दिना धनम्' के

कहते हैं भी हास्यरस का प्राबुर्भाव होता है। इसी कुछ रस्यों के वाच्य पर मूञ्चकटिक उक्त के उन सर्वोत्तम नाटको में है जिन्हें हास्यरस बस्यविक रूप से व्यक्त हुआ है। इसका एक भाव कारण यह भी है कि अन्य नाटको की अपेक्षा मूञ्चकटिक में तरलता और स्वाभाविकता अधिक विद्यमान होती है। यही कारण है कि हास्य रस को इसमें समुचित स्वातंत्र्य प्राप्त है।

संभवतः मूञ्चकटिक के निर्माता को हास्य रस विशेष प्रिय है अथवा वह इसका आरम्भ बिबोध के साथ करना चाहता है। इसीलिये प्रस्तावना में हास्य रस की एकक विज्ञापी देती है।

(५) कल्पना

कल्पना का आदिम अनीष्ट को हानि से होता है। इसके बिना से उद्भव कल्प रस का आत्मान कल्प है। अथवा यद्यपि चालस्य के वैभव-नाथ और उद्विग्नता का कल्प शब्दों में यथार्थ विनय अर्पित किया गया है। कितनी सुन्दर सचिवाँ है :—

सुखात् मो पाति मरो बरिष्ठता भूतः अतीरेण मृतः स बोधति ।

मू० क० (१-१०)

बाल्यकाले च बरुणं बालिभ्यस्मान्तरु बुद्धम् ।

मू० क० (१-११)

इसी अर्थ उदाहरण के अन्तर्गत में, अत्यन्त ही जोरी का समाप्तर सुमकर युवा की मुर्दा में, उत्पन्नता बसतसेना अथवा पक्षिक की मुर्दा में रस वादस्य के प्रापक्य की अपेक्षा हो जाने पर रोहसेन और युवा के अनुभव की बात बुनते ही आश्चर्य के मूर्च्छित होने इत्यादि के वर्णनों में कल्पना का वर्णन देना गया है। अकार के द्वारा बसतसेना का पक्षा मोटने पर अब यह मूर्च्छित हो जाती है तब बिट शोकमान होकर जो विहाय करता है उसमें तो कल्प रस का अत्यन्त सुन्दर परिष्कार हुआ है जैसे—

दासिप्योदकमाहिनी विर्यिता ।

मू० क० (८-१८)

उपर्युक्त विवेचन से यह निश्चित है कि इस रसक में शृंगार अनीष्ट है। इस प्रकार की यह विवक्षयता है और संभवतः यही इसकी विशेषता है कि आरम्भ में इसमें अनीष्ट और फिर विप्रलम्भ और अन्तिम पर फिर अनीष्ट

दिखायी देता है। इसल, भवानरु, अद्भुत और शोभन इसके बशीरह है। अशिक्षित और अज्ञान की शक्तियों से भी-भी-भी औररह की भी शक्त विकसित होती है। यथास्थान चिन्ता, भ्रान्ति, निर्वेद आदि सपायी भावों का भी समावेश उसे शक्तिवर बना देता है।

रूपक की विषयता यह है कि शक्ति या शक्ति देखने या सुनने पर उसके सुखान्त या दुःखान्त का अनुमान न सया सके। इसकी सम्भावनायें भ्रमपूर्ण बनी रहें। इन दिशा में मूञ्जकटिक एक ऐसा रूपक है जो अपने वैशिष्ट्य के कारण कठोरी पर सच सतरसा है। इसके बढ़ने पर पाठको को मध्य में यह निश्चय नहीं होता कि इसकी समाप्ति सुखान्त है अथवा दुःखान्त।

मूञ्जकटिक का अमीरस

मूञ्जकटिक का अमीरस शृंगार है। यह शोच और दिव्यरम्य दोनों रूपों में इसमें प्रयुक्त हुआ है। आदरत और वसन्तसेना के प्रेम से इसकी अस्मिता हुई है। वसन्तसेना यद्यपि गणिका होने के लिये सामान्य नायिका है और सामान्य नायिका का प्रेम इस कोटि तक न पहुँचने से समाप्त कहना चाहिए, पर अन्त में वसन्तसेना के कुञ्जकटिक पर पहुँच जाने से प्रेम एककोटि तक पहुँच जाता है। वसन्तसेना के हृदय में कुञ्जकटिक रूपी शोच-शोच को बेसुकर प्रेम का अद्भुत उत्पन्न होता है। आदरत भी अपने रूप पर मुग्ध होने लगता है। इस शक्ति शोच, शोच और शोच अन्त में दिव्यरम्य शृंगार के अस्मिता-भावों से शोच की पुष्टि होती है जिसके अन्तस्व रूप अन्त-पथ में वसन्तसेना अस्मितिका बनकर बसती है और अन्त-पथ पर अन्त-सेनों से आदरत का प्रेम उदीर्य हो उठता है, यह कहने लगता है—

शोच, अमीरत नद त्व शय प्रतापम् स्वरपोषित मे।

सस्पर्शतोर्मापितत्रातराय ऊरुम्बुम्बुत्वमुपैति गानम् ॥

मू० क० (५-४०)

इसका ही लक्ष्य, वसन्तसेना के पहुँचने पर यह उपाय अस्मितिका करके अन्त-कोसल भावों को इस रूप में प्रकट करता है—

अस्मितिका तेषां अस्तु शोचितां मे नास्मितां नृहमायतानां।

आश्रयि मे शोचक्रीतसां नास्मितां नास्मितां परिभ्रमन्ति ॥

मू० क० (५-४१)

इसके परचाल भी अन्त-पथ के आरम्भ में वसन्तसेना की और अन्त-पथ अन्त में आदरत की अन्त-पथ ही बननी रहती है, पर शोच के विधान के

बतन्वसेना का मोहन, पास्वत पर वसिमोग और मृत्युवृष्ट जम्हें परस्पर नियोग की कबल स्थिति पर जैसे ही पहुँचाते हैं वैसे ही पुनर्मिजन हो जाता है और वास्तव कहने लपटा है—

वही प्रभावः त्रिबसमस्य मृतोऽपि को नाम पुनःप्रियेत ।

मू० क० (१०-४३)

इस भाँति यहाँ सम्भोग मृतार विप्रकम्प इत्यादि से पुष्ट होकर अन्त में परियन्मस्थिति में पहुँचकर पुनः सम्भोग रूप में परिवर्तित हो जाता है ।

रूपक में अलङ्कार, गुणरौति, षकोक्ति एवं ध्वनि का समन्वय

रूपक के कुछ ऐसे अंक हैं जिनसे उसके कवचर में सौन्दर्य-बुद्धि को स्मिष्टा बनी रहती है । आस्वीय विधान के साथ साहित्यिक रधि में अलङ्कार, रौति, षकोक्ति एवं ध्वनि का अपना विधिष्ठ स्थान है ।

अलङ्कार नाटक-सौन्दर्य को बचमना देते हैं । अलङ्कारों का सौन्दर्य बानु-वर्षों से जैसे निकल उठता है वैसे ही नाटक बस्तु भी इसके द्वारा बचक उठती है । अलङ्कार से वस्तु बनीब हो उठती है । एकका सामान्य रूप है वैचित्र्य । इसके लिए कवि को प्रतिभा की आवश्यकता है । आचार्य चम्पद के अनुसार कटक, कुण्डल आदि जैसे अनेक प्रकार के आनुषंग हे जैसे ही अलङ्कार अन्त सपा धर्म की शोभा बढ़ाने वाले अस्तिर वर्म हैं । अस्तिर इतिमिमे कहा गया है कि इसके बिना भी काम्य में काम्यत्व उठा है । गुणों के समान उनकी स्थिति निम्न लहो होती । ध्वनिबन्धी आचार्यों की कृति के ऐसा है, पर अलङ्कारबाधे आचार्य तो काम्य में अलङ्कार को विशेष महत्व देते हैं । मूत्रकण्टिक में स्वाभाविक ढंग से अनेक अलङ्कार यथावत् प्रयुक्त हुए हैं । अलङ्कारों जम्हें काया लही गया है । ये अलङ्कार अर्थव्यञ्जना में सहायक होकर काम्यसौन्दर्य को वृद्धि करते हैं । लपना, लपक, उत्प्रेक्षा, अस्त्युत्प्रेक्षा, काम्योद्धव विशेषोक्ति एवं सपा-सोक्ति आदि अलङ्कारों को इसमें सुन्दर अतिव्यक्ति है ।

अलङ्कारों की भाँति गुणों का भी काम्य से अलिप्त सम्बन्ध है । अलङ्कार तो अस्तिर है, पर गुण अस्तिर है । बया, लीर्य आदि गुण जैसे लपार से सम्बन्धित न होकर आरवा से सम्बन्धित हैं वैसे ही काम्य में ये गुण एक से सम्बन्धित हैं । अतः गुण गुण एक के ही वर्म होते हैं । ये गुण काम्य की शोभा बढ़ाने वाले अलङ्कार वर्म हैं । अलङ्कार का सम्बन्ध अन्त एवं धर्म से है इतिमिमे ये काम्य की शोभा बढ़ाने वाले बाहरी वर्म हैं । काम्य अरु लीर्य गुणदुक होता आवश्यक है, पर अलङ्कार अरु अलङ्कारों से अलङ्कारों का आवश्यक नहीं । अतः गुणों के बिना

मह बहना धर्मों का उचित है कि वे काव्य में सदैव विद्यमान रहकर सदाही योगों के उत्कर्ष को बढ़ाने वाले हुए के धर्म हैं। गुण वक्ष्या में दस माने गये हैं। बलेप, प्रसार, समता, उदारता, समानि, माधुर्य, शोभ, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति और कर्मात्। इन धर्मों का समावेश काव्य, शोक और प्रसार में किया जाता है। मूष्कटिक में चारदत्त, बसन्तसेना और सवार की धर्मों में ये गुण यथास्थान वैसे पाये हैं।

रीति का भी काव्य रचना में अपना विशिष्ट स्थान है। रीति के अन्विष्टान्त यौनी से है। बड़ी के विचार से रीतियाँ अनन्त हैं और उनका परस्पर में बहुत भूषण है। रीति की उपमा मानव-सरीर में अणु के सञ्चलन के साथ की जाती है। जिस भाँति मनुष्य के सरीर में अणु का परस्पर अनुकूल सञ्चलन उसे स्वस्थ और सुखी बनाता है ठीक उसी प्रकार पदों का अपन स्थान पर समुचित प्रयोग रचना की मुख्यवस्था को प्रकट करता है। मह रीति के सम्बन्ध में यह बहना उचित है कि उसमें पदों का ऐसा विन्यास है जिसमें काव्यगुणों की स्थिति व्यवस्थित हो शक्ति होती है। ये रीतियाँ बंदनी, गौरी और पाशाही के नाम से तीन प्रकार की हैं। बंदनी रीति माधुर्य गुणप्रधान, बंदनी रीति शोक गुणप्रधान तथा पाशाही रीति प्रसार गुणप्रधान होती है। मूष्कटिक में इन रीतियों का सुन्दर सामञ्जस्य गुणों के अनुसार है।

ये धर्मों की रीति के विभिन्न रूप बला के प्रति आदर्श रूप प्रकट करते हैं। बन्धोक्ति की विधि भी इसमें अनुपम है। किसी बात को सरल भाव से न कहकर उक्ति को बद्धता के रूप में प्रदर्शित करना बन्धोक्ति कहलाता है। शब्द तथा अर्थ की लोकोत्तरत्वं से काव्य में स्थिति बद्धता कहलाती है। बन्धोक्ति के आचार्य कुत्तक का बड़ी पठ है। इन्होंने बन्धोक्ति को काव्य का जीवन माना है और यही बन्धोक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। यह बन्धोक्ति बर्ण, पद वाच्य, प्रकरण और शब्द के विचार से अनेक रूपों में प्रदर्शित की जाती है। मूष्कटिक में चारदत्त और बसन्तसेना की धर्मियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं।

काव्य की महत्ता पर विचार करते हुए सर्वोत्तम काव्य ध्वनि-काव्य माना गया है। व्याकरण शास्त्र में यह श्लोक के नाम से प्रसिद्ध है। ध्वनि की कला उद्योग ही प्राचीन है जिसने काव्यरत्न की। इस ध्वनि के कारण अर्थ में अनुरूप नवीनता बिल्लाई होती है। आत्मदर्शन और उनके अनुयायी आचार्यों ने ध्वनि का सुन्दर विवेचन किया है। यह ध्वनि तीन प्रकार की होती है—रस ध्वनि, वस्तु ध्वनि, अन्वय ध्वनि। रस ध्वनि अन्वय ध्वनि प्रथम होती है और उसमें रस

अबलता से एक धाम में हजर बीर बूमरे धाम में उपर दिखायी देती है।^१

कवि ने तीव्र पति वाले मोटे-मोटे चारा रूपी बाणों की वर्षा करते हुए बाबल की सुन्दर कल्पना की है। जहाँ मेघ तथा राजा का बर्णन समान प्रस्तुत किया है^२।

हाथी के समान बाड़े-काले कटकटे तथा बरबते हुए बिमली वाले एव बह पतिव्रता से परिचित ब्रह्मण बन्धों से ही बिबोयियों के हृदय की पीडा अनुभव-यम्य है^३।

मेघ एव विद्युत् से घिरे आकाश को कवि पञ्चदश की भाँति देख रहा है^४। कवि की मेघ बोझा होने वाले हाथियों जैसे दिखायी देते हैं। परस्पर आक्रमण करते हुए हाथियों के तुल्य बिबली रूपी रस्सों से परिबेष्टित कम्बर वाले बाणों करते हुए बादल देबरुद्र इन्द्र को बाधा से बाँदी की रस्सों के समान पारतन्त्रों से पृथ्वी को छत्र रहे है^५।

इसी प्रकार मेघ वर्षा से कवि गणनात्मिकी अंगे हरे हुए बहुरों वाली पृथ्वी का वर्णन करता है^६।

बलभरसेना द्वारा मेघ का दिखावों को बज्र के समान कावा बनात हुए सिंगाना भी बड़ा मुहावरा रूपता है^७।

कहाँ कहीं प्रकृति वर्णन आलंकारों से बड़ा ही समत्कारपूर्ण है। प्रस्तुत वर्णन में पूर्वार्ध में जगता तथा उत्तरार्ध में उत्प्रेषणा का समत्कार वैकल्पिक योग्य है।

असाधु पुरुष परस्पर क्रिये गये उपकार की भाँति गह हो गये हैं, रिशार्थ विमोचन से विमुक्त स्त्रियों की भाँति सुधीनित नहीं हो रही है। इन्द्र के वज्र की शक्ति से बादर ही बादर तथापि पया बहु आनाश मयता है कि विपल विपल कर ब्रह्म रूप में बिर रहा है।^८

- | | |
|---------------|---|
| १. परिदुलमुखा | • सतिष्ठते । मूञ्जकटिक (५-१४) |
| २. पवनवपनमेघ | घञी । मूञ्जकटिक (५-१७) |
| ३. एतैरेव | • प्रपिपन् । मूञ्जकटिक (५-१८) |
| ४. बसाहा | • बर्तुनामदिवाम्बरम् । मूञ्जकटिक (५-१९) |
| ५. गते | • समुदरति । मूञ्जकटिक (५-२१) |
| ६. मष्टा | • इव । मूञ्जकटिक (५-२२) |
| ७. प्रसृहीति | • समुतिष्ठति । मूञ्जकटिक (५-२३) |
| ८. पदा | • पवनम् । मूञ्जकटिक (५-२५) |

प्रकृति-वर्णन में उपमा शोपक की संसृष्टि चाहे लज्जित का समकार प्रकृत करते हुए वेच क्य वर्णन वास्तव में सुन्दर है ।

यह वेच प्रथम बार कम पाने वाले मनुष्य की भाँति कभी समझा है, कभी गोवा होता है, कभी बरसठा है, कभी भरबडा है और कभी बवा बन्धुकर केनाकर बनेक ह्य बारम कर रहा है बर्बात यह पहली बार कम पाने वाले मनुष्य की भाँति हयप कर कौतुक कर रहा है ।^१

बसन्तसेना का विद्युत् की यह उपाख्य भी कम समकारपूर्ण बड़ी है ।

हे विद्युत् ! यदि बलवर परपरा है तो वह भले परले, बर्बात के पुरुष तो निहुर होते हो हे बतः वे पयई पीर नहीं जानने । परन्तु तू तो स्त्री होकर भी स्त्रियों का दुःख नहीं जानती । यदि तू ही ब्याध नहीं रखेगी तो कौन बूझप स्त्री भाति से सहाय्युक्ति विस्तारिया ।^२

कवि की पर्यवेक्षण यत्कि सुख एवं लय है ।

शिवतन को पीर बसिदरन करी है हुई बसन्तसेना लज्जित की मर्सना कये हुए कही है कि तुम शिवतन है निरने जातो हुई मुसली मयने बाप कये हायों से क्यों सुते हो ? समक्य पुरुष कभी किसी स्त्री का स्वयं नहीं कये परन्तु तुम मुझे मयमीत करके स्वयं कर रहे हो बतः तुम निरन्ध हो ।^३

पन्द्रोरन का वर्णन भी बवा मनोरम है । वाचरत बनेय से कहल्य है—

पुस्तियों के कपोलों के समान जग्गल, जगनों से बिर हुए राजपप को प्रकाशित करने वाला बाक बन्धुमा उदित हो रहा है । पीर बन्धुकार में इसकी श्रेष्ठ बिरनें बसपुम्य पंक में दुख की भारा के समान बिर रही है ।^४

यहाँ साव्यमूञ्जक कयक एवं उपमा का समकार है ।

बिद द्राप पने बन्धुकार का वर्णन भी उपमा, उत्प्रेसा की उत्पत्ति से युक्त है । प्रकाश में विस्तृत मेरे दृष्टि कहल्य बन्धुकार में प्रवेश करने से विचित्र हो बयी है और मेरे सुखी हुई दृष्टि की बन्धुकार से बन्धु सी हो रही है । यह बन्धुकार प्रयोगों को लिप्य कर रहा है । बासाय मानों मयन की बर्बा कर

१. जगपति ... ब्याप्यनेकानि । मूञ्जकटिक (५-२१)

२. यदि बर्बात ... न जानाति । मूञ्जकटिक (५-१२)

३. बलवर ... परपुंसि । मू० क० (५-२८)

४. सदयति ... पतन्ति । मू० क० (१-५७)

रहा है। बहुरूप्य पुरुष की सेवा की नाति मेरे वृष्टि इस बन्धकार में विरक्त हो रही है अर्थात् कुछ नहीं देख पाती।^१

मूञ्छकटिक के प्राकृतिक पुरुष बलवृत्त एवं सुन्दर बचन्य है, पर उनमें बाह्य प्रकृति के साथ मानव-प्रकृति का सम्बन्ध तादात्म्य नहीं है।

मूञ्छकटिक में ध्वनि-प्रसंग

वृष्य काव्य होने के नाते मूञ्छकटिक प्रकरण में ध्वनि के उदाहरण यद्यपि कम हैं, फिर भी यथावत् उपयुक्त एवं सुन्दर हैं। बालभद्रबर्षाचार्य द्वारा ध्वनि के तीन मुख्य भेद रस, वस्तु तथा अक्षरों द्वारा प्रकथित श्रिये गए हैं। इनमें निम्न उदाहरण वस्तु-ध्वनि के हैं—

परिवनकपासतः कञ्जिप्रर समुपेक्षित-

कश्चिदपि बृह मापीनाम निरोप्य विवक्षितम् ।

नरपतिवै पार्श्वपाते स्थित पृथ्वावद्

स्यप्रतिपत्तयः प्रार्थनाया विवक्षीयता ॥ मू० क० (४-३)

परिवन बहता है कि मैंने मन्त्रिका के कारण बीवी की। किसी और घर में इसप्रिये बीवी का विचार नहीं किया कि उस घर के परिवार के सदस्य कारण में बाधबिध कर रहे थे और किसी घर को इसप्रिये भी छोड़ दिया कि उसमें कबल नारियाँ ही थीं। कभी राजरत्न के समीप में आ जाने से घर में लगे हुए वृत्त के समान निरन्तर होकर बहता ही गया। इस प्रकार गैरकीय कारणों से मैंने पति को रिक्त बना दिया अर्थात् रात जागते ही जागते बिठा पड़े। धारणीय के इस अर्थ में वस्तुध्वनि है।

वस्तुध्वनि में वर्णों के वृत्त वर्णन में विद से कहा है—

पद्मेहीति शिवाग्निना पटुतर वैकामिप्राजन्तिः

प्रोत्थेयैव बलाद्या नरमत कोकष्ट्यान्निवितः ।

इमंरगिमतपन्नैरतिपरा शोभेवमुद्गीनिवः

बुद्धैप्रज्जलनेवहा एव शियो नेवः तन्वृत्तिवृत्ति ॥

मू० क० (५-२३)

बादल दिग्गमों को कारण के समान काना करता हुआ उमड़ रहा है जो 'आओ आओ' ऐसी और शब्दों से माली प्रकार बुलाया गया है, वस्तुध्वनि की पलियों के द्वारा वेगपूर्वक उड़ कर मानो बलवृत्तानुर्गम आतिथन किया

१ निरपेक्षित - - - - - मू० क० (१-३४)

बना है तथा बच्चों को त्याग देने वाले हों। के द्वारा अल्पतः बहिष्कार से देखा गया है। यहाँ बर्बाकानोन में जो बहककर मोर और बपुके लो प्रपन्न होते हैं, किन्तु हंठ अग्रतः विद्यामो वेते हैं छिद्र मो बाह्य स्वच्छन्दता से संबन्ध रहे हैं। यहाँ अन्तर्गतिक बस्तुप्लवि है।

मूञ्चकटिक में बर्बाकानोन

बापार्य कुन्तक के द्वारा बर्बाकानोन का सुन्दर विवेचन किया गया है। इनके विचार से यह बर्बाकानोन बस्तुकार से ब्रह्म स्वतन्त्र है। इसे वैश्वानरगोमिति कहते हैं। बर्बाकानोन मुक्त रूप से पाँच प्रकार की है—वर्मवक्रता, परवक्रता, पात्तवक्रता, बर्बाकानोन, प्रवक्रता। मूञ्चकटिक में ऐसी उक्ति कही है। बारवत रमिष के सुन्दर मात की प्रसंवा कहे हुए कहता है—

उत्कृष्टित्वं ह्ययानुसुमा बन्ध्या
सकेतके चिरयति प्रबदे विनोदः ।
संस्वापना शिपुता चिरशुशुभता
रक्तस्य उपपरिवृष्टिकः प्रमोदः ॥ मू० क० (१-४)

(श्रीम) उत्कृष्टित्वं बन्ध्या के लिए मनोमुक्त विष है। निरिह स्थान पर सुत देवी के बारे में विस्तार होने पर अन्तर्भाव का यह अन्तः साधन है। विदोष के उचित बन को बर्बाकानोन के लिये प्रेम्ही के लक्ष्य है और अनु-पत्ति में प्रेम बाने के लिए यह सुन्दर बस्तु है। यहाँ बर्बाकानोन वैश्वान-रुर्ग स्वतन्त्र में बर्बाकानोन है।

बन्ध्यापना का प्रकार के द्वि विन्त कवन मो इसका सुन्दर उदाहरण है—

दलौन सेविहम्यः पुरः कृष्णोत्तरान् वक्रियेति ।
शोभा हि परवक्रतां स्रुयवक्रतापयः शानः ॥

मू० क० (८-११)

बन्ध्या व अन्तःपार्य सेविता व पञ्चास परर बन्धीकस्ति १

कुत्तरान् एवं अन्तःपार्य पुर के निर्येन होने पर भी उन्ही सेवा दल-पूरक करनी चाहिए। अन्तःपार्य पुर से अन्तःपार्य होने पर अन्तःपार्य के लिए बर्बाकानोन है। और जो अन्तःपार्य को सेवा करके अन्तःपार्य को ही स्वीकार नहीं करेगी।

१. बन्ध्या व अन्तःपार्य सेविता व अन्तःपार्य बन्धीकस्ति १

वसन्तसेना की उक्ति निम्न ही वैशिष्ट्यपूर्ण है अथवा वैश्विक का वह समी-
चीन उदाहरण है।

मूच्छकटिक में वृत्तियों का औचित्य

मूच्छकटिक में भारतीय, शास्त्रीय कौशिकी एवं भारतीय वृत्तियों का यथा-
स्थान समुचित प्रयोग है। भारतीय वृत्ति का वैश्विक व्यापार से सम्बन्ध है अथवा
उत्कृष्ट अध्ययन इसी में व्यक्त होते हैं। इनका समी रसों के साथ प्रयोग
होता है। कवय एवं अद्भुत उद्यम प्रमाण है। इस वृत्ति के चार अर्थ हैं—प्रो-
बन्धा, वीर्य, प्रहसन और आमुक्त। इनका जो मूच्छकटिक में समुचित सम्बन्ध है।

इसके अतिरिक्त शास्त्रीय वृत्ति में वीररस पूर्ण वैश्विक होती है। वीर, वीर्य
तथा अद्भुत रसों का इसमें सम्बन्ध होता है। अतिसूक्ष्म की वृत्तियों इसके
अन्तर्गत हैं।

वृत्तियों के दो रूप . कौशिकी तथा उपनागरिका एवं आनन्दवर्धन का एतत् सम्बन्धी मत

कौशिकी शब्द की व्युत्पत्ति केश शब्द से स्पष्ट जाय होती है। अतएव
न इस वृत्ति का सम्बन्ध अगवान् विष्णु के हाथ के अश्वत्थ बाणों से रिसाया है।
अनुकूल्य वृत्ति में अश्वत्थ विष्णु ने इन वीरों अन्तर्गत से मुक्त करने के लिये जो
अपना अश्वत्थ बाण उसी से कौशिकी वृत्ति आनिर्भूत हुई। अतएव इस सम्बन्ध
में कहा है कि जो वृत्ति सुन्दर अध्ययन के विचार से विनित हो, सुन्दर अश्वत्थ-
से सुसम्बन्ध हो, विषयों से मुक्त हो, अतिसूक्ष्म तथा पाने की बहुलता ही
उसे नाम के उपभोग से उत्तम उपचारों से सम्पन्न होने के कारण कौशिकी नाम
से पुकारा जाता है। इसके चार भेद हैं—वर्ण, वर्णसूत्र, वर्णस्तोत्र तथा
वर्णवर्ण।

अध्ययन-अध्ययन-मूल्य वृत्त का अध्ययन के साथ होने पर अति उपनागरिका
इत्यादि अत्यन्त वृत्तियों और अत्यन्त ही अत्यन्त कौशिकी इत्यादि वृत्तियों
समुचित रूप से वीर्य पर ही पर अत्यन्त होती है।

कौशिकी वृत्ति अत्यन्त वर्णन में प्रयुक्त होती है। इसका आशय अत्यन्त
होता है। इसी उपनागरिका वृत्ति का आशय अत्यन्त होता है। वृत्तियों के
विषय में अत्यन्तकारियों की आशय के अनुसार अनुप्रास आदि जो ही वृत्ति
बहुते हैं। अनुप्रास तीन प्रकार का होता है। इसी आचार पर तीन वृत्तियों की
आशय की वृत्ति है—उपनागरिका, पर्या और अत्यन्त। आनन्दवर्धन को अतएव

की वृत्तियों का भी पूरा ज्ञान है। इन दोनों प्रकार की वृत्तियों को व्यवस्था तथा समन्वय सम्भूतने इह प्रकार किया है कि भरत की कैथिकी इत्यादि वृत्तियाँ अर्थात् गत और सङ्गत की उपतापरिका इत्यादि वृत्तियाँ सम्बन्धित हैं। यहाँ पर व्यक्तिकार का ज्ञान यही है कि वृत्तियाँ रसाभिन्वयिकी और रसानुभूति की उपाय नाम हैं। अतः इनकी साम्यता ही व्यक्तिकारिकता से एक प्रमाण है। उपतापरिका का अर्थ नवतन्त्रिकादिनी स्वरूप का अनुकरण करने वाली वृत्ति है। जिस प्रकार ऐसी चलना अपने सौकुमार्य के लिये इच्छित होती है उसी प्रकार नवतन्त्रिका की उपतापरिका नामक वृत्ति भी शृङ्गार रस में विद्यमान होती है।^१

सूक्ष्मकटिक में कैथिकी वृत्ति, माधुर्य गुण एवं कोमल रसों का विवेचन

सूक्ष्मकटिक शृङ्गाररसप्रधान प्रकार है। यहाँ मुख्य रूप से कैथिकी वृत्ति का प्रयोग पाया जाता है। हास्य रस का इसमें संयोग रहता है। यह कोमल वृत्ति है और इसमें नृत्य, भीत, विज्ञान आदि शृङ्गार बोधों में युक्त करती है। इसमें माधुर्य गुण का पुञ्ज रहता है। सूक्ष्मकटिक के प्रथम अंक में बालक भाषिका का ऐसा ही वर्णन किया गया है। तृतीय अंक में संश्लेष का रोचक वर्णन है। अतः में विनयेसों और पंचम में कामयोग से सम्बद्ध क्रिया-कलापों का प्रदर्शन है। अन्तिम अंकी में कागदक की प्राप्ति ही विचारी ययी है। यही सब देखते हुए स्पष्ट है कि यहाँ कैथिकी वृत्ति की प्रधानता है।

सूक्ष्मकटिक में आरम्भटी वृत्ति, श्लेष गुण अथवा कठोर रसों का विवेचन

आरम्भटी वृत्ति की उत्पत्ति आरम्भट शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है साहसी एवं कठोर पुञ्ज। इस नामकरण से ही इस वृत्ति के स्वरूप का निर्देश मनी-पति हो जाता है। इसकी परिभाषा के विषय में नट्यशास्त्र में लिखा है कि जिस वृत्ति में नायक-वनिता इन्द्रबाह्य का वर्णन हो, बिरले, कुरने, उछलने तथा लपकने आदि की विभिन्न योजना हो उसे आरम्भटी वृत्ति कहते हैं। इसके चार भेद होते हैं—सद्विषयक, अविषयक, वस्तुस्थापन तथा संश्लेष।

इस वृत्ति में श्लेषगुण प्रधान होता है। मयाक, रीति एवं भीमस्त रस होने से इस वृत्ति में श्लेषत्व स्पष्ट ही है। अन्तर्गत-श्लेष-रस में आरम्भटी वृत्ति का

१. बालकवर्णनाचार्य—श्लेषालोक, तृतीय उद्योत, व्याख्याता : डा० रामसम्यक त्रिपाठी।

सम्बन्ध विवेचन है। यहाँ श्लेष, भय आदि उग्र भावों का प्रदर्शन सकार की ओर से हुआ है उसको देखते-देखते उग्र व्यापार एवं उग्र भाविक अभिनय सर्वथा इस वृत्ति के अनुकूल है। बसन्तसैना-मोटन में रोड तथा धीमत्स रस होने से आरमटी वृत्ति का बोधित्व है।

मृच्छकटिक के नाट्य दोषों का विवरण

मृच्छकटिक की कथा ऐसी है जिसमें प्रीमियों की कथा है, साथ ही राज-नीतिक दृष्टि का उसमें विवेचन है। यह राजनीतिद्वेषियों की कहानी का आधार बनकर रह गयी है और एक प्रकार से कथावस्तु का भय है। इसमें मृच्छकटिककार ने बसपि मुर समय प्रदास नाटक को लच्छा बनाने का किया है, फिर भी उसमें कुछ दोष डा० राहडर जैसे आलोचकों ने प्रस्तुत किये हैं। इनका उद्देश्य है कि प्रकरण के उपकथाओं द्वारा कथावस्तु के सीमार्ग का ह्रास हुआ है। डा० बी० बी० परांजपे कहते हैं —

"Notwithstanding the high encomium passed by Wilson on the unity of interest in the M K, it has been asserted by some critics that the underplot appears to be a mere overgrowth on the body of the play and mar its beauty."¹

डा० राहडर के विचार से प्रस्तुत प्रकरण की कथावस्तु भी दोषयुक्त है क्योंकि यह परस्पर सन्निवृत्त नहीं है, इसके सम्बन्ध में भी डा० बी० बी० परांजपे ने कहा है।

"The main action halts through acts II—V and during these episodic acts we almost forget that the main plot concerns the love of Vasant and Charu. Indeed we have in "The Little Clay Cart" the material for two plays. The large part of act I forms with VI—X a consistent and ingenious plot, while the remainder of act I might be combined with acts III—IV to make a pleasing comedy of lighter tone. The second act clear as it is, has little real connection with the main plot or with the story of the gems."²

१. V G Paranjpe Mricchakatikam, p XXXIII.

२. V G Paranjpe Mricchakatikam, p XXXIV

इन बातों के बहिर्लोक प्रकरण में कथोपक्रम, दृश्यों के विभाजन, चरित्र-चित्रण, बेचमुया एवं काव्यमय शंका आदि पर भी हमालोकियों ने कीचड़ उड़ाया है। डा० बी० के० माट ने डा० राइडर को उद्धृत करते हुए कहा है—

Dr Ryder, whose short introduction to the English translation of the play is inimitable in its comprehensiveness, accuracy of literary judgement and the charm of expression has made a few observations about the construction and characterization of the play that have evoked much disagreement. It is said, for instance that the play is too long. As a drama the length of *Mrichhakatika* is certainly a factor of serious consideration for a modern or western reader.

But it is more pertinent to ask whether the length of the play has affected its dramatic construction.^१

अलक्षम के विषय में डा० पी० बी० पराजपे का कहना है।

The Chronology is not very perspicuous, so that the incidents that occur in the course of only five days appear to occupy a far longer period.^२

196382

सोमान विरलेषण

मादपद्यात्मक के विचार से रूपक में पात्र और रसों का महत्वपूर्ण स्थान है। कथावस्तु कितनी ही सुन्दर हो, पर जब तक पात्रों का चरित्र-चित्रण और रस का परिपाक सम्पन्न न हो तब तक रूपक सुन्दरस्थित नहीं होता। इस दृष्टि से मृच्छकटिक में कोई दोष दिखायी नहीं देता। इसका अपौरुष सम्बन्ध अंगार है जिसका परिपाक विद्योप के द्वारा हुआ है। जैसे सम्पूर्ण प्रकरण में कथ, हास्य, उद्धृत, मयाक, बीयल, रीति आदि रसों का यथावसर सुन्दर समन्वय है। बलभार, मुन एव रीति के विचार से भी यह प्रकरण सर्वथा अधिक है। पञ्चोक्ति एव चरित्र का भी हमने यथास्वान सुन्दर प्रकाशन किया है।

नृत्तियः का निवेदन हो इसमें हठना स्पष्ट और स्वामाधिक है कि कहते नहीं बनता। सभी नृत्तियों के यथास्वान परिलिखित होने पर भी कैथिकी नृत्ति

१. Dr G. K. Bhat : Preface to *Mrichhakatika*, p. 153.

२. V. G. Paranjpe : *Mrichhakatikam*, p. XXXIX.

को प्राप्त किया था। मन्वान् सगर में उनको अगाध जडा थी, पर इसका आशय यह नहीं है कि वह विष्णु एवं अन्य देवी-देवताओं में विराट् नहीं रहते थे।

सैधो बसाईमहिषीवरमृदनीणो,
विद्युत्प्रभापचितपीठपट्येत्तरीय ।
आभाति सङ्घवज्राकम्पुहीतयत्त ,
स केचनो पर इवाभिमितु प्रवृत्त ॥ म० क० (५-२)
केचनवापयाम कुटितनसाकावलीपचितयत्त ।
विद्युत्पुनकौसेमरकपर इबोन्ततो मेर ॥ म० क० (५-३)

एत श्लोकों से यह निश्चित है कि वह मन्वान् विष्णु के भी भक्त थे। इन्द्रम अथ में चाकदत्त के मुख से वेकपूना का भी गौरव प्रकट किया गया है। फिर इसम अथ में चाकदत्त के ऊपर उठते हुए अर्ध के फिर जाने से चाकदत्त ने दक्षिणात्य होने के माते बुबाँ को सहायतिभी देवो के नाम से स्मरण किया है—

एत सब आचारों पर यह निश्चित है कि वे वैदिक धर्म में सत्तान्त धर्म के अनुयायी थे। उनमें देव और ब्रह्मण विचारों का सम्बन्ध था। सभी को यह दृश्य दृष्टि से देखते थे। बौद्धधर्म का भी अपनी दृष्टि में सम्मान था। बर्षाप्रवर्ष में भी उनका पुर्ण विश्वास था।

वीरिभ्य सन्धु पाथो तनतु वसुपती सर्वर्षणसत्या
पञ्चम्य कातरर्षी मरुत्तननोत्तन्त्रियो वास्तु वाता ।
योत्तजा बन्धबाध उरुतममिमता वाह्याया सन्धु सन्तः
धीमन्त. पान्तु पुष्पी प्रसवितरिपदी बर्षीमिच्छारव भूया ॥
म० क० (१०-११)

इसुत्त भरतवाचम में यह विचार किया गया है कि वाह्याय सदाचारी हों और राजा धर्मीजि हों। कर्म के भोवों पर जो उनका बहुत विश्वास था।

कावित्तुभ्यति प्रपूरवति वा कावित्तुभ्यत्तुन्त्रि
कावित्तुभ्यत्तुन्त्रि कपोति व पुन कावित्तुभ्यत्तुन्त्रि
अन्धोन्य प्रतिवत्तसहृदिमिमा लोहस्विति बोधय-
न्धेव वीदति कूपयत्तवदिवाग्वावप्रसक्ती विदि ॥
म० क० (१०-१०)

सर्वाङ्ग विपाठा क्रियो को कूपदग्ध (रहूट) के पाशों के अनुसार अग्र-नीचै से जाते हुए तुञ्ज बनाता है तो किसी को सम्पन्न कर देता है। क्रियो को उन्नति की ओर के जाता है तो किसी का पतन करता है और किन्हीं को तो बालुका क्रियो रहता है। इस प्रकार परस्पर विरोधी मापरमों से संसार की बबला का बोध करता हुआ यह मनुष्य के जीवन से चिछवाट करता है। इस श्लोक से मूञ्जकटिककार की अन्य मान्यताओं और विश्वासों को भी झलक मिळती है।

निष्कर्ष

मूञ्जकटिक में वैदिक देवता इन्द्र और सूर की चर्चा है। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, रुद्र और अन्य देव भी पदास्त्राल लक्ष्य हैं। बुद्ध-मिशुन्म का विनाश करने वाली देवी की भी वाचपना करी यही है। पद्मानन कातिकेय तैल कवाने वाले चोरो के देवता कहे गये हैं तथा चौब पर्वत का संरक्षण करने वाले बटग्ये गये हैं। सहायताधी के रूप में दक्षिण में देवी की पूजा की चर्चा है। नगर-देवता का भी उल्लेख विद्यता है। देवमूर्तियाँ अथ बगवा पर्यर की ह्योवी थी। चरो में श्री देवमूर्तियों की पूजा अत्रयतः की जाती थी, क्योंकि बसन्तसेना के घर में वैदिक अर्चन के लिए ब्राह्मण का उल्लेख है। चर की देहकी भयना मगर के चौपहे घर मातृदेवियों तथा भ्रम्य देवी-देवताओं की बलि अथवा उपहार पढाने की प्रथा थी। सब प्रकार के कृत्यों से पूर्व देवी-देवताओं का ध्यान किया जाता था। यह बात न केवल सामाजिक कार्यों के लिये थी, बरन चोरी जैसे कुकृत्य से पूर्व भी चोरी के देवता का ध्यान करना आवश्यक था। पुनर्जन्म तथा कार्य-निश्चल्य में सामान्य विश्वास था। चारुसत जैसा चर्ममिष्ठ व्यक्ति ही नहीं, बरन् ब्रिट तथा स्वावरक जैसे पात्र भी, इस जन्म में बुरा कर्म करने से डरते थे। यह विश्वास था कि इसका पुष्परिचाम बगसे जन्म में मिलना पड़ेगा। परलोक में स्थित पितृपी की सतुष्टि प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य माना जाता था और उसकी प्रशानता के लिए पुनर्जन्म का निश्चित महत्त्व समझा जाता था। सामिक आस्था पूर्ण रूप से ही नहीं, बरन् सामान्यतः बुद्धदेवी की भीरसे रोकथाम अवश्य करती थी।

(स) वैदिक धर्म

मूञ्जकटिक के समय वैदिक धर्म में अज्ञा थी। पञ्चमहायज्ञ (देवपूजा, यज्ञ, अतिथिउत्सव, तर्पण, बलि) वर, उपवास, दान और उप में अज्ञता का पूर्ण विश्वास था। ये सामिक कृत्य उनके जीवन के अंग थे। प्रकरण का अनुपात ही

धार्मिक विषय को लेकर हुआ है। सूक्तकार ने जो गटी द्वारा किये हुए अद्विकल्पपति नामक उपवास पर कुछ रोष सा प्रकट किया है—'वेदवन्तु वेदवन्तु अत्रममिस्ता असापरित्यक् पारलोइमो वत्ता अग्नेमी' आदि। अर्थात् सूक्तकारों! इन्द्रिये इन्द्रिये मेरे भात के अयमस्वरूप पारलौकिक पति हुआ जा रहा है—पर इसका माया यह नहीं है कि सूक्तकार इस पथ के प्रति बड़ाहीन हैं। गटी द्वारा अत के अंगण को समझकर वह कहता है—'अरो यच्छु भग्ना। अहनि अम्हारिसवज्जोन्व ब्रह्म्य सवपियन्तैमि' अर्थात् तुम जाओ। मैं भी अयन यौग्य ब्राह्मण को निमणित करता हूँ। आये आरवत्त और विदुषक में इसी सम्बन्ध में पारस्परिक विरोधपूर्ण बात चलती है। प्रथम अंक में आरवत्त विदुषक से पीरह्ने पर मातृदेविओं को बलि भेंट करने को कहता है—'तत्रमस्य इती मया बृहदेवताम्नो बलि पच्छ त्वमपि अतुभ्यमे मातृभ्यो बलिमुपहर'।

अब विदुषक जाने के लिए निषेध करता है तो आरवत्त कहता है 'महीं, ऐसा नहीं, यह तो बृहत्स का नैतिक काम है'—

उपसा मतसा धार्मि ब्रुविता बलिर्कर्मिनि ।

तुष्मन्ति धमिना नित्य देवता कि विचारितै ॥ मु०क०(१-१९)

अर्थात् उप, अब, वचन एवं बलिर्कर्मों द्वारा प्रुविता देवता वाग्दत्तित्त वाले पुष्पों से तदैव अन्तुष्ट रहते हैं। आरवत्त का सम्बन्धोपासन और सुयंत्रा भी उसके धार्मिक कृत्य के प्रतीक हैं। द्वितीय अंक के आरम्भ में वसन्तसेना अटी से कहती है कि मैं आज स्नान नहीं करूँगी अत ब्राह्मणदेव ही पूजा कार्य करें। 'श्रैटि। विज्ञापय मातरम् अथ न स्नास्यामि। तद् ब्राह्मण एव भुजा निवर्तय'। ऐसा समझा है कि वसन्तसेना के पर देविक पूजा के द्विमे ब्राह्मण निमुक्त था। कामदेवायतनोत्थान का उत्पन्न भी देवपूजा का प्रतीक है।

मुख्यपूजा इस समय प्रथमिष्ठ थी। ये मूर्तियाँ उत्तम परस्पर मोट लक्ष्मी की होती थी। अद्विकल्पपति उपवास की भाँति ब्रुता द्वारा सम्पादित रत्नवही अत के सम्बन्ध में तृतीय अंक में वर्णन है। अत के नाय के अनुसार रत्नमाहा इस उपवास में ब्राह्मण को भेंट करने हुए वह कहती है—'अह अतु रत्नवहीमुनो पितामम्। तत्र मयाविश्वानुमारेण ब्राह्मणः प्रतिश्राहिवम् । मय न प्रतिश्राहित । ततस्य इने अतीच्छेमा रत्नमाधिकाम् ।' अत एव उपवासों में ब्रह्ममीन होने से और ब्राह्मणों की शान-वक्षिणाएँ देकर अन्तुष्ट विद्या काठा था। अहम अंक में अपञ्चम से विट का हृदय भी वर्णन उठता है। वसन्तसेना के अथ के पैटास्वरूप अध्ययन कार्य से वह शुभकालना करता हुआ कहता है—

वये । बाई एव पावनी निवृत्तः बवेन च पतता स्त्री म्यापावता ।
 मोः पाप किमिदमकार्यमनुष्ठितं त्वया । उवाचैव पापिनः फतनास्त्रीवपवर्षने-
 नातीनपतिष्ठा वरम् । अनिहितमेतत् । पत्सख वसन्तसेना प्रति सञ्चित
 ये मन । सर्वमा देवता स्वस्ति करिष्यन्ति ।

इस माँति सभी पात्र अपने-अपने भ्रष्टा और विश्वास के अनुसार अभीष्ट
 देवताओं की उपासना में लीन हैं । अनेक प्रकार के यज्ञ भी उस समय होते थे ।
 अतम शक में प्राणजन्त के सुन्दर आभूषणों से पित्र हुमा आरक्त कृता हैं ।—

वसन्तपतिपुत्रं पौत्रमुद्गासिं वै ।

सर्वसिन्धिविष्णुस्यैव्यज्ञाद्योयैः पुरस्तात् ।

वम मरणवशात्वा वसंयामस्य पापै-

स्त्रवस्वसमनुष्यैर्धुम्पते शोवपाशाम् ॥ मू० क० (१०-१२)

अर्थात् रीक्यों यज्ञों से परित्र जो मेरा वर पहले उवाचों में अनुजो से पिरी
 यज्ञाका श्री वैष्णवियों के प्रकाशित हुआ था यही अब मूसुक्त में पापी एवं
 अयोप्यवर्षों द्वारा वपरापत्यरूप धोपित किया जा रहा है । इसी बात होता है
 कि उस समय समान यें यज्ञों का समारोह होता था । उस समय के पुरस्तापन
 विहाय, आरम्भ, वैशाख्य, ठडामक्य निर्माण बादि धार्मिक मनोवृत्ति के शोचक
 हैं । अयोप्य व्यक्तियों द्वारा संन्यास ग्रहण कर लेने से संन्यास के प्रति बन्धी
 भावना न थी । अतम शक में बिठ की वसन्तसेना के प्रति निम्न उक्त से
 इसका निश्चय होता है—

संन्यासः कुञ्जपुत्रीरिव पानीमैर्नृत्तपत्न्याम् । मू० क० (५-१४)

अर्थात् बास्कों द्वारा पत्न्या उसी प्रकार दूषित कर दिया गया है जिस प्रकार
 कुञ्ज को दूषित करने वाले शोपो के द्वारा संन्यास कर्मांकित कर दिया जाता है ।
 देवी-देवताओं में अननुदान का विश्वास था । उठे शक में पत्न्याक शार्क से
 कृता है—

अमर्षं तुह देव हरी विष्णु मन्दा रवी म पन्दी म ।

हृषुप सचुवस्तं शुम्भानुम्भेववा देवी ॥^१ मू० क० (६-२०)

अर्थात् शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य वीर अत्रमा अनुपत्त की मारकर तुम्हें उसी
 प्रकार अथय प्रदान करें जिस प्रकार शुम्भ और निर्दुम्भ को मारकर दुर्गा देवी ने
 देवताओं को अथय प्रदान किया था ।

१ अथयं तव ददातु हरी विष्णुर्ब्रह्मारविच ।

हृत्वा अनुपत्तं शुम्भानुम्भो यवा देवी ॥

अष्टम अंक में दोनों शाखाओं की निम्न शक्ति से श्राव्य होता है कि इस की भी उपासना प्रचलित थी।

इन्द्रेयवाहिन्यन्ते शोष्यशै सक्त्य च तातागम ।

सुसुसिधपावविमन्तो वसतिश्च इमेन बटुम्बा^१ ॥ मू० क० (१०-७)

निष्कर्ष

बैदिक धर्म की दृष्टि में रहते हुए यह कहना उचित होगा कि इस युग में प्राचीन धर्म का रूप परिवर्तित था। पहले सूर्य, चात्रमा, बल, बलि इत्यादि का मन्त्रों द्वारा उपासक स्तुतिदान करत थे पर अब इनके साथ-साथ बौद्धों की भी शैवतास्वरूप में उपासना होने लगी थी और वह भी मन्दिरों में प्रतिमा के रूप में। बसन्तसेना के यहाँ अपने पर पर एक मन्दिर था। फिर वास्तव था शोषदाग तो कई मन्दिरों के निर्माण में था। डा० जी० के० माट का विचार है^२—

"The play represents a state of religion in which the older forms of Brahmanical religion still continued to exist while the newer forms of the popular Hinduism were becoming increasingly preponderant. It is rather a mixed state."

(ग) बौद्ध धर्म

यहाँ एक ओर वैदिक धर्म अपनी चरम सीमा पर था वहीं बौद्ध धर्म भी सामान्य रूप से सञ्चार में प्रचलित था। मूच्छकटिक में बौद्धधर्मों सवाहक बौद्ध मिस्रु के रूप में उल्लेख पाते हैं। मिस्रु के लिये यही यहीं व्याख्यानचक्रवा परिचायक शब्द का भी प्रयोग किया गया है। स्त्रियाँ भी बौद्ध होती थीं। अष्टम अंक के अंत में मिस्रु बसन्तसेना को अपने साथ विहार के आते हुए मिस्रु की विषय में कहता है—'एदञ्जिन् विहाणे मम पम्मवहिणि बच्चिट्ठि, तहि ममसागिरमथा अविज्ज उवाचिजा गेह गामेस्पादि' अर्थात् इस विहार में मेरे धर्म बहिन रहती हैं, धर्म चारण कर उच्च उपासक के घर चलो। ऐसा बहुरूप मिस्रु न बौद्ध धर्म का आदर्श स्थापित किया है।

१ इ इ ब्रह्महृमागो पौत्रशुच संख्याय ताराणाम् ।

सुसुसिधपावविमन्तो वसतिश्च इमे न इष्टम्बा ॥

२ G K Bhat Mucchakatika, p 197

'बोलात्म बग्वा । बोमम्पएसा ठन्नुओ इतिषा एषो मिस्सुति गुटे मम एषो धम्मे ।' बर्मान् भार्ये लोम चलो, वीम चली, यह युवती स्त्री है, यह मिस्सु कामरहित निर्दोष है, क्या रिशाला मेरा भर्ता है ।

बौद्धधर्म यद्यपि अब कुछ भाषा-सम्बन्धी शेष भाषा से पठन की ओर बढ़कर हो चला था, फिर भी उसमें प्रायः मिस्र इन्द्रियसन्धनी और उपस्वी होते थे । बहम शक के अन्त में मिस्र ने कहा है —

हस्ताब्धरी मुहसब्धरी

इन्द्रिय संसदी शी म्नु मापुमे ।

कि क्तेबि भावजने तस्त्र पसलीओ ह्त्से मिष्त्वमी ॥^१

मू० क० (८-४७)

बर्मान् वही वास्तव में मनुष्य है जो हाथों से सपनी है । मुद्रा से सपन रहता है तथा इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखता है । राज्यव्यवस्था ही नहीं चला सकता । परबोध ही निश्चित रूप से उसके हाथ में है । इतना ही कुछ होते हुए भी समाज उन्हें सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता था । बर्मा तक कि लोच बौद्ध धर्म के दर्शन को अपयुक्त समझने लगे थे । बर्मा के मुक्त करने के पश्चात् बीर्मावास से आते समय अब चाखरत के सामने मिस्र आया है तो चाखरत उसके दर्शन को अपयुक्त समझकर कह उठता है—'कवमिमुचमतान्नुबिक्कं धम्मकवधर्मिम्' । कुछ शोक प्रसार में सिरमूँडे मिस्र के रूप में रहते थे, पर सामाजिक वास्तवों से उनकी विरक्ति न थी अतः ऐसी ही ओर घुंकेट करके कहा गया है—

चित्तमुग्घिह तुग्घ मुग्घिदे चित्तपमुग्घिह कीच्च मुग्घिदे ।

चाह उच्यते चित्त मुग्घिदे सान्नु सुदत्तं मिन्नं ताह मुग्घिदे ॥^२

मू० क० (८-१)

बर्मान् सिर मुग्घ किया, मुद्रा मुग्घा चित्त चित्तु नत वही मुग्घाया तो यह मुग्घाया चित्त काव का । फिर चित्तव्य म्नु मलीर्माति मुद्र मया उच्यते सिर बर्मा भक्ति मुग्घ मया । बीट्ट मिस्रुओं का निवास उस समय बिहारो में होता था । कुछ महिन्द्रियों में वही बौद्ध धर्म ग्रहण करके मिष्सुधर्मियों के रूप में रहती थी । उस

१. हस्तसंस्थो मुससमतः इन्द्रियसमत' इ चक्षु मनुष्य ।

कि कठोपि रात्रकुलं तस्त्र परलीओ ह्त्से मिचस ॥ (सं० मनु०)

२. चित्तो मुग्घिह एवमुग्घिह चित्त न मुग्घिहं कि मुग्घिहम् ।

यस्य पुत्राय चित्तं मुग्घिह सान्नु सुदत्तं चित्तस्य मुग्घिहम् ॥ (सं० मनु०)

समय अनेक मठ वे एव कई विहार भी थे । बिहारों का एक कुलपति होता था । ब्रह्म अक में ब्रह्मन्तसेना के प्राय यज्ञाने के उपलक्ष्य में भारत में मिश्रु थे कहा— 'तत्पुत्रिभ्या सर्वविहारेषु कुलपतिश्च क्रियताम् ।' राजा का बिहारों पर नियन्त्रण था । मिश्रु अपने सामिक प्रवचनों में निम्न उक्तिबो को दुहराते थे ।

शबन्मय बिबपौट गिण्ण वग्गेव माहपवहेण ।

विद्यया इन्द्रिय बोला ह्यस्मि विद्ययाविद वम्म ॥^१

मृ० क० (८-१)

अर्थात् अपने उबर को समझ करो, ध्यानरूपी नवाडे से सरा जानते रहो, क्योंकि ये इन्द्रियरूपी पार भयकर हैं और बहुत समय से सचित धर्म को हर लेते हैं । फिर—

पचउज्जय येन माहिदा इत्थिद्व माहिम गाम सत्थिद्वे ।

अवसे म पग्गान माहिदे अवसदि रोपक उग्ग माहुरि ॥^२

मृ० क० (८-२)

अर्थात् जिनसे पाँचों इन्द्रियों को मार रिमा, अविद्या रूपी स्त्री को मारकर पत्थर रूपी श्वा की रक्षा करली तथा दुर्बल पाग्गान वहकार का नाश कर दिया वह मनुष्य अवश्य स्वर्ग प्राप्त करता है ।

श० बी० बी० पराजो ने इस सम्बन्ध में अपने मृच्छकटिक में उद्धृत किया है —

Kings and princes thus appear to have patronized the followers of both the religions and in none of the inscriptions is there an indication of an open hostility between them^३

(History of the Deccan)

निष्कर्ष

बौद्ध धर्म के नियमानुसार मिश्रु अपना यज्ञ बनने के लिए चाति, बामु अथवा सामाजिक स्तर का प्रतिबन्ध नहीं था । उदाहरणस्वरूप सवाहक भगव

१. उपलक्षण निबोधरं कित्थं ज्ञानुत्तं ध्यानपट्टेन ।

विद्यया इन्द्रियबोला ह्यस्मि विरक्तचित्त धर्मम् ॥ (स० अनु०)

२. पचउज्जया येन माहिदा इत्थिद्व माहवित्था प्रामो रत्तिद्व ।

अवसे वव वाग्गानो माहिदोअस्सपपि स मर स्वर्गं वाहुरे ॥ (स० अनु०)

३. Dr. V. G Paranjpe Mricchakatikam, p 104.

बन गया था। स्थितियों भी निम्नगोत्र बन जाती थी। मनु अथवा ब्रह्मचारी की स्थिति में जीवन के सभी लौकिक सम्बन्धों तथा आरम्भों का परित्याग करना होता था। वे धर्माग्रो का पाठ करते थे और स्वर्गप्राप्ति की कामना से अनुप्राणित रहते थे। प्रत्येक नगर में मठ अथवा विहार होते थे। इन विहारों पर राजा का नियन्त्रण रहता था।

(घ) वर्णव्यवस्था एवं ब्राह्मण जाति

यद्यपि वर्णव्यवस्था जाति से एक कर्म से दो प्रकार की मानी गयी है पर वह निश्चित है कि आरम्भ में कर्म से यह व्यवस्था प्रचलित थी। बाद में जातिगत व्यवस्था बृद्ध होती गयी। ब्राह्मणों का कर्म यज्ञ करना, पहना-पहनना इन्तम् दान देना और राज लेना था। एक कभी परम्परा इसी प्रकार चलती रही और धीरे-धीरे कर्म के आधार पर कठुलाने राजा ब्राह्मण-धनुषाय ब्राह्मण जाति के रूप में परिवर्तित हो गया। यही बात अन्य कर्मों पर प्रामाणिक अन्य जातियों के सम्बन्ध में भी रही। कर्म कर्म इनमें व्यवस्था भी प्रारम्भ हुए, जैसे ब्राह्मणों में भी वैश्यों वीथी मावन्तों आदि और अन्य जातियों में भी अपने मुख्य कार्यों को छोड़कर अन्य कार्यों का आशय बिलामी देने लगा। संस्कारों की हीनता प्रकट होने लगी। इस सम्बन्ध में यह कहा अनुचित न होगा कि अन्य कार्यों के प्राय-तः अन्तर्गत विवाह भी वर्णव्यवस्था को दूषित करने वाले सिद्ध हुए।^१ यद्यपि मनुस्मृति में इस विषय में कुछ स्थिति दिखाया गया है, पर उसका निर्वाह उचित रूप में ही यह नहीं कहा जा सकता। ब्राह्मणों के लिये एक मात्र वर्णों के लिये अपने ही हीन वर्णों की कन्या मनु के अनुसार प्राप्त मानी गयी है, पर इसी रूप में सर्वथा इसका पालन हुआ तो यह तो निश्चित नहीं कहा जा सकता। फिर इस रूप में भी निम्न वर्णों की कन्या के निम्न स्तर होने से अन्तर्गत वे सशक्त व्यक्ति के सम्बन्ध में जाने से उपाय उत्पन्न होने वाली बटाल में उसके हीन कर्मों की सकल क्षमता बिंद जाती हो—बहु एक विचारणीय बात है। फिर इस सम्बन्ध में मनु^१ में जिन विवाह-सम्बन्धों को

१. पूर्वाभ्यां शूद्रस्य वा पत्न्या वा विद्यते स्मृतेः।

ते च स्वापैव राज्ञस्य तास्य स्वापयन्मनः ॥ (मनुस्मृति अ० ३ श्लोक १३)

२. महामृत्योर्पि समृद्धानि योशानिधान्यत ।

स्त्रीधरत्रे दण्डादि कुशानि हरिर्बन्धेत् ॥

हीनक्रिय निपुण्य निरुच्छो योमघार्शसम् ।

उप्ययवाम्यपस्मार्तिरिषिषिकुतिकुम्भनि च ॥ (मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ६-७)

शेषपूर्व ब्रह्माणा है। उनका भी समाज में कितना ध्यान रखा हुआ। यही कारण है कि वैसे यह शेष बढ़ते गये और आज भी हमारे सामने बड़े-बड़े रूप में है।

मूच्छकटिक के रचनाकाल में एक ओर हिन्दुओं में ब्राह्मणों का अपने कर्मों में यदि औचित्य दिखाया गया है तो दूसरी ओर विविधता के भी उदाहरण मिलते हैं। बौद्ध धर्म के प्रभाव से कर्म-कर्मि आठवीं शताब्दी के अनेक मानवपुत्रों को प्राधान्य दिया गया है। एक ओर में चाण्डालों की निम्न स्थिति से यह सात होता है कि वे चाण्डाल का कर्म करते हुए भी स्वयं को चाण्डाल नहीं मानते।

यद् वृत्तं ब्रह्मे चाण्डाला चाण्डालाकुसुमि चातपुत्रा वि ।

वे अग्निवर्णितं शाशु ते पापा स्ते च चाण्डाला ॥^१ मू० व० (१०-२२)

मूच्छकटिक काल में बर्बरत्वबन्धा मुद्दू न भी पर इस सम्बन्ध में यह निश्चित है कि ब्राह्मणों से प्रत्येक वर्ण एक जातिगत रूप को धारण कर चुका था और कहीं कहीं तो यह जातिगत रूप उपजातियों में विभक्त हो चुकी थी। इस सम्बन्ध में धर्म जाति उत्प्रेक्षणीय है। यह वर्ण अपने सेवाकार्यों के अनुसार अनेक नामों से विख्यात था। अपने-अपने कार्यों के अनुसार नाम होते हुए भी वे पृथक्-पृथक् उपजातियों में विभक्त थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अतिरिक्त चाण्डालों का भी एक वर्ण या ब्रह्मको पंचमवर्ण कहा जाने लगे था। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि था। वे अपने कर्मों का सम्पादन तो करते ही वे अन्य वर्णों के कार्यों में भी कहीं-कहीं बड़े कुशल रखे गये। बौद्ध धार्मिक कार्यों में पाश्चात् के पूर्वजों की पक्षाधीनी थी। बड़ी बात अन्य वर्णों में भी सम्भव रही। वैश्य व्यापारिक कार्यों के सम्बन्ध में वे केवल स्वदेश में, बरगु विदेशों में भी प्रथम करते थे। रैतिक नायक पात्र उग्रवर्धनी का एक व्यापारी और पाश्चात् का मित्र तथा एक विचित्र नायक भी था। शत्रियों का मूच्छकटिक में उल्लेख नहीं है। सम्भवतः वे शैतिक कार्यों में ज्ञान लेने वाले व्यक्ति रहे हों और उग्रवर्धनी के साथ भी हों। शूद्रों के कार्य सेवा के अनेक रूपों में प्रयुक्त रहे जो आज भी विद्यमान हैं। गार्ह, पाषाण, दूर्वा, गुणार, बड़ई कुशाई, चमार आदि वे कार्य इन्हीं सेवाओं का अन्तर्गत हैं। आज के युग में इनमें से कुछ वर्ण धार्मिक रूप में अन्य जातियों द्वारा सम्पादित हो रहे हैं। इस समय स्त्रियों के उदात्त पदों में भी

१ न तनु ब्रह्म चाण्डाला चाण्डालाकुसुमे चातपुत्रा वि ।

वैग्निवर्णितं शाशु ते पापा स्ते च चाण्डाला ॥ (स० मनु०)

महापति विद्याई पर्य है। लक्ष्म बंधु में अधिकतरमिक ने धकार से कहा है—
 'वैद्यमान् प्राह्वयस्त्वं न च ते विद्वा निरतिथ' स्त्रियों के संसृष्ट पडने में भी
 विशेष प्रकट करते हुए मैत्रेय ने चाक्यरु से तृतीय बंधु में कहा है—

'इत्थिवा वाच सत्कथ पठन्ति, विध्वमवगास्ता विम मिट्टी अहिमं
 सुसुत्राजरी'।^१ मृ० क० (पृ० ३०)

यहाँ एक सेवा कार्यों में नियुक्ति का सम्बन्ध है। उक्त समय राज्य की ओर
 से कार्यकुशलता देखकर नियुक्तियाँ होती थीं और जातिगतहीनता उसमें बाधक
 नहीं थी। शीरक और चन्दनक इनके प्रमाण हैं। चाक्यरु अपने चरम्य कार्य
 पंती देने के कारण सुनों से भी गये-बीते माने जाते थे, पर यह अचरम है कि
 ये मानवता से विरै हुए नहीं थे, वरन् अपने कार्य को अपनी भावोबिधा
 का साधन मानते हुए कर्तव्यरूप में अपनाते थे। डा० माट ने इन्हें धूरे
 माना है।

'In Candala we have the instance of the Sudra class.
 The Candala puts up a claim that the man who ill-treats a
 pious gentleman is a real sinner and a Candala, but this
 is only an idealistic claim and means at best that he has
 not the heart of a butcher.'^२

मृच्छकटिक में कायस्थ की पधना व्यापारिक के पदाधिकारियों में की गयी
 है। यह अधिकतरमिक का बहावर (Assessor) भी होता था। भारतीय संस्कृत
 शरिर्य में, विशेषतः मनुस्मृति अपना वर्मशास्त्रों में, कायस्थ चरम देखने से नहीं
 था। वर्धधमस्या में भी कायस्थ को कहीं स्थान नहीं दिया गया है।
 वैसे अपनी अथह इनका समुचित सम्मान था। डा० वी. जी. परांवे का
 कहना है—

The case of Karanas mentioned in *Mitra* and *Yajna* has
 been identified with the Kaysthas and the Karanas also
 assume the name of Kayasthas, but they are disowned by
 the latter. The Karanas are a mixed caste born according
 to the old theory of the Vaisya by a Sudra Mother of
Yajna.^३ they figure also among the Vratyas in *Manu*.^३

१. स्त्रोतावसंस्कृतपठन्ती, वतनयनास्वेव मृष्टिः अधिकं सुसुत्राजरी करोति। (स. ३.)

२. Dr. G. K. Bhat : Preface to *Mrichhakatika*, p. 228.

३. Dr. V. G. Pranjpe : *Mrichhakatika*, p. XVII.

शास्त्रवस्तु स्मृति में कायस्थों के विषय में कहा गया है—

वाटुत्तरुत्तुर्भूतमहासाहसिकारिमि ।

पौत्रमालाः श्रवा एतोरकायस्वीय विद्येवतः ।

यही बात मृच्छकटिक के नवम अंक में 'चिन्तासकमिदमन्विषसितम्' इत्यादि पद में व्यक्त की गयी है ।

कायस्थ उच्च धर्म और शोक भाति में सम्बन्धित यदि कहा जाये तो अनुमान है कि यह मूलतः भारतवासी न थे । श० बी० जी० परांजपे का कहना है ।

"Of course all foreign invaders of India including Greeks become hundred in less than a century from arrival in India and this continued right up to the eight century, when either Hinduism had lost its vitality or had to resist to powerful an opponent"^१

महाभाष्य के प्रथेना वतजपि मे सकों की विदेशी तथा शूद्रों का इसके समकक्ष माना है ।^२

निराकरण

वर्षाभ्यन्तरका इस युग में सुदृढ़ नहीं थी । इस समय के ब्राह्मण अपने धर्म में कार्य करते हुए भी अन्य कामों में कुशल थे । कुछ ब्राह्मण तो बड़े बळ्ठे व्यापारी थे । चाणक्य के पिता और बाबा भी व्यवसायी होने के नाते सेठ कहलाते थे, पर इस समय के ब्राह्मणों की रक्षा भी व्ययवस्थित थी । जहाँ एक ओर कुछ युवक ब्राह्मण अपने शास्त्रजोषित मार्गों को सम्पादित करते थे और जिनके मध्य वैदिकत्व से बूँदते थे वहाँ दूसरा ओर ऐसे भा ब्राह्मण थे जो शोरी करना, जुमा लेसना और राजनीतिक कार्यों में पति रहना पुरा नहीं

१ Dr V G Paranjpe *Mrccchakatika*, p. XVIII

२ "Mahabhasya" 'मृच्छकटिकशास्त्राभाष्यम्'

The nature form *सकपवचनम्* would show that the sakas and yavans were regarded as Sudras who were not 'excommunicated', and who as yet were not regarded as inhabitants of India

सम्मानने थे। अस्पृश्यता सिद्धित हो चली थी। कुछ ऐसे जन्तुपुत्र स्वामि थे जिनका उपयोग शाहूज एव लिम्ब बर्षों के लिए समाप्त था।

बाप्या स्नाति विचक्ष्णो विचक्ष्णो मूर्धोऽपि यणचिमं । मू० क० (१-१२)

कही-कही मयों में एक बानि वचन पेशेवरों के मुहुरे ही पुधक होते थे। द्वितीय तक में वास्तव का परिचय देते हुए सवाहक व कहा है—

‘स यत्तु अतिपत्तरे प्रतिवर्तति’

इस भाँति बर्षव्ययस्या के अक्षर का आरम्भ जिन बार प्रकार के सामाजिक मुख्य कर्मों को लेकर श्रुतियों द्वारा प्रकीर्त हुआ था अतः सर्व जसमें सिपिमता माला गयी। कालान्तर में कर्मों के अनुसार बर्षों का विभाजन एक प्रकार से समाप्त हो गया और वाचिप्रवा के रूप में यह व्यवस्था जब रूप में हमारे समक्ष मल आयी।

शाहूजों का शाहकों की दृष्टि में बड़ा सम्मान था, फिर तत्कालीन शासन में और स्वायत्त विषयों में अतका बड़ा रूप भी था। उनके अर्क में सेविकामो (शूद्र महिषामो) के वा जाने से एक नवीन वाचि का वाचिर्वाचि रूप्य जो जाने अस्तक कल्पस्य अस्तकयो। यह भी एक विचार है। गौरीयकर होराचन्द्र बोझ ने अपने सम्प्रकाशीन भारतीय सस्कृति में ऐसा व्यक्त किया है।

बैदिक तक ही शाहूजों की महत्ता निरंतर चम्पे जाती है। मनुष्यों में सबश्रेष्ठ शाहूज माने जाते रहे हैं। इन विषय में निम्न उक्ति भी प्रचलित है।

भूताना प्राणिम श्रेष्ठः, प्राणिना बुद्धिजीविन

बुद्धिस्तु नरत्त श्रेष्ठः, नरेषु शाहूजा स्मृताः ॥ प्रकीर्ण

अपने सम्भवतः अरिष के कारण शाहूज सभी बर्षों में श्रेष्ठ माने जाते थे। उन समय का समाज उन्हें सम्मानित बुद्धि से देखता था। निमत्रण एव समुचित दण्डना भीरु श्रेष्ठ के अतका आबर करता था। एक बर्ष शाहूजी में ऐसा भी था वा दाव-दस्तिवा न्हो वेता वा भीरु न निमत्रण ही स्वीकार करता था। इस बर्ष को अतिप्रशस्त कहा गया है। ये अपने में विशेष थे। नबम तक में वास्तव के विषय में अधिकतरिक का यह कहना इसका प्रतीक है कि पापी भी शाहूज सम्बन्धी नहीं है, बल्कि बमस्त वैभव अतिवृत्त अतका राष्ट्र से निकाल देना उचित है। फिर भी वास्तव को पात्रक द्वारा फसों का दृष्ट एक मपनाव था।

अथ हि वाचकी विप्रो न बभ्यो मगुरवपीम् ।

प्राह्वरस्मात् निर्वात्यो निमवैरजातं सह ॥ मू० क० (१-२९)

दूसरी ओर ब्राह्मण के द्वारा कुवर्ष आदि के बहकानों का भुराया जाया भी महापशुक माना जाता था। वराम अरु में बिहूवक की भूटा के प्रति इत इति से कि अमीर तिद्धि के लिये प्रवृत्त हुना व्यक्ति ब्राह्मण को भागे करके उसका अनुसरण करे, समाज में ब्राह्मणों का आदरणीय स्थान प्रतीत होता है।

‘समहिततिथ्ये प्रवृत्तेन ब्राह्मणोऽप्ये कर्तव्य’

द्विष्ट का मंत्रों के चरणों पर विरता ब्राह्मण के सम्मान का चोटक है और मंत्रों का क्रम में पादरत्न के चरणों को न घिसा इस बात का प्रतीक है कि ब्राह्मण को अपने पीरम और स्वामिमान का बहुत ध्यान था। कुष्ट सकार ने भी यह स्पष्ट किया है कि यह वेदशास्त्रों और ब्राह्मणों के भाये मन्त्र पदों से पहुँचेगा।

मञ्जोपवीत का धारण करना ब्राह्मण के लिये एक धार्मिक स्थल माना गया है। अविच्छन्न भी ब्राह्मण था, पर उसने उपवास के रूप में मञ्जोपवीत का उपयोग एक फीते के रूप में, आमुषणों के जोड़ खीलने के कार्य में, किनाह की द्विष्टकी अक्षय करने में और सपों के द्वारा कटने पर बच रुकाने में बताया है।

एतेन भाषवति मित्तियु कर्ममार्थ-

मेठम मोचयति मूयसप्रबोवान् ।

सदृशाटकी मयति मन्वदुहे कपाटं

बहस्य कीट मुबई परिवेष्टन च ॥ म० क० (३-१६)

पादरत्न ने इस मञ्जोपवीत को ब्राह्मण का आभूषण माना है। अपने को बध्य स्थान में बैठकर अपने पुत्र को यह अपना मञ्जोपवीत ही देना उचित समझता है।

अमोक्तिकमसीवर्षं ब्राह्मणानां विमूचकम् ।

देवदानां पितृणां च मागो वेन प्रदीयते ॥ म० क० (१०-१८)

मन्त्र अरु में अदिकरमित्त ने पादरत्न के विद्वत् सकार को बोलते हुए और अपने प्रति यह कहते हुए कि यह मन्त्रहार पसपाठपूर्ण है, सकार को यह कहकर कटकारा है कि नीच होकर तू वेद का वर्ण कहता है फिर भी तेरी बिहूना नहीं विरती—

‘वेदापीत्याहृतस्य वसति न च ते बिहूना निपठिता’

इससे यह निश्चित है कि उक्त मुत्र में विम्व वर्ष द्वारा वेद का अध्ययन अनविचार चैष्ट्य मानी जाती थी। विशेष रूप से वेदों का स्वाध्याय और अध्यायन ब्राह्मणों का ही कार्य समझा जाता था। विम्व वर्ष से तो ब्राह्मण दाज

सी सेना बन्दार नहीं समझते थे। क्योंकि वरुण बंकर से वास्तव में द्वारा व्याख्याओं से वान की चर्चा आते पर धारणाएँ धारण में वास्तव से कहते हैं कि क्या आप हमसे वान के सक्त हैं।

ब्राह्मण के प्रति ब्राह्मण-भाव की भी मूककण्ठिक में कमी नहीं है। आरम्भ में सुनवार का मीनेय के लिये लड़के पर पर मोहन करने का निमन्त्रण है—

‘मद्य मीनेय । अस्माक गृहेऽभिनुमयसीर्भवत्वार्यः’

मीनेय की बस्ती-वृद्धि पर पुनः दक्षिणा के लिये भी निवेदन किया जाता है—

‘वार्थ । सम्पन्न मोहन मिःतपान च । अणि च वसिष्ठापि से मन्विष्यति’ पर मीनेय के स्वाभिमान से इच्छा भी टूटा दिया। पछत्तछेता का ब्राह्मण वास्तव के प्रति प्रेम देखकर द्वितीय बंकर के आरम्भ से बर्निका भी पूछा—

‘मिवास्मिन्वातंकुतः कि कोऽपि ब्राह्मणमुवा काम्यते ?’

बसन्तसेवा ने उत्तर दिया।

‘पूजनीयो मे ब्राह्मणजनः ।’

दक्षिण बर वास्तव के यही अपने और कर्म की बात बदलित की सुनाता है तो बदलिका कह उठती है कि तुमने नहीं किसी को मारा बरबा भावस तो नहीं किया। इस पर उसके ब्राह्मणत्व का स्वाभिमान बाध उठता है और वह कहा है—

‘अनिकै, मोसे सुने न उचिष्क. प्रहरति । तम्भवा न कश्चिन्द्भ्यापारितो नापि परिरञ्चिद ।’

इतना ही नहीं, उसे तो ब्राह्मणोचित कार्य के विपरीत मन्विका की बात सुनते बुरे लगी कि वह वह कह उठ कि ब्राह्मण पतित होकर भी अपनी जान-बर्बादी से जेता नहीं करता—

एतमेहबद्धहृदयो हि कथम्यकार्यं

बद्धपुत्रपूर्वपुत्र्येऽपि कुले प्रसूतः ।

एवामि मन्मथत्रिपन्त्रबुभोऽपि मार्यं,

निर्भं च मा व्यपरिचलस्यर्दं च यासि ॥ मू० क० (४-९)

वरुण बंकर के बन्ध में उठार की योजनाओं से अधिकारिक के द्वारा प्राण-दण्ड का आदेश मिलने पर ब्राह्मण वास्तव टिकमिठा कर कह उठता है कि है

राजन् ! यदि निरपराध ब्राह्मण को मारा जाता है तो पुत्र पीछों रहित तुम भी मरक के भावी होगे—

द्विपुत्रश्चिह्नमुत्तमिप्रायितै मे विचारे,
 क्रकचमिद्दुःखीरे वीर्य दातव्यमथ ।
 अथ रिपुदचनाडा ब्राह्मण मा निह्मि,
 पतसि मरकमथ्ये पुत्रपीने समेतः ॥ मू० क० (१-४३)

सकार अपने बुराईयों के लिये दत्तम वक में चाबदत्त से अपने प्राणों की मीन मापते हुए जाये निडगिजाता है—

‘बट्टारक चाकुरत्त । धरणागठोऽस्मि । तत्परिनामस्य । यत्तव सद्यु तत्तुत्त पुनर्दुःख करिष्यामि ।’

पञ्चम अंक में बसन्तसेना को रत्नावली बेकर सोरठे के पवचात् मीनेव को पहाई एक ओर चाबदत्त का रत्नावली देना वच्छा नहीं लगा बहूँ हुसरी ओर उसे अपने प्रति बसन्तसेना का स्पन्दहार भी बच्छा बहूँ लगा । अथ यह चाबदत्त स पबिका के विरोध में कहता है कि उसकी भारवा गबिका, हाथी, पावस्य आदि के विषय में बच्छा बहूँ है ।

तवह ब्राह्मणो मूर्खेशानो मबम्भ सोपेव पतिम्ना निड्वापयामि—निबर्त्तता-
 मात्मात्माद् बहुप्रत्ययामाद् पबिकाप्रसवात् । पबिका नाव पादुकान्तरप्रविष्टेव
 लेष्टुत्त पु.बेन पुनर्निराकियते । अपि च श्री बयस्य । यनिका, हस्ती कावस्यो
 मिशुरबाधो रासमदच मर्ते निबसगित् तन दुप्या अपि न बापन्ते’ (स० बनु०) ।

ओ मी हो बरनिवा मे साहसी ब्राह्मण सविकक का वरम रिवा तो सीसवान् ब्राह्मण चाबदत्त का बसन्तसेना ने ।

(छ) गौ की महत्ता

गौ के प्रति हिन्दुओं की आत्मा है । बिस्वास चिन्ता के लिए यपबक्य में गौ और प्राण्य को बर्चा इनके पुण्य के प्रतीक होने के नाते जाती रही है । यही मूळकटिक के तृतीय अंक में भी है । स्वर्नपात्र के ग्रहण करने में सविकक को मिसकत हुए बेखबर मीनेव उससे गौ और ब्राह्मण की शपथ रिखते हुए कहता है :—

‘मो बयस्य । ताविरोनि गोब्रह्मणकामाए, अद् एए मुदनामन्त्रे च वैसुसि’ ।^१

१. ओ बयस्य, ताविरोनि गोब्रह्मणकाम्यया पयोतानुवर्नमाय न बृह्वावि ।
 (स० बनु०)

वर्तितक इसका समर्थन करते हुए और स्वीकार करते हुए कहा है :—

‘जनकिञ्चनपीवा भगवती बोधाम्या ब्राह्मणाम्या च’

अतः यह निश्चित है कि अन्ध सुयो की मूर्ति मूच्छकटिक काल में भी भी का महत्व कम नहीं था।

निष्कर्ष

वर्णमयस्था में जो अन्ध स्वान ब्राह्मणों का है, पयुबों में वही गौ का है। ज्ञानविशेष और वर्णन होने के कारण ब्राह्मण का सब अर्थ बाहर है। गौ की महत्ता भी इसी प्रकार है। इसी विचार से हिन्दुओं के लिए गोपावन एक धर्म सम्झता गया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने जो गायों के साथ स्नेह दिखाकर उनकी उपयोपिता स्पष्ट ही प्रकट की है।

(घ) मूच्छकटिक में अन्धविश्वास एवं शकुनविचार पर टिप्पणी

अन्धविश्वास की दृष्टि से मूच्छकटिक का अपना वैशिष्ट्य है। प्रचलित भावना से अनेक स्थानों पर मूच्छकटिककार ने इसको मान्यता दी है। उन युग में न इसमें केवल सामान्य जनता में, बल्कि राजकीय स्तर पर भी इसको महत्व दिया गया है।

इस समय अन्धविश्वास धर्म का एक अर्थ कम गया था और न केवल अतिमित जनता में, बल्कि शिक्षित जनता में भी इसके प्रति विश्वास बूढ़ हो चला था। इस अन्धविश्वास के कारण पर उद्भवों से अन्धों की शुभ और अशुभ बातों पर विश्वास किया जाता था। राजा के द्वारा कार्यक का बन्दी बनाया गया अन्धों के अभाव में परिवार का सुख है। जैसे का प्रतिभूत स्थिति में अन्धों और हृदय का अन्धों अन्धों के परिवार में आते थे। इसके अतिरिक्त और अन्य अनेक अशुभों का भी दुष्परिणाम जनजीवन में दुर्घटनाओं का प्रतीक माना जाता था। व्यासजी ने बताया है कि सूर्योदय का अन्धों की मूर्ति के पतन का प्रतीक है। चाणक्य जिस समय अशुभस्थिति में प्रवेश करते हैं सामने कीड़े और साँप को देखते हैं। शत्रु की चौकट से उनका सिर टकरा जाता है और पैर छिन्न जाता है। ये सब बातें अन्धों की दुर्भाग्य का अन्धों का प्रतीक हैं।

व्यासजी ने प्रवेश करते समय चाणक्य अशुभों के समुदाय से अन्धों का उद्भव है—

अन्धं च बाधति वायसोऽप्य-
ममाश्वनुस्या मुहुराह्वयन्ति ।

सम्भ च मेव स्फुरति प्रवृत्तः,

समानिमित्तानि हि शैरयन्ति ॥ मृ० क० (९-१०)

कौशे का सखे स्वर से बोलना मकियों के शेरकों द्वारा बार-बार बुनाया और बाँधी बाँध का बकपूर्वक फड़कना अर्थात्कुन के रूप में मुझे सिम्न कर रहे हैं ।

बृहस्पतिहिता में सुखे गुण पर कौश का सवर करना कलह का चोटक है । 'कलह गुणदुर्नस्यते ध्याइत' । यहाँ भी समोम से बैठी ही स्थिति है ।

पुष्कन्गस्वितो प्पाडस्य आरिष्यामिमज्जस्थित ।

मसि भोरयते वाम चक्षुर्गौरमममवम ॥ मृ० क० (९-११)

कौशा सुखे गुण पर बैठे हुए सुव की ओर मुख करके मुस पर अपनी बाईं आँस डाल रहा है । नि मदेह यह मयकर आपत्ति का सूचक है ।

बाँये सर्प को देखकर अर्थात्कुन ममयते हुए आकरत झूठा है —

मयि विनिहितदृष्टिर्मिमानीकाववाच ,

स्फुरितविततबिभ्रु गुस्तदृष्टाचतुष्क ।

अभिपतति सरोपो विज्ञाताप्पातकुसि-

र्भुवयपतिरव मे मायमाकम्य सुप्त ॥ मृ० क० (९-१२)

बुधित भीले अजन के समान आमा बाला, मग्नी जीम को क्यमपता हुआ, एतेत चार दाढ़ बाबा मेरे मार्ग में फैलकर पडा हुआ यह विधास सर्प को ब-पूर्वक बायू से फूले हुए कदर को मुकाता हुआ मुस पर दृष्टि कमाने बैठी ओर आ रहा है (कहीं जाते हुए बाँये सर्प का बीखता अर्थात्कुन है) । इसी के बाव-साव फिर यह भी भजित है—

स्वकति परस भ्रुवी बस्त न पार्श्वतमा मही

स्फुरति नयनं वामो बाहुर्भुवव विवम्यते ।

दाक्षुनिएपरस्थाय दावद्विरीति हि मैकड

क्ययति अज्ञापोर मृत्यु च चाव विचारथा ॥ मृ० क० (९-१३)

यद्यपि पुष्पी बाँधी नहीं है फिर भी भ्रुवि पर रत्ना हुआ पैर फिउल रहा है । बाँयो आँस फड़क रही है तथा बायीं मुजा बार बार बाँप रही है । बुररे पनी भी अनेक बार बोल रहा है । ये सब मयकर मृत्यु की सूचना दे रहे हैं । इन विषय में कुछ सरेह नहीं है ।

इस विरवास के आचार पर आग्नास दे भी कहा —

इन्द्रेणवाहिरिन्द्रो गोपसवे सक्रम च ताडानम् ।

सुपुच्छिद्य पात्र विपत्ती वताडि इवेन वटुम्य ॥^१ मू०क० (१०-७)

विद्युत्केतु के लिए के आवाजाता इन्द्रध्वज, वी का प्रथम, तारों का पत्रक और श्रेष्ठ मुख्य का प्राण त्याग इन चारों को नहीं देखना चाहिए । अनवीचन पर नक्षत्रों का प्रभाव भी घूम-भ्रम का परिचायक है । चन्द्रमण ने अपनी उक्ति में इसी की पुष्टि की है ।^२

कस्तूर्यो विभमरो कस्तु चरत्वो ब्रह्मृष चन्दो ।

छटो च भम्बवप्यो भूमिसुमी पवमो कस्तु ॥

पत्र कस्तु बम्ब छटो बीबीणबमो तहेम सुरसुमी ।

बीबते चरनए की सो गोवाक्यारमं हरइ ॥ मू०क० (९-९, १०)

चरनय्य हुमा चम्बक कहता है कि सूर्य किसके आठवें स्थान पर है । चन्द्रमा किसके चतुर्थ स्थान पर, शुक्र किसके छठे स्थान पर और मंगल किसके पंचम स्थान पर है । ब्रह्मरुषि किसकी अमराति के छठे स्थान पर है तथा बलि नवम स्थान पर है ? जहाँ वे सभी जपून के इतीक है । चन्द्रमण के अतिरिक्त खड़े हुए कीन है जो गोवाक्युम को सुभावे से जा रहा है ।

नवम अंक में विद्युत्केतु की कुम्भि से गिठे हुए चरन्तरेना के आसुवर्षों की और उकैत करके चकार चर अचिकर्यविक के समग्र चास्वत के विरोध में अपना प्रमाण प्रस्तुत करता है तब सब कुछ जानते हुए भी अचिकर्यविक कहता है कष्ट है ।—

अगारकविद्युत्स्य शचीपस्व बृहस्पतेः ।

ग्रहो म्मपर पास्वै भुसनेतुरिबोत्थितः ॥ मू०क० (९-२३)

नवम के विरुद्ध होने पर अीन बृहस्पति के बपल में यह दुसरा भुमकेतु वह अति हो रहा है । आशय यह है कि चकार तो चास्वत के विरुद्ध था ही

१. इन्द्र-प्रवाह्यमानो गोपसव संक्रमन् ताराणाम् ।

सुपुच्छिद्यपात्रविपत्तिश्चत्वार इमे न ब्रह्म्या ॥ (सं० अनु०)

२. कस्तूर्यो विनकर. कस्तु अचर्यवच बरुति चन्द्र ।

पच्छत्र मार्गवग्रहो भूमिसुतः पवम कस्तु ॥

अपकस्तु बम्बवप्यो बीबी नवमस्तरेण सुरसुतः ।

वीनति चरनके क स गोवाक्यारक हरति ॥ (सं० अनु०)

द्वार विद्रुपक को दुर्लभ म विरले द्रव्य नामुपन देखकर उनके दोष की धोर मो पुष्टि की जाती है ।

निष्कर्ष

द्रिन्दुपास्तों में ज्योतिषशास्त्र का बड़ा महत्व है । यज्ञित और अज्ञित के रूप में इनका विवेचन किया जाता है । अज्ञित रूप में अशुभों पर भी विचार किया गया है । वे अशुभ सुभ और अनुभ दो रूपों में व्यक्त किये गये हैं ।

मूष्मकटिक के समय अशुभों पर विचार की परम्परा बड़ी सुदृढ़ हो जाती थी । अज्ञित-अज्ञितियज्ञ मभी इन्हें मानने थे । इनके प्रवचन छन से सभी प्रभावित थे । बली कारण है कि इन पर अदृष्ट विश्वास हो जाता था और इसी से अविश्वास की जड़ जम गयी । यद्यपि ज्योतिषशास्त्र के अनुसार पुत्रपौ के दाहिने ओरों का और महिलाओं के बायभागों का स्फुरण जमस शुभ और अशुभ माना जाता है पर कभी-कभी बायु के विचार से भी यह स्फुरण दिखायी देता है ।

(छ) ज्योतिष में निष्ठा

किसी भी रचना में अपने रचनाकार का स्मृतिक छिपा रहता है । रचनाकार ने अपने को 'वैदविद्याजकुप' और 'अकारकविद्यम्य' इत्यादि उचितो द्वारा यह दिखाया है कि वह वेदशास्त्रों का विद्वान और ज्योतिष विद्या का ज्ञाता था । वह मनुनविद्वान से भी परिचित था किना कि मूष्मकटिक में विविध अशुभों के फलफल ने मात्र होता है । चाहेत भी नाम्नादी दिखाया गया है । अपने कहा है—

नाम्यक्रमेण हि धनानि मयन्ति यान्ति । सू०४० (१-१३)

नाम्यक्रम से सिद्ध हो जन का अध्ययन होता है । मार्क से भी अपने कहा है—'रवैर्मायै परिरक्षितोऽग्नि' (७-७) अपने नाम्य से बच रहे हो । पूर्व-अध्य के ज्यों से नाम्य का निर्माण होता है । इसी को अलग अकार और चेत के अभाव में चेत द्वारा व्यक्त की गयी है ।

नेपथिह पद्मदासे विनिम्बिदे भा अनेपदोऽगोह ।

अद्विज य न कीचित्स्य तेज अकञ्च एतितृणामि ॥ सू०४० (८-२५)^१

पूर्ववृत्त पापकर्मों के फलस्वरूप दुर्भाग्य से मैं जन्म से ही पस बनाया गया

१. यनादिम पर्रदासः विनिम्बो नाकचेपरीदी ।

अद्विज य न कीचित्स्य तेजावायै परिहरामि ॥ (म० अनु०)

है। इनकी मैं उसे बचिऊ नहीं बचनाउँगा और बचामं का स्वाग करूँगा। अतः
मे नी बिबि के बिबाल की दुहाई हो गयी है—

कारिचतुश्चयति प्रपूरयति वा कारिचप्रयत्युधति,
अरिचतु पातविधौ करोति न पुन कारिचप्रयत्युधनाम् ।
अम्बोन्वप्रतिपक्षसहृदिमिमा सोकस्विचि विषय-
श्रेय श्रीरुनि कूपयन्तवटिकान्शाम्यममकोविचि ॥ मू०क० (१०-५९)

यह साम्य किसी को रिक्त करता है और किसी को पूर्ण करता है। किसी
की क्षमति करता है तो किसी पर बरत करता है। कोई इतने म्याकुल बना
छता है। रहूट की घटिकाओं की शक्ति यह समुच्च के साथ चिच्छाव किना
करता है।

निष्कर्ष

मूच्छकटिक एक ऐसा प्रकारका है जिसमें माओपाल बटनाओ का विवेकन
पात्रो को असन्तोप और वैराग्य की ओर के जाता है। आस्वत्त सबंधा योच्य
होते हुए भी रह पाता है। अकार अपनी कूटबोबनाओं में सफल होता दिखाई
देता है। प्रले ही अन्त में रहस्योद्घाटन हो जाने से सचाई सामने आती है।
अचिठक और सबाहक भी अथर्व में ही बरते दिखाई देते हैं। इस शक्ति साम्य-
वक्त से यह सब और-श्रीत है। अतिविषास साम्य को साम्यता देता है। अतः
अतिविष के प्रति साम्या मूच्छकटिककार की स्पष्ट प्रतीत होती है। बकि, उप-
हार, अतो का विधान, इहामोत्र के प्रति रति भी इसके प्रतीक है बिनकी
अतिविषास में आती है।

मूच्छकटिक में आस्वत्त का बीरन यदि आधिक व्यवस्था की विषमता न
होती तो कुछ और ही होता। जैसे उस समय देश की आधिक व्यवस्था अच्यो
नी, पर समाज का अंधा ऐसा या कि कुछ लोग तो इतने बनी और सम्पन्न होते
वे कि अपने बच्चों को खेल्ने के लिए सोने के सिक्कों के कूटा बरते थे पर दूसरी
ओर दतनी निर्धनता भी कि आस्वत्त के अरके के पास मिट्टी की बारी थी।
आस्वत्त जैसे विदवा हुआ कनी है। परिद्वारस्था में भी ओरो नये बामूचो के
बदले अचकी लो देने के सिधे अनु समुदायानुता एतमाओ अपने गले से सतार
कर देती है। आस्वत्त का परिचार मान-मनीता का विचार करते हुए बनी न
होते हुए भी अपने को होन नहीं दिखाता चाहता। दूसरी ओर अस्वत्तसेना के
बैभव का वर्णन भी देश की अच्यो आधिक स्थिति पर चोटक है। धन के
महत्त्व को सम्झते हुए अचका अनाथ आस्वत्त को इतना बचता है कि यह

ब्रह्मात्म्य की स्थिति में बोधन को ही आपत्तियों का कारण समझने कहा है ।

दरिद्र्यादिघ्नमर्षिः क्षीपरिणतः प्रसन्नस्यते तेनसो
निस्तेजः परिभ्रूयते परिभ्रवादिर्वैदमापद्यते ।
निर्विघ्नः सुविमेति सोऽपिद्विहो बुद्ध्या परित्यज्यते
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निवृत्तता सर्वविद्यामास्परम् ॥

सू० ५० (१-१४)

दरिद्रता से कष्टग्रस्त होती है और बखी का तेज विनष्ट हो जाता है ।
आनि के कारण उस पर शोक छाया रहता है । बुद्धि भी क्षय नहीं करती ।
इस प्रकार यह निर्धनता सब आपत्तियों का एकमात्र कारण है ।

ब्रह्म के महत्त्व को अविच्छेद ने मनी प्रति समझा और उसने यह विचार
कर लिया कि उसकी प्रेयसी बदलिजा को बसन्तसेना से छुड़ाने का कार्य यश-
वान से अतिरिक्त नहीं है । अविच्छेद के मन में ब्रह्म बन पुटने का विचार आया
तो चोरी की योजना बनी और चाखरता के यहाँ चोरी की गयी । चतुर्वेदों
ब्राह्मण का पुत्र अविच्छेद चोरी को विन्द्याकारण मानते हुए भी कहता है —

अहं हि चतुर्वेदविरो प्रतिघाहकस्य पुत्रः अविच्छेदो नाम ब्राह्मणो बर्णिका-
भदलिकाचर्मभद्रपंक्तुतिष्ठामि । सू० ५० (सू० अ०)

निश्चय ही अर्षिसिद्धि के लिये अविच्छेद महान्त में संत लगाने के लिये
प्रयत्न होता है । तत्पर्यायात् चर की स्थिति देखने हुए यह कह उठता है ।

'तत्किं परमार्थद्विजोऽयम, एत एतन्नममाच्योऽन्यथा मुनिः इत्थं कारणति ।
एतन्मापि नामअविच्छेदस्य भ्रूयिष्ठ इत्थम् । मबतु । बीज प्रतिपादि ।'

अविच्छेद को एतन्नम्य और चोरेम्य का नाम नों हो नहीं सेना पडा । एत
समय की दसा ऐसी थी कि घासन की कुण्डलता के कारण छोद इन्द्र को
छिपा रहे थे और इससे समात्र का कष्ट बढ़ रहा था । एक ओर बहो माबिक
समुद्रिखीलता थी दूसरी ओर मनुष्य निर्धन भी थे । विद्वत्क पेट है बहता
है कि दुर्विद्यमानिक एत इत्यत्र के समान क्यों आहें भर रहे हैं ?

'किं वाचि वाहीम् मुता । बुद्धिरव्यवासे बुद्धरद्वो विम उदक वाता
असि एसा सा सेति ।' सू० ५० (प० अ०)^१

१ विमिरानी एतवा बुध । बुद्धिरव्यवासे बुद्धरद्वो विम उदक वाता
सा ना इति । (स० मनु०)

इस समय आदिज विद्यमता से एक बोर चारदल धनसे बनाव में तुला या तो बूझते बोर कहीं धन का विशाल सङ्ग्रह का तथा बनसपुराय दूतकीया एवं सुपमुन्दरी में आनन्द का । चारदल मन्त्री पुनर्विस्था में बनाव का । उद्योग करने धन का बुरायोग नहीं किया, धन सम्पादनों के निर्माद में एव वस्तुओं में ही उद्योग व्यय्य सर्वस्व लपाया । इनकी चर्चा नवन दक में विद्वान् ने की है । उद्योग कोई दुर्नियोग नहीं था । वस्तुसमेता ही उद्योग प्रति बाधक ही बोर व्ययने धन के भी उद्योगी उद्योगी की इच्छा रखी थी । उद्योग पुन ना सोन की धारों से बँधे इस विचार से उद्योग व्ययने सामुदाय उद्ये निश्चयाने ।

(क) समुद्रिज्ञानिना के प्रतीक

उद्ये समय बोग समुद्रिज्ञानो था । आदिज रिशाल के वो रूप में उद्ये के समी इस समय सानने आये । धनवीवन का स्तर आदिज दृष्टि से इस रूप में उद्ये होना स्वामादिज था ।

यहाँ का व्यापार उद्ये समय आदिज दृष्टि से समुद्रय था । बहाराँ से समुद्र पार तक व्यापार किया आजा या रिशके उद्येस्वरुन बनिठ बने दुर्नियोगि है मरपुर था । यही कारण था कि सुबमं के आनुर्यों की समी न थी । इस समय में एक बोर वस्तुसमेता के रत्न बोर आनुरय बोर दूधरी बोर चारदल ही बनी बूझ की 'बहु समुद्रकारुजा रत्नमासा' इसके बोडे-वापडे प्रमाण हैं । चारदल न बनक उद्येस्वरु, मिहार, बाधन, बद्यकन, लघान बोर बुरों का निर्मात कठना था । 'विद्वान् मी मी उद्ये येन बार पुत्रुा बन्धविहायपन-रत्नसमा बुराबेहि बधविहा पयरी उद्येसौ, तो बपेता बन्धस्वरुत-चारमास एरिल बकज्ज पन्धुदिति ।' मू०क० (नवन धक)^१

बनिठों का बहुय ता धन बनीरयन रूप में वेस्वरुओं की मेटे होना था रिशके परिनन्धरुन वेस्वरुओं की चामिक स्थिति बहुय बधज्ज था । वे समुद्रि में कुवेर के तुल्य यों बोर उद्ये पाठ हापो भी होये दे । वस्तुसमेता क मुद्रबने के समय हामी की चर्चा है—

इसो थ बुराबुधेस्वरुनिष्ठ निम्ब हन्ती परिष्कारोपरि वेस्वरुखिंहि ।^२

मू० क० (१० बक)

१. श्री मी आनन्दि, येन उद्येस्वरुस्वाननरिहायपननेनापन्नाभारकुन्दरीरुद्रुजा नदुर्नियोगिनी सेजोसोपरि उद्येस्वरुकारवादीदुधनमानमुद्रिष्ठरीयि ।

(म० वन०)

२. इत्ये बुराबुधेस्वरुनिष्ठ निम्ब हन्ती परिष्कारोपरि वेस्वरुखिंहि । (दं० वन०)

इसके बहानों के साथ भात से चिरे हुए तैल (ज्यमा से भी) से विभिन्न पिण्ड हाथी को खिलाया जा रहा है।

वसन्तसेना के पास कुम्भमोहक नाम का हाथी था। इसकी चर्चा द्वितीय अंक में वसन्तसेना और उबाहुक के बातचीत के समय की गयी है—

उबाहुक—जगते, कि ज्येदम् (आवासे) कि यथाव-एव क्व वसन्तसेना-जाए कुम्भमोहके नाम वट्टहस्ती विचरति ति ।^१ मृ० क० (द्वि० अ०)

कहाँ यह गया है ? (आकारा की ओर) क्या रहते हो ? यह वसन्तसेना का कुम्भमोहक अर्थात् वन्यनस्तम्भ को तोड़नेवाला नामक कुम्भ हाथी भूम रहा है।

वैसे ही पनिक समुदाय उस समय हाथी रखता था। आवापनन के साथनों में उस समय बीरवाही (प्रवहृष) का विद्यैय प्रचलन था। आरुत्त और अकर के पास भी प्रवहृष थे। कभी-कभी बोडे का भी उपयोग किया जाता था। मन्म अंक में ग्यायाचीछ कीरक को बोडे पर पुष्पकरण्यक पदान में जाने का आदेश देता है।

‘अधिकरथिका—वीरक, परथाविहृ मन्तो ग्याय कृस्याम व एपोअधिकरव-शार्वस्वतित्तति तमैनमाकृष्ट मत्वा पुष्पकरण्यकोधानम ।’

माने-जाणे के लिये उस समय राजमार्ग बने हुए थे। इस समय कर्णायें भी समुपगत रक्षा में थी। ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय नाट्यकला का पर्याप्त विकास हो चुका था। संगीत कला भी उत्तम पर थी। आरुत्त रचित के यहाँ लक्ष्मी सुनने गया था। इसका विद्यैयत बीजाशासन का शास्त्रीय वर्णन मृच्छकटिक में है।

आरुत्त—वीणा हि नामात्तदुत्थित रत्नम् ।

वीणा वास्तव में बिना समुद्र से निकला हुआ रत्न है।

उत्कृष्टस्य हृदयानुभाववत्त्वा

सकैतने चिरमति प्रवरो दिवोद ।

उत्पापना प्रियतमा विरहानुरागा

रत्नस्य उद्यपरिवृद्धिकर प्रमोद ॥ मृ० क० (१-१)

मनोरञ्जन वीणा उत्कृष्टत स्वति की मनचाही लक्ष्मी है। उकेत करने वाले प्रेमी के हृदय करने पर एक उत्कृष्ट मनोरञ्जन है। विरहपीडितों को

१. जगते, किम्बिदम् । कि मन्त-एव क्व वसन्तसेनाया कुम्भमोहको नाम कुम्भहस्ती विचरति, इति । (स० अनु०)

अत्यन्त प्रिय बन्धनवाहन देने वाली है और श्रेणी के अनुराग को बढाने-
वाली है ।

त तत्र स्वरूपं मूष्कटिकं विभक्तं च तन्वीक्षण
नर्त्तनात्मपि मूष्कटिकान्तरगतं तार विरामे मूष्कटिम् ।
हेठासवमित् पुनरप्य सन्धि रागद्विद्वेषादि
यत्सत्य विरतेऽपि बीतसमये गच्छामि मूष्कटिकम् ॥ म० क० (३-५)

गीत का समय बीत जाने पर भी स्वरों के रूप से आरोह तथा मखरोह के
बन्धनवत आरोह के समान अत्युच्च, विराम के समान कोमल और फिर सीलापूर्वक
निवन्धित सुन्दर पक्ष रागों में दो बार उच्चारण की हुई उस रीति के कोमल
बाजी की सब स्वरपोषणा को एवं उससे बिकी हुई बीना की ध्वनि को में
सुनना या बा प्य है ।

इसमें बासुरी, कुंजूर, मूषम और प्रणव अर्द्ध का भी उल्लेख है । चित्रकला
का भी उस समय प्रचार था । अनुर्ष बरु में बसन्तसेना वादयत्त का चित्र
कल्पिका को चित्रताली है । कुट्टिकका का भी उसमें उल्लेख है । प्रणव बरु में
घूतकर पुच्छा है—'कच कट्टिकयो प्रतिमा' ? (कच काष्ठमयी प्रतिमा) ? क्या
काठ की मूर्ति है ? इस पर माधुर कहा है 'वक्ति ज हू न हू शैल प्रतिमा' (जरे
न बरु म बरु बेल प्रतिमा) जरे नहीं गही, पत्थर की मूर्ति है । कलाओं में
समाहन (मास्त्रि) का भी स्वरूप है । फिर चौरिकका का ती तृतीय बरु
में निवृत्त वर्णन है । इस भीति मूष्कटिककाल कलाओं का लक्ष्य स्वरूप
था । इन कलाओं से उस युग की समृद्धिप्राप्ति प्रतीत होती है, फिर विशेष-
रूप से बसन्तसेना की कृष्णोद्या इस सम्बन्ध में बीता-अनन्ता प्रमाण है ।

विष्णुपद के बसन्तसेना के गृह के प्रथम प्रकीर्ण में प्रवेश करते हुये चित्र
की छटा देखिये—

'ही हो मी, ह्यो वि पदमे पमोदते ससिखममूष्कटिकगङ्गाया विनिहित'-
पुष्पमुद्रिपाशुदायो विविहरत्नपदिविद्वकंनसोबाससोद्विरायो पसाधनन्तिवो
मोक्षनिरदमुत्ताशार्माह कट्टिकवादावचमुहचन्देहि विष्णुगङ्गी विज उगवद्विम् ।
सोतिश्री विज सुकोवद्विष्टो मिहावति वीवारिको । तद्विहा कनमोरनन पलोहिदा
न ददवर्द्धन वादया रति सुधासवन्नादाए । बादिन्नु मोती ।'^१

म० क० (५० अंक)

१. वादयत्त की, बरुपि प्रपने प्रनेष्टे ससिखममूष्कटिकगङ्गाया विनिहितपूर्व-
पुष्पमुद्रिपाशुदाय विविहरत्नपदिविद्वकंनसोबाससोद्विराया प्राधार्यक्योऽन-

आश्चर्य है यहाँ प्रथम ब्रकोष्ठ में भी चन्द्रमा, वंश जो कर्मललाह के शुभ्र कान्तिबाओ उवाये हुए मुद्रो मर चूर्ण के कारण बबल रत्नवटित स्वर्णमयी शीशियों के शोभित प्रासादों की पक्षियों के डटके हुए मुद्राहार वाले काष्ठपत्रस्त्री मुक्तचर्मों से चन्द्रकिनी को मानों देख रही हैं। वहाँ योनिय की नक्षित्रीयारिक मी मुख की नीर के रहा है। फिर काक जैसे कुसुम जली को भी चित्रपत्रार्थ से बड़ी रत्नजवा की उज्ज्वल आभा के रंग में रम निज जाने से बलि का शोभ रही होवा।

द्वितीय प्रकोष्ठ में पनुस्विति का मनोहर चित्र देखिये—

‘ही ही ओः,’ ‘इतो वि दुदिप पबोठे पञ्चमो वनीरजवसवुसववतुपुष्टा तैलाम्बमानिबबिसामा बडा प्रवहचवइला’ म० क० (प० अ०)¹

धरे आश्चर्य बहाँ दूसरे ब्रकोष्ठ में भी सामने लगी हुई पास नीर मुखे के पास से परिपुष्ट तथा तेज से विद्युत् कीन आसे रव के बैठ रहे हैं।

वाये तृतीय प्रकोष्ठ में उपवेशन विधि देखिये—

‘ही ही ओ इतो वि वइप पबोठे इमाइ वाव कुसुमवचवोवैस वजिमितं विरचिताइ आसपाइ बडवाविदो पाठवपीठे विट्टइतोत्पवी’²

म० क० (प० अ०)

धरे आश्चर्य, यहाँ तीसरे प्रकोष्ठ में भी कुम्भोत्पन्नियों के बैठने के क्रिये में आसन लगाये गये हैं। इसके अनन्तर चतुर्थ प्रकोष्ठ में अब सवीतसाहा देखिये। पक्षिपत्रों के मनोरजन का तो बह सुख साधन है।

‘ही ही ओ इतो वि चडुठे पबोठे कुवदिकरताविवा वसवरा विज गम्भीर वचन्ति मुग्गा, हीगपुन्नाओ विज ननमाओतारजाओ निवमन्ति

सम्बितमुक्त्यामयि स्मृतिरुवातायनमुक्तचर्मैर्निष्पापन्तीवोग्गविनीम् ।
 योनिय इव मुखोपविष्टो निशाति शीवारिक । उरम्भा वचनोरनेन
 प्रकोष्ठिता न मत्तमन्ति वप्यसा बलि सुपासवर्षयवा । आरिष्यतु वचती ।
 (म० अनु०)

१. आश्चर्यं ओ, इहापि द्वितीये प्रकोष्ठे चर्णमोपनीतमवसवुसववतुपुष्टा-
 तैलाम्बमानिबबिसामा बडा प्रवहचवजीवनी ।

(म० अनु०)

२. आश्चर्यं ओ, इहापि तृतीये प्रकोष्ठे इमानि तावत्कृत्वावनीतवेषमनिमित्तं
 विरचितान्मातनानि ।

(अं० अनु०)

शततामस्य बहुवचसिर्त्सं विजमुहूर्तं वप्यसि वता' ।^१

मृ० क० (ब० बं०)

भरे मासवर्ष । यहाँ चतुर्थ प्रकोष्ठ में भी युवतियों के हाव से बचावे परे मृग्य वारसों के समान मन्मोर शर कर रहे हैं ।

पंचम प्रकोष्ठ में महानुष्ठ कर्म की भी सतक देखने बोध्य है :—

'ही ही मो । इतो वि पचमे पयोद्वै बर्षं दक्षिणवपकोप्यादवधरो बाहुरर
ज्यपिरो हिन्दुतेस्तमन्वो ।'^२

मृ० क० (ब० बं०)

भरे मासवर्ष । यहाँ पाँचवें प्रकोष्ठ में भी बहु निर्बल मनुष्यों को सतकाने वाली हींग और तेल की बन्धी हुई पंच मुठे वारकर्म कर रही हैं । मुसलमानों के मानरपी और बड़ेजों के खानसाबा भी इन भारतीय मृग्यकारी के सामने तुच्छ हैं । श्रुमारयाहा भी यहाँ की क्या ही सुन्दर है । इसे पष्ठ प्रकोष्ठ में देखिए :—

'ही ही मो , इतो वि छट्ठे पयोद्वै बर्षं पाव मुपप्यरज्याग कन्वोरपाई
बीकरसभविनिविद्यताई इन्द्रात्तुदृष्टाय विम परिषत्तन्ति वैदुरिभयोतित्रपयात्
बपुष्कराम्बइस्वीपकककेतरअपम्भरावमरागप्रपुद्विवाई रमणविसेसाई बन्वोर्षं
विचारैति सिप्यिगो' ।^३

मृ० क० (ब० बं०)

भरे मासवर्ष । यहाँ छठे प्रकोष्ठ में भी वे बीकरलज्जित स्वर्णरत्नों के विशिष्ट रत्नानुक सोरस इन्द्रबपु की समलता ही प्रदर्शित कर रहे हैं । सिस्वीमग बैहूर्ष, गोठी, गुंवा, कुप्यपव, इन्द्रगौठ, कर्नेतरक, पपराग, मरकठ अथि रत्नविधियों का परस्पर विचार कर रहे हैं ।

सप्तम प्रकोष्ठ की पञ्चधाता भी देखने से क्यों रू चाय यह भी त्रितीय है ।

१. मासवर्षं मो, इह्यपि चतुर्थं प्रकोष्ठे युवतिकरताठिद्य बरुवय इव पंभीरं
गदगि मूर्दनाः क्षोपशुप्या इव गवनात्ताका निपठन्ति कास्यतात्त्रा, मनु-
कारमिस्तविच वचुरं वाप्यै वंशः । (सं० मनु०)

२. मासवर्षं मो, इह्यपि पंचमे प्रकोष्ठेऽयं वरिचबनछोमोत्पादनकर बाहुरसु-
पपितो हिन्दुतेस्तमन्वः । (सं० मनु०)

३. मासवर्षं मो, इह्यपि षष्ठे प्रकोष्ठेऽमुनि तावत्सुवर्षरत्नाना कर्मणोरनानि
गीकरलज्जितलिप्यानीन्द्रावुवस्थापमिव दर्शयन्ति । बैहूर्षमौक्तिक्यबालपुष्प-
पारिण्डीबीकरकर्नेतरकपपरागमरकठप्रपुद्वीपत्नविसेपालम्योर्षं विचारयन्ति
सिप्यिगः । (सं० मनु०)

‘ही ही मो, इषी वि सत्तमे प्रकोष्ठे सुखिन्दिट्टविह्ववादीसुखिणसम्भवं सुद्धं
अणुमवन्ति वारावमिह्ववाह’ ।^१

मू० क० (ब० अ०)

अर आरप्य । यहाँ साठवें प्रकोष्ठ में भी सुनिर्मित अणुवपातिका पर सुख
से बैठे हुए एक वृद्धों के अणुव में सत्तम अणुवरो के बोले सुख का अनुभव कर
रहे हैं ।

किन्तु अरर पणु-वर्धियों के साथ यन्त्रिकावृह नन्दनवन बन रहा था इसके
बामास के साथ अब वृणाटिका को भी निहारिये —

‘ही ही मो, अही स्वसवादिभाए एस्तिरीमदा अणुवीरिहुमुमपत्ताए
रोपिदामयेमप्राववा, निरतरपाववठकमिम्मिदा सुवदिअइण्यमाअ पट्टोला
सुवण्यपुधिवासे इअकिआआसईमईअआमोमाअिआकुरवनामदिपोतमयहुविहुवुमैहि
अम विवदिअवेनि अ सण्ण णुक्कोटीव विअ अन्दनवसस सस्तिरीअदम् ।’^२

मू० क० (ब० अ०)

अरे आरचर्य ! अहो ! वृणवाटिका की सोमा-सम्पन्नता दिख पर अलो-
नाति पुष्पों का विस्तार होता है ऐसे अनेक वृण अणुवों गये हैं । पुष्पियों के
अपवसवक की भाव दाहि पटरियों के रेषमों अणुवें अणुव कुत्तों के नीचे अणुवों बने
हैं । अणुव, अणुवी, अणुविका, अणुवी, अणुविया, अणुवी, अणुवक तथा अणुवरा
आदि स्वयं विरे हुए पुष्पों से अणुवसेता भी यह वाटिका अणुव में नन्दनवन की
सोमा अणुवति को बन कर रही है ।

अणुवक अणुवसेना का अणुविवेचन अणुवकालीन अणुवविनी की अणुविसालो-
नता का एकमात्र अणुवक है । अब अणुविका अणुवी अणुव की तो जिस अणुविकवर्ष
के अणुव अणुव आस हीण या अणुव अणुवसे अणुविसालो होवा यह ही निश्चित है ।

१. आरचर्य मो, इहावि सत्तमे प्रकोष्ठे सुखिन्दिट्टविह्ववादीसुखिणसम्भवं सुद्धं
अणुमवन्ति वारावमिह्ववाह ।

(ब० अणु०)

२. आरचर्य मो ! अहो वृणवाटिकाया अणुविकता अणुवीरिहुमुमपत्ताए-
रोपिदामनअपादया निरतरपाववठकनिर्मिता सुवदिअण्यमपनाणपट्टोला,
सुवण्यपुधिवा येअणुविका अणुवी अणुविकानवमसिअवाकुरववाठिअणुव-
अणुविकुत्तुमै. स्वयं निवदिअवेस्तव अणुक्कोटीव नन्दनवनस्य अणुविकताम् ।
(ब० अणु०) ।

निष्कर्ष

मूच्छकटिक की कपरेबा जिस सामाजिक ढाँचे पर निर्मित है उसका एक-मात्र कारण उत्कालीन जातिक वरिस्थिति है। एक मोर दृष्ट बर्गों के द्वारा बन का अपभ्रम, घुड़, यदिरासेवन और देव्याचमन खादि में विज्ञाना गया है तो दूसरी मोर बाह्यत द्वारा उसी का सर्वुपयोग सामाजिक उत्क्रांती, धार्मिक संस्थाओं, उपवन, बिहार, कूपनिर्माप खादि में दिज्ञाया गया है। घर और बाहर दोनों रूपों में बसन्तसेना के धन का सर्वुपयोग उसके छाष्ठी होने का प्रतीक है। जमने बाह्यत के प्युं मोने के बामुपक्रमेने जिससे कि उसका पुन मिट्टी की गारी के स्थान पर सौत की गारी से लेके। दूसरी ओर उसके अपने घर का वैषम समुद्रिशाकिता का बौतक है जहाँ विनुपक न प्रबध करत ही अलकरनो की सदा बेनी, डिर प्रत्येक प्रकीठ कपरा धिरप, पसुचर्चा, उरवैचन, समीतशाळा, बेहानस, मृङ्गारभासा एव पस्त्रिशाळा के साथ साथ अनुपम मृपवाटिका से युक्त था। प्रत्येक प्रकीठ अपने वंसभ में बटा-बटा था। ऐसा समता था कि मनी राबमबन ह्ये। उस धनिकवर्ग की स्थिति तो और भी सुन्दर होनी थी समुद्रि-शाकिता में बसन्तसेना से भी बडा-बडा होया।

(स) कृषिकार्य एव मूस्वामी

मूच्छकटिककाल में सम्भवतः कृषि का महत्व था। उसके बाजार पर उत्सवनों उपमाएँ भी उभापन में व्यक्त की जाती थी। विनुपक की निम्न म्यमोकि से जब बाह्यत और बसन्तसेना दोनों ही मुककर प्रगाम करते हैं इसका मलक मिलती है।

‘मो बुवेवि तुम्हें सुख पपमिन्न कलमकेवारा मन्मोष्य पीसेप सीठ समा-बरा’ । मू० क० (प्र० अ०)

जरे सुखपूर्वक प्रगाम करके बात की दो ब्यारियों के समान साथ दोनों के सिर से सिर मिल गये।

बाह्यत ने उसमन वाठा के सम्बन्ध की खर्चा में भी जो और धान समन्धी खर्चा की है।

‘यदा प्रकीर्णा न भवन्ति शाक्य’

मू० क० (४ (७)

सैत में बिखराने हुये जो भाव नहीं ही वाटे है।

एम माँति जाने भी देखिये। बोरी से अकार की मारो में बैठ जान पर बसन्तसेना को जब सहसा यह बात होया है ही यह कह बन्ती है—

१ मो, इत्यपि युवा सुख प्रपम्य कलमकेवारावन्मोष्य पीसेप सीठ समापती ।

‘एसोरापि मम मन्दमाहनीए ऊपरखेतपवो विम बीममृद्री विप्लवो एव
भागमनो समुत्तो ।’^१

मू० क० (५० अक्ष)

इस समय मुख मन्त्रभाषिनी का यहाँ जाना ऊपर खेत में पकी हुई बीज की
मृद्री के समान लिप्लव हो गया ।

इसी प्रकार दो चाण्डाल के बीच स्थित चाण्डल के बच के समय स्वारक्त
के द्वारा चाण्डालों से जलकाय भाँपने पर चाण्डल कह छूटा है—

कोऽप्येवविधे काले काण्डपायस्थिते यमि ।

जनावृष्टिहते सत्ये शोणमैव इवोदित् ॥ मू० क० (१०—२१)

यहाँ के न होने से सूखते हुए चाण्य पर शोण नामक मैज के समान इस
प्रकार के आपत्तिकाय में मेरे काष्ठपाद्य में स्थित होने पर यह कील का गया है ।

यहाँ अवावृष्टि के सूखे हुए चाण्य पर शोण नामक मैज का जा जाना ‘अते’
प्रकारा लिप्लवप्रसूतम (Adding Insult to Injury) के समान बताया
गया है ।

मूत्रकटिक में वृहपति उल्ट आया है । उवाहक वृहपति का पुत्र था ।
बीजविष्णु होने से पूर्व वह एक धार्मिक्य बुद्धिपूर्व कामोद-समोद का जीवन
म्यतीत करता था । जब की बधिकता से ही उसमें कुर्त्तग से घूट का भी अद्वय
हो गया था । वारम्भ में वह चाण्डल का धैरक भी रह चुका था । संभवत
उस समय उसकी आर्थिक स्थिति उत्तरी बन्धने न रही हो । धन के अभाव
से ही लोग दास और दासियों को खरीदकर रखते थे और उन पर अपना हर
प्रकार का अधिकार दिखाते थे । ये दास और दासियाँ स्थायी रूप से अपने
स्वामियों के निजी परिवारक और परिवारिकार्ये जाने जाते थे । उनकी विशेष
कृपा से ही इनका छूटकाय होता था । जैसे कि बसन्तसेना की अनुभव्या के
मदनिका का छूटकाय हुआ । अद्विक से जामुपत्तों की खोरी भी तो इसीलिए
की थी कि वह अपनी प्रेयसी मदनिका को, जो बसन्तसेना की अति बारी थी,
छूटा सके ।

निष्कर्ष

वृहपति उल्ट इस रूप में हमसे कुछ भिन्न है बीज वि साहित्य व्याख्या करने
पर इसका अर्थ वृहो का पति होता है । प्रचलित मुझिया अर्थ इससे भिन्नता-मुहता

१ एतद्विद्वान्ती मम मन्त्रभाषिण्या ऊपरखेतपवित्त एव बीजमृद्रीतिप्लवविहायमम
वसुत्तम् । (सं० अनु०)

हैं। यह गृहपति घरे ही रूपकों के स्वामी बनवा मुस्वामी छै हौं पर ऐसे प्रमाण मुञ्जकटिककाल में नहीं मिलते जिनमें यहाँ के बमौदारो बैसा व्यवहार इनके किस्मों के प्रति रहा हो। वे वनी ये तथा ग्रामीण और नागरिक भूमि के बिकारी थे। समान में ऐसे धनिक वर्ग का बोझाटा या और दास-बासियों को छोड़कर रखने की भी इस समय प्रथा थी। ये बड़े समृद्धियाँ होते थे। इनका जीवन बड़े छोट बट भ्रम था, पर भ्रम से बुरूपवेष से यह दुर्धन से भी भ्रम बताते थे। जैसे संवाहक को छूठ की कत पठ पयो।

(ग) वाणिज्य का महत्व तथा विकास

मुञ्जकटिककाल में व्यापार बड़ा-बड़ा था। व्यापारिक वर्ग बणिक् भाति के नाम से विख्यात था। ये हूँ बणिक् नाम वीर कहलाते हैं। उन्हें उस समय जेष्टो कहते थे जो प्रचलित सेठ घर का गृह स्व है। जेष्टो वर्ग का निवास-स्थान वेष्टिचरवर कहलाता था। उस समय के कुलीन ब्राह्मण वैश्व आध्यात्मिक ही रहते थे, परन्तु कोई-कोई बड़े व्यापारी भी होते थे। अस्तित्व के बाद एक बड़े व्यापारी होने के कारण जेष्टो कहलाते थे। ललाठीन समाज में वो की प्रतिष्ठा थी। एक तो ब्राह्मण की, दूसरे व्यापारी वर्ग की। व्यापारी वर्ग एक संगठित भाति के रूप में था। इनका एक शासक द्वारा मनोवैत व्यापारी प्रमुख रूप में होता था। संघटितवादी वर्गों से व्यापार की सकल मददिका की बसतवेता के प्रति कहीं हुई निम्न शक्ति से जात होती है।

अस्तित्व—किं अपेक्ष्य सरङ्गिगम्य बणिक्विह्वलित्वातो वाणिज्यमुवा वा कामोबधि ।^१

मू० क० (टि० अंक)

यथा अनेक नपथों में गमन से प्रचुर सम्पत्ति लब्धि करने वाले व्यापारी को कामवा की जा रही है।

इसके उत्तर में बसकसेना ने कहा है—

हृत्वे ज्वाकृद्विपेदृषि पणहवण परिष्ठाहम वेसन्तरवमनेष बणिक्बन्धो महत्तं विदोममं बुद्ध सम्भाषिदि ।^२ मू० क० (टि० अंक)

हे बेटे ! व्यापारी बुद्ध प्रकृत प्रेम वाले प्रेमी जन को छोड़कर विवेक -

१. किमनेकनवाटिबननप्रतिवनिमबित्वातो वाणिज्यमुवा वा काम्यते ।

(सं० बन्०)

२. वेदि, ज्याकृद्विपेदृषि प्रणयिबनं परित्यज्य वेसान्तरवमनेन बणिक्बन्धो महत्तं विदोममं बुद्धसम्भाषयति ।

(सं० बन्०)

जैसे जान से वियोगवर्जित महान् दुःख को उत्पन्न करता है। अतः वसन्तदेवा विघ्नी व्यापारी को प्रेमी नदी बनाना चाहती।

उक्त समय का व्यापार इतना फँसा हुआ था कि व्यापारियों के अपने बहाव थे। अतुल्य अक म बेटी से समापन करते हुए विदूषक ने कहा है—

‘मेदि, कि तुम्हाय बाणवता रहन्ति’^१

मू० क० (प० अ०)

क्या आप के जान (व्यापार के लिए बहाव आदि) बरूटे हैं ?

डाक्टर भण्डारकर न भी इस सम्बन्ध में लिखा है—

“Ships from the Western Countries came according to the author of the Peninsula to Bharukachh, the modern Bhadocha, and the merchandise was then carried to the inland countries”^२

उन दिनों विभिन्न व्यापार मण्डल से जैसे बरुनिर्माताओं, शीपनिर्माताओं एवं अन्य व्यापारी आदिकों के। ये पूर्ण रूप से सञ्चित एवं सुलभ थे। इनके पास उचित स्वामी बचरायिनी थीं जिनपर पीढ़ी दर पीढ़ी भ्याज चका करता था। विभिन्न वस्तुओं के विषय से उत्कृष्ट व्यापारी पुष्कल बन उभड़ करते थे और उसे व्यक्तिगत आमोद-अमोद में व्यय करने के अतिरिक्त सार भावना से दूसरों के सेवानायों एवं अन्य सामाजिक कामों में व्यय करते थे। इसका वृद्धि-कोष आध्यात्मिक था। विदूषक न वास्तव के सम्बन्ध में इसी की पुष्टि करते हुए कहा है—

‘मो मो अग्ना । अण दाव पुरदुवावपिहायरासदेवक तशाववुवतुवेदि
अकफिदा पवरी उज्जवधी, सो अनीसोवत्ववहतवत कारणाओ एरिं अणव्य
अनुविदृशित्ति’^३

मू० क० (म० अ०)

हे आर्यजनों ! जिसने अपना बरुनिर्माता, शीपबिहार, उपवन, मन्दिर, ताछाद रूप तथा मन्त्रस्थलों के द्वारा उज्जवधी मयरी को अलहृत दिया है

१. भवति कि दुष्माक वातपानाधि वहन्ति । (म० अनु०)

२ Dr Bhandarkar History of the Decan

३ मो मो आर्या । यत तावतुरस्वापन विहायरासदेवक्यतवायवुववैरतशु-
ताणवर्गवमिनी, सात्रीयोपेवकस्ववतकारणाओदुमवार्बवमुदिपनीति ।

बहु निर्बल होकर कसेना बंधे कुच्छ घन के निमित्त इस प्रकार का अकार्य करेगा ।

बहिष् व्यापार कुच्छ वे और बेस की समृद्धिवाँछा उनके कारण बढी-बढी थी । फिर भी जनसमुदाय की भावना उनके प्रति निरवसरनीय न थी जैसा कि विदुषक श्रे राक्ष से ज्ञात होता है—

‘मुद्दुदुदु कुच्छदि—अकन्व समुत्पिदापत्तमिणी, अन्वचबो बहिष्मो, अचोरो, सुबन्धमारो, अकच्छो, गामसमाचरो, अकृशा मभिव्राति बुक्कर एवे चंभप्रियजति ।’

म० क० (प० कक)

बेवपूर्वक ठीक ही कहा जाता है — बिना बड के उत्पन्न हुई कमठिनी, न छनेबाठा बहिष्, न पुपने बाळा सुगार, बितने अचबा न हो ऐसा प्राम-सम्पन्न और न सोच करने वाली वैसा एणको सम्भावना करना कठिन है ।

मूक्तकण्ठिक में वादरत्त ने पुष्पकरच्छक उद्योग के वर्णन के समय नागिण्य का अतिशय सामाजिक मुनर रूपक विहित किया है ।

बहिष् इव नास्ति वरत्त , पम्पामोव तिष्ठतानि कुसुमानि ।

मुक्कदिब छाचरन्तो मबुकरपुक्का प्रपिचरन्ति ॥

म० क० (७-१)

इस भाटिका के कुल दण्ड के समान धोमित हो रही है । पुष्प विक्रय बराबरी के सु०य स्थित है । शीरे राजकीय पुरवो के समान कुच्छ छ जेते हुए प्रमथ कर रही है ।

निष्कर्ष

कृषि की शक्ति व्यापार में उद्योग में जीवक-निर्वाह का उत्तम साधन माना जाता था । सामाजिक अर्थशास्त्रियों ने नागिण्य से बहुत कम समय किया और अपना जीवन सुधार रूप से व्यतीत किया । मूक्तकण्ठिक में तो सामाजिक जीवन के रूप ही की बिलामे है । एक तो वन-वीर्यपूर्ण जीवन-साधन और दूसरे निर्बल बसा में जीवन-होग जीवन की लोचो । मूक्तकण्ठिककार का अर्थ ही ऐसा है कि वह यह बिलामे में सफल हो कि उत्पन्न वे निष्ठ अति दिग्गो-पति क्लेश कठिनाई से बस्त वर्मात्मा को पराजित करने में विफल होख है ।

१ मुद्दुदुदु सारूप्यते—अकन्वसमुत्पिदापत्तमिणी, अचबको बहिष्, अचोर सुवर्ण-व्यार, अकच्छोप्रामादसाम, अकृशावपिनेति बुक्कर(येते समाख्याते ॥

“Means are justified by the end.” सब से उपसंहार ही औचित्य का प्रतीक है ।

यथास्थान मुञ्जकटिक में व्यापार को चर्चा और उपमान के रूप में उतको व्यक्त करना इस बात का प्रतीक है कि व्यापार अनसमुदाय की रीति का विषय था । इसमें सोच अपना सुख बन कमाते थे । तात्कालिक व्यापार इतना बड़ा हुआ था कि वह भूमिगत बानों के द्वारा हो होता ही था छाव ही समुद्र द्वारा भी किया जाता था । नवमुपक इसमें सोसाह नाम लेते थे, एक प्रवेष्ट से दूसरे प्रवेष्ट में विचरण करते थे और कई-कई दिन यात्रा में व्यस्त थे ।

सँपे हुए सामग्रियों को देने के पश्चात् विद्वपक ने इस भाँति सुख अनुभव किया जैसे कि कोई व्यापारी अपने भाग को बेचकर सुख प्राप्त करता है । नसन्तसेना और मयलिता की शक्तशीत में जो बहिक वृत्ति की शक्त व्यापारियों का विषय प्रस्तुत करती है । सबाहक भी सर्वकाम के विचार से बुद्धारियों के समुदाय में पैन थापा है और बहानता से वृत्त की सर्वकाम का व्यापार मान बैठता है ।

(घ) पेशो और व्यवसायो की सुखसदा

वर्षभ्यवस्था वैद की बहुत बुजानी व्यवस्था है और इसके अनुसार कर्मों का विभाजन भी पता जाता है । शाह्यो क्य कार्य कैवल पढ़ना-पढ़ाना, मत्र एव काम के रूप में था । ईसो का कृषि और व्यापार था । धर्मियों का ऐतिक जीवन बिताना एव शासक के रूप में देश को रला करना था । वृद्धों का कर्म लोगों वचों की सेवा करना था । इसका आरम्भ हुआ तो था बच्चे व्यवस्था को लेकर पर कलातर में यह देखा गया कि अपने-अपने कर्मों में समुचित सम्शोप नहीं मिला तो अन्य कर्मों के सम्पर्क से उनमें रति की बहिकृति हुई । कर्मों-कर्मों कार्य में विवेक सर्वकाम देखकर भी बहान अपने कार्य की बनेजा धपर बहिक हो गयी । इस भाँति वर्षभ्यवस्था ने अनुसार कार्य-व्यवस्था में सिचिलता आ गयी ।

मुञ्जकटिक काष्ठ में शाह्यन वास्वत के बाधा एक मुचल सेछी से और व्यापार कला में बड़े दल थे । यैछी समुदाय की यह समय बच्ची प्रतिष्ठा थी । जनमें से कोई-कोई उस समय राज्यसेवक, म्यादापीछ, सिपिक, पुनिस, निर्धम के बहिकरपिक के सहायक (Assistors) होते थे । अन्य वर्षकारियों के बहिकरिक्त विम्यकारों एव वेदेवर बाष्ठाओं की, शासकियों की अपनी जगह विचिल थी । बीरक और चन्दक नवररत्न का कार्य करते थे पर बाधि के अमत्त नाई और चमार थे ।

बसन्तसेषा भक्ष्यव्यवहारस्य 'सस्तिरीयथा । बं सवर्णं मज्जात्पस्य विजपस्य
बसन्तसिद्धिं व्यावारेवि ।' १३ मू० क० (५० अंक)

बसन्तसेषा के मरुपदार की शीमार्षपन्नता निर्बन्धों के मनोरथ के जिये पीडा-
दायक है । यह सच में बदासीन बन की दृष्टि को भी बसात् आकर्षित करती है ।

बनिक व्यापारियों के विघात मूह एव समुद्र वैश्याओं के वैभवपूर्ण मुन्दर
मदन इसके चोतक है कि सत्त समय मरुपनिर्मातृ कुसल राजमभरूर, बहई बीर
चित्यकार रहे होंगे । सुगम और मानन्दपूर्ण जीवन यापन करावे बाळा व्यरुणाय
गुनार ना पा जिसमें बसीमित भाग थी । सुवर्ण का उस समय बाहुस्य था ।
व्येक प्रकार के मानुष्य उसके द्वारा कैवार किये जाते थे । जबकी सस्या उस
कमव जनेलाह्य बपिक रही होंगे पर वे समाज की दृष्टि में निरपसनीय न थे ।

सुवर्ण को कबोटी पर परखने की पद्धति सत्त समय प्रचलित थी ।

विसासरीयस्य सुवर्णपिबरा बहीतके सविभुजेन निर्गता ।

विवादि परंस्तुम समाकृता सुवर्णरेवेव कये विवेदिता ॥ मू० क० (३-१७)

कबोटी पर खीची गयी स्वर्णरेखा के समान गुनहरी पीकी रेंव के मार्ग से
बाहुर भूमि पर निकली हुई तथा चारों ओर व्यवहार से बाधुत बीपक को शिवा
पोबित हो रही है ।

दूसरे क्पाव पर खेटी से विसाये कये सुवर्णपात्र को देखकर विदुषक कह
उठता है :—

'भोवि सिम्पिकुसकराय भोवन्विदि विटिठम् ।' १३ मू० क० (५० अंक)

दिस्य को कुसलता के कारण यह पात्र दृष्टि को आकर्षित कर रहा है । इस
कवग से निरिबत है कि पात्रो पर शिल्पकार्य सुदर होता था । मानुष्य रखने
बाछे जब ये सुवर्णपात्र देखने में इतने आकर्षक थे तब उनके आन्तर रहे
स्वर्ण के मानुष्य किये सुदर रहे होंगे ।

अविकरपिठ और पूजा को बाठबीठ के अवसर पर पूजा के आनुष्यों के
पहचानने में सदेह में पठ जाने पर अविकरणिङ्ग भी कहने समता है :—

वस्त्वन्तरामि सद्धानि भवन्ति नूनं

क्यस्य नूयनामुसस्य च इतिमस्य ।

दुन्द्या किनामनुकरोति हि शिल्पिवर्षः

स्यदस्यमेव कुतहस्ततया च दृष्टम् ॥ मू० क० (९-३४)

१. बसन्तसेषामव्यवहारस्य सशोकता । बसन्तस्य भक्ष्यस्यस्यापि बसन्तस्य बसावृद्धि-
वाकार्यति । (५० अनु०)

२. मरुधि, सिम्पिकुसकरया व्यावर्णाति दृष्टिम् । (५० अनु०)

निष्पन्न ही कृत्रिम आकार तथा आभूषणों के सौन्दर्य कादि पुरुषों में बन्धु वस्तुओं
समान होती है क्योंकि विरूपकार किसी वस्तु को देखकर उसकी रचना का
बन्धुधरन करता है और विरूपकार के हस्तकीयसत के कारण ही वो वस्तुओं में
सावुरव बैठा गया है ।

निष्कर्ष

वर्णव्यवस्था के अनुसार कार्य-विभाजन की पद्धति का शीघ्रकाल तक पक्का
सम्बन्ध न हो सका । इसका प्रमुख कारण यह है कि यमुष्य की मनोवृत्ति ऐसी है
कि वह सरल कार्य करना चाहता है, जबकि काम भी चाहता है और पढ़ता
है साथ में प्रतिष्ठा । वर्णव्यवस्था के अनुसार सूत्रों का उपाकार्य कठिन और कम
काम का है मत वे पक्का ही इस सम्बन्ध में सपर्यायीय रहे हैं और दूसरे वर्णों के
कामों को अपनाकर भाकासी रहे हैं । इसी प्रकार वर्णों के कामों में अध्यवस्था
पड़ती जाती पयी । इससे कुछ लोगों ने तो अपने वर्ण के कामों को छोड़कर दूसरे
वर्ण के कार्य अपनाकर अपेक्षाकृत सफलता का प्रदर्शन किया, पर कुछ कार्यकुशल
न होने से दोनों ही ओर से पके वर्णों अपने कार्य को छोड़ देने से तो उच्च
जनश्रिता पड़ती गई और दूसरे कार्य में बहकार न होने से कुछ न बन सके ।

राजकीय सेवा में रहने वाले लोगों का आज की अपेक्षा प्राचीनकाल में
बहुत अधिक सम्मान था । समाज पर उनका प्रभाव था । मृच्छकटिक में पुत्रिस
और न्यायविद्यान इसके प्रतीक हैं । जवर्णों के नियंत्रण में विरूपकारों का वास्तु
वस्तुधरना के दृष्टिकोण से शान्त होता है । हस्तकीयसत के कलाकारों में स्वकार
अधिक सम्पन्न थे । आभूषणों का प्रचलन बहुत था । आज की भाँति सपन की
ओर रुचि न होकर स्वर्ण के आभूषणों के सपह की प्रवृत्ति थी । स्वर्णभूषणों
का आधिक्य और सुन्दर प्रभाव मनुष्यों की समृद्धिशासिता के प्रतीक थे । इस रूप
में मृच्छकटिक में वस्तुधरना के प्रभाव का उल्लेख सर्वथा समुचित है ।

अध्याय विश्लेषण

धर्म-विरोध का अर्थ युग पर बड़ा प्रभाव पड़ता है । मृच्छकटिक काल
में वैदिक और बौद्ध धर्म दोनों ही प्रचलित थे । विरोधता यह है कि प्रकरण का
आरम्भ वैदिक धर्म सदाभी कर्मकाण्ड में वत, उपवास आदि से किया गया है
और समाप्ति बौद्धधर्म द्वारा विहार में अस्वस्व वस्तुधरना की सेवा-गुण्यता से
की गयी है । वचनव्यवस्था और आधिक्यसत के व्यवहार, पर बढी नहीं थे । ब्राह्मण
एव ही के प्रति आदरभाव था । ब्राह्मणों का काम अध्ययन अध्यापन था । यज्ञ
एव बैरपाठ से उनके पर सदा अज्ञेय थे, पर उनमें धनी वर्ग व्यापार भी करता
था । मार्ग वाचस्पति के विद्यामह बड़े भारी छैठ थे । कुछ ब्राह्मणों में छत पपट

का प्रवेश हो गया था। कई ब्राह्मण युवक बुबा और खेरी में अपना समय बिताने लगे। उस समय की बर्तमान वर्षा आन्ध्रप्रदेश से निम्न लगी। सम्प्रदायान्तर, बलि रीति, शैवशास्त्रों के मन्दिरों में तापकण्ड दीपदान आदि कर्मों की शक्ति उस समय भी प्रचलित थी। इन्द्रधनुष तथा अमरदेवोत्सव प्रत्येक समय सर्वत्र मनाये जाते थे।^१

पैतृ और विहार भिक्षुओं के लिये बड़े बड़े यहाँ रोमियो की सेवा-शुश्रूषा के लिये व्यवस्था थी। एक ओर बौद्धधर्म की यहाँ यह लक्षणाई है यहाँ बुद्धों की ओर इसके अनुयायी निकम्मे और जातकी बनते जा रहे थे ब्रिजका उत्तम विहार में शिषु बनकर बैठ कराने का प्रयत्न करवा था। स्थितियों में भिक्षु भी बन जाती थी। बौद्ध धर्म यद्यपि सम्प्रसारित था फिर भी बौद्ध धर्मों का पर्यन्त व्यवहार मान्य जाता था। ईश्वरों का उस समय ब्रह्मण्डल प्रचलन था। वे दूर देशों से व्यापार करते थे। शिरोधार्य में भी उनके बहाने व्यापार-आव्य करते थे।

असमसाय में अनेक प्रकार के विश्वास प्रचलित थे। सिद्धों की अविष्य-वाणी पर ही राजा पाण्डव ने आर्यक को अग्निभूष में डाल दिया था। ज्योतिष के अनुसार अनुष्णबीजन पर बहनों का प्रभाव शत्रु का विश्वास प्रचलित था। धर्मशास्त्रों में वनता की शाल्वा भी अथ समाज वास्तिकता से विमुक्त था। आर्यक दुष्टि से कृषि एवं वाणिज्य का परस्पर सम्बन्ध है। उस समय पान की व्यवस्था विशेष की जाती थी। वाणिज्य प्रचलन काय में था और यहाँ से भारतीय वस्तुओं का निर्यात होता था और यहाँ न होने वाली वस्तुओं का यहाँ से आयात होता था। उच्चवर्णियों के यहाँ सम्राट व्यक्ति श्रेष्ठ-वत्पर शासक प्रवृत्ति में रहते थे। उत्तम परस्पर संघटन था। पत्नी-पाली और अश्वरथेता व्यक्ति शार्द्धकालिक हित के लिये अनेक प्रयत्नशील कार्य भी करते थे।

इसके अतिरिक्त माई, जमार, राजपौर, बहई, वास्तुकार इत्यादि का भी प्रचलन है। सुन्दर व्यक्तियों का निर्माण भी उपरान्त ही था पर छोटी वस्तु तथा शैला की वृद्धता में विशेष न हत सुवर्णकारों की कला एवं सुवर्णता की पत्नी की है। शिषुय शिल्पी भी उस समय थे। इन सब बातों से स्पष्ट है कि उस समय आर्थिक स्थिति प्रगति की ओर थी।



मृच्छकटिक काल का सामाजिक जीवन

सामाजिक चित्रण की एक छाँकी

सम्पूर्ण भाषा में मृच्छकटिक एक ऐसा प्रकार है जिसमें क्षुद्रमन इव की कथा है। कवि ने इसमें प्रेम के कथानक को अपनी सुन्दर रचना से राजनीतिक घटनाओं के साथ जोड़ा दिया है। इसका व्यंग्यमय दृष्टिकोण है। उत्कासीन सामाजिक रसा पर भी इसका पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों जैसे चोर, घुँस, वेप्या, राज्य के अधिकारी आदि की इसमें पर्याप्त चर्चा है।

इसके पढ़ने से उत्कासीन राज्य के स्वल्प के सम्बन्ध में यही ज्ञात होता है कि उस समय यद्यपि राजतन्त्र का पर राजा प्रजा के विचारों के अनुसार राज्यप्रियियों की सम्मति से, अनेक प्रकार के सुसंस्कार विद्या के अधिकारीवर्गों से, दूत एवं अनेक सेवकों की सहायता से राज्यकार्य सम्पन्न करते थे। इस राजा का निरूपण करता हुआ ग्यायानन्द ने आरूढत कहे हैं :-

विद्यतासक्तनिमग्नमन्त्रिसङ्घितं सुतोर्मिसञ्चाकुल
 वर्यन्तस्त्रिभारतमकर भाषाभिहितसिद्धम् ।
 नानाबाधतददुपत्तिरचित कावस्वतर्पात्पर
 नीतिक्षुण्णतट च राजकरम हिंसं समुदायते ॥

सू० क० (९-१४)

यह राजा क्षुद्र के समान है और मयकर द्विष्टक वस्तुओं से विरा है। यही निरन्तर राज्य रक्षा पर विचार करता हुआ मन्त्रिमण्डल बन्ध के समान है। फिर हमर-ज्वर से माने वाले दूत लहरों तथा चरों के समान है। चारों ओर स्थित सुसंस्कार विद्या के अधिकारी मकर एवं भाषों के समान है। बन्धु बन्धियों जैसे बासी-प्रतिवासी अनेक बाध और अर्थहीनता के समान है। राज्य के अनेक पदाधिकारी द्विष्टक वस्तुओं के समान प्रजा को मय रिकाने है। कायक वर्ग के समान है। इस भाँति यह राज्यमण्डल द्विष्टक वस्तुओं के समान बाधक शक्तियों के विरा हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय

राजा जोग मंत्रियों की सम्मति से कार्य किया करते थे। राज्य प्रयासी कुछ गूढ़ होनी वा रखी वी और प्रजा राजदण्ड से भयभीत रहती थी।

मृत्युदण्ड की प्रथा उस समय प्रचलित थी और न्याय ठरनेवा शोषानुकूल एवं निष्पक्ष हुवा करता था। अभिवृत्त श्री इच्छा पर अपराधी की मुक्ति भी हो सकती थी। शस्त्र को यद्यपि मृत्युदण्ड ही बना या पर चारदण्ड से उसे बना कर दिया। न्याय की व्यवस्था समुचित थी और बड़ी बर्बानुहार सम्मल भी रिया जाता था। पादरत्न के न्यायानय में उपस्थित होने पर न्यायाधीश ने जनका मस्कार किया, पर दोष सिद्ध हो जाने पर उस बैठे शाहजान को ही मृत्युदण्ड देने में बागा-पीछन नहीं किया। राज में चारदण्ड निर्दोष या और शाहजान को उस समय दण्ड देना भी समुचित समझा जाता था। इसीविषे चारदण्ड पर अब अभियोग उठाना गया ही वह कुछ हीकर रहने गया :-

विषसन्निहितुलाम्निप्रविष्टे मे विचारे

कल्पमिह शरीरे शोक्य शतम्यमद्य ।

अथ त्रिपुरबनारास प्राह्वयं मा निहृंसि

पतसि मरकमभ्ये पुत्रपौत्रैः समेत ॥

मृ० क० (१-४१)

जरे न्यायाधीश यदि विष, अथ, तुला बोट अग्नि की शाली से घेरा न्याय किया बना है ही आज ही मेरे शरीर पर जारा बहाना चाहिए, अथवा समु के बर्बाने से बखीभूत होकर आप मुझ शाहजान को दण्ड देने तो आप अपने सभी पुत्र-पौत्रों सहित मरक में आवेंगे। इस उक्ति से हाठ होगा है कि उस समय न्याय अग्नि, अथ व तुला की शाली से किया जाता था। यदि किसी शाहजान वा मन्त्राय के मरण अनिष्ट हो जाता तो उससे अभिष्य में किसी भयकर विपत्ति की संभावना की साधका यती रहती थी। दण्ड का उस समय कैसा विधान था और दोषी को किस प्रकार का दण्ड दिया जाता था इसका भी ज्ञान मैं बढ़ा ही स्पष्ट निरूपण किया गया है। दण्ड के बोधी सिद्ध होने पर दण्ड के समय चारदण्ड से पूजने पर अविवेक कहता है :-

आकर्षन्तु मुहूर्द्धन एवमि- संजाततामव ।

सूते वा विच्छान्तेव पादयत्न कृत्वेन वा ॥

मृ० क० (१०-५४)

हे पादरत्न मुझे बतावो कि इस दण्ड के साथ क्या किया जाय ? इसे बांधकर घनीटा बांध या कुत्तो का भक्ष्य बनाया जाय या शून्नी पर बहाना जाय वा इसके शरीर को जारे से चिरनाया जाय। इससे प्रकृत होता है कि उस समय अपराधियों को बहुत कडा दण्ड दिया जाता था। कैय देम की प्रथा भी उस समय प्रचलित

की और दिए हुये उधार को वापस करने के लिये बड़ी कठोरता की जाती थी। दूसरे बंध में सबाइक और माचुर एक दूसरे से अपने उधार किये हुए धन के बियन में बाधघात करते हैं। माचुर सबाइक से उधार लिया हुआ धन वापस माँगता है जिसे सबाइक देने में असमर्थ है। माचुर इसके लिए उसे अपने माता-पिता और अपने भाव सबकी देखने तक की अनुमति देता है। इस बन्धना से वहाँ एक और हास्य का पुट मिळता है वही उधार लिए हुये धन को लौटाने के लिए असह्य कठोरता का परिचय भी प्राप्त होता है।

व्यापार उस समय समुन्नत दशा में था। समुद्रमाथा भी प्रचलित थी जैसा कि चीन के कंग में यीमेय ने चेटी से कहा कि क्या तुम्हारे बालक या बहाब लमुत्र में चढी है। उसके मात होता है कि बहाब बलामे और समुद्र द्वारा व्यापार करने की सुविधा प्राप्त थी।

बौद्ध धर्म का हास आरम्भ हो गया था। मार्ग में जलस्मात् बौद्ध मिथु का बर्णन भी एक अत्यन्त समझा जाता था। कुनीन तो बौद्ध भिक्षु को देखकर उस मार्ग को ही छोड़ देने से। साठवें शक के बन्ध में चाइरत और जार्जक बौद्ध मिथु को देखते हैं और उसको किसी बलिष्ठ की सहायता लपकाकर अपनी मार्ग ही बरक देते हैं।

समाज में उस समय जाति के आधार पर अच्छी-बुरी चारणियों को। पक्ष-सेना एक बहिका महिका भी को समाज के लिए कसक समझी जा सकती है। यह जीवन-वृत्ति उस समय जनममुदाय की दृष्टि में प्रचलित थी। जैसे तो यह वृत्ति सदा से ही अर्थिककर समझी जाती रही है पर इसके दूसरी और समाज से अविचार की मनोवृत्ति नावित रहती है। जैसे बंध में अर्थिक और मरविना की बातचीत में स्त्रियों के बंधों को चर्चा या जाती है और एक स्वाम पर तो इन बेरवाओं को समझान के पुण की प्रीति ख्यात बताया है—

एता हस्तित च वदन्ति च विसर्हतो-

विश्वासयन्ति पुरुष न तु विप्रसन्ति ।

उत्साजरेष कुञ्जीकसमन्वितेन

वैश्याः स्वयानमुमना इव वर्जनीया ॥ ५० क० (४-१४)

ये बेरवायें धन के कारण ही हैंती हैं और रोती हैं। पुरुष को प्रत्येक प्रकार से अपना विश्वास दिखाती हैं परन्तु स्वयं किसी का भी विश्वास नहीं करतीं। अतः अज्ञान और बुद्धीय दूरियों को चाहिये कि यह बेरवाओं को समझान के पुणों के समान स्थाय रें।

निष्कर्ष

इस समय के समाज में एक अन्तर्द्वंद्व था। एक ओर दुष्टता की सत्ता सरकार के परिषद से जात हीनी है बिहने ऐसा वर्णन तथा बिहने द्वारा वास्तव पर वनन्तसेना की द्वारा का अभिप्राय सिद्ध किया गया पर अंत में उसके मन्त्र-स्योद हो जाने पर वास्तव के स्वाम पर सरकार को अन्व वन्त सेना निश्चित किया गया। पर दूसरी ओर वास्तव को उवाखा इन सम्बन्ध में सर्वथा प्रसंग-नीय है बिहने उसे समादान दिया और फौजी के तत्त्व से उवाखा। इस मूर्ख समाज के प्रतिनिधि वनन्तसेना और वास्तव दोनों ही बरिष उन्नतता के प्रतीक हैं।

साथ ही मूर्ख समाज में उस समय निर्बलता को अभिप्राय माना जाता था। बणिक्ताओं का जीवन भी सामाजिक दृष्टि में पुणित समझा जाता था। पर वास्तव और वनन्तसेना का ऐसी ही परिस्थितियों में परस्पर मिलन एक सुन्दर प्रसङ्ग है।

आतिथ्या के वयन

मृच्छकटिक के समय समस्त: तगणों में एक जाति अपना एक क्षेत्र के लोगों के बलय-बलय मोझके थे। शिरीय अथ हैं वास्तव का परिषय देने हुये, सदा-हक ने कहा है—'स अट्टु अष्टि-अत्तरे प्रविपनति' (वह निश्चय सेठो के मुहल्ले में रहने हैं)। आतिथ्यवस्था इस समय बनेवाहठ कठोर थी। अन्व से जाति मानने की प्रथा बह पड़ी थी। अन्व में आतिथ्य अभिमान उत्पन्न हो गया था। इसकी सत्ता औरक और अन्वक के बिचार में दिखाई देती है। अन्वक औरक से कहता है—

दिग्गतिस्त्रासकहस्तो पुरिउय कुम्भपण्डितंठमजो ।

कतारिषापुरहस्तो तुमं पि सेनापतिं चापो ॥' मृ० क० (१-२२)

दूटे अन्व के दूकठे को सत्तरा पैताने के जिमे हाथ में रखने वाल्य, पुरपों की दादी बनाने वाला तथा केबी बनाने में व्यस्त हाथ वाला चार्ड भी तु सेना-पति झे गया।

एही प्रकार का उत्तर औरक ने अन्वक की दिया है।

१. शीर्षत्रिशासकहस्तः पुरपाया कुम्भपण्डितस्यापतः ।

कतारिष्यापुरहस्तस्त्वमपि सेनापतिर्वाट ॥

(४० अनु०)

बाबी तुम्हें विमुक्त माया मेरी पिता वि से पढ़हो ।

दुम्भुह करवव भावा तुम वि सेपावई बाबो ॥^१ मू० क० (१-२१)

तुम्हारी बातें सब में बड़ी पवित्र हैं । मेरी (दुम्भुमि) माता हैं, पट्ट (ताता) पिता हैं, करटक (बाधयंत्र) माई हैं । तुम धर्मकार होकर भी सेवापति हो पये । बाध्याओ की शक्ति भी सुन्दर है—

य इ बम्हे पाध्याला, पाध्याभकुलमि आदपुम्बावि ।

ये बहिमबन्धि साहु से पावा से म पाध्याला ॥^२

मू० क० (१०-२१)

पाध्यास कुल में उत्पन्न होकर भी हम पाध्यास नहीं हैं, जो बन्धन को अपमानित करते हैं वे पापी हैं और पाध्यास हैं ।

अपने ज्ञान और चरित्र को धेय्यता के कारण ब्राह्मणजाति सर्वश्रेष्ठ मानो जाती थी । समान उन्हें भावर की दृष्टि से देखता था ।

बुदा से विदुबक ने कहा भी है—

‘समीहित्तिदिष्टि पठतेय महापो बम्पदी कदत्तो’^३ मू० क० (दशम बक)

बन्धीष्टसिद्धि के लिये प्रवृत्त हुए व्यक्ति को आदिवे कि ब्राह्मण को प्रथम स्थान है ।

ब्राह्मण जाति को मनु ने जो महत्त्व दिया है :—

मम हि पातकी विशो न बध्मो मनुष्यवीत् ।

राष्ट्रावस्मात् विधीतो विभवीरलर्षे सह ॥ मू० क० (१-१७)

निराधम हो यह पापी ब्राह्मण बध्मोम्य नहीं है किन्तु अतिरहित शक्ति के साथ इसे राष्ट्र से निकाल देना चाहिये ।

बाध्यास को मृत्युदण्ड की आज्ञा शासन का विशेष अधिकार था जो मनु के अनुकूल शासन व्यवस्था का अपवाद था । मनु ने ब्राह्मणों के अपराध करने पर अन्य वर्गों की भाँति उन्हें भी विभिन्न दण्ड निर्धारित किये हैं । यद्यपि ब्राह्मण द्वारा भुवर्ष जाँट का चुपचाप जाना बंधा पाठक माना जाता था, पर पवित्रक

१. बानिस्तव विमुक्त माया मेरी पितावि से पट्ट ।

दुम्भुहकरटकभावा स्वमि सेनापतिवति ॥ (स० अनु०)

२. म सक्तु बय पाध्यालापाध्यासकुले पाठपूर्वा अपि ।

येप्रथिमबन्धि साहु से पापासै च पाध्याला ॥ (स० अनु०)

३. समीहित्तिदिष्टये प्रवृत्तेन ब्राह्मणोऽप्ये वर्धम्य । (स० अनु०)

ब्राह्मण बोरी बादि दुष्कर्मों में कैदा हुआ था और ब्राह्मण वादि के विम्वे कसक था ।

मयावसर विद्वयक की राँक भी विचारणीय है । विद्वयक का कहना है—

मम बाव बुबेहि क्खेव ह्मसं बावदि । इत्थिमाए सक्कम पठन्तीए, मनुस्सेव व कावली वावन्तेव । इत्थिमा बाव सक्कम पठन्ती, विम्मभवपत्ता विव विट्ठी, बद्धिं म्मुसुवावधि । मपुस्सोवि कावलीं मावन्ती, सुक्खसुमज्जो वाववेट्ठिरो नुत्त-पुटोहिदो विम वत्त ववन्ती, रिठं मे व रोवधि ।^१ म० क० (वृ० वक)

मुझे तो दोनों से ही ईंसी बातत होती है । तस्कृत पठती हुई स्त्री से, मपुर एवं सूक्ष्म ध्वनि गाते हुए पुल्प से । स्त्री से तस्कृत पठती हुई नवीव रज्जु बन्धी हुई एक बार प्रसूता गाय की भाँति बबिक्क सु सु शब्द करती है । मनुष्य भी मपुर एवं सूक्ष्म ध्वनि में गाता हुआ, दुष्कृत्यमाका पहूँचे हुए, मम्म बपते हुए नूत्र पुटोहित की भाँति बर्बपा बन्धा नहीं लगता ।

इसी के बाये विद्वयक में ब्राह्मणत्व की प्राप्रउ होती हुई भावना को देखिये । बेट ने जब विद्वयक से वावदत के पैर बोने के किए कडा तव सक्के प्रवेव का ठिकाना न रहा ।

विद्वयक—(सक्खेवम्) मो बवस्म, एसो वावि रावीए पुत्ती भविम पाविमं येव्वेहि । मं जय बम्हं पाराई बोवावेहि ।^२

विद्वयक—(ओपवूर्बक) यह बेट रावी कर पुत्र होकर जब पानी सहन करता है और मुझ ब्राह्मण से पैर पुछवाता है ।

बेशों के अभ्यसन कर बधिकार उध समय केवल ब्राह्मणों को ही था । इस सम्बन्ध में उकार को उटकारते हुए बधिकारभिक ने कहा है :—

‘वेवावात्माह्वस्त्वं वरुत्ति न व ते विह्वा विपटिता ।’ म० श० (९-२१)

नीच होकर तु पैद का बर्बबोध करता है तमाधि तेरी विह्वा नहीं गिरी ।

१. मम बावबुद्ध्याम्मयेव हास्यं बावन्ते । स्त्रिवा संसुत्वं कसत्त्वा, मनुष्येव व कावली वाववा । स्त्री वावससक्कह पठन्ती, बलनवनत्सेव बुद्धि वविक्कं म्मुसुवर्गं करीधि । मनुष्योऽपि क्कसी गायन् वृष्कसुमज्जोवाववेट्ठिरो वृत्त-पुटोहित इव मम्मं वपन् दुईं मे न रोवते । (उ० बनु०)

२. मो बवस्य एव इदानीं दात्वा-पुत्रो नुत्वा पानीयं गृह्णति मा पुनर्वाह्यं पावो वाववति । (उ० बनु०)

इस पर धर्मिकर भीषण ही चौर्यकार्य अपनाते से कुमासी ही बका का पर सत्ते अपने पिता के शास्त्रमत्त्व के विषय में कहा है :

‘बह हि अनुबेदविरोधप्रतिपाहकस्य पुत्रः सविद्वदी नाम ब्राह्मणो गभिका यदनिवार्यवदार्थमनुविष्टामि इदानीं करोमि शास्त्रस्य प्रथमम् ।’

मू० क० (पु० अ०)

यै चारों पैदों का धाता राज बादि व डेने वाले का पुत्र सविद्वक नाम का शास्त्र वेरवा मरनिवा के लिए अनुचित कार्य कर रहा है। यहाँ बेहानुवायी एवं राज-बलिषा से दूर रहने वाले शास्त्र को अप्रतिपाहक कहा गया है।

शास्त्र अपने कार्यों के अतिरिक्त और कार्यों के कार्य करते में भी अपने को स्वच्छर ममताते से।

मैदिक पत्रन एवं रक्षा

मूञ्छटिक में ग्यायाम्य जैसे स्थान में आरम में निर्बोध चाररत्त को मृत्यु-वृद्ध का वारेस होता है और चहार, जिसने बसततेना की मारने का प्रयास किया, नाक छोट दिया जाता है। पर ‘सत्यं विजयते नानुत्तम्’ के अनुसार हिन्दुओं का सामिक विद्वान्त अपना जनहृ स्थिर है। नस्य सामने जाता है और चाररत्त को मन्वस्वान से इटाकर सत्तर की बतकी बसह बहा कर दिया जाता है। श्रेष्ठी और कायस्थ ने सत्य पर विद्रवा बस दिया है—

उत्प्रेष मुद् क्नु सत्तम सत्पाठावे च होइ वाचम् ।

सत्त्वति दुवेदि वचनरा मा सत्त्व अविष्ण गृहेहि ॥^१

मू० क० (१-१५)

निश्चय ही सत्य से मुक्त प्राप्त होता है। सत्य कहने पर पाप नहीं होता। सत्य में ही कर्म मष्ट न होने वाले हैं। अतः सत्य को मूढ से न छिपाया जावे। आत्मसम्मान की रक्षा के लिए चाररत्त जैसे निर्बोध व्यक्ति की प्राणों की कात्री सम्मान की रक्षार है। जीवन के लिए विद्वान्ताला उन्हें पसह नहीं है। श्रेष्ठी और कायस्थ के द्वारा चाररत्त से उनके और बसततेना के सम्बन्ध में मुझने पर चाररत्त मन्व्यापूर्वक कहती है —

‘सोः अविद्वता मया वचमीदृष बलभ्यम्, यदा अविदा बस मित्रमिति अचवा यौवनमत्रापराभ्यति, न चारिभ्यम् ।’

मू० क० (म० अ०)

१ सत्येन मुक्त सन्तु कम्पते, सत्याभावे न मरति पातकम् ।

सत्यमिति हे अध्येतारं, मा सत्यमसीवेन गृह्यत ॥ (तं० अनु०)

है अधिकारीयन मुत्तसे इस प्रकार कैसे कहा जा सकता है कि वेत्या बेरी मिन है बपवा योगन अपराधी है परिच नहीं ।

भारतय और शकार के सर्वय को बेबकर बसतसेना के विरोध मे बिट और चेट प्रलोभन दैरे पर भी शकार के दृष्टिकोण से सहमय नही है । राजनीतिक स्थिति कुछ भी हो किन्तु सत्यपरायण जनता सपन्न और दुर्जन को पहचानती है । नैतिकता और अनैतिकता की पही परख है । इस सम्बन्ध मे शकार और चेट की बसतसेना देखिये ।

शकार—'कि ये पल्लोए'^१

चेट —'मट्टके, सुम्भिय, बुबिबरय पल्लामे'^२ मृ० क० (१० म०)

शकार द्वारा बसतसेना के बच के प्रस्ताव को बिट ने किछ माँठि नैतिकता के बीचक मे ठुकराया :

पय्यन्ति मो दसदिशो बमवेबतारय,
चन्द्रय दीपकिरबन्ध विबाकरोष्यम् ।
बर्मिन्नी च बयन च सधाम्बरस्तवा,

मूमिस्तथा सुहृदुपुष्ट — सामिभूता ।। मृ० क० (८-१४)

दशों विद्यायें, बमवेबता, चन्द्रमा और दीप किरणों बाया बह सूर्य, बर्म और बायु एवं बाक्यय तथा मेरा बाक्ययस्ता और मूमि जो बय पुष्प के साथी है, ये सब मुने देखती है ।

परबोल का अर्थ इस रूप में नैतिकता को जन्म देता है और इसका अन्तिमागी प्रभाव सामाजिक जीवन के सिध नैतिकता के लक्ष्य सर्वथा उपयुक्त है ।

उन समय वही एक ओर समुध्य को ईश्वर से इतरता मद था वही शकार जैसे पाष भी ये शिका बीबन अनैतिकदुर्ज बा । बगडाई और बुछाई से सम्मिलित जीवन किसी एक हो दिना की ओर सर्वथा नही चलता यही कारण है कि उच्छुनल मधोवृत्ति के लोग अपने पर निमग्न वही रक्ष गते ।

निष्कर्ष

मृच्छकटिककाल का सामाजिक जीवन नैतिक और अनैतिक दोनों ही मापों के बाये बटवा रिखाई देता है । अनैतिकता कई रूपों में सामने आती है । जीवन

१. क स परलोड । (स० लसु०)

२. मट्टक—सुहृदुपुष्टस्य परिभाषा । (स० लसु०)

में अनेक सटके भी कहते हैं पर नैतिक जीवन-दापन करने वाले जगत्से दूर कर केते हैं। सुत और चोरो न सामाजिक जीवन को विपास्त बना दिया था। दास एक दासी प्रथा न वहाँ एक और स्वामियों को अभिमानी एक कूर बनाया वहाँ क्रूरों और निर्बल और असहाय बर्ब को हीनता और विवशता को अपनी में जीस दिया।

सोमर्ग की वशा

मूण्डकटिकाका ही स्थियों की प्रवृत्ति प्रायः विनाशितापूर्ण थी। उनका पुराण श्रुत्कार ही शोर था। उन्हें वामुष्य दिये थे। वे मुपूर, इस्तामरक, करघनी और गले की माला लारि चारक करती थी। वे वामुष्य स्वर्ण के होते थे। पुष्पों से वैभी बलकृत करने की प्रथा थी। मुक्त पर किसी प्रकार का पाठकर भी अगानी की पर बुता इसका अपवाद प्रतीत होती है। दासी प्रथा इस समय प्रचलित थी। स्थियों में लती होने की प्रथा भी थी। उन्हें की प्रथा कम हो गयी थी, क्योंकि पुता विना परदे के ही सबके सामने जाती है। चारकत की पत्नी पुता एक माव्यं पतिव्रता कुकवपू की बितकी लमता सिती से नहीं की जा सकती। बसन्तसेना इसी सौमव्य के सिन्धे बड़ी आत्मनित रहती है। उसे बड़ी प्रनप्रता होती है जबकि वह मदनिका की बहू के रूप में अविनाक को सौपती हुई रहती है।

संपद तुम अजेव बन्वनीया सवृत्ता^१

'अब तो तुम ही बन्वनीय हो बने हो'। परिष्कृत इस बहुरूप की धानता है। बहू की मदनिका से कून में सकीच नहीं करता :

सुदृष्ट क्रियतामैव चिरसा बन्वता वन ।

बव ती बुलम प्राप्त बपुसदराबमुच्छनम् ॥ मू० क० (४-२४)

इस बसन्तसेना की मती अवार देसी और मुदकर विर से इनकी बन्वता करी बिनदे दास तुम्हें बपु सनर का बुलम आवरण प्राप्त हुआ है। इसके स्पष्ट है कि पबिक वेदना की अयेना बपुकर विनासा अबादृत वा पर लप में यह नी है कि जो स्वाम समाज में विवाहित बपु को दिया जाता था वह वेदना से परिपत बपु को नहीं प्राप्त था। चारकत की विवाहित पत्नी तो पुता की। पबिका बसन्तसेना को तो लठके प्रेम के चारक बाद में बपुकर में सहच दिया गया।

१. संपद अजेव बन्वनीया सवृत्ता । (स० मनु०)

बैष्णवों की बलिता, प्रकाशमयरी एव सामान्य निबाहिता गृहस्थ स्त्रियों को यजु-सूक्तनु अथवा यज्ञकाण्ठमारी कहते थे । गृहस्थ नारियाँ स्वभाव की मुहुन एव सम्झासोच हीती थी । वे चरों के बन्धन रहती थी । विधेय मनसरी पर जब कभी वे बाहर निकलती थी तो भूँट करके चलती थी । जन के सम्बन्ध में वे पुस्तो के आश्रित होती थी । इस सम्बन्ध में वास्तव में विपुवक द्वारा ही हुई अपनी पत्नी पुता की रत्नावली को ग्रहण करते हुए कहा है —

मत्स्यवन्मन्त्रतन्मन्त्री स्त्रीरभ्येणावुकम्पित ।

अर्पण पुस्तो नारी या नारी सार्धं तु पुमान् ॥ मूञ्जकटिक (१-२७)

अपने साम्य से नष्ट बन माना चाहवस स्त्री-जन से अनुपुहीत किया जा रहा है । यह कह-स्थिति है क्योंकि जन न होने से पुत्य नारी के तुल्य है और अनपुत होने से नारी पुरुष के समान है । पुता की रत्नावली अपनी माता से प्राप्त हुई थी इनको यहाँ इस श्लोक से कुछ पूर्व पुता से स्वयं बेटी से की है । कुत्सायनाओ का यह स्त्रीजन कहलाता था विधे के वास्तविकाल में काम में जाती थी ।

'इयं च मे एका मातुपरलब्धा रत्नावली विद्वदि' ।

मूञ्जकटिक (तु० अ०)

यह बेटी माता के घर से प्राप्त एक रत्नावली है । आसूचको के बरते बसन्तसेवा की बेटी द्वारा अपनी रत्नावली खींचते हुए पुता ने स्थिते तुन्दर विचार व्यक्त किये हैं —

अन्वसतोऽ तुम्हाय वस्यदीकिता । न चतं मन एद वेदिदुम् ।

अन्वसतो अत्रेय मन माहुरपयिसेतो चि वापादु बोदी ॥^१

मू० अ० (प०अ०)

मायैपुत्र ने आपकी यह रत्नावली प्रसन्न होकर प्रदान की है । मैं इसकी सेना उचित नहीं है । आप यह समय में कि कार्यपुत्र ही मेरे विधेय आसूचय है । पुता की अपने स्वामी के शरीर की ओर साव हो उतते बहकर परिण की स्थिती पिन्ता है । इसके लिए वह अपना सर्वस्व त्यागने में भी संकोच नहीं करती । यह बेटी से कहती है—

१. इयं च एका मातुपुलब्धा रत्नावली विद्वदि ।

(तु० अ०)

२. अन्वसतोऽ तुम्हाय वस्यदीकिता । न चतं मन एद वेदिदुम् । कार्यपुत्र एव ममाहुरपयिसेतो इति ज्ञानस्तु भवती ।

हृजे किं मन्त्रि-वपरित्ततद्यौर अग्जत्तो ति वर वापि सो सरीरेव
परित्ततो, न उच चरितेव ।^१ म० क० (१० अक्ष)

वटि । क्या कही हो कि आर्षपुत्र का सरीर चोट रहित है । इस समय
यह सरीर से छत हुए, चरित्त स नहीं । मुना अपने पति के शोकावेश में चरनों
से और वस्त्र के आँचल में लिपटते हुए अपने पुत्र को हटाती हुई उसकी चिन्ता
नहीं करती और आरस में आकर अपने पति का अमण्डल मुनी से पूर्व चिता की
ओर रूपवती है ।

पूठा (सासम) आर मुनेवहि मम । मा विष्ण करोहि । भीष्मि अग्ज-
त्तस्त अमण्डलाव्यनारी ।^२ म० क० (२० अक्ष)

पूठा—(अभ्युदित) पुत्र, मुझे छोड़ दो, विष्ण न करो । मैं आर्षपुत्र के
मरणव्य अमण्डल को मुने से करती हूँ ।

यह कही हुई जब वह आँचल बीचकर अग्नि की ओर बढ़ती है तो उसका
पुत्र रोहतेन विस्मयकर रह पाता है । इन वर विदूषक कहता है :

विदूषक—'मोदीण दम् बम्हदीए विष्णत्तमेव चित्ताचिरीह्व पाव मुताहरन्ति
रितीओ' ।^३ म० क० (३० अक्ष)

आप जैनी ने द्वारा आह्वय वटि से पुत्र चित्तारोहण की श्रुतिव्य पाव
समझे है । यह पुनकर भी साधी पूठा कही है —

'वर पावाचरम्, न उच अग्जत्तस्त अमण्डलाव्यनम्' ।^४ म० क० (२० अक्ष)

यह पापाचरम् अश्रम है, पर अमण्डल का मुनना अश्रम नहीं ।

बुद्धिओ पूठा वास्तव में अपने पति की सखी मन्वीमिनी और अभ्युदय रत
की । हमने अपने पति के विदोष की आगवा मान के अपने बीचन को पहले ही
जमाया करना उचित समझा फिर अपना अभ्युदय आमुषय रतनावती तो यह
पहले ही है बुकी थी । भारतीय नारी का यह एक अनुपम उदाहरण है ।

१. चेटि—वि वचटि—वपरित्ततद्यौर आर्षपुत्र इति वरमिनामी मद्यरीरेव
परित्तता । न पुनश्चरितेव ।

२. आठ मुष अम् । मा विष्ण कुदम् । विनेम्यावपुत्रस्वार्षवतावर्षनम् ।

(स० अनु०)

३. अवात्वास्तावृद्वाह्य्या विप्रत्वेन चित्ताचिरीह्व पावमुताहरन्ति अचय ।

(स० अनु०)

४. वर पावाचरम् । न पुनश्चावपुत्रस्वामण्डलाव्यनम् ।

(स० अनु०)

पतिपरायणा घृता की जितनी सराहना की जाय बोधी है। इससे यह जानते हुए भी कि उसका पति यजिजा बसंतसेना से प्रेय करता है उसके मन में उसके प्रति कैयमात्र व्यक्त नहीं जाता। विस्वम और प्रघसा की बात से यह है कि वह बसंतसेना से भी ईर्ष्या नहीं करती। अन्त में बसंतसेना को अपने सामने देखकर वह कहती है :—

‘विट्ठिजा कुसन्दिधी बहिपिवा’^१ मू० क० (६० अक्ष)

माय्य से बहुत कुससपूर्वक है।

सुपत्नीत्व के माय्य की तल्लत उसके हृदय के किसी कोने में बही पापी जाती। इस सम्बन्ध में बसंतसेना का भी सोझाई सराहनीय है जिससे अपने त्याग से अपनी सराहना का परिचय दिया है। घृता प्रतिमावाचिनी थी। चारबत्त ने यह कहा—

हा प्रेयसि प्रेयसि विद्यमाने,
कौत्र्य कठोरो म्यनसाय भाषीत् ।
अम्बोप्रिनीलोचनमुद्रय किं,
मानावनस्तगमिते करोति ॥

है रिफ्तमे घृते, पति के बीभित्त रहते ही तुमने यह क्या कथेर अन्वि-प्रवेश का निवन्धन कर लिया था ? क्या सूर्यास्त हुए बिना ही कमलिनी अपनी नेत्रकपी पक्षियों की मूँच केटी है।

घृता ने कमलिनी बीसा बैठन और अचेतन का वचन बिना ही कितना मुग्धर वचन दिया है

‘अम्बोप्रिनीलोचनमुद्रय किं’ मू० क० (६० अक्ष)

‘आपंजुष, इसीतिमे वह अचेतन कही जाती है।’ घृता का आशय यह था कि यदि वह भी अचेतन कमलिनी की भाँति जो सूर्यास्त के बाद मुप्ताती है अपने प्राण अपने पति की प्रणयमासि के बरबाद बिखरान करती तो फिर बीनो में अन्तर ही क्या रह जाता ? घृता उन्नेय है। अत उसके किये यही उचित था कि ऐसे अवसर के काले से पूर्व ही संसार से विदा ले ले।

मूञ्जकटिककाल में दुर्लभ बहुरूप सौमत्य बाले के किये यजिजा और वेम्पार्ण बड़ी उत्सुक रहती थी, और, इसके किये सर्वस्य म्योत्तवर करने को उद्यत

१. विट्ठिजा कुसन्दिधी मंगिनी ।

(६० अक्ष०)

२. आपंजुष, अतएव एतचेतनेति उच्यते ।

(स० अक्ष०)

रहती थीं। मन्दिना और बन्धुदेना ने अपने जीवम की कष्टमयता का उद्देश्य ही इसे माना और इसकी प्राप्ति के लिए ही जैन किया।

स्त्रियों का एक ऐसा भय था जो पतिव्रतों के नाम से प्रसिद्ध था उन्हें मुनिव्रता भी कहा गया है। वे श्रौत होती थी और समस्त कार्य सेवा था। वे निश्चित रूप से अपने स्वामी और स्वामिनिर्मो पर आश्रित थी। इनका स्तर स्वभावतः बहुत निम्न था। अन्ततः वे ही समझकर उनके साथ बहुत दयापूर्ण व्यवहार किया जाता था। उनके स्वामी और स्वामिनिर्मो को रचना देकर उनके सेवाकार्य से उन्हें मुक्त भी कराया जा सकता था। मन्दिना इसका प्रभाव है।

ऐसा स्त्री-वर्ष दमनीय था, फिर भी भूलताया हुआ अशिक्षित किन्हीं की उक्ति बहराते हुए वेसासक की स्त्रियों के विषय में कहने लगता है—

न पर्वतापे कलिनी प्रोद्भूति,
न बर्बता बाह्यपुर बहुमिति ।
यथा प्रकीर्णं न मर्बन्ति शाकयो
न वेद्यन्तां गुणवस्तुषांगना ॥ मृ० क० (४-१७)

बर्बत की पोट्टी पर कमलिनी नहीं उगती है, चोटे के मार को चने नहीं के जा सकते हैं, खेत में विस्तारसे हुए भी काम नहीं हो पाते। इसी भाँति वेसासक में उपाय हुई स्त्रियाँ पवित्र नहीं होती हैं।

बिट ने भी बन्धुदेना से कहा है—

‘विद्युन्मोचकुबोद्गतेषु कुवतिर्नेकम उतिष्ठते’ । मृ० क० (५-१४)

बीसकुस में उत्पन्न मुबती के समान बिजली एक स्थान पर नहीं ठहर रही है।

वैदिक सामान्यतः स्त्रियों अपने पतिव्रतों में आस्था रखती थीं पर यह भी संभव है कि कुछ पतिव्रतों की स्त्रियों को कोई दुःख प्रयास के आता हो। बन्धुदेना ने बिट से एक कथक द्वारा इनको व्यक्त किया है।

यमेस्मा कुर्वन्मयैरेव बनिता प्रोत्सार्थं वैर्षहृता । मृ० क० (५-२०)

निर्बन्ध पति बाकी स्त्री के समान चौदनी का मेंनों ने बन्धुदेनक हृदय कर दिया है।

निष्कर्ष

मूच्छकटिक एक ऐसा प्रकरण है जिनमें स्त्रियों का विशेषण नग्न नरकर किया गया है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि मूच्छकटिककार ना उद्देश्य ही

यह रहा हो। समाज में सभी आवर्ध पतिपरामया भूता बँधी वृद्धियाँ नहीं थी जो परपुरुषों के सम्पर्क से भूख होकर अपने निर्बल पतियों को छोड़कर चल बेठी थी। शक्ति और बसतसेना के कबनो से दसकी पुष्टि होती है।

स्त्रियों का एक सर्व गणिका और बेस्मा रूप में या बिसम्भ कार्य प्राय-माने और आनन्द-प्रभेद से पुरुषों का मनोरञ्जन करना था, पर ऐसी कम ही रही होंगी, क्योंकि पसंदसेना की इच्छा तो बारम्ब से ही कुलम्भ होने की रही। उसने तो इस नाते किसी बनी को अपना शिवयन नहीं बना बिससे समाज यह न कह सके कि बसतसेना बन के उत्सव में फँसकर बबुरूप की मात्र के रही है। उसने तो शक्ति ब्रह्मण और साम ही निर्बल बाइरल से विवाह किया जो इस बात का प्रतीक है कि उसकी इच्छा केवल एक सम्राज को कुलम्भ होने की थी।

समाज की निर्बलता नहीं-कहीं इसकी बढी हुई थी कि बन के लिये कुमार और कुमारियाँ बिक जाते थे जो शीतशत एव शीतशक्तिवा कहलाते थे। ये श्लोकासियाँ बन के वरके में ही कुदाई जा सकती थी। यद्यपि उन्हें कोई विशेष कष्ट न था और किसी-किसी का जीवन ही इस रूप में समाप्त हो जाता था पर यह निश्चय है कि इस प्रकार के जीवन को सम्भवतः वह पसन्द न करती हों। मदनिका को बसतसेना के यहाँ कोई कष्ट न था पर बसिकर की वज्र होने पर न केवल बसने ही बालम्भ की अनुभूति की, बरन् बसतसेना ने भी उसे सोस्वास अपने यहाँ से बिदा किया।

स्त्रियों का सर्वत्र सम्मान था। भूता और बसतसेना का सौत का सबब परस्पर प्रीति, त्यक् एव विनोदता का श्रोतक है। भूता कुशल और प्रतिभा-शक्तिनी थी बिसका उद्यहरण होने पर भी बिसमा शभव नहीं है। बसतसेना त्वाण की बीवी-बायली मूनि की और गणिका होये हुए भी उत्तम शिष्यरों बानी थी। अपने जीवन को बहरे में बासकर भी वह अपने विचारों में रुठ रही। मदनिका ने अपनी समता से शक्तिर को ऐसा शार्द्रपित किया कि वह भी बभू बन मयी और बचते समय बसतसेना भी उसके प्रसन्न रही। यहाँ तक कि शीत-दासी होते हुए भी और शक्तिर के द्वारा आनुपम देने पर भी बसतसेना ने ऐसी बशरता का परिचय दिया कि शक्तिर बबाबू रह गया। मदनिका की मुक्ति शक्य हो गयी।

तत्कालीन विवाह-प्रथा

मानव आरम्भ से ही अपनी भावस्वरथाओं के पूर्ण करने में प्रयत्नशील रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अश्वारि की उत्पत्ति से पूर्व एक समय

ऐसा भी था जब वह पशुओं को मारकर अपनी आहार बुधि पूर्ण करता था और बृद्धों को छाल से अपने शरीर को ढकता था। छतीं सती मनुष्य के जीवन में विकसित होता गया और उसके बड़े हुए मान ने अपना एक ऐसा बस्तित्व स्वीकार किया जिसने उसका जीवन पशु-जीवन से नितांत भिन्न हो गया। कृषि के रूप में विभिन्न जगहों की उपज सामने आती और उनके प्रकार के फल-फूलों के पोषे भी दिखायी देने लगे। वस्त्र का भी प्रचलन हुआ। जब मानव का अपना एक समाज बन गया जिसने आगे बढ़कर वर्ध-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था का रूप धारण किया। मानव का यह विकास उसकी आने-जाने के आवा-रिक्त था। विद्योन्मुख इन्द्रियों से उसने जीवन के आनन्द का अनुभव किया। प्रारम्भ में विश्व आचार पर सतति परम्परा चली वह एक इन्द्रियमय्य सुखपूर्ति प्राप्त थी। वही कुछ भीमायें ही निर्धारित और बाधक थी। मनुस्त्रिकाल में मनु न वर्धव्यवस्था के साथ वैवाहिक जीवन पर भी प्रकाश डाला। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को वैवाहिक अधिकार देने हुए यह निश्चित किया कि प्रत्येक उच्च वर्ण कथम अपने से निम्न वर्णों की महिलाओं से विवाह कर सकता है। धीरे-धीरे यह जीवन परिष्कृत रूप में दृढ़ होता गया और विवाह अपने ही वर्ण तक सीमित रहा। इस नीति विवाह मनुष्य जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना और अर्धनिश्चित बन्ध बन गया।

विवाहित स्त्रियाँ सती भी होती थीं। युवा का सती होने का एक प्रमाण है। वे परिपक्वपया होती थीं। आरम्भ से ही उनका बानाबन्ध तदनुकूल होता था। हिन्दुओं के लोकाद सत्कारों में विवाह सत्कार मात्र यो बहुल और महत्त्व-पूर्ण माना जाता है। एक विशेष पद्धति के आचार पर वैदिक मंत्रों और जाग-रिक्त बलोक्तों से यह प्रथा पूर्ण की जाती है। अग्नि के चारों ओर वर-वधु परि-कल्पा करते हैं और आशोचन प्रेमवचन के लिये कुछ प्रविज्ञाएँ भी करते हैं। इसकी सफ़क निम्न स्मृति से विज्ञाती है। प्रसङ्गवत् अर्थक में विवाह और चिता-सम्बन्धी अग्नि का विशेषण करते हुए कहा है —

‘एवकार्यनियोमेप्रि भागवोस्तु स्वपीठता ।

विवाहै च विद्याया च यथाहुतबुभोर्दयो.’ ॥

मु० ५० (१-१९)

एक मार्ग में निवृत्त होने पर भी इन दोनों का स्वभाव समान नहीं है। जिस नीति विवाह और चिता की दोनों अग्नियाँ स्वभाव में समान नहीं होती। ब्रह्मसंवेना के बोधित होने से विश्राम पर आकर ही इसकी प्रमत्तता हुई कि उक्त क्षणों में देवचर वह अपना प्राणरूढ मुक्त गया और अपने रूप में प्रतीक

बाह्य वस्त्र, बध्यमाळा और उस्ताखेन बाह्य ध्वनियों को विवाह का प्रतीक समझने बना । ठीकी ठीकी उसने कहा है .—

एवं तदेव वरवस्त्रनिबध्न च माळ्य
काम्पलाभम हि वरस्य यथा विधाति ।

एते च बध्यपदहृष्यनयस्तथैव

बाह्य विवाहपदहृष्यनिबध्न. समाना ४ मृ० क० (१०-४४)

श्रिया के आगमन से नही माल बस्त्र वर के बस्त्रों के समान और बध्यमाळा वरमाळा के समान घोषित है तथा उसी प्रकार वर के बाह्य ध्वनियों विवाह के भावों को ध्वनियों के समान ही समी है ।

कारणकार से मया हुआ कार्यक उपर बायीं हुई बैलगाड़ी के सम्बन्ध में अनुयाय कगाठा है जैसे कि वह वधु की सवारी हो ।

मवेद् गोष्ठेयान न च निषवधीर्गैरधिगत

वधुसवाय वा लक्ष्मिपमनोपन्थितमिवम् ॥ मृ० क० (१-४) पूर्वाह्न

ज्या यह किसी सामाजिक समारोह में जाने वाली सवारी है जो कुटिता-चरण करने वाली से अधिष्ठित नहीं है यद्यपि यह वधु की सवारी है जो उसे ले जाने के लिये उपस्थित हुई है ।

इससे स्पष्ट है कि विवाहित पत्नी सज-बज और बधायेह के साथ अपने पिता के यहाँ से निरा होकर अपने पति के गृह में प्रवेश करती थी ।

विवाहिता होने के पश्चात् कुछ विशेष कारणों से स्त्रियों का अपहरण भी संभव था ।

वसन्तसेवा ऐ कित के संभाषण में इसकी मालक मिळती है ।

‘वसन्तसेवा पूर्वकमलुकेव वनिता प्रोत्सार्थ मेभैर्हता’ । मृ० क० (५-२०)

दुर्बल पति वाली मारी के समान पौरुषी का बंधों ने वधुपूर्वक हरण कर दिया है ।

इस अपहरण में स्त्रियों के अपने पति का दुर्बल होगा ही कारण रहा । अतः समान से दुर्बल पति होने दृष्टि से देखे जाते थे और अपहरण मारियाँ विवाहित सम्बन्ध का अभाव सबझी जाती थी ।

निष्कर्ष

मनुष्य की आवश्यकताएँ कुछ ही मन्त्रियों और कुछ ससकी इच्छा पर होती हैं । अतः, वस्त्र ध्वनि विषय मन्त्रि उच्चके विषये ध्वनियम्यं ही ठीक सही प्रकार

नैतिकतानुष विवाहित जीवन बिनावा यो उसके दिन परमावश्यक है। इसी से समाज में सदाचार और पारस्परिक स्नेह एवं प्रेम की परम्पराएँ पनपती हैं। पिछला एक सत्रा समय ऐसा बीता जब कि वैवाहिक जीवन नहीं थे। जाये चलकर बर्ष-व्यवस्था एक जातियत बन्दन से इसका रूप बृद्ध होता गया। फिर बर्ष का जब मानकर इसे शास्त्रीय रूप दिया गया। मनु और याज्ञवल्क्य इन पर पहले से ही पयौत प्रकाश डाल चुके थे।

मूञ्जकटिककाल में जातियत में ही मान्यता के साथ प्रथम विवाह को प्रोत्साहन दिया गया है। यशिकाओं और निम्नवर्ष की महिलाओं से विवाह किये जाने लगे, पर इस सम्बन्ध में सुती सूट न थी और ऐसा करना एक नाहक का प्रतीक माना जाता था। यह निम्नवर्ष है कि समाज ने इसे प्रोत्साहन नहीं दिया पर दूसरी ओर समाज तथा समय-समय पर हमारा बदलता हुआ मान्यता उपपर कोई रोक बाम न लया सता।

गणिका जीवन और वेत्यावृत्ति

मानव आरम्भ से ही बकाप्रती रहता है। नृत्य, समीप और वाचन कलाएँ ऐसी हैं जिन की ओर उसकी रुचि स्वाभाविक है। स्त्रियों का बन्ध मधुर होता है फिर भी इस कला के लिये अभ्यास की आवश्यकता है।

वेत्या राध को स्मृत्यपि है—वेत्या पथ्ययोगेन बीरति इति वेत्या। यह धनर यशिका, रङ्गी अथवा बाबाक स्त्री के लिये प्रयुक्त होता है। याज्ञवल्क्य-स्मृति में इसको वर्णित किया है।^१ इससे ज्ञात होगा कि स्मृतिनाम में भी स्त्रियों का एक निम्न वर्ण था जो बनी पुस्तकों के मनोरंजन के लिये समीप-वाचन एवं नृत्यकला का प्रदर्शन करता था। जाये चलकर रङ्गी बर्ष बाबोर प्रमोद का वाचन बन गया। वेत्या और गणिका में भी अन्तर समता जाता है। वेत्याएँ अपने रूप यौवन द्वारा जन कमान वाली यानो बाटी थीं जो पणिकार्यों विदेप रूप से जाये और नाचने की कला का ही प्रदर्शन करती थीं। इस विषय पर विद्वान् प्रकाश बसस्वक के टीकाकार के ज्ञान है। उन्होंने कहा है—वेत्या मृति, मोडव्या बीवनमिति वेत्या। वेद्विद्येयो यशिका।^२ ऐश प्रतीत होता है कि

१. याज्ञवल्क्यस्मृति १।१४१।

२. नाबिका तु डिपा मेतु कुलवती यशिका तथा।

यशिकदेवीन कुलवा वेत्या यशिक इय यशिकु ॥३४१॥

कुलवाभ्यन्तरा बाहा वेत्या नातिबमोजयो।

यामि प्रवरण वेद्या मरीचं सुतदचुलम् ॥३-४२॥-रघुवन्त

सामान्य वेस्वाभों में श्रेष्ठ, स्व, शीत और पुनो से मुक्त वेस्वा अधिकतर कट्टी जाती थी। वर्तमान काल में ऐसा कोई विशेष बर्ण देखने में नहीं आता, अतः सब वेस्वाएँ कट्टी आती हैं। मूत्रकटिक की शायिका बहन्तसेना वन्म से बधिका है पर उनका आचरण कुछत्रा बीता है। यह इस कर्म से घृणा करती है और अपना जीवन एक कुशीन सती गारो को तरह जार्म वास्तव से विवाह करके बिताना चाहती है।

मूत्रकटिक में अधिकतर बहन्तसेना के लिए शणिका शब्द का प्रयोग किया गया है। कुछ स्थावों पर ही उसे बेवया कहा गया है। पत्निना और वेस्वाभों से सम्बन्ध समाज की दृष्टि में अप्य नहीं माना जाता है। यही कारण है कि मन्म अरु में न्यायाधीश चादरत से पूछने हैं—जार्म पत्निका तब नित्रम् ? तो चादरत सन्निध हो जाता है। अतः यह निरुधय है कि वेस्वाओं को समाज से अछो दृष्टि से नहीं देखा जाता था। विद्वयक ने भी कहा है—

‘यत्रिवाचाम पादुभन्तत्पत्निका नित्र कैदुमा दुवबीन उच भिराशरीयदि ।’^१

मू० क० (५० अ०)

पत्निका जुने में पछे हुई ककडी के समान है जो बठी कठिमाई से निकाली जा सकती है।

मूत्रकटिककाळ में शणिकाएँ बड़ी सम्पन्न थी। उनके अपने विरासत मन्म से जिनमें सुख-समृद्धि की सभी सामर्थियाँ उपलब्ध थी। वे हाथी भी रखती थी। विद्वयक ने बहन्तसेना के घुमरे प्रकोष्ठ को देखते हुए कहा है—

‘इतो म कूरम्भुतर्वैमिष्ठ पिण्ड हत्पीपिठिअशोधवि मेत्तपुरिसेहि ।’^२

मू० क० (५० अ०)

इपर मद्भापत्तों द्वारा भाद से पिरे हुए लेक (कसपा से भी) से मिश्रित पिण्ड हाथी को खिलाया जा रहा है।

विद्वयक ने बहन्तसेना के भातों प्रकोष्ठों को देखा और एक से एक सुन्दर एवं लघुमुत वस्तुओं की देखाकर अबाकु रह गया और कहने लगा—

एव बहन्तसेनाए बह्वुतम्भ अट्टपशोदठ मन्म पेम्बिअर्य र्जं सन्वं चायामि इत्थ नित्र विविट्टम विट्टम् ।^३ मू० क० (५० अ०)

१. शणिका नाम पादुभन्तत्पत्निकाए विष्टेय सेष्टुअ दु.सेन पुननिचिअन्वते । (स० अनु०)

२. इत्थ कूरम्भुतर्वैमिष्ठ पिण्ड इत्ती अत्रिप्राज्ञाने मात्रपुर्ये । (स० अनु०)

३. एव बहन्तसेनाया बहुवुतान्तमट्टप्रकोष्ठ भवन प्रेक्ष्य यत्सस्य चायामि इत्थ-नित्र विविष्टम विट्टम् । (स० अनु०)

इस प्रकार वसन्तमेना व बहुत मृग-व बास मानव पशु पत्नी वृक्त बाओं प्रकीर्णों को देखकर मुझे मन्मथ विरहात् ही पया है कि मैं एक ही अवस्था स्थित स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताललोकमय विभुवन को देख किया है ।

भक्तिका लक्षणा वेद्यावर्ष को यह मारा वन आमोर-प्रमोर में मस्त भक्तिक वर्ष के प्राप्त होता था । इन वेद्याओं का भक्तियों के पत्र के प्रेम या न कि वनी व्यक्तियों से । भक्तियों का साथ वन अपहरण करके वे सगरे अपना सम्बन्ध समाप्त कर लेती थी ।

विदूषक ने भी कहा है—

‘अवमानित निष्ठम कामुजा विप्र पतित्रा’ । मृ० क० (३० अठ)

निर्धन कामुजा को अपमानित करने बाघों बेरवा जैसी स्त्रियाँ निष्ठ हैं ।

बिट ने भी इस सम्बन्ध में वसन्तमेना से सभापय करते हुए अपने मनीषित विचार व्यक्त किये हैं—

उत्पन्नमशामनिभन्वयता वैद्यपाद्यो

विद्वन्मय भक्तिरु त्व मार्कवाता कठेव ।

बहसि हि धमहार्यं दध्यमृत सरीर

सममुपचर महे सुप्रिय चाप्रिय व ॥ मृ० क० (१-३१)

बुद्धों से केवित वैद्यमात्स्य को स्मरण करो । पत्र में उत्पन्न होने वाली मता के समान तुम अपने को समझते । बाजार में वन देकर खरीदी जाने वाली वस्तु के समान तुम देह धारण करती हो भठ रतिक और भारतिक दोनों के साथ समान व्यवहार करो ।

और भी

वाप्या स्नाति विचसगो द्विजवरो मूर्धोर्ध्वि वपावम,

पुम्का नाम्नाति वापसोर्ध्वि हि सतां या नामिता बहिषा ।

ब्रह्मसतविद्यस्तरन्धि व यदा नावा तयैवेठरे,

रथ वापीव कठेव भीरिव जन वेत्यासि सर्वं मज ॥ मृ० क० (१-३२)

विद्वान् ब्राह्मण तथा नीच मूर्ख भी छाकार में स्नान करते हैं । जिस बिकसित लता को मपुर ने मुकावा है उसी को कौवा भी मुकावा है । जिस लता में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पार उठरते हैं उसी से बूढ़ बाहिर भी पार होते हैं । तुम वैश्या हो और लाना, सता तथा मोटा के तुम्हें हो, वतएव प्रत्येक वस्तुध्व व तुम समान आदर करो ।

वास्तव में भी कहा है—

'यस्यायीस्तस्य सा कान्ठा वमहावी ह्यनो वन' । मू० क० (५-९) पूर्वायं
बिन्दुनी सपत्ति है उद्यो की यह कारिणी है क्योंकि यह मजिका समुदाय तो
वन के बंधीमुत है ।

सम्ब पुरषों के बूढ़ों में बधिकामा के लिए प्रवेश की आशा व थी । इससे
वे धन ही धन बढ़ाया गया उपमान मालती थी । वास्तव द्वारा रचना के रूप
में सवधो जाने वाली बमन्तवेना में स्वयं कहा है—

मन्वमाज्जी वनु बहु तुम्हे धम्मन्तरररर' ।^१ मू० क० (प्रथम बंध)
तुम्हारे मत पुर के प्रवेश के लिए मैं मन्वमाजिनी हूँ ।

जमी कमी सपत्ति पुरषों द्वारा वे बधिकारों और बेस्वार्थों बकात् माभाज्जी
और सतरों में भी पद पायी थी । बधिकारों कान्ठों में शरीर थी । बमन्तवेना
का चतुर्थ प्रकीर्ण इसका प्रतीक है ।

द्वि में बमन्तवेना के स्वर-परिवर्तन को देखकर कहा है :—

इय रमयेतेन कथाना योमशिसया ।

वचनस्यच्छिन्नेन स्वरवेपुम्भमापिता ॥ मू० क० (१-२२)

इस बमन्तवेना ने न्यत्रमात्म में प्रवेश तथा कान्ठों की बिधा के द्वारा
बुद्धों के ठपने की कुशलता के कारण स्वर-परिवर्तन में विपुलता प्राप्त कर ली है ।

वास्तव में भी बधिकारों के पुष्पों के समान बहुत बोलने की निम्ना करते
हुए बमन्तवेना के विषय में कहा है—

पुत्रप परिवयेत च प्रप्लव,

न वरति एवपि भाक्ते बहूनि । मू० क० (१-५९)

वद्यपि यह मजिका है और बहुत बोलने वाली है तथापि मेरे जैसे पुष्पों की
उपस्थिति में वृष्टता से नहीं बोलती है ।

इसी से निम्ना तुम्हा कवन बमन्तवेना का भी बधिकार के प्रति है—

'हन्वे । कि वैद्यमास दासिच्छयेन मदमिपु, एन्व भवाति' ।^२ मू० क० (५-५५)

है कीटि मदमिके । क्या संवाक्य में हन्वे से चातुर्ष नीचने के स्वरण ऐसा
करती हो ?

मदमिका में भी बमन्तवेना से ही इसका उत्तर प्राप्त किया है ।

१. मन्वमाजिनी कन्वह त्वाम्कन्तररस्य । (४० अनु०)

२. वेदि । कि वैद्यमासदासिच्छयेन मदमिके एव भवति । (४० अनु०)

‘अथवा । किं चो ज्ञेयं जसो जेसे प्रतिबसति, सो ज्ञेयं जसो ज दक्षिणो भवेति ।’^१ मू० क० (ख० अ०)

जार्जे कदा चो भी व्यक्ति वैश्याक्य में रहता है वह जसय बोसने में कुशल होता है ।

जसन्तसेना ने भी जया ही जतर दिया है ।

‘हस्त्रे । माणापुरिससंघेय वैस्त्राजनी जलीजदविजयो भवेति ।’^२

मू० क० (ख० अ०)

वेष्टि । निभिद्य पुरषो के संसर्ग के कारण वैस्त्राजो जसयपट्ट हो जाती है ।

वैस्त्राजो के सम्बन्ध में जनसाधारण की ये धारणायें जसय थीं, पर जधिका जसन्तसेना इसका जपवाद थी । वह जन के जाने जुरो का मुख्य जंकिती थी । जन का जसकी जुरि में कोई महत्व न था । विष्ट द्वारा वैस्त्राजुति से सम्बन्धित विवेचन सुनकर जसन्तसेना ने कहा है—

‘जुरो जसु जसुजजसुव जारजजु, न जसु जसुजकारो ।’^३ मू० क० (प्र० अ०)

जुरेय का वास्तविक कारण जुरज है न कि जसुजकार ।

जाठरत ने भी इसका समर्थन किया है —

‘जुरजहारो जसो जसु ।’

मू० क० (ख० अ०)

वह जसन्तसेना जुरजद्वारा जसु में करने योग्य है ।

जसु है जसन्तसेना ऐसी ही थी । जसने अपनी माता का यह संशेय पाकर कि जसु का जसु जसुजकार जसु जसुज सुजर्ग के जसुजनी को जसुज जसु के जाने की प्रतीता में है, अपनी माता से कहने के लिए जसने जसु जसु जसु जसु दिया है ।

‘एव्य विज्जापित्तया—जसु न जीजन्ती इज्जति, ता एव्यं न जुरो जसु जसु जसु जसु जसु ।’^४

मू० क० (ख० अ०)

जसु जसु—जसि जसु जीजित जाहती हो तो जसु माताजो ने द्वारा जसु जसु न जसुनी जाहिये ।

१. जार्जे । किं चो ज्ञेयं जसो जेसे प्रतिबसति, सो ज्ञेयं जसो ज दक्षिणो भवेति ।

(स० अ०)

२. वेष्टि । माणापुरिससंघेय वैस्त्राजनीजदविजयो भवेति ।

(ख० अ०)

३. जुरो जसु जसुजजसुव जारजजु, न जसु जसुजकार ।

(स० अ०)

४. एव्य विज्जापित्तया—जसि मा जीजन्तीविज्जति, तर्हव न जुरो जसु जसु जसु जसु जसु ।

(स० अ०)

वेत्सावृत्ति से वसन्तसेना को निरतनी बनायी यह हमसे स्पष्ट हो जाता है। उसकी कुम्बहू होने की बरी हुई सालसा उस समय स्पष्ट हो जाती है जब वह मयनिका को बभू रूप में सविस्तर के साथ सामन्त विना करती है। वसन्तसेना न मयनिका को गांधी पर बढाते हुए कहा है—

‘उपर तुम न्देव बन्धनीया सन्तु’^१ मू०क० (प० बं०)

मम तुम ही वन्दनीय ही परी ही।

कनी-कनी राजाओं को मोर से भी बेगमानी को उनके बन्धे दुर्षों के कारण कुम्बहू की प्रेरणा प्रियता भी थीर तब से अपने इच्छानुसार नियमानुसृत दिशाएँ कर सकती थी।

व्यक्तिक ने वसन्तसेना से वही व्यक्त किया है—

‘जार्जे वसन्तसेने, परिपुहो राजा मयती वसुतभेनागुबुद्धति।’

जार्जे वसन्तसेना, प्रसन्न हुए राजा जार्जे वसुतभे से अनुपहीत करती है।

निष्कर्ष

सृष्टिकर्तृकार ने इस प्रकार से वेत्सावृत्ति को समृद्धि अवस्थ विचार है पर साथ ही उत्काशीन वेत्सावृत्ति समाज की दृष्टि में होत जीवन विधान की अपेक्षा विवाहित जीवन विचार कुम्बहू के रूप को मान्यता देता था। मनोरञ्जक एवं नाट्यसंवीत का माध्यम ही वे चिरकाल में रही है। उष्णक्रीडि के आदर्श स्वल्प समान में ही, वेत्सावृत्ति को समाप्ति कदाचित् सम्भव है।

सामाजिक रीतिरिवाज, सपासभा, प्रत, उत्सव एवं मनोरञ्जन

मानव का स्वभाव रहा है कि वह कुसरो के उपर में जाये। धीरे-धीरे मनुष्य समुदाय को बोलन, वस्त्र एवं भाषा-विचारों में इस प्रकार पारस्परिक छद्म से निरन्तर एक साथ में बलता रहा व्यक्त बलकर एक सम्य समान के रूप में कहा जाने लगा।

वर्ष-व्यवस्था एवं जातिप्रथा के अनुसार सम्यक विभिन्न रूपों में बँट गया और उनमें रीतिरिवाज भी इस प्रकार पुनर् रूपों में विचार देने लगे। वे रीति-रिवाज, मोहन-वस्त्र, रङ्ग-सहन और उत्सवों के रूप में परेत् जीवन के व्यक्त बन गये।

दैनिक जीवन में मनुष्य इतना व्यस्त रहता है कि अपने सुखरचनों सबकियों

१. सामन्त स्वयं बन्धनीया सन्तु। (उ० अनु०)

से उसका प्रतिबिम्ब भववा शोभ्य मितना बुझना समझ नहीं हो सकता। अतः भारत के प्रेम को सम्बन्धियों में सुदृढ़ रखने के लिये उत्सवों का प्रचलन हुआ जो ऋतुओं के अनुसार आरम्भ में सम्पादित हुए और जिनके बहाने वे वेबल उन्हें अपने सम्बन्धियों के यहाँ आ-जाकर प्रेम-व्यञ्जन को सुदृढ़ रखने का अवसर मिला वरन् निरन्तर एक जैसे दैनिक कार्य करने से भी व्यक्तियोग्य मिला जिसके कारण जीवन में कुछ मनीनता सी प्रतीत हुई। उत्सवों के दिन विशेष आहार होना या वीर बाणक, टवण, वृद्ध सभी नवीन वस्त्र धारण करते थे। इन उत्सवों का इस भाँति समाज में एक विघटित महत्त्व हो गया।

वार्तिक दृष्टिकोण से देखें तो व्रत, उपवास आदि भी उसी काठ जैसे बल रख हैं जिनमें कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। मूच्छकटिक में सूत्रधार और गद्य को बाधहीन में अमिरूपपति नामक उपवास को चर्चा है जिसके शाठ अनुकूल प्रति-प्राप्ति दिखाई गई है।

नटी—अत्र उपवासो गृह्यात् १

मात्र उपवास ग्रहण किया है।

सूत्रधार — कि नामवेत्री अत्र उपवासो १

इस उपवास का क्या नाम है ?

नटी—महिष्मखरी नाम १

मू० क० (प्र० अ०)

अमिरूपपति उक्त है।

इसके आगे बलि आदि की भी चर्चा है।

मीमेय—एषो पादस्तौ तित्तिक्किरेवस्तयो विहृदेवताम बलि हरितो ह्योर्मेव नामच्छदि १ मू० क० (प्र० अ०)

यह आर्ष पादस्त गृहदेवताओं की बलि को लिये हुए इपर ही आ रहे हैं। पादस्त न मीमेय से फिर बलि को चर्चा की है।

'तनुवस्य इती वया गृहदेवताभ्यो बलि । अच्छ । त्वमपि चतुःपदे मातृभ्यो बलिमुच्छर' १

मू० क० (प्र० अ०)

१ अंगोपबानो वृहीत । (प्र० अनु०)

२ कि नामवेयीऽप्यमुपवात । (म० अनु०)

३. अमिरूपपतिनाम । (प्र० अनु०)

४. एष पादस्त तित्तिक्किरेवकार्यो गृहदेवतायां बलि हरत्रित ऽवागच्छति ।

(प्र० अनु०)

तो फिर, मैंने पृथ्वीवताओं को बलि दे दी है। आधो, तुम भी चौखड़े पर मातृदेवियों को बलि भेंट कर दो।

भारत ने विद्वेषक से सम्बोधात्मक की भी चर्चा की है।

'भवतु । तिष्ठ तावत् । बहू धर्माधि निर्वर्तयामि ।' म० क० (२० अंक)

बन्धु, ठर तक ठहरो । मैं समाधि (सम्भ्या) ब्रह्मण्ड करता हूँ । पूर्व के मर्त्य की चर्चा उस समय धार्मिक ने की है जबकि भारत को दीवार में सवि (सर्व) के लिए बहू स्पर्श कर रहा है।

'निस्सारित्यवर्तमानैरकरोचनेन बुद्धिनेय भूमि मारणीया ।' म० क० (१० अंक)
ब्रह्म पूर्वदर्शन के समय बल देने से यह भूमि दूषित है और यह के बर्बर है।

रत्नपट्टी का बहू भी सम्बन्धीय है जिसमें संपत्ति के अनुसार ब्राह्मण को धान दिया जाता है। विद्वेषक को पूर्वाभिमुख करके भूता उसे रत्नपट्टी देती है। भूता कहती है -

'यद् ननु रथासृष्टि उच्यते वासि । तद्भि ब्रह्मविद्वानुसारेण बन्धुनो परिग्राहिबन्धो । सो य न परिग्राहिदो, ता उस्तु विरे परिन्दु इयं रथप-
वासिबम् ।' म० क० (१० अंक)

मैंने रत्नपट्टी का वृत्त किया था। उसमें संपत्ति के अनुसार ब्राह्मण को दान देना चाहिये। उसे दान नहीं दिया गया था, बहू: उनके लिए हम रत्नपट्टी को बहू करे।

पौराणिक देवी-देवताओं की पूजा होती थी। जिन की उपासना मुख्य रूप से की जाती थी।

बसवदेना के प्रकोष्ठों को देखते हुए विद्वेषक ने उसकी मोटी माता को बहूदेन की विगत मूर्ति के समान बताया है।

'बहो से कबहुगाहणीए कोदुबित्पाठे । ता कि एवं पौराणिक बहूदेन विम
हुमारसेछेहा रह बरे गिम्बिवा ।' म० क० (१० अंक)

१. यद् ननु रत्नपट्टीमुपोपितासम् । तत्र पथा विनयानुसारेण ब्राह्मण-प्रति-
ग्राहिष्य । स य न प्रतिग्राहिण, तस्य कृते प्रदी-देना रत्नपट्टिकाम् ।

(म० अनु०)

२. बहो बस्याः कर्तव्यताक्रिया उच्यते । तद्विदेवा प्रवेत्त महारैबन्धि
कारणीया इह नृई निर्मिता ।

(म० अनु०)

हाथ इस भट्टी कायन के पेट का विस्तार भी कितना है। क्या महादेव की विद्याल मूर्ति के समान इसको यहाँ पर में प्रविष्ट कराकर वाद में धार की सोना को बनाया गया था, क्योंकि वर्तमान द्वार से तो इन स्तूप बूटा का माना असम्भव है।

प्रायः कार्यों में यही वर्ष अपनी सम्पत्ति उदारतापूर्वक लक्ष्य करता था। इन सम्प्रदाय में चादरस के विहार, आराम, रवालय, उद्यान, मूष आदि के निर्माण की वर्षों पहले की जा चुकी है।

इस सम्प्रदाय में पशुपते का विचार उल्लेखनीय है, जिसमें पोशन, बाहुप-मोत्र एवं अनिष्टि व लिये विभिन्न निर्माणों की वर्षा है।

Usavadata's inscription at Nasik, similarly mentions that he (Usavadata) constructed caves, gave away cows, constructed flights of steps on the banks of rivers, assigned village to gods and Brahmans, fed a hundred, thousand Brahmans every year, made gardens and sank well and tanks, founded benefactions for Charan and Parishad 'the same nations'.

Dr Bhandarkar observe, as regards these matters prevailed then as now १

समय-समय पर उद्वेग भी मनाये जात है। ये उत्सव दो प्रकार के होते थे—एक सामान्य और दूसरे विदेशी। सामान्य उत्सवों में विद्याद्वारि उत्सव है। चादरस ने हीनता का वपन करते हुए चलेसू उत्सव की वर्षा की है और यह दिखाया है कि उनमें सम्मिलित हीने बाके दीनों की बना रखा होती है :

एग निव हि कश्चिदस्य कृदते मन्नापत नादराण्,
लशसो बुद्धु-लवेयु बदिना नाद्वेदमाधीषवत् ।

मृ० क० (१-१७)

दरिद्र के पास कोई नहीं बैठता, न कोई उद्यम कारर व बोल्डा है। यही लोगों के पर विद्याद्वारि उत्सवों में गया हुआ वह अनादरपूर्वक देना जाता है।

पुत्रव्याप्तव भी बड़ी प्रथमाम से मनाया जाता होगा वही तो चादरस ने बताया है वहा है—

न मीठा मरवावति केवल कूपित यथ ।

विगुदस्य हि मे मृदु पुत्रव्याप्तमो मयैन् ॥ मृ० क० (१०-२७)

में मृत्यु से मयमोत नहीं है किन्तु इसलिए मननीय है कि येरी मृत्यु कर्त्तव्य हुई है। योपर्हिह होकर येरी मृत्यु हुई होगी तो वह पुन के जन्म के समान होगी।

कामदेवोत्सव और इन्द्रमह विद्यय उत्सव य जो बड़ी सब मन से मनाया जाते थे। कामदेवोत्सव वसन्तोत्सव के नाम से प्रसिद्ध था जो एक विशेष उद्यान में बनाया जाता था। इसीप्रिय इस उद्यान का नाम कामदेवामृतनोद्यान या जहाँ कामदेव का मन्दिर था। अकार ने वसन्तुत्सव के सम्बन्ध में इसकी पर्वा की है

‘भावे भावे एया वसन्तस्य कामदेवामृतनोद्यानात् पृथिवी षाह् बलिह-
वास्तुदादि बहुकृता य न कामेदि’^१ मू० क० (प्र० अ०)

माह माह यह जन्मदायी कामदेवामृतन उद्यान के गमन से लेकर उस दिखि चादरत से प्रय करत लयी है येरी मानना नहीं करती।

यह उत्सव सम्भवत वसन्त में बहुत दिनों तक चल्ता होगा और प्रेमी युवक-युवतियों का इसमें उत्साहपूर्ण मनोरञ्जन होता होगा।

इन्द्रमह उत्सव देवराज इन्द्र के सम्मान में मनाया जाता था जिसमें बह-
रते पर्वे कहरये जाते थे।

ये सामाजिक उत्सव तब एव वास्तवमात्र के लिये मनोरञ्जन के साधन थे। आजकल की प्रदर्शनी या किसी बड़ मैके के रूप में इनका अनुमान किया जा सकता है। उस समय का जीवन बड़ा स्वस्थ प्रतीत होता है बिबधे मयन सबधियों से मिठवा भी कभी कभी बिबध बरतरी पर होता था। पर इन उत्सवों के बहान परस्पर भेंट होती रहती थी और पारस्परिक प्रेमबन्धन दृढ़ होता रहता था। मनोरञ्जन का साधन देखा बिबध की यात्रा भी थी।^२ व्यापारियों के लिए यह यात्रा अर्थलाभ का भी साधन थी।

पुष्पिण मधिकारी चम्पनक को मरक स्पेष्ठ धारि जादिवो का ज्ञान था। धर्मिकत इस धूमन फिल के ही नवरत्न बनेर माषाओं का ज्ञान था। उद्योगिनी का वैभव मनोरञ्जक धर्मिक का प्रतीक है। यहाँ के जनसमुदायपूर्व बड़े-बड़े मयन कुफाने, उद्यान घुसदूह मधिकार्य एव माताबह के साधन

१ याद भाव, एया वसन्तस्य कामदेवामृतनोद्यानात्पृथिवी षाह् बलिह-
स्वानुरता न मा क्ययते। (स० अनु०)

२ Preface to Mitrabakastika, Dr G K Bhat, p 242-43

सभी तो मनोरंजन में सहामक थे। राजि के समय महासो (टाबो) का प्रयोग होता था।

निष्कर्ष

मनुष्य का जीवन जब समाज में स्थिर होने लगता है तो उसका ध्यात्मिक एवं आर्थिक प्रवृत्ति की ओर बढ़ता है। आर्थिक प्रवृत्ति तो मृच्छकटिक-काल में व्यापार एवं वाणिज्य से हुई और धार्मिक प्रवृत्ति के परिणामक तत्कालीन उपासना, व्रत एवं धार्मिक उत्सव रहे।

धार्मिक-प्रवृत्ति ऐसा ही व्रत है जो पति की शुभकामना का प्रतीक है। रत्न-बन्धी में भी दान देने की बात बड़ी पयी है। उस समय भी वे व्रत स्थिरों द्वारा किये गये हैं और आज भी महिलायें इन व्रतों को विशेषतः करती हुई देखी जाती हैं। श्रवण में उपवास रहता है। निराहार के साथ-साथ यह कर्मधार-युक्त भी होते हैं।

समाज में दूत का स्थान

अधोपिच्छित वैर मत्र में दूत के विरोध में कहा गया है :—

अधोर्माश्रित्य कृपिमत्कृपस्व वित्तं रमस्व बहु भव्यमान ।

तत्र पात्र कित्तम तत्र जाया तन्मे विपद्ये सविताममर्य ॥

आश्वेद १०।१४।११

हे जुबारी ! पासों से जुवा मत खेद, सेतों में सेती कर, सेती से प्राप्त धन को बहुत समझता हुआ उसी को भोग। वहाँ तेरे घर में पीए है, वहाँ तेरी पत्नी है, यह धीरे द्वारा सबका स्वामी बनहुत्पादक परमैस्वर बहता है।

भारत में दूत शब्द आदिशाल से प्रचलित है। तत्रण है जात्रकल बीठी शब्द प्राचीनकाल में न रही ही पर जिस रूप में भी यह भी उसी का विकसित रूप आज हमारे सामने है। डा० बी० बी० पराशरी का इस सम्बन्ध में विचार है —

"Gambling is as old as the Rigveda in India. But while the ancient played with dice made of the bones and ivory, the game as described in the MK is played with *Conarus*. The technical terms of the game have been preserved in a modern form in Berar. The people there ought to enlighten us about the technique of the play."¹

१. Dr V G. Paranjpe, Mṛcchakatikam, p. 51.

भारत में दूतकीटा श्रद्धेय की समकालीन है। पहले मनुष्य बड़े हो, अस्त्रियों और हाथी-दाँव की मुट्टियों से बने होते थे। मूञ्जकटिक काल में कौटिल्य या पाण्डे से दूतकीटा होती थी। दूतकीटा के पारिवारिक छत्रों का बाधुनिक रूप बरार में सुरक्षित है। इस क्षेत्र का विविध ज्ञान हमें वहीं से समझना है।

एक ओर मनु¹ ने साम्राज्य से दूतकीटा-व्यवस्थापकों को दक्षिण करने का अनुरोध किया है तो दूसरी ओर याज्ञवल्क्य, भारव और बृहस्पति² ने दूतकीटा के समर्पण में दूत-व्यवस्थापकों की शासनिक द्वारा सुरक्षा और इस सम्बन्ध में उनके द्वारा प्राप्त लाभ में से शासन को निश्चित अनुपात में वसूलित देना प्रस्तावित किया है। पृथिवी की शासनाधीन में वह कार्य सम्पन्न होता था।

मूञ्जकटिक में दूत की चर्चा विरल रूप से है। मित्र वर्ग के शीघ्र ही निःसंकोच जुवा खेलेते थे और उनके द्वारा पत्नी होने की स्पर्ध साधा रखते थे। इसमें व्यवस्थापक की समिक कहा गया है। इसका माय जयमें बाधुर दिखाया गया है। वह विवेकियों के साम का पात्र प्रतिष्ठित और इस प्रतिष्ठित ब्रह्म करता था। इसके बरसे में वह विजयी क्षेत्रों के स्थित दूत की उपाय वसूलित करत करता था। दूतकीटा का अन्त एक समुदाय था और उनके

१. दूत समाह्वय पैव यथा राष्ट्रान्निवारयेत् ।

राजान्त करणावेतो द्वी रोषी पृथिवीभित्ताम् ॥ मनुस्मृति (९-२२१)

प्रकाशनेतृत्वात्कर्म यदेवतसमाह्वयो ।

तयोन्नित्य प्रतीपाठे नृपतिर्वल्लभात्प्रकेत् ॥ मनु० (९-२२२)

अप्राणिभिर्बलिभ्यते तन्मोके दूतमुच्यते ।

प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विजय समाह्वय ॥ मनु० (९-२२३)

दूत समाह्वय पैव य कुर्वात्परयेत् वा ।

ताम्सर्वाभ्यातपैदाया दूतारण द्विविधितः ॥ मनु० (९-२२४)

२. दूतस्यसो दूतमेकं मूञ्ज करयेत्

... .. गूढाधीनिकापनायम् । अर्थशास्त्रम्, (द्वि० म० २०१)

अथवा किद्वी रात्रे दत्त्वा चर्गा यदीच्छाम् ॥

(शाङ्गलस्ययस्मृति, द्वि० अ० २०१) ।

प्रकारं देवत कुयदिव दीवी म विपते ।

दूत निविश्वमनुना सत्यधीनिकापनाहम् ॥ भारव (१९-८)

वाम्यनुज्ञातमयस्तु रात्रगावतवम्भितम् ॥

समिकाविच्छिद्य कायं उत्तरशास्त्रेदुना ॥ (बृहस्पति स्मृति चतुर्विध)

अपने नियम से बिनके बाजार पर वे जुमा खेचते थे। इन दिवसों का पाकन करना प्रत्येक घुठकर के सिधे बाबरक था। उस समय यह खेच देव माना जाता था और यदि कोई बल देने में आवा-सीका दिखाता था तो म्वावाक्य द्वारा वह धन बसूक कपया जाता था। घुठकीका के समय सवाहक के बाब जाने पर घुठकर ने मायुर से कहा है :—

‘न्यामतुस गहुम यिपेदेम्ह’ १^१ मु० क० (डि० ब०)

राजकुल में बनकर यह सूचिण कर रहे।

जुए में द्वारे हुए अपने रूपों का हिसाब रखने के लिये बहीखाते होते थे। हिसाब रखने वाले को लेखक कहते थे। सवाहक बचपया हुआ कहता है—

खेखयबावइहिबज सहिज बट्टुम मत्ति पचट्टै।

एन्हु मम्पिबट्टिओ क गु कनु धकप पपउजे ॥^{१२} मु० क० (१-२)

समिक को कुछ दिखने में देखकर मैं सीधे घाम निकला और घटक तक आ गया। अब रसा के लिये किसकी धरण में जाऊँ। जुए में बनीति करने वाले को कड़ी सवा ही जाती थी। कुछ लोग जुए से ही अपनी बानीबिका बचाते थे। सवाहक ने वसण्टवेना से कहा है —

‘वालितावधेसे च तस्मि जुवोवबोवि म्हि सुवुतो’^{१३} मु० क० (डि० अक)

बाबरक के निर्बन हो जाने पर मैं जुवारी हो गया। तस्काठीन ध्यवनों में घुठ सर्वप्रधान म्यसन था। सवाहक ने हारने पर खपया न देने से पीछे जाने पर मायुर से कहा है —

‘कम बुबिसर मण्डलोए गडोबसि । हो । एधे मम्हाव बुदिबलार्च बकपणीए समये ठा कुटो दहरस ॥’^{१४} मु० क० (डि० अक)

यवा जुमारियों की मण्डली से मबखड है ? दु ख है। अब इनसे बिना बिदे बच निकलना असम्भव है। तब मैं कट्टी में हूँ ?

सवाहक की इस खति से घुठ की सवारित घासन पट्टि का परिचय मिलता है। खुरुरक ने भी घुठ का कौता परिचय दिया है :

१ राजकुल तथा निवेदनाम. । (स० अमु०)

२ लेखक म्वापूठहृदय समिक दृष्टका तटिति प्रअष्ट ।

द्वाली बार्पनिपठित क गु कनु धरण प्रपये ॥ (अ० अमु०)

३ चरिम्वावधेने च तस्मिन् उठोपजीवी बस्मि सवुत । (स० अमु०)

४ बच घुठकरवण्डम्या बडोअस्मि । बष्टम् । एवोअ्माक घुठवउभामअ-पनीय समय । तस्मान् कुटो वास्यामि । (स० अमु०)

‘मोः । दूत हि नाम पुत्र्यस्य वसिष्ठासन राज्यम् ।’

मरे । जुवा मनुष्यों का बिना सिंहासन का राज्य है । मू० क० (दि० ७६)
यह भावे कहता है—

न बभूवति वराभवा कुपयिषद् हरति वयाति च निरवमर्षबाणम् ।

नृपतिरिव निकाममास्वर्धो विभववता संपुपास्पते बनेन ॥ मू० क० (२-७)

यह जुवा किसी के मनावर को कुछ समझता है । प्रत्येक दिन वह उपासित करता है और मनेष्य धन होता भी है । सम्पत्तिधारी राजा के बमान यह धनबाह मनुष्यों के श्रेष्ठ होता है ।

और भी—

इव्य उन्वं दूतेनैव सर्वं गच्छ दूतेनैव । मू० पा० (२-८)

जुव से ही मैंने बल और जुव के प्रभाव से ही स्वो सभा मित्र की प्रशंसा की है । इसी नाति जुव से ही किसी को कुछ दिया है और अपमोप भी किया है । यही एक कि जुव से ही मैंने अपना सर्वनाश भी कर डाला है ।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दूत में स्त्री भी बाँध पर रखी जाती थी । पत्थनों की शक्ति श्रोत्रियों को दाव पर रखने वाली प्रथा तब भी प्रचलित थी ।

सवाहक ने फिर कहा है—

श्रेयाहृतसर्वस्व. पावरपसनान्च शोपिसदरीर ।

नर्षितर्षितमार्गं. कृतेन विनिपातितो यामि ॥ मू० क० (२-९)

श्रेया (हीया प्यारक एक भाव) के द्वारा सर्वस्व बैरा देने वाला, नर्षित (बन्ना नामक विशेष दाव) के द्वारा (वर का) रस्वा खिलाया जाने वाला, कृ (पुरा नामक दाव विशेष) के द्वारा मारा हुआ, मैं बला हूँ ।

यहाँ प्यारना भी कुछ कम नहीं थी । दुर्गरक ने दूतकर माधुर और रीग सवाहक को देखकर दसक्य चित्र बोला है—

य. स्तम्भ दिवङ्गतबालतद्विरा नास्ते कङ्कुम्भिनी,

यस्योद्दर्वणकोप्यकैरपि सदा पृष्ठे न जातः निज्ज ।

यस्यैतच्च न कुक्कुरैर्द्वन्द्वैर्बाणैर् चम्पटै,

तस्यात्थापतकोमदस्य सट्ट दूतप्रसपेन किम् ॥

मू० क० (२-१२)

मेरे समान जो एक पैर नीचे और एक पैर ऊपर करके खायकठ तक निम्नतम नगबस्तक होकर नहीं रह सकता। नुकीले पत्थरो पर बसोटे जाने से बिमकी पीठ पर बिह्ल नहीं है और बिहली बंधा का मध्यमाव कुत्तों से बही काय गया उस लम्बे एक कोमल पीर वाले मनुष्य (सबाहक) के निरन्तर पुत्रा सैरने से क्या राम ? वास्तविक जुबारी तो उपर्युक्त क्लेश से पूर्णतया बन्ध्या रहते हैं।

समिक हारे हुए जुबारी को नेवक बद्धता और साक्षीरता ही बही, बरन् उसको पोटा भी या और कमी-ठकी तो उससे पैठा बमूस करने के लिये उसे अपने को बेचने पर विवश करता था। कुछ जुबारी मिलकर समिक की प्रभुता पर बड़ा लम्बावे से और उससे साधते थे।

वासुदेव ने स्वयं इस तन्त्रमय में मीनेब से कहते हुए बसन्तसेना के पास यह सन्देश भेजा है—

यत्तस्वस्मानि सुवर्णमाण्डिताःसोपमिति कृत्वा विभ्रग्धाद् द्यूते हारितम् ॥

मू० क० (८० अक्ष)

विश्वास से अपना (समझ) करके हमने सुवर्णपात्र को पुर से हरा दिया। घुट में पराजित जुबारी पुनः खेले के लिये स्नेहपूर्वक बुलाया जाता था। सबाहक को घुटच्छेद से मुक्त करने के लिये बसन्तसेना द्वारा प्रयत्न कबज पेटी से प्राप्त करके मापुद कृता है—

‘बरे मनसि छं कुलपुत्रमन्नुद तुए कळे बाबळ पुनो जुव रमस’ ॥^१

मू० क० (३० अक्ष)

बिजबी जुबारी पराजित को अपना बन बुकाने के लिये उत्पीडित करते थे। सबाहक की भाँति ऐसे उदाहरण कम मिलते थे जिनमें कि जुबारी को पद्मात्ताप हो और वह विरक्त होकर लम्बासी बन पाव, बीछे—

‘अज्जए, मह एरिवा जुदिबलावनायेव धरधमकळे कुविरणम् ।’^२

मू० क० (३० अक्ष)

आर्ये ! मैं इस जुबारी के अपमान से बीट लम्बासी हो जाऊँगा।

सबाहक की स्वतः उक्ति हमका प्रतीक है —

१. बरे मनसि छं कुलपुत्रम् — मृगच्छर कथ । बाबळ । पुनर्पुत्र रमस ।
(१० अनु०)

२. आर्ये, महमेतेव दूतवगवमानेव धावधमकळो मरिप्यामि । (१० अनु०)

कताद्यदे विष्णामभरत्त हृत्त हृत्त मनुष्यवत् ।

इत्काद्यदे च ममाविषयस्य पञ्चदृष्टवन्मता ॥^१ मू० क० (२-५)

राज्यभङ्ग राजा जिस प्रकार महोत्सव के समय घुसरे के घर में बाजों की श्रवण सुनकर विस्मित हो जाता है उसी प्रकार कता (जुमे का संकेत विशेष) राज्य सुनकर निर्धन पुरुष का मन पत्नी की ओर खिंच जाता है और चिन्तित हो जाता है ।

निम्न श्लोकों में भी इसी की पुष्टि है —

वाग्मि न कीरिष्य बुभेदुषिहृत्तवचनपिहृत्तम् ।

वह्नि ह् कौरसमहते कताद्यदे मन हसति ॥^२ मू० क० (२-६)

मैं जानता हूँ कि सुमेरु पर्वत के शिखर पर से गिरने के समान जुमा बनिष्टकर है । मत. मैं जुमा नहीं खेनुंसा फिर भी कश्किठ की ममुर कूफ के समान कता शब्द से मेरा मन आकर्षित हो रहा है ।

इससे स्पष्ट है कि घूट से पीछा कूबागा पुगम नहीं है ।

घूट के जिये पाडे हापीबाँव के बने हुए होते थे । बसठसेना के पास हीरे के निमित्त पाडे थे । जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है । कुछ का नाम गर्दमी था जिसका आशय जुमे के बिछाठी को मक्के की भाँति बुत्कारना था और छिरी का नाम थाकि पासा था जो सम्य की भाँति नैक कर मारा जाता था । घनाहक ने इस सम्बन्ध में कहा है :—

पववम्बपमुकताए विव

गदहोए हा ताडिहो मिह गदहोए ।

अपमवमुकताए विव सतीए

पदुत्की विव तादिदो मिह दातीए ॥^३ मू० क० (२-१)

पीछा बदन से घुली हुई गदहो के समान कौटी से मैं इसी प्रकार मारा गया ठीक जिस प्रकार कर्प से लौटी हुई शक्ति के द्वारा बटोरकच मारा गया था । गदके में पीका हुआ पासा शक्ति बटुकाता था ।

१. कताद्यदो निर्गापकस्य हृत्ति हृत्त मनुष्यत्व । (स० अनु०)

इत्काद्यच्च इव गपविषयस्य प्रअष्टराज्यत्व ॥

२. वाग्मि न कीरिष्यामि बुभेदुषिहृत्तवचनपिहृत्तमिर्न घूटम् ।

उर्वापि चतु कौकिलमधुरः कताद्यदो मनोहृत्ति ॥ (स० अनु०)

३. मववम्बपमुकत्येव गर्दम्बा हा ताडितोऽस्मि वर्दम्बा ।

अगपनमुस्त्येव हा अकता बटोरकच इव पाडितोऽस्मि अकता ॥ (स० अनु०)

इस चीति छत समय घुत विज्ञान अपने में परिपूर्ण था ।

निष्कर्ष

अने अने घुतब्रह्मण का इतना विकास हुआ कि इसके अपने नियम बन पड़े । यदि इसको घुत-विज्ञान कहा जाये तो अनुचित न होगा । मनु ने तो इसका विरोध अवश्य किया है क्योंकि उन्होंने इसे दुर्भक्षण माना है, जिसका दुष्परिणाम पुच्छिष्ठर का शोषण तक को हुए में बना देना और हार जाना प्रत्यक्ष है । प्राचीनकाल में इसके व्यवस्थापक को समिक करते थे । छाटटी, सट्टा आदि इसी घुत के परिष्कृत रूप हैं । सट्टेबासी में लगभग में आदमी बनी और लगभग में निर्धन हो जाता है, इसको मान्यता देने के लिये अत्तर्षो ष भी इसका सवन्ध सम्बन्ध में छोड़ दिया गया । दीपावली पर जुड़ा खेत्ता गुम माना जाने लगा । उत्तर प्रदेश में कार्तिक की बुधिया पर होनी वाले पर्वों में भी इसे खेलते हुए देखा गया है । उनका विश्वास है कि दीपावली पर हारे हुए लोगों के लिए बोट का यह गुण अवसर है ।

और कला के विभिन्न प्रकार

घुत की चीति जोरी भी मानवजाति के विकास के साथ-साथ बढ़ते हुए रूप में हमारे सामने आती गई । वैदिककाल में पशुओं की जोरी होती थी । निम्न-लिखित वेदमंत्र में यी की जोरी के विषय में विशेष किया गया है :

न ता नसन्ति न ददाति तस्करो,

नासामादिभो व्यपिष्टा बभर्षति ।

देवाश्च यामिर्जयते ददाति च,

ज्योतिस्तानि सचते मोषति तह ॥ ऋग्वेद ११२८१

यों नह न हो, उन्हें चोर न चुड़वें, उन्हें घुत नष्ट न दें । उनसे विज्ञानों का पूजन होता है, वे दान में ही जाती हैं । उनसे मुक्त होकर गोर्षों का स्वामी दीर्घकाल तक सुख भोगता है ।

प्राचीन काल में पशुपत ही मनुष्य का सबसे बड़ा पत माना जाता था । इसी से पशुओं की जोरी होती थी ।

वर्षाकाल में जोरी की निरा की गयी है और जोरों की घासन की ओर से बिचिबन् दण्ड देके की व्यवस्था है फिर भी दुष्ट मनोवृत्ति के व्यक्ति जोरी में अनुरक्त रहते हैं ।

मुञ्जकटिक में ब्राह्मण दण्डिलक चोरकार्य में कुशाह था । वह मरनिवः में अनुरक्त था और उसकी स्वच्छन्दता से अपनी पत्नी के रूप में अपने पाप रचना

बाह्य या । मदनिका एक श्रीतयायी थी और बसंतसेना की सेवित्र्य थी । उस समय की व्यवस्था के अनुसार धन लेकर ही मदनिका को बसंतसेना के यहाँ से बुझाना जाना समझ था । शबिकरु निर्घन था । इस विचार से कि वह निर्घन है मदनिका से निरासक्त नहीं हो सकता था । अतः उसने यौवनम वनायी कि यह भारत के यहाँ चोरी करके धन प्राप्त करे और बसंतसेना को लेकर मदनिका को वहाँ से मुक्त कराये ।

शबिकरु ने भारत के यहाँ चोरी की जिस विधि को धपनाया है, निश्चय ही कठोरमक और वैज्ञानिक है । चौर्य व्यवस्था को धपाने वाले शिव के पुत्र स्वयं अपनी कार्तिकेय को अपना धर्मोद्धार देवता और संरक्षक मानते हैं तथा अपनी पत्नी स्कन्दपुत्री अपनी स्कन्दशिवों में करते हैं । शबिकरु ने अपने सबिकोशल की प्रशंसा में अपनी गुरुपरम्परा को स्मरण करते हुए कहा है —

नमो नरदाय कुमारकार्तिकेयाय, नमः कनकशक्त्रे ब्रह्मपदेवताय देवदेवाय,
नमो भास्करवन्दिते, नमो योगानाम्नाय भस्वाह प्रथम सिध्द* । तेन च परिवृष्टेन
योगरोचना मे क्ता ।

मू० क० (तु० शक)²

अर्थात् कुमारकार्तिकेय को, प्रभावशाली ब्रह्मपदेवरूप देवपरायण स्वयंशक्ति
भास्कर बन्दी तथा योगानाम्ना को नमस्कार है जिसका मैं प्रथम सिध्द हूँ । उनके प्रमाण होने के पुरी योगदान ही यही ।

अथवा हि समाश्रय्य न मा इत्यन्ति रसिप ।

उत्तरं च पठित्वा पात्रे बभूव नौत्पादयिष्यति ॥ मू० क० (३-१५)

इस शक्ति योगदान का कर लेने से अपनी योगरोचना से जिस मुझे
एककाम नहीं देख सकेंगे और यदि योगरोचना पत्र पर शस्त्र का भाषात हो
तो भी चोट न लगेगी ।

सबके निश्चय से ही हुए साधनतः किसी को चोरी करना भोला का
कार्य नहीं समझा जाता या फिर भी कुछ लोग इस वृणित धर्म को करते थे और
यह चौर्यवृत्ति व्यवस्थामा के बहादुरण से, जिसने शक्ति हुए पाठकों के पुत्र,
शिवश्री और ब्रह्मपुत्र का धन किया था, व्यापकतः मान्य जारी थी । शबिकरु
के इसकी वृत्ति में कहा है—

१. योगरोचना—यह एक प्रश्न का ऐसा रूप है जिसे पत्र पर जगाने से
मनुष्य बहुत ही आस है और शस्त्रादि के प्रहार से चोट नहीं लगती ।

नाम नोचमिद वदन्तु पुरुषा स्वप्न च यद्वर्षत
 विश्वस्तपु च वचनापरिमवर्षीर्यं न नीरं द्वि त्पु ।
 स्वाधोना वचनोपताचि द्वि वर वदो न वैवावति
 मीयो ह्य नरत्प्रसोक्तिवचन पूर्व कृतो द्रोणिना ॥ मू० क० (१-११)

मनुष्य इस बीरी को अधम मने हो कहें, क्योंकि यह बीरी मनुष्यों के सो जाने पर होती है बीर इसमें विश्वस्त वनों को इत्यापहरण्य वपमाना होता है अतः यह बीरी पराक्रम नहीं है, पर यह बीरीस्त्री कूर्त्ता स्वतन्त्र होने के कारण उत्तम है । इस कार्य में किसी का हाथ बनकर हाथ नहीं जोड़ना पड़ता, फिर यह कार्य बहुत प्राचीनकाळ से चला आ रहा है । द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने सोते हुए पाण्डवों के पुत्रों को बोधे से मारा था । अतः इसमें कोई दोष नहीं है ।

एविलक बीर अधस्य है, पर वर्ममुक्त की नाति दत्तका यह कार्य कर्पादावों से हुआ है । यह कहता है —

ना मुष्णाम्यवन् विभूवचवतीं कुन्सामिवाह सतां
 विप्रस्य न हरामि काचनवधो वक्षार्यमभ्युदयुतम ।
 वाम्बुत्सयगठ हरामि न तथा मात वनाचीं वचि-
 स्कार्याकार्यविचारिणी मम मतिरचीर्येप्रिय नित्य स्थिता ॥

मू० क० (४-१)

बल का स्त्री में विकसित पना के समान अस्वकार धारण करने वाली मारी का अपहरण नहीं करता है । शास्त्र के लिए सुचिन्तित सुवर्ष भी नहीं चुपचा है बीर न मम के लिए कयोचित सामग्रियों को ही लेता है । चापा की गोद में स्थित बालक का भी कमी अपहरण नहीं करता । इस प्रकार बीरी करने में भी मरी बुद्धि कर्तव्य और अकर्तव्य का अन्त पूर्ण विवेक कर लेती है ।

एविलक के विचार इस बीर्य कार्य में भी, जिसमें स्वाधुति के लिए हर मन्व्य काय उचित माना जाता है, उसके वैगिप्य के योग्य है । सिंगा, बस बीर दीक्षा स मुक्त यह बीर्यवृत्ति कुणलतातु है । इसमें पैरों और पारीरिक बल की आवश्यकता है और साथ ये अवेक्षित है निर्मोक्तानुर्न साहस्य वकि । एविलक को अधन बालुर्व का पर्य है । अतः अधन सम्बन्ध ये कहा है —

माज्जित कमय मय प्रसरय रवेनो महालुचने
 मुत्तामुत्तमनुष्यवीर्यमुत्तने ववा सर्वये पदमप ।

मायास्यसरीरवैशारण्ये वाग्देहमापास्तरे
दीपो रात्रिषु संकटेषु बुभुषो वागी स्वके गीर्जते ॥

मू० क० (३-२०)

बुधबाप मापने में मैं विन्धी हूँ । शीघ्र भाग निकलने में हरिण । किसी भी वस्तु का अपहरण करने में बाब, सोये या जाये हुए वस्तुषु के पराक्रमनिकपण में कुत्ता, सक्तीर्ष पक्ष चरित्र है चित्तकण्ठ मापने में सर्प, क्षयपरिवर्तन, शरीर परिवर्तन तथा भेद परिवर्तन में साश्रान् माया, माया परिवर्तन में मूर्तिमती वागी, रात्रि के लिए दीपक, संकट के समय मेंद्रिया, मूर्ति के लिए बौद्धा और बल के लिए तो गीका के तुम्ह हूँ ।

बुध एव पशु विरिः त्विरत्यै पतयपठो वरिषर्षमे च तुम्बः ।

पशु एव नुकल्पयकोङ्कनेऽर्हं वृक एव च इहगौ बके च सिहः ॥

मू० क० (३-२१)

मैं शीघ्रने में सर्प के समान, क्षय में पर्वत के समान, शीघ्र यमन में बरह के समान, एक बार सारे संसार को देख लेने में बल नामक मूय के तुम्ह, पकड़ने में भेड़िये के समान तथा पराक्रम में तो साश्रान् सिंह के समान हूँ । वह तो सर्वविक्रम की अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ हुईं । अब सेंध कैसे बनायी जाय इस सम्बन्ध में श्रीरक्षाज्ञ के आचार्य भववान् कनक्यक्ति के द्वारा सेंध बनाने के जो चार प्रकार के उपाय प्रदर्शित किये गये हैं उनका भी सविस्तार ने सम्बन्ध विवेचन किया है :-

‘यत्र कर्मशरारम्भे कीकृतमितानी सविमुत्पादयामि । इह बभु मगवता
कनक्यक्तिना चतुर्विध सधुपामो वरितः । तदुभया पस्वेष्टकानामासर्षबभु,
कालेष्टकानां छेदनम्, विष्णुमयानां छेदनम्, काष्ठमयानां पाटनमिति । तदत्र
पस्वेष्टक इष्टिकान्धबम् ।

मू० क० (सू० ३०)

कर्म के प्रारम्भ में कैसे सेंध बनायी जाय ? इस सम्बन्ध में भववान् कनक्यक्ति ने सेंध बनाने के चार प्रकार के उपाय प्रदर्शित किये हैं :-—सैंध पकड़ी ईट बाले प्रदवीं में ईंटों का लीपना, कच्ची ईंटों के चारों में ईंटों का छेदना, मिट्टी के डेन्वों से निर्मित परतों में मिति का निबन्ध करना है और काष्ठनिर्मित परतों में काष्ठ की उन्मरणा । यह पकड़ी ईंटों का मदन है वत यहाँ ईंटों का लीपना ही उचित है ।

सेंध के सात प्रकार के आकारों का भी सविस्तार ने बचन प्रदर्शन किया —

पचम्याकोष भास्कर बालचन्द्र
 बापीविस्तीर्णं स्वस्तिक पूर्णकुम्भम् ।
 तत्कस्मिन्देवै रस्यबाम्यात्पञ्चिभ्य
 दृष्ट्वा ष्वो घ मडिस्मन्न यान्ति पोराः ॥ मू० क० (३-११)

शिखा हुआ कण्ठ, सूर्य (गोष्ठ), बालचन्द्रमा (मर्धचन्द्राकार), बाबडो, विस्तृत, स्वस्तिक (卐) बिह्व जैसा और पूर्ण कुम्भ के आकार से युक्त लेंच लगाने के इन सात प्रकारों में से किञ्च स्वान पर अपना कीजक शिखाई बिसे देखकर कञ्च नापरिक आदर्च्य में दृष्ट जायें ।

‘तदत्र पस्नेष्टके पूर्णकुम्भ एव शोधते तमुत्पाद्यामि’ । मू० क० (१० व०)

तो यहाँ पक्की ईंटों वाले घर में पूर्ण कुम्भ नामक लेंच ही अच्छी लगती है बात बही मनाता है ।

लेंच नापने के लिए प्रमाणमूत्र (नापने का बाबा) मूत्र खाने पर यज्ञोपवीत की शार्धवता समझते हुए बर्चितक ने सती के महत्व का गीत गाया है —

‘आ इह यज्ञोपवीत प्रमाणमूत्र मविष्मति । यज्ञोपवीत हि माम ब्राह्मणस्य
 महदुपकरणद्रव्यम् विष्णोवतोऽस्मद्विषस्य । नृत् ।’ मू० क० (१० अ०)

हाँ, यह यज्ञोपवीत नापने का बाबा बन जायेगा । यज्ञोपवीत भी ब्राह्मण की बड़ी उपाधी वस्तु है ।

एतेन नापयति मिसिपु कर्मभारं-
 मेतेन मोक्षयति मूपपसप्रयोजान् ।
 बद्घाटके वषति मन्त्रद्वे कपाटे
 दृष्टस्य कीदमुत्रै परिषेष्टेन च ॥ मू० क० (४-११)

इससे लेंच पोखते समय दीवार नापी जाती है । इससे बर्षों में ब्रह्मण आमुपव निकलने जाते हैं । यह सिद्धकनी द्वारा दृष्टापूर्वक बन्द शिखाट छोटने में सहायक होता है तथा विपेले बीजों और सपों के काटने पर सम स्वान पर बर लगाने में काम होता है ।

इसके द्वारा पवित्रक से यज्ञोपवीत का क्रियारक उपयोग दिखाया है । लेंच का उपयुक्त आकार प्रमाणमूत्र से नापने से पश्चात् पवित्रक दीपशिखा से बापों और प्रकाश केंद्रकर बदर रखे बन का शाव प्राप्त करता है और फिर प्रति-पुश्य को प्रवेश करता है । वस्तुमान् स्थिति अनुकूल आनन्द स्वयं प्रवेश

१. प्रतिपुश्य मनुष्य का बनावटी पुतला है जो बाघ, खर आदि का बना हुआ होता है । इसका पहले प्रवेश कराने से एव ही वह जल हो जाता है कि

करता है और फिर धानो को बरती पर बिखारे हुए उसके द्रव्य में दरवाने की मिटकनी छोड़ता है बिछसे किसी को सम्बेह न हो और वह गिरते हुए पानी की आबाध समझे। फिर यह जाबने के लिए कि सभी धोये हुए हैं वह उनके साथे कुछ मयाबद्ध बेहारे करता है। इत मीति उसे सोने का पूर्ण निम्न हो जाता है। इसे जानने के लिए कुछ और भी विधिवाँ है—

नि स्वातोऽस्य न छिन्नाः सुविन्दस्तुस्यान्तरे बरति,
 बुद्धिमन्निमीलता न विच्छिन्ना नाम्यन्तरे बरता।
 मात सत्सुन्दरीरक्षविशिष्टिषु शम्भाप्रमाणासिक्त,
 दोष चापि न मर्त्येवमिच्छुत्वा स्यात्स्यस्तुत्वा यति ॥ मृ०क० (१-१८)

उस से सोये हुए तथा यादव्य में सोये हुए व्यक्ति को परस करने का कितना सुन्दर दृश्यों रूपक किया गया है।

इसकी ताँस एकामुक्त नहीं है, स्पष्ट एक समान अन्तर बाँधी है, भाँसि मन्तो प्रकार बन्ने है, जेनेन नहीं है, न मीतर की पुसकियाँ ही चंचल है, शरीर सिपिठ गन्धियों के कारण अकर्मण्य है एक शम्भा के आकार से अधिक है मर्त्या प्रमाद निद्रा के कारण शरीर के अंग शम्भा के जैसे ही सडक रहे हैं। यदि यह व्यक्ति उस से सोये हुए होते तो सामने दोषक के प्रकाश को भी सहन नहीं कर सकते।

शरीर के लिए प्रायः रात्रि का प्रकाश अन्धकार बरजा समझा जाता था। अतिसक के निम्न कथन से इसकी पुष्टि होती है

नृपतिपुष्पवन्धितप्रचार परमुद्गुवचनिधिनकनीत्म् ।
 मनपटवतयोनिवृत्ताय रजभिरियं बतनीव सवुचोति ॥ मृ०क०(१-१०)

पहरेबारों की संज्ञा, स्वान तथा वृमरे के चर को दूषित करने में निपुण मुने और अन्धकार से सम्पूर्ण बयायों को आच्छन्न करने वाली बद्ध रात्रि माता के समान स्नेह के बाहरण से उच्छयी है।

निष्कर्ष

साधुनिक समाज की स्थिति का हिन्दुस्तान मृच्छकटिक में सर्वत्र चित्रित है। इसमें प्रस्तुत शरीर के अतिरिक्त वर्तमान युग में शरीर के अन्य विविध रूप हैं।

मनुष्य भी उसके अन्तर प्रवेष्ट कर सकेगा, फिर कोई माही उका हो तो उसका भी दाग हो जाता है।

प्राचीन काल में छोटी स्वार्थपूर्ति के लिए भी जाती थी। मूच्छकटिक में पबिलक भी चौरकार्य में प्रवृत्ति मत्रनिवा की प्राप्ति हेतु रिबाई गई है, पर मात्रकक छोटी एक बन्धा बना हुआ है। यद्यपि चौरकार्य निहृष्ट यत्ना जाता है फिर भी मूच्छकटिक में इसे वैज्ञानिक रूप लेकर चिन्तित किया गया है। पहले चोरियाँ रात में होती थी मग दिन-रात होती हैं। इसका उद्यम रूप इतनी है। जानुयन एव बन भी कूट के साथ वास्तविक विरोध में भी इस प्रकार की प्रतिधिया सनाय को बाध सभस्त बनाये हुए है। इसी धन के निमित्त अपहरण भी किए जाते हैं। यह भी उच्चतम एक स्वरूप है।

दास-प्रथा की निम्न स्थिति

राम का जीवन दयनीय था। बहुतही बारा समय अपने स्वामी की परिवर्षा में ही बिठाना होता था। स्वामी के समे पर उसे सोना होता था, उसके बापने से पूर्व ही उसे बाधना होता था, और सनी प्रकार के कामों को स्वामी के सकैठ पर करना होता था। ऐसे व्यक्ति पराश्रित होकर जीवन बिठाते थे। बन के कारण जो पुरुष और स्त्रियाँ किसी कारणविरोध से बेच दिये जाते थे या स्वयं निक जाते थे उन्हीं का जीवन इस दाल, रूप में व्यतीत होता था। यह दास-प्रथा इतनी प्रचलित थी कि इसके लिये नपों में निमित्त स्वाम निवध हो चुके थे। इस रूप में बिकने वाले दास-दासियों का सम्बन्ध अपने पूर्व परिवार से विस्तृत सगत हो जाता था। उनका जीवन और मरण सरोदने वाले स्वामी की इच्छा पर निर्भर रहता था। सरोदने वालों में कभी-कभी तो अच्छे व्यक्ति होते थे जो सब प्रकार से उनका ध्यान रखते थे, पर कभी-कभी ऐसे भी लोग होते थे जो उनसे भरसक सेवामें लेते थे और उनके प्रोबलादि का विशेष ध्यान नहीं रखते थे। कितना उन्मिठ काम है कि कृष्टि की वात्सुत्तय रचना मानव को पशु की तरह बैधा और खरीदा जाता था। स्वामी इनको बरनी एक सपत्ति के रूप में मानते थे। बिकने पास बिकने दास-दासी होते थे वह पतना ही समुद्र माना जाता था। यह प्रथा केवल भारत में ही हो ऐसी बात नहीं, बरन् सारे ससार में प्रचलित थी, पर अब चोरे-चोरे इसका अन्त हो चुका है और सम्मता की दृष्टि में इसे पुनास्पद समझा जाने लगा है।

मूच्छकटिक काल में घात में रात प्रथा बड़ी-बड़ी थी। उस समय स्वामी को शयना बेतर रासों को शयनत्र नापरिक बनाया जा सकता था। कभी-कभी राजा की आज्ञा से भी रात मुक्त कर दिये जाते थे।

दयम अंक है अन्त में चाइसत दवावरक पैठ के विषय में कहता है —

मुञ्जट्ट, बबालो बबलु । ते चाञ्जला- सर्वभाषाज्ञानामभिप्रायो मयम् ।

इवक्ष्यवहारी यह स्याद्वरक, दासस्य ते मुञ्जट्टो नाम । ये चाञ्जलं तत्र पाञ्जलो के वक्ष्यति हो जायें ।

जो व्यक्ति बिना परिवार का दास होता था वह उसका एक सदस्य माना जाता था । कभी-कभी इनको उच्छिष्ट भोजन पर भी निर्बाह करना पड़ता था वैसे कि दास्यर न चेट से कहा है —

‘दम्ब वे उच्छिष्टाञ्ज दस्सम’^१ । मू० क० (वक्ष्य वक)

साट उच्छिष्ट भोजन तुम्हें देना ।

ऐसे भी अक्सर बातें ये वरक कहाभूतिपूर्वक उनके कण्ठों पर घ्याम नहीं किया जाता था, अपेक्षा की जाती थी । चेट न कहा है :—

‘हीमाधिके ईरिणे दासमावे न दासं कपि न पत्तिमावहि (सकस्सम्)

मग्ग चासुदत्त, एत्तिके मे विह्वे’^२ । मू० क० (रक्ष्य वक)

‘घर है दासता ऐसी बुरी है कि सत्य का भी किसी को विश्वास नहीं करा पड़ी । कार्य चासुदत्त, इतनी ही पीरी सामर्थ्य है ।’

दास और दासिनी अपनी अतिथि सम्पत्ति भी रख सकते थे । जैसे कि मदनिका के पास अतिथि से प्राप्त धानभक्षण थे जो उसके कुम्हारे जाने के बिना अतिथि ने चोरी किये थे पर स्वामी की इच्छा पर बिना कुछ बिन्दे भी धान और दासो रक्षण से मुक्त हो जाते थे । बसन्तसेना ने मदनिका से कहा है—‘बह मम उन्वो तरा विधा अत्त सन्व परिवन्त वधिविस्स करदस्सम्’^३ । मू० क० (च० वक)

परि मेरा बरा हो तो धन के बिना सब देवकों को स्वतन्त्र कर दूँ ।

स्वामी अपने अधिकार के वक्त पर दासों से अनिष्ट कार्य, जैसे ही वे निन्दनीय हों, करने के हक्क रखते थे । दास्यर अपने दास चेट से ऐसी ही माया कराया था, पर चेट ने चासुदत्त के विरोध में दास्यर की अनृत्ति दासों को स्वीकार नहीं किया । इससे स्पष्ट है कि कुछ दबदबादार दासों में स्वाभिमान एवं बहदुरीयता का पर यह असात्मान्य स्थिति थी । सामान्यतः ये तो दासता के बाड़े स्वामी को दास न मानना कठिनता साम्ये जाती थी । उन्हें अपने

१ सर्व वे उच्छिष्ट वास्यामि ।

(ब० धनु०)

२ इत्त ईरुणो दासमावे यस्सस्य कमणि न प्रत्यस्यति । कार्य चासुदत्त एता-
दासि विभव ।

३ अहि मम उन्वस्तरा विनार्यं सर्वपरिवन्तमभुविन्व करिप्पामि ।

स्वामिनों के अनुकूल ही चलना पड़ता था, क्योंकि उनके विरोध में उनके एक न चलती थी।

निरक्षर्य

समझा यह जाता है कि मनुष्य मात्र धन के बल पर अपने क्षेत्र में प्रतिष्ठित है। ठीक ही है, आज मान्यता धन के धाने तुम्हें हुई है अर्थात् इस रूप में एक निर्धन व्यक्ति यदि सम्पत्ति मानव है तो उसका सम्मान आज भी जगता उठना नहीं करता मितना कि कूर जनमानस का। यह हो सकता है कि हृदय से बतता का सम्मान सच्चे मानव के लिए हो, पर इसे कौन देता है ? जो प्रत्यक्ष में देखा जाता है वही सम्झा जाता है। प्राचीनकाल में धन का इतना महत्त्व न था। न सिक्के का इतना प्रचलन था। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में समुप्य सतुष्ट था। ऐसी स्थिति में अतिप्राचीन काल में धन के कारण रास प्रथा हो, यह सोचना नहीं जा सकता। जो बलवान होते वे वे दुबली को रास बनाकर रक्षण में और उनके अपना नाम निकालते थे।

निर्धनता में शीनता से सुर्वेष्टा

कारण से विनाश पर्यन्त धनी और निर्धन का उन्मूलन जाता रहता है। सामाजिक कार्य-कार्यों की प्रगति का यहो एकमात्र कारण है। मूच्छकटिककार ने धनी और निर्धन की समस्या को लेकर ही सारी कथावस्तु की संवेष्टा है। इसी के प्रवाह में निर्धनता और समसे होने वाली अपनीति का अितना सुन्दर और सजीव चित्र इससे खीजा गया है, वह अतिथीय है।

वास्तवतः कारण में बड़ा धनी था। दुर्भाग्य के शत्रु ने जब उसे निर्धनता के पदों में डूबेला दिया तब समसे यहो कहते बना कि यह निर्धनता समो दुःखों का एक मात्र कारण है। इस समय की स्थिति से जगता को पूर्ण विश्वास हो गया था कि सभी ब्रह्माह्वयों धन पर निर्भर है। इसीलिए जो निर्धन है वे सदा सब प्रकार की दुःखों के एक मात्र मकार है। निर्धन वर्ग की अनेक बुन्धितियों में परिचय करना पड़ता था, फिर भी सामाजिक दोषों से वे ही सर्वथा मड़े जाते थे। समाज धन के पीछे इतना अंधा हो गया था कि उस समय धन और धनी पुरुषों के धाने निर्धनता और ईमानदारी का वही सम्मान न था। अब तो यह है कि—

'सर्वे गुणा वाचनमाध्ययित' अर्थात् सारे गुण धन को ही बरोल्लभ है। इसी की सर्वत्र गुंज था। इसी से सम्बन्धित वास्तवतः में अपनी निर्धनता का जो विश्व प्रस्तुत किया है अब में वह शीनता का परिचायक है।

निर्भयता के कारण मित्रों की अनुपस्थिति देखकर वासवत ने कहा है —

यासा बलि' तपरि भवृगृहदेहकीणा

हसैव चारसयमेव बिसुज्जपूर्व ॥

शास्त्रैव मन्वति विन्वन्नुवापुरासु

बोवाञ्चलि पनति कीटमुवावलीक ॥ मृ० क० (१-२)

कुछ दिन पूर्व हमारे जिस द्वार पर पुषा के समय पिरामे हुए बच्चों को हृष्ट और आरस पकियाँ खाया झट्टी थी, वहाँ अब मनुष्यों के आवापमन के समाप्त में उसी दृष्ट छगी हुई मृमि पर इस समय कीड़ों के मुख से सजित शीशों के समूह पिरते हैं ।

अपनी पूर्वावस्था की स्मरण करते हुए वासवत से विदूषक अब उसकी चिन्ता का कारण पूछता है ती वासवत कह उठता है—

सुख हि दुःखान्यनुभूय सोमते वगाम्बन्धरेष्विब शोपदर्शनम् ।

कुसात् पी याति मरो बरिष्ठता मृत शरीरेण बृशः स बीषति ॥

मृ० क० (१-१०)

घोर अन्धकार में बिधु प्रकाश शीतक का प्रश्रय सुशोभित होता है उसी प्रकार दुःख का अनुभव कर लेने पर सुख का आगमन आनन्दप्रद होता है किन्तु जो मनुष्य सुखी होकर निर्धन होता है वह शरीरपापी होते हुए भी मृतक के समान जीवन बिच्छता है ।

वासवत कपालो से इतना अब मया वा कि वह विदूषक से यही एक कहने लगा कि उसे ही दीगहा है बृशु कही अधिक प्रिय है—

दारिद्र्यान्परजाता मरण मम रोचत म दादिचम् ।

मस्फुकेषु वरण दारिद्र्यमन्तक दुःखम् ॥ मृ० क० (१-११)

वासवत की दृष्टि में निर्भयता और मृत्यु दोनों में मृत्यु अच्छी है, विपिनता नहीं । मृत्यु से जो बोझ बर दुःख रहता है किन्तु निर्भयता में अन्तकाल तक दुःख है ।

इतना ही नहीं, इसका और भी दुष्प्रभाव होता है :

दारिद्र्याद्धियमेति ह्योपरिगत ब्रह्मरपते तेजसो

निस्तेजसः परिभूयते परिबवात्रिर्बेदमावधते ।

निर्विण्ण शुभमेति शोकापिहितो युद्धया परिष्यन्वते,

निर्मुक्तिः क्षयमेत्यहो निभयता सर्वापयामास्यन् ॥ मृ० क० (१-१४)

निर्धनता से सम्बन्ध होती है। अग्नित मनुष्य से बहिन हो जाता है। निस्त्रैक व्यक्तिक पंथार में तिरस्कृत होता है। तिरस्कृत होने पर विरक्ति हो जाती है। विरक्ति होने से शोक की उत्पत्ति होती है। शोकातुर हो जाने से बुद्धि क्षीब हो जाती है। बुद्धि क्षीब होने पर सर्वनाथ सोचने लगता है। इस मूर्ति बहो ! शरिष्ठता सभी आपत्तियों का मूल कारण है।

विदूषक ने इस पर चाक्षरत से कहा कि हे बिन ! मन तो व्यपमभुर है मत इसकी मार में बुद्ध करना व्यर्थ है। इस पर चाक्षरत ने उत्तर दिया कि मेरे विचार से विधनता ही मनुष्यों की पिन्ता का एकमात्र कारण है :

निबासञ्चिन्ताया परपरिभयो वरमपर,
 पुनुष्ठा मिनात्वा स्ववतजनविद्वेषकरणम् ॥
 न मन्युं बुद्धिर्मवति च कस्यचत् परिमयो,
 हृदिस्म शोकाग्निर्न च बहति सन्ताप्यति च ॥ मृ० क० (१-१५)

बनहीन होना ही मनुष्यों की पिन्ता का आशय है, उनुओं के व्यपमान का स्थान है, यह स्वयं एक प्रकार से वृत्तय अनु है। यह मित्रों की ओर से करने को प्रेरित बनाता है और आत्मीय व्यक्तों के वर का कारण है। इन्हीं व्यक्तों से दखी को वर छोड़कर वन चले जाने की इच्छा होती है। यहाँ तक कि उसे स्त्री का व्यपमान सहना पड़ता है। यहाँ तक कहा जाय, हृदय में स्थित शोक की आग एक बार ही बला नहीं बालती किन्तु पुला-पुला कर मारती रहती है।

चाक्षरत की इन शक्तियों से विदूषक भी प्रभावित हो जाता है और वेदधाओं की पुजा के प्रति अपने को उदासीन विचाराता है। तथैव से बसन्त-दिना के समुपस्थित होने पर और चाक्षरत के द्वारा भ्रम से उसे रत्निका समझकर यह कहने पर कि रोहतेन की कैकर वीतर चली जाओ बसन्तसेना वेप्या होने के कारण मर ही मन हीन-मावना से चाक्षरत के वर के अन्धर प्रवेश करने में प्रिष्ठवती है। इस पर चाक्षरत यह कहते हुए कि बने रदनिने ! बलर भी नहीं देखो। कष्ट है।

यत्र तु माम्यस्यवीरिणा ह्यत्र नरा हृतात्मोपदिता प्रपद्यते ।

उदाप्रम्य निबास्यपि दास्यताम ॥^५ विनातरत्नोपदि विरक्तो जनः ॥

मृ० क० (१-१३)

विद्वेषण मनुष्य के मान्य की अथ हीनावस्था की प्रतीक शरिष्ठता या जाती है तब उसके मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। यहाँ तक कि विरक्तता से अनुरक्त वन भी विरक्त हो जाते हैं।

बनानाब में आदरस के हृदय में बर करने वाले विचार किसी प्रकार भी दूर नहीं होते और निर्बन्धता के ही कारण वह अपने को हर ओर से नैराश्य में डबा डबा देखता है और कहता है कि बड़े कष्ट की बात है कि इस निष्पूर हरिषा में मेरे चरित्र को भी कलङ्कित कर दिया

यदि तावत् कृतास्तेन प्रययोर्भेदु मे ह्यत ।

किमिदाभी नृपसेन चरित्रमसौ दूषितम् ॥

म० क० (३-२५)

यदि देव ने मेरे मन का अपहरण कर लिया था तो इस समय उस गुणधर में (हरिषता में) क्यों मेरे चरित्र को कलङ्कित कर दिया ।

निश्चय ही आदरस मन की कमी को तो सहन कर सकता है पर इसके कारण चरित्र के कलङ्क को सहन नहीं कर सकता । पर वह करे भी तो क्या, इसका तो एकमात्र कारण उसकी कंसायी है जिसे दूर करने में उसका बल नहीं भरता ।

ऐसे में आदरस को उसकी पत्नी कुता अब कष्ट की स्थिति में देखती है तो बुद्धि से वह विदुषक को रत्नवर्षी के हठ के बहाने रत्नवर्षी बाल में दे देती है जिसे वह बामती है कि उसके द्वारा वह आदरस के पास पहुँच जायेगी । होता भी यही है पर इसे देखकर वह कट्ट उठता है —

आत्मभाव्यधतत्रमा, एतौशब्देनानुकम्पितः ।

अप्यत पुत्रवो वारो या वारी सर्पतः पुमान् ॥ म० क० (३-२७)

दुर्भाव्य के मन नष्ट हो जाने पर मैं एतौ के मन से अनुकम्पित हुवा हूँ । अर्ध से पुत्रवो एतौ हो जाता है और अर्ध से ही एतौ पुत्र्य हो जाती है ।

निर्घन्ता से जो हीन भावना आदरस के हृदय में बर कर गई थी वह दूर नहीं होती । विदुषक के द्वारा बसठवेवा की कट्ट बालोचना भुज कर आदरस हरिषा के कारण ही कह उठता है ।

मैम करोति तुरवस्त्रचित्त प्रबन्धु,

प्राप्यव्याप्त्यन चरचारसु त्प्या बहुन्ति ।

सर्वत्र वाप्ति पुत्र्यस्य अजस्वनावा-

विष्णुस्ततो हृदयमेव पुत्रविधन्ति ॥ म० क० (५-८)

वह कहता है कि जब वीर्य भावने के लिए उत्सुक होता है किन्तु परिश्रम से बलघीब होने के कारण उसके पैर उठने के बल से नहीं चलते । मनुष्य की

पचन मनीषितियों को सर्वत्र जाती है किन्तु असमर्थ होने से पुनः वे मनीषितियों भी लिप्त होती हुई उसके हृदय में ही विद्यमान हो जाती है ।

यह फिर विदुषक से क्लृप्ता है कि हे मित्र —

यस्याधीस्तस्य सा काम्ना, वनहार्यो ह्यसौ वन । (स्ववतम्)

न मुणहार्यो ह्यसौ वन । (प्रकाशम)

अयमर्थे परित्यक्त्वा वनु रयनयेव छा मया ॥ मृ० क० (१-९)

जिसके पास वन है, उसको वसन्तसेना है क्योंकि यह बेस्वा वन से ही वस से की जा सकती है । (वन में) नहीं वह तो वन के बर्षीभूत हो सकती है (वसन्त) हम शोक तो वनहीन है, वस निश्चय ही वसन्तसेना मुझसे स्वयं परित्यजता है ।

इसी समय आश्चर्य अपने को असहाय अवस्था में चारों ओर देखकर कह उठता है —

कभी हि वसन्तानिद्वयवचना प्रयान्ति मे दूरतर वयस्या ।

परोक्षेपि वन्तु समसंस्थितस्य मित्रं न करिषद् विपमंस्थितस्य ॥

मृ० क० (१०-११)

ये मेरे मित्रजन भी वसन्त से मुझ तककर मुझसे दूर दूरकर जा रहे हैं । सम्पन्न अवस्था में पण्ये भी वन्तु हो जाते हैं किन्तु विपत्तिवस्त होने पर सुख भी वन्तुत्व छोड़ देते हैं ।

आश्चर्य विपत्ति का कारण भी निर्दिष्टता ही समझता है । उसका विवरण है कि प्रकार की कामी करतुँ, जिसके कारण आश्चर्य पर वसन्तसेना के भारने का मिथ्या आरोप लगाया गया है, इसीलिए उठक हुई कि प्रकार सम्पन्न है और राजा का सम्बन्धी है ।

निष्कर्ष

मुञ्जकटिक में अन्त में, विजय धर्म की ही दिखाई है, पर वह सही याँति स्पष्ट कर दिया है कि वन के कारण क्या-क्या दोष सम्भव नहीं हैं, वरन् सभी कुछ सम्भव हैं ।

क्यों न हो ? वही वास्तविक वर्ग के कुछ लोग ही बुधवार और भ्रष्टाचार को रोकने के स्थान पर उत्पीड (रिस्वत) लेकर बुधवारी और भ्रष्टाचारियों को बढ़ावा दे वही फिर इस पर बड़े शोक संभव है । समाज जब देखता है कि वन न बरु पर बस्याचारी, बन्तचारी, बुधवारी, भ्रष्टाचारी और रिस्वत-खोर मनमायी कर रहे हैं और सफ़्त हो रहे हैं तब वह बड़े अपने को इन बुधवारी से रोक सकता है । यह ही अन्तस्थ शोक है ।

उन्नुंसस एव निम्नवर्ग मे मद्यपान की अधिकता

मद्यपान न केवल स्वास्थ्य के लिए बलक है वरन् इसी वीर भी अनेक दुःखों से भी जाती है। मद्यपी में सुखियाव के बिना, बेचे बरती पर खोटा, बलास-गलाप बकना और निकटवा पायी जाती है।

बैकस्य बरणीपातमयबोपितबल्पमम् ।

समिपात्स्य चित्तानि मर्ते यर्वाणि बर्जेयन् ॥

बुधायित रत्नाकर, पृ० १०४ ।

मूषकटिक काक में मदिरापान की प्रथा की। मद्यपान पीने के स्थान मद्यपान, मद्यपानक मद्यपान पानगोष्ठी कहलाते थे। शकार में मद्यपान के कथन है :—

‘आवागम मन्मथविहस्य विम कतमुत्तरव सीस ते मोषस्सम्’^१

मू० क० (अष्टम अंक)

मद्यपान में बार्दी हुई रस्तमुत्तर के समान में तुम्हारे मद्यपान की मद्यपान करती है।

चतुर्थ अंक में श्री बसस्सेना के छोटे प्रकीर्ण में इतिहास करती पर मद्यपान के मद्यपान की मद्यपान करते हुए कहा है :—

‘अपकोर्षे अदि सकलवत्त व पमट्टि हासो पिबोमसि व अमबरम ससिबनार मद्रा । इमे चेटा, इमा चेटिकायो, इमे अपरे अमवीरिरे पुनदारविता मपुस्सा कर्मासहिरीपीड मदिरेई बर्नवा अमेरि जे मुक्का आसमा ताद पिबन्ति’^२

मू० क० (ब० अंक)

योग कटालपूर्वक देव रहे है, हैयी हो रही है, सी-सी करते हुए मद्यपान मद्यपान का पान हो रहा है। ये शोर है वीर ये हूते पुन-कलत्र एवं अत का मद्यपान कर रही माये हुए मनुष्य उक्त बर्न बाले मद्यपान को पी रहे है जिसे मद्यपानो ने पीकर छोड़ दिया है।

उपर्युक्त उल्लेख से शक्त होता है कि मद्यपान के समय मद्यपान होता वा वीर आनन्द के साथ इसकी मद्यपान की जाती थी बल्कि वी-वी की

१. आवागम मन्मथविहस्य विम कतमुत्तरव सीस ते मोषस्सम् (स० बनु०)

२. अपकोर्षते सकलवत्तम्, प्रवर्तते ह्यस, पीयते च मद्यपाने सहीरकारं मद्यपान । इमे चेटा, इमाचेटिका इमे अपरे अमवीरिरे पुनदारविता मपुस्सा. कर्मासहिरीपीडमदिरेईपिबन्ति। (स मनु०)

अग्नि से प्राप्त होता है। गर्मियों के दिनों में बर्फ में मिलाकर मरिच वी खायी जाये। वेस्वानुपायी व्यक्ति इस प्रकार बर्फ से पिछी मरिच को वेस्वाओं को भेंट करतीं ये और उनसे बर्षादिष्ट पैय की श्रय बाद में पीने में आनन्दानुभव करते ये।

बड़ी अष्टम प्रक्रीठ में वसन्तसेना की स्मृच्छकटिक माता की चर्चा के समय विद्वपक परिहास के साथ कहता है —

दासोए भीए । वरं ईरिती सुवपीच बठरो मुदो अजेव ।^१

मरी दासो की पुत्रि ! इस प्रकार विद्याल एव स्मृच्छकटिक के मर जाना ही अच्युत है। इस विचार की श्लोक द्वारा भी विद्वपक ने अभिव्यक्त किया है।

सीहु मुरासबनलिमा एवावत्पं पदाहि अलिमा ।

मह मरद एव अलिमा सीदि विवात्सहस्र अलिमा ।^२ मृ० क० (४-३०)

सीमु, मुरा और आसब इन तीन प्रकार के मद्यपान से बतवाकी वसन्तसेना की माता इस प्रकार स्मृच्छ हो गई है। यदि यहाँ इनकी मृत्यु हो जाय तो हुआएँ श्रुताओं का मोक्षोत्सव हो जाय।

मृच्छकटिक काल में मद्यपान पुरुष एव स्त्रीवर्ग में ही प्रचलित था। इत्यथ व्यवस्य है कि इसका प्रचार अत-त्रेमी और गणिकानुरक्त पुरुषों और वैराग्यों तक सीमित था। इसके पीनेवाले निम्नवर्ग के उन्मत्तल व्यक्ति होते थे। उन्मत्तवर्ग में कहीं इसकी चर्चा नहीं है। मरिच और इसके सेवन करने वालों को उत्कृष्टजीन सुभाव हेतु वृष्टि से बेसता था।

निष्कर्ष

सिंसे गद्योत्पी वस्तुओं का सेवन विरक्तल से प्रचलित है। मद्यपान उनमें से एक है। न केवल यह भारत में, वरन् अर्धन देसा जाता है। इसकी बुराईयां सब जानने हैं और नैतिक रूप में इसका निषेध भी किया जाता है, फिर भी यह बनता नहीं।

एक ओर यह आमोद-अमोद का साधन है तो दूसरी ओर मन की बराबर को दूर करने के लिए तथा अविज्ज कायंतमता बनाये रखने के लिए इसका

१. दास्याः पुत्रि । वरम् इदम् सुवपीच बठरो मुदएव । (म० अ००)

२. सीहुमुरासबनलिमा एवावत्पं पदाहि अलिमा ।

यदि भिक्वतेऽप्य माता अवति श्रुवात्सहस्रमाणा ।। (सं० अ००)

प्रयोग किया जाता है, ऐसी भी चारणा है। फिर मरणा जाता ही है और इसका प्रभाव शरीर और मस्तिष्क दोनों पर पड़ता स्वाभाविक है।

सामाजिक विपमताएँ

उस युग में सामाजिक भेदभाव बराबर बना हुआ था। चाहे सदा चाण्डाल से कोई वस्तु बातस्वरूप नहीं ग्रहण कर सकता था। चोट धमकर का दास है, पर उसे कोई स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। अपने स्वामी का अपराध जमाने से निषेध करने पर वह बन्दी बना दिया जाता है। उसने जब वसन्तधैरा की हत्या के सम्बन्ध में हत्ये का उद्घाटन किया तब भाष्यधो को भी विश्वास नहीं होता कि वह सत्यमापन करता होगा। दूतकीर्ण, मघपात, चास्यमान एवं सौर्यकर्म सामाजिक विपमताओं के स्वष्ट प्रतीक हैं।

निष्कर्ष

यद्यपि मूञ्जकटिकार का उद्देश्य नहीं रहा है कि मुराह्यो के नारपूद भी बन्धाइयों की भीर बाये बना जाय, पर मुराह्यो की सामने देखते हुए पण्डित का बहवा हुआ समान उस और है तब तक नहीं रोका जा सकता जब तक कि धागन की ओर से इन मुराह्यो पर प्रतिबन्ध न लगाया जाय। यही बात उस समय के समाज की रही जिससे ये मुराह्यो भी अपना स्वान ग्रहण कर सके।

अभ्याय विश्लेषण

मूञ्जकटिक अपने समय के हिन्दू समाज की स्थिति को व्यक्त करता है। कौसी बनोकी बात है कि सत्ताधिनो बार भी जाय न केवल भारत में बरन् विदेशो में भी इसी से मिस्र-बुद्धता समान दिखाई देता है। ऐसा समझा है कि राजनैतिक एवं नानिक परिस्थितियों से ही अपने-अपने समय की कुछ विशेषताएँ रही हैं।

सर्वको का रूप आबकक कुछ निम्न है पर उस समय मून्य से दास शरीरै जाने से अन्तर स्वाधियों का पुरा अधिकार या और एक दूसरे के प्रति सक्की सहानुभूति थी।

उस समय हरजबिबी भारत की समृद्ध बगरी थी। अकिरक हदुधि भी मुराह्यो का कारण बन जाती है जिसके फलस्वरूप वहाँ धुआ-जोपी जैसे बधन्यकार्य करने वालों की कमी नहीं थी। नगरिक विधाय वितासी, विनोदकीठ एवं मानुष के। अपने रूप-सौंदर्य को धनिकों के हाथ बेचने वाली बेध्याओं के साथ-साथ

उदात्त चरित्र एक कलाप्रवीण चित्रकारों में थी। बसन्तसैना उनमें से एक थी, जिसके अस्तित्व में प्रस्तुत प्रकारण में ओषध डाक दिया।

सूतसैना और मद्यपान से कोई वर्ष बफूटा न गया था। वे भी उस समाज के जीवन का बल बन चुका थे। जोरी काल में किसी को चिन्तक न थी। वह और बहुत पुराने के लिये दूर कोई इस काय में प्रवृत्त हो सकता था, पके ही वह उत्तम न बन सके। धार्मिक मद्यपि शास्त्र ही पर जोरी धैर्य बुद्धि करने से बड़ नहीं हिलकटा। उसका उद्देश्य जोरी द्वारा मन एक आनन्द प्राप्त करने मद्यपि को दासी पर से छुड़ाकर प्रेमसी बनाया था। जोरी ने अक्सर पर वह अपने पवित्र बनेऊ की हँसी होने में भी लक्ष्य नहीं करता।

ऐसे कृपित बाठावण में पादरत्न जैसे उदार बुद्ध और सचरित्र बसन्त सैना की कहानी गिरे हुए समाज की ऊपर उठाने की एक सुन्दर प्रेरिका है। यह तो निश्चित है कि इस आर्य पाषा के सहारे छोटी मोटी बुद्धियाँ दब जाती हैं, पर इससे भी निपट नहीं किया जा सकता क्योंकि शासन की ओर से बुद्ध, जोरी और मद्यपान आदि पर कोई प्रतिबन्ध न था।

मृच्छकटिक की विशिष्ट सामाजिक उपलब्धियाँ

बैज्ञानिक साहित्यिक शिक्षा का प्रचार

क्रिमी की देश और समाज के विकास के लिए शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। इसी से ज्ञान का विकास एवं सम्यक्ता और ससृष्टि का प्रसार होता है। मृच्छकटिक काल से पूर्व शिक्षा का पर्याप्त प्रचार था। इस समय तक वेद, बृहस्प, बर्मशास्त्र, स्मृतियाँ, राजास्य और महाभारत की जातकारी विद्यारूप से ही सुनी थी। मृच्छकटिक की कथावस्तु एक तात्कालिक राजनीतिक परिस्थितियों इस बात की ओरक है कि उस समय उच्चवर्ग में शिक्षा का पर्याप्त प्रचार था। राजा का सम्बन्धो बनार निरक्षर था। इसका कारण यह था कि वह उच्च वर्ग का न था। राजा की रखेरी के नाते वह राजा से सम्बन्धित था।

निम्नवर्ग में शिक्षा का अभाव था। ग्यायालय में कायस्थ के प्रति अच्छी धारणा नहीं थी। शिक्षा के भी दो ही रूप थे, या तो वह उच्चकोटि की थी या फिर उसका अभाव ही था। राजा एवं ग्यायाधीशों को ब्राह्मणों की भाँति उच्चशिक्षा का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था।

मृच्छकटिक काल शिक्षा की दृष्टिसे पर्याप्त विकसित था परन्तु शिक्षा उच्च वर्ग तक ही सीमित थी। भारत में गृहक का परिचय भी बहुतो साहित्यिक, वैज्ञानिक एवं कलात्मक योग्यताओं को विस्तारकर दिया गया है। ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय की पाठ्यविधि में सब प्रकार की शिक्षा सम्मिलित थी। निम्न रूपन इस बात का द्योतक है—

ऋषेभ सामवेद पण्डितमव कणा वैदिसीं दृष्टिपिशा
 तातवा धर्मप्रसादाह्वयपण्डितिरे वज्रुपी सोऽन्तम्य ।
 शाशान बीस्य पुत्र परमममुखदेवाऽधमेवेन केन्दवा
 स्यवा नामुः सप्रबन्धं वधवितसहैत सुदशेर्षमि प्रविष्टः ॥

श्रुतवेद, सामवेद, बद्रुचरित, मुत्स्यगोदारि, शोषठ कर्माओं, व्यापार-नियम तथा हस्तिपाठ्य आदि विद्याओं में निपुण तथा भगवान् पकर की कृपा से अज्ञान-कवी अक्षकार के गद्य होने से विश्व दृष्टि साम कर, इसी प्रकार अपने पुत्र को राज्य सिद्धांत पर व्यास कर महान् सज्जों के द्वारा अक्षमेघ यज्ञ की पूर्ति कर एक सौ बस दिन की कामु प्राप्त कर राजा दूधक अग्नि में प्रविष्ट ही बने ।

भारत की शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का प्रमुख स्थान था । प्रागे चलकर यह वैदिक शिक्षा का प्रमुख आधार बनो । विशेषतः बड़े धार्मिक शिक्षा पुरोहितों और ब्राह्मणों में प्रचलित थी । इस आधार पर वे छोटे धार्मिक कर्कर अपने की पौरोहित्यकार्य एवं यज्ञविधि में बस बसाते थे । धर्मशास्त्रों का अध्ययन न केवल सामान्यतः वैदिक धार्मिक कृत्यों के लिए आवश्यक था बल्कि सामाजिक जीवन को उसी सीधे में ढालकर बिताना भी था । धर्मशास्त्र सामाजिक विद्याओं की संहिता समझी जाती है । इनोलिए न्यायाधीशों को उसका ज्ञान होना परमावश्यक है जिसके आधार पर वे अग्निदोषों में धार्मिक विचार से निर्णय ले सकें । न्यायाधीशों को अपने नैदानिक निर्णय का प्रमाण देने के लिए यथोचित धर्मशास्त्र बचवा उसके विमर्शा का नाम उद्धृत करना पड़ता था । अतिकर्षिक ने आर्यत के सम्बन्ध में कहा भी है—

अथ हि पाठनी " विमर्शरसतं बहू ॥

श्रुतवेद का स्वाध्याय ही उक्त समय विधीयत होता ही था । सामवेद के मन्त्रों का भी सस्वर पाठ किया जाता था । गायन-बला एवं सपीठ-विज्ञान की उत्पत्ति इसी से बढायी गयी है ।

धर्मशास्त्र के स्वाध्याय एवं मन्त्र की प्रवृत्ति ही सम्य समार में थी, साथ ही साहित्यिक शिक्षा भी इस युग में करने से पूर्व थी । प्राचीन साहित्य, दर्शन, पुरुष, राजाज, महाभारत एवं कर्मों का अनुशोक्त यह युग में अविपुर्षक होता था ।

राजाज और महाभारत की शिक्षा का इतना प्रचार था कि सरासीन नाटकों की बचानस्तु के लोभ प्रायः वे ही धन्य होते थे । बल्किना पर निर्भर नानाओं एवं आकाशिकाओं को महत्व नहीं दिया जाता था ।

तत्कालीन तन्त्र की हस्तिविद्या और चौर्य विद्या का अच्छा ज्ञान था । गुरुक हस्तिविद्या का अच्छा विशेषज्ञ था । चौर्य शास्त्र भी पूर्ण विरचित ही

बुद्ध था। एम्पिरीकेर के कुछ विद्वैय सूत्र थे। कनकबक्ति, मात्कर गप्पी एव योपाधर्म्य इह शास्त्र के वारि विद्वान् माने जाते थे।

सूत्रक को बनेक विद्यायो का ज्ञान था। यह वैश्विकी कला में भी निपुण था। वैश्विकी के अन्तर्गत सभी कलित कलाएँ एव अमितय, नृत्य आदि हैं।

ऐसा लगता है कि उस समय अमितय विद्या के प्रतिष्ठान के लिए विविधत् शास्त्राएँ स्थापित थी। वैश्याओं के व्यवसाय के लिए समय ३ ऐसे प्रतिष्ठान का अधिक महत्त्व रहा हो।

निष्कर्ष

विद्या के विचार से आज के युग की प्राचीनकाल से तुलना करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सामान्यतः आज का समाज बहुकलित होठे हुए भी प्राचीन समयता और संस्कृति से विरक्त है। इसका एक मरम कारण यह है कि प्राचीनकाल के समाज की धर्म के प्रति भावना और ईश्वर के प्रति विश्वास था। वे पाप से दूर बचने और पुण्य प्राप्त में व्यस्त रहते थे। अपने कर्तव्य-भावन में लगी निपुण थी। धर्मशास्त्रों का स्वाध्याय एव मन्त्र उनके लिए केषक पढ़ने-पढ़ाने और सिखाने के लिए नहीं था। विद्या उस समय ज्ञान के लिए धन प्राप्त के लिए और बल का उपयोग धूम्रों की रक्षा के लिए था, पर आजकल तो समाज के अधिकांश व्यक्ति विद्या का उपयोग विवाह के लिए, पण का उपयोग वायुपूर्ण कार्यों के लिए और अतिरिक्त प्रयोग वृत्तों को कष्ट पहुँचाने के लिए करते हैं।^१

इस वरके हुए बुद्धिकोण से आज अत्यन्त लोच में बनी हुई विद्या भी समुचित लाभ नहीं पहुँचा रही है।

गणित के अध्ययन की शलक

धर्मशास्त्र, धार्मिक, सगोत्र कला और विज्ञान के अध्ययन से विद्याधुराणियों का बौद्धिक विकास बढ़ता गया। उच्च वर्षों में विशेषतः ब्राह्मण धर्म में गणित की ओर रुचि बढ़ती गयी। राजपुत्रों को भी इसकी शिक्षा हो जाती थी। सूत्रक की बलिष्ठ का पर्याप्त ज्ञान था।

१. विद्या विवाहाय धन मत्राय, कलित परेषा परिपोडनाय ।

सन्मस्य माधोरिपरीतमनन्धानाम दानाय च रक्षणाय ॥

सुमार्गठरत्नमाध्यायारम्, दुर्धननिन्वा (स्त्रो १५१)

मूच्छकटिककाल में ज्ञान्य पाठ्यविषयों के साथ दण्डित भी एक उपयोगी विषय था। नये विषय की ओर मुकाब होना स्वाभाविक है। अतः प्रतिभासाली नवयुवकों ने इस विषय का अल्प ज्ञान प्राप्त किया। ज्योतिष विद्या के विद्वानों की ही दण्डित का सहारा लेना ही पड़ता है। ज्योतिष के दो प्रकार हैं—एक दण्डित पर आधारित ज्योतिष और दूसरा फलित पर आधारित ज्योतिष। राजा मुद्रक को दण्डित में तो भी डूबी, ज्योतिष का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। इस ज्योतिष विद्या के द्वारा जीवन के मूल, मरिच्यु और वर्तमान का प्रत्यक्ष ज्ञान ही आता है।

ज्योतिष

ज्योतिष का विषय बड़ा दृष्टिकर है। प्रारम्भिक काल से ही सखुन जाति के रूप में इसकी मान्यता थी। यह फलित ज्योतिष का एक रूप है। फिर जैसे-जैसे मनुष्य का ज्ञान बढ़ता गया और विविध शास्त्रों का प्रचार होता गया जैसे-जैसे ज्योतिष का विज्ञान भी प्रकाश में आने लगा। दण्डित पर आधारित ज्योतिष का रूप निस्संदेह जीवन में अत्यन्त सही उठरता है। फलित पर आधारित ज्योतिष के लिए यदि किसी प्रतिभा की आवश्यकता है तो दण्डित पर आधारित ज्योतिष के लिए दण्डित के ज्ञान का अभाव अत्यन्त आवश्यक है। दण्डित के जितने भी रूप आज विद्यमान हैं जैसे अक्षयिणी, शीतल, रक्षा, त्रिभुवनेश्वरी, मन्मथेश्वरी आदि सभी प्राचीनकाल में अचलित थे। आज भी सीतावती और मूर्खे तिरुवाट ज्योतिष के प्राचीन महान् ग्रन्थ अक्षयिणी हैं जिन्होंने पारश्वर्य विद्वानों की आँखें खोले हैं। मनुष्य की मुख मुद्रा, हस्तरेखा और अक्षयिणी आदि विविध रूपों में इसका ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

हस्तविद्या, अक्षयिणी, विविध पत्नी, कीटाणु एव पुष्प-शोध का ज्ञान

सम्पत्ता और उत्कृष्टि का विज्ञान मारतवर्ष में वैदिक काल से ही आरम्भ हो गया था। जैसे-जैसे मनुष्य का ज्ञान बढ़ता गया वह अपने ज्ञान-साध की सभी वस्तुओं से परिचित होने का विज्ञान रहा। ज्ञान-दान की व्यवस्था से विज्ञान होने पर उसका सारा समय पशु, पत्नी, कीटाणु तथा वेद-शोधों, पुत्रों और कर्तव्यों के ज्ञान में बीतता था। यही धर्म, मनुष्य का वह ज्ञान परिपक्व हो गया कि जल में जीव हिसक है और जोन से अहितक। हिसक जीवों से बचकर वह जीव विज्ञान तथा और अहितक जीवों को अपना साथी बनाकर उनसे काम करने के प्रयत्न में लगे रहा। गाय, घोड़ा और हाथी ऐसे पशु रहे जिनसे

उमने अधिभ्रमिक काम उठया । दुव के लिए बाप, पुमने के लिए सोबा, और साब चीजन के लिए उसने हाथी को अपना प्रिय पशु समझा । धीरे-धीरे इन पशुओं को उसे विशेष मान्यता हो गयी । इन्हें उसने पालना आरम्भ कर दिया । पशुओं की प्रति नसियों एवं कीटाणुओं की भी जानकारी मनुष्य की बढ़ती गयी । अहिंसक पशुओं को उसने पशुओं की प्रति पाठा । इन सबके साथ अन्य जीवों का भी ज्ञान उसे नहीं प्रति हो गया और विशेषे कीटों से वह बचकर रहने लगा । कभी उनके बाटे जाने पर किञ्च वनस्पति से उसे काम होता इसका भी ज्ञान उसे बोड़े समय में हो गया । इस रूप में अपने बढ़ते हुए परिवार के साथ उसे इन सबकी भी जानकारी होती गयी । तीतर, तोता, मैना आदि पशुओं को उनकी विशेषताओं के कारण खोज पाठने लगे । वनस्पति विज्ञान के साथ विभिन्न पेड़-पौधों के फल-फूलों से भी मनुष्य की जानकारी बहुत अधिक बढ़ गयी । सुन्दर फल-फूलों को वह उपयोग में लाये से पूर्व अपने माणव्य देवी-देवताओं की भेंट करता था ।

पशु, पत्नी, कीटाणु एवं वनस्पति सम्बन्धी शक्तियों में वह सब की विशेष नहीं है । साहित्यिक कार्यात्मक विज्ञान के साथ मनुष्योत्तर जीवधारियों का ज्ञान एवं वनस्पति विज्ञान भी मूञ्जकटिककाल तक पर्याप्त रूप से बढ़ चुका था । मूञ्जकटिककाल में इन सबका विकसित रूप हमारे सामने है । साम्राज्य पुरुष मनुष्य-वशियों को अपने पक्षी मायप सेते थे । पशुपतिना के सुन्दर मदन को देखते हुए, दूसरे प्रगोष्ठ में जाऊँ पशुओं को देखकर मैत्रेय ने विविध पशुओं का बड़ा रोचक वर्णन किया है । 'ही ही मो, ह्यौ वि दुदिए पमोष्टे पशुवो बभोरजसमुद्रकपठमुपद्रा तेषाम्पिबिसाया बदा पयहगब-हरथ । अथ सम्भरो अवमानिरो विब मुलीयो दीह गोष्ठसदि वैरिहो । इवो ब अवगीन्द्रमुष्मस मस्यस विब महीवदि नीवा मेतस्य । इदो इदो अवराण बस्यार्थ केसुहम्पया करौवदि । अथ अवरो पाठञ्चरी विब शिखरौ ममुराए साहागिमी । (बन्धतोत्तमोक्तं च) इदो च कुरन्मुमदौस्मिस्त विब ह्यौ पविष्ठावीवति मेत्यपुरिवेहि' ।^१

मू० क० (प० ४०)

१. मतनर्ष भोः इहमपि द्वितीये प्रकल्पे पर्यस्तोपनीषद्वचसुचकवत्त सुपुण्या-सैकाम्यक्त विवाया बदा. प्रदहृत्तवतीवर्वा । अयमन्तयम्नानित इव कृत्नीयो दीर्घ नि शक्ति वैरिग । इतरचापनीतमुत्तव मन्तस्येव मधते पीवा मेपस्य । इत इतोऽनरेवामश्रता कल्पना श्रियते । अयमपरः पाठञ्चर

बहा । यहाँ भी दूसरे कण्ड में कुछ प्रबंध में रखी हुई पाठ मुझे के सामने है
पुष्ट तथा ठेक है लिप्य सीगवाले गाठी के बीच बने हुए हैं । इन दोनों में से
एक जैसा अपमानित कुसीन के समान दीर्घ निस्वास के रहा है । इस ओर मुड़
से बिरत घोड़ा के समान भेद की बर्तन मकी छाठी है । इपर अन्य दोनों को
केस रचना ही रही है । यह बाबर दूसरे ओर के समान मुद्राका में कठकर
बैठा हुआ है । (दूसरी ओर देखकर) इपर वो मात से बहते हुए ठेक से मिले
हुए पिम्ब को महावतवम हाथी को खिला रहे हैं ।

बाबरने बृहस्पते हस्ती बाबी बरवानु पृहते ।

हृदये बृहस्पते मारो यद्विह मास्ति पम्पठाम् ॥ मु० क० (१-५०)

हाथी बचनस्तम्भ में बाँधकर वज्र में किया जाता है । बोझ लघाम के ओर
से बघ में होता है और स्त्री हृदय से अनुरक्त होत पर पञ्जीबुत होती है । बरि
ऐसी बात नहीं है तो निरास होकर आदये ।

हस्तिविद्या की ओर इनमें प्रारम्भ में चर्चा है । मुख्य हस्तिविद्या में बडा रस
का ओर मुड़ में अनुभवों के हस्तिवों की बरा में करना जानता था ।

'शुम्भेव सामवेद बणितमव कडां वैदिकीं हस्तिविद्याम्' से तो मुख्य की
हस्तिविद्या का बोध होता ही है । इससे जानें उसके हस्तिमुद्र का भी परिचय
मिलता है—

समरम्पसनी प्रमादशून्य ककुब वेदनिवां उपोचनदध ।

परवारवबाहुमुद्रसुध विातपाक दिज एरुको बभूव ॥

मु० क० (१-५)

सबाम में मुधक, बाबरक, बंदिकों में श्रेष्ठ, तपोनिष्ठ तथा एगुमों के
हाथियों से मस्त मुद्र करने के अधिकायी मुख्य नाम के राजा हुए ।

हस्तिविद्या की सिद्धांत उस समय इतनी प्रचलित हो गयी थी कि सेवक कर्त-
पूरक तक उम्मत हाथी को बघ में करना जानता था । हस्तिपाकन उन समय
बुद्धों की समृद्धि का प्रतीक था । जाब भी ऐसा ही समझा जाता है पर बहु
मसीनों का मुन है, अत आदबक के जनाहनों के पाठ हाथी के स्थान पर शारै
विखाई देती है । हाथियों के उस समय विभिन्न नाम रखे जाते थे । अतसेवा
के हाथों का नाम मुष्टमोहक था ।

इन बुद्धको मन्पुरावां धाबाभूव । (अप्यतोऽनलोभव) इतवच कूरम्पुठतैम-
विप्र पिम्ब हस्ती प्रतिप्राहते भाजपुरवै । (स० अनु०)

इतिविद्या और व्यवस्था के विविध पक्षों के ज्ञान के अतिरिक्त बनेक पक्षों का भी ज्ञान उस समय पर्याप्त था। वर्तमान के अन्तम प्रकोष्ठ के अन्त में दिव्यरु ने विविध पक्षों का वर्णन करते हुए कहा है-

ही ही श्री । इतो वि सप्तमे प्रकोष्ठे सुकितिविह्ववाटी सुकितियन्नाज्वन्योन्य पुम्ननपरपि सुकमनुमवन्ति पारावतमिपुनाति दक्षिणतपूर्वोत्तरो ब्रह्म-
नदप सुक पठति पञ्चरसु । इव अत्रा समानता तन्मन्मरेव पृहदासी
विकिं कुकुपयते मदनसारिका । अनेककसरसास्वाय प्रहृष्टकप्य कुम्-
वासी कूडति पापुष्टा । अपमन्विता चापवन्तेपु नञ्चपरम्परा । योष्यन्ते
नापका माकाप्यन्ते कपिपञ्चा प्रेयन्ते पञ्चरकोता । इतस्ततो विविध-
नविचिन्तित प्रथा सहर्यं नृत्वम् रविकिरणसंघर्षं पमोहकोर्षविधुवतीव
प्रताद गृह्मपुर । (अन्यतोऽप्रकोष्य) इव विबोडुवाइव अन्ववादा- पद्गाति
विनायापानीव कामिनीना पश्चात्परिभ्रमन्ति राबहृष्टमिपुनाति । एतेऽपरे
दुग्महृष्टमन्त्र इतस्तत सञ्चरन्ति मूहसारता । आरभ्यं श्री , प्रसारण कृत
वर्गिका नामापक्षिसुहृ- यत्सत्त सन्तु अन्वमवममिव मे अधिकापुह
प्रतिभासते ।

(४० अनु०)

दूसरी मीना अधिक कुर कुर ध्वज कर रही है। अबेक प्रहार के कर्मों का स्वाद लेने से सुन्दर वृष्ट्याली कुटुम्बों के समान, कोयल कूक रही है। खूंटियों पर विचरने की पवित्रता लटक रही है। लानक पत्ती लट रही है। विचरने में स्थिर सीतर बोल रहा है। विचरने में पाले हुए कर्मतर निर्दिष्ट स्थान पर भेजे जा रहे हैं। विविध मणियों से विभिन्न की मूर्ति से गृहमयूर सत्वं इषर-उषर नाचते हुए सूर्य की किरणों से जलते हुए प्रासाद से वाग्म करने के लिए अपने परों से हवा कर रहे हैं। (दूसरी ओर बैठकर) एकत्र स्थित चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल राजहंसों के जोड़े, कामिनीयों से मद्यति की शिक्षा ग्रहण करते हुए बन्दी के पीछे घूम रहे हैं। ये दूसरे गृहमारुत वृद्धश्रेष्ठों के समान इषर उषर घूम रहे हैं। आश्चर्य है बरे ! बेस्वा बसन्तसेना से अनेक पदियों द्वारा हम कल को व्याप्त कर दिया है। वास्तव में यह देवबानुह मुझे नन्दन बल के समान घोमित लग रहा है।

विविध पशु-पक्षियों की जानकारी के साथ कीटाणुओं की चर्चा भी उपमाओं के रूप में भवया सामान्यतः यहाँ देसी जाती है। बसन्तसेना द्वारा चरइत के प्रति प्रेम-अभिप्यक्ति पर मदनिका कहती है—

'मग्गए कि हीचकुमुम सहमारपादव महबरोबो जग मेवन्ति ।'^१

मू० क० (वि० ब०)

आर्ये ! क्या मन्तरियों से रहित आमगृह का सेवन भ्रमरियां करती है ?

यहाँ मन्तरी से रहित आमगृह की उपमा निर्बल चाररत से और मनुकरी की उपमा बसन्तसेना से दी गयी है।

मूत्रकटिक के चतुर्थ अंक में विविध पशु-पक्षियों के वर्णन के साथ कृत्रिम पुष्प-पीसो का भी वर्णन है। बसन्तसेना का प्रासाद नन्दन बल की मूर्ति छटा दिखाता है। कुबेर मदन बैसा बसन्तसेना का पर बैठकर विदूषक जब पेटी से बसन्तसेना के विषय में पूछता है तो बेटी कहती है —

'अग्ग । एता क्कन्दवाकिवाए बिट्टिदि । ता पविठ्ठु अग्गो' ।^२

आर्ये ! यह बसन्तसेना उद्यान में बैठी हुई है। आप उद्यान में प्रवेश करें।

मू० क० (प० अंक)

१ आर्ये, कि हानकुमुम सहमारपादव मनुक्यं पुन मेवन्ते ॥ (उ० अनु०)

२ आर्ये ! एता वृत्र वाटिकायां तिष्ठति । तन् प्रविशन्तु आर्ये ।

ज्याब क्व रोचक वर्णन वृत्तीय अक के 'समृद्धिप्रक्रिया के प्रतीक' खीरक के अन्तर्गत किया जा चुका है ।

खीर बेचिये—

एगो बसोब बुचो नबनिगदय-कुसुम-नस्तबो भादि ।

सुभबोब्य समरमन्म पबलोद्विब पकषाचिन्मको ॥^१ म० क० (४ १७)

खीर भी सुदुर्लभ में, सपरा रण के पक से लिप्त योद्धा के समाप्त तबीन उत्तरत पुष्प एवं किस्लम्य से मुक्त यह अशोक कुसु सुशोभित हो रहा है ।

पेठ बीबो के इति पन बनिसचि इस नमद इतनी बही बही वी कि बसन्त-सेना मैत्रेय से चादरत को सपमा उत्तम बृक्ष से देन हुए कइती है—

गुणप्रबाक विम्यप्रयाक विसम्ममूक महनीयपुष्पम् ।

व ताम्बुल स्वपुनी कलावच सुहृद विहङ्गा सुखमाप्तमिति ॥

म० क० (४, २२)

उदारता भादि पुन निरके पन्थ है, ममता ही वित्तम शाकारे है, निष्ठास ही बज है एव वीर्य स्त्री पुष्प है, ऐसे परस्परकार भादि अपने गुणो से ही जो मृत्युवात हो रहा है उस चादरत कभी इतम बृक्ष पर निर कनी पत्नी क्या अब भी सुखपूर्वक निवास करते है ।

मूककटिककार इच्छितरेयी है । उसमे अपनी कृति की विविध बचसरो पर पद्म, पद्मी, कोडानु एवं पुष्प, पीतों के ज्ञान से खीर भी रोचक बना दिया है ।

निष्कर्ष

मूककटिक में वसतसेना के महल के प्रकोष्ठो में विविध पद्म-पत्नी, खीरामु एवं पुष्प-पीतों का सुन्दर वर्णन है । मानव का सदैव इनसे कपाव रहा है । इनसे सम्बन्धित अनेक कर्तार है । बी की महत्ता सभी स्वीकार करती है । पत्नी अप्प्योपिता खीर बरकता से उसे हिन्दू धर्म में पूजा के योग्य माना गया है ।

हरिष के सुन्दर खीर बमकीसे धर्म न जगत्जननी ज्ञानधे क्व भी योहित कर दिया, तिर बटामु की सद्धानुमति भी सयता का प्रतीक है । श्रेयतासो न पद्मों को अपना बाहन बनाकर उनसे अपना सार्थित्य प्रकट किया है । ज्ञान की

१. एवीजोडपुनी नबनिगदय कुसुमपस्तबोभादि ।

सुमट इव समरमन्मे बनलोद्विब पद्मपचिक ॥

(म० ब०)

अभिप्रायों से भी उत्स्वस्तो रूप वाहन हुए हैं। कविप्रसिद्धि के अनुसार हठ का भीरु-धीर विवेक कवियों के उपमान का विषय बना हुआ है।

शौ, ठिह, हस्ती की चर्चा संस्कृत कवियों ने शायद अपने काव्यों में की है। पक्षियों का भी वर्णन हमारे साहित्य में उपलब्ध है। तोता, सारिका और कोयल अपने-अपने मुकों के लिए प्रसिद्ध हैं। अपनी चार्चों की मधुरता और अनुकरण चन्द्रि के कारण तोता आज भी पाठ्य पक्षी बना हुआ है। मध्यम मिय के प्रकाश का परिचय देते हुए यह संकेत किया गया था—

स्वत प्रमाप वरत प्रमाप

कीर्त्तयता यत्र विरोधिरन्ति ।

इारस्वनीना तरसन्निवृत्ता,

जानोहि तन्मन्त्रमिच्छाम ॥ (प्रसीची)

जहाँ बहुतों का हाथ पीते सब ध्वनि कर रहे हों उसी की मध्यम मिथ का पर समझना चाहिए। सारिका का स्वर-माधुर्य आकर्षक होने से वह सभी का प्रिय पक्षी है। कोयल को परमूठ कहा जाता है क्योंकि वह अपने बच्चों को कोए से पसवाती है।

मुञ्चकटिक में परिनिश्चित पशु-पक्षियों, कीटाणुओं तथा पेड़-पौधा का वर्णन विविध रूपों में है—

१. पशु—मत्स्य, शार्डी, बलीवर्द, हनुव (मेडिया), बर्दय, वृष्टि (याव), हस्ती, वनट्रिप, फिखोरी (घोड़ी), बुककुर, पत्तर्क, (कृत्ता), पुनक, पचा, बाबाईर, मीप, मीन, मृग, मुपक, सैरिम, महिय, धासाङ्ग, पच, शृगाल, कोस (सियार), बूकर, सिह, बुरु तथा व्याघ्र ।

२. पक्षी—बक, मलाक, बलोर, बरजाक, चाल, कल, वनित्रक, कपोत, कौलिङ, परमूठ, बरपुष्टर, लावक, मदनशारिका, बभ्रु, शिखरी, शारानव, पतनपति (गूठ), राबहुव, शारत, मुक, श्येन तथा बायत ।

३. कीड़े बकीड़े—अग्निकीट, मृद, अहि, मृगव, बुद्धमताक, पन्नय तथा सर्प ।

४. वृक्ष तथा वृक्ष—बम्बक, बघोक, पुठ, महकार, चाठी, कंटडी, करबीर, फिगुक, नखिनी, पच, नीप, पलाक, पनस, रत्नपंचा, शानो और तामाक ।^१

भवन निर्माण-विधि एवं वास्तुकला

संस्कृत कर्मों में भवन-निर्माण एवं वास्तुकला के कर्मों का समावेश था है। मूच्छकटिक इसका अपवाद है। इसमें न केवल भवन-निर्माण एवं वास्तुकला की चर्चा है बल्कि सतत सम्बन्ध विवेचन भी है। वास्तव की स्वभावतः इस ओर ध्यान था। उसने मन्दिर, कुटी, विभाति भवन, हीनों, कुर्छे बादि का निर्माण करवाया। वृत्तिकता भी इस समय उत्पत्ति पर थी। मन्दिरों में एक से एक देवताओं की सुन्दर प्रतिमाएँ थी। भवनों के बनवाने में इस बात का विचार रखा जाता था कि वे मजबूत, सुंदर हुए और हवादार हों। उनके बाये लक्ष्य बना सहज ही।

वास्तव और पसन्दसेना के प्रासाद तत्कालीन भवन-निर्माण के सुन्दर प्रतीक हैं। द्वितीय प्रकार के निर्मित भवनों की पश्चिम में प्रासाद के रखवाने पर एक बासाय प्रवेशिका (Gate) होती थी जिस पर बैठकर राजा ने छाँसी के लिए से जाते हुए वास्तव और उसके पीछे जाती हुई पीठ को देखा था। वास्तव का भवन बहुत हवादार और खुला हुआ प्रतीत होता है। वह ईंटों की तुल्य दीवार से सुरक्षित था। उसके एक ओर का दरवाजा पलटार (Side door) के नाम से प्रसिद्ध था और दूसरी ओर कुलसपुराय था। इसके और मुख्य भवन के बीच लुका हुआ मैदान था। यहाँ एक सुन्दर प्रासाद (Pleasure house) था जिसमें बैठिका थी। इसमें नृत्योँ का आयोजन था। मुख्य भवन में प्रवेश करते ही चतुर्घाता (Quadrangle) में जा जाते थे। मकान प्ये थोवारें पत्थी ईंटों की बनी थी, पर एक स्थान पर भवन की दीवार निरंतर इस ओर सूर्य का अर्ध्ण होने से कमजोर हो गयी थी। ऐसे स्थान पर वृद्धे दीवार में सुराज बना शिरो से। वास्तव के कुर्मान्ण से निर्धनता के कारण भवन की मरम्मत सब बंद ही गयी थी उसकी दुर्दशा हो गयी। धर्मिक का स्थान दरवाजे के पुराने पत्थों की ओर गया है। मुख्य द्वार के बड़े पत्थों अपने स्थानों से नीलों के न होने से मटक रहे हैं। किशानों में अर्णता भी गयी है।

धर्मिक की कृपा से भवन-मुक्त धार्मिक मटकता हुआ जब धारै बहता है तो वास्तव के घर में प्रवेश करने से पूर्व कहता है—

इदं गृहं विलम्बदत्तवशो विभीषंसंविश्व मद्गृहपाट ।

शुभ कुटुम्बी व्यसनामिभूता रथा प्रपन्नो मम गुरुमाम्य ॥ मु० क० (१-१)

यह घर गृह्य हुआ है। इसके बड़े किशानों में अर्णता गयी गयी है। दरार कुटी हुई है। सबकुछ ही वह बेरे बैठे मंदवाप्य वाजा कुटुम्बी बहताकण्ट

रक्षा को प्राप्त हो गया है। चारदस ने बसतसेना के समान स्वयं स्वीकार दिया है कि उड़ना मदन कीर्ण-कीर्ण हो रहा है।

स्तम्भेषु प्रबलितवेदिविषयान्त, शीर्षत्वात्कथमपि वायंते विनागम्।

एषा च स्फुटितमुपाह्वानुशेषात्सन्निष्ठा समिन्मरेव विवमिति ॥

मु० क० (५-१०)

मृच्छकटिक में मदन निर्माप का सबसे सुन्दर उदाहरण बसतसेना का प्रासाद है। यह वास्तव में विनासिता एक समृद्धिगणिता का प्रतीक है। उसमें एक बाल्कनी (Balcony) भी जो राजपथ की ओर खुलती थी, वहाँ से बसतसेना ने हाथी की घटना के पश्चात् चारदस का बेला था। तात्कालिक मदनो में बड़ी पत्त लाला लबका एक उद्यान का होना लक्ष्य समझा जाता था। कही-कही उसमें लवायतन भी होता था। बसतसेना का प्रासाद ऐसा ही था। उसका व्यवसा एक निजी कला था जो प्रासाद की पहली मंजिल पर था। समरी छिन्नकियाँ बाय और मन्दिर की ओर खुलती थी। समयकथ सबसे पुबन्ध थे। मैनेय के वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्रासाद बहुत बड़ा था और उसमें भाठ कक्ष थे। लक्षका प्रमुख द्वार अनुपाकार था जो स्वर्णों पर आधारित था। मगल-सूचक नाम की हरी पत्तियों से एक हाथीदाँत से यह सुश्रित रूखा था। पीठों और बाल से पुष मलकलम रूते थे और मस्तिष्का पुष्पहारों से सुशोभित थे। होना और लटकने हुए पुष्पहार इन्द्र के हाथों ऐरावत की छितती हुई सूर्य के लक्षण से सुन्दर लगते थे। उनमें बेसी योजनीय पताकारें हवा में लहराती हुई स्वागत का प्रतीक थी। दरवाजे की चौखटों मोन की बनी हुई थी जिनमें हीरे लगे हुए थे। उनके सामन का माय माण्ड-भुवरा या त्रिनवर शानी का छिन्नकाव बरके लीप दिया जाता था। विभिन्न प्रकार के पीपे, पुषन्ध आकार में, चरती में लयाये जात थे जिनके सुशोभित पुष्प प्रतिचित्र देवपुत्रा के नाम में जाते थे। बसतसेना के मदन का बाहो प्ररोध लक्ष्मण्यपी कला के प्रतीक है। पहले प्ररोध के छोटे मडना की घेरी चन्द्रमा, दाँत और नमकनाक के सुन्दर चान्दि-बासी थी। मुषापूर्ण से मुक्त रत्नप्रतिष्ठ मुनहरी छीत्रियों वाले रम्य प्रासाद बनने कातावन कपी मुक्त चन्द्र म प्राणो उग्रशयिनी को निहार रहे थे। दूसरे प्ररोध में वगुजाला भी जिसमें विविध वगु पक्षी थे। तीसरे प्ररोध में कुलीन पुत्रों के बैठने के स्थान जातन थे। जहाँ पुत्रा जेम्ने की चोकी मयि निहित मैना के आकार की मोटों से मुक्त थी और जहाँ बेस्यारें एक छिट कार्यतत्पर दिव्यार्ई देखे थे। चतुर्थ प्ररोध सत्रीतजाला के रूप में था, जहाँ विविध वाद्यों की ध्वनि

दूबती रहती थी। पाँचवाँ प्रकोष्ठ मोहन मदन के रूप में था जहाँ विविध व्यवहारों की सुविधा आह्लासिक करती रहती थी। छठा प्रकोष्ठ इन्द्रधनुष की भाँति रंग-बिरंगी मणियों एवं झीरे-बवाहुरात से लगेपना रहा था, जहाँ बिल्लकारों का सुमुदाय रतनबिलोवो वर विचार करते हुए विविध सामुपनों के निर्माण में समन था। मंदिराध्य की यही था। चेट-बेटियाँ एवं अन्य ध्वनि यहाँ मंदिरावन करते थे। सातवाँ प्रकोष्ठ पतिव्याता के रूप में था। यहाँ विविध पत्नी अपने मनोरजन से सभी को आनवित करते थे। इसे देखकर विदुषक ने कहा था कि यह तो मुझे अन्दरवत सा कम रहा है। आठवाँ प्रकोष्ठ वसुदेवता के भाई बीर माता के रहने का स्थान था। सुगन्धित रंगबिरंगी गुणों से युक्त वसुदेवता की गुणवटिका थी, जो स्वभावतः सभी को सुख वर रही थी। इस समुद्र बवन के तीरेय को देखकर विदुषक ने कहा था कि तबतुप मीठे प्रकोष्ठ में एकत्र स्थित त्रैलोक्य को देख छिप्य है। उते यहँ भाँति हो रही थी कि वह सब में विद्यावर है अथवा कुबेर के मवन का एक लण्ड है।

निष्कर्ष

संस्कृत में कलुष से नाटक, काव्य एवं वच इत्येव है पर उनमें मूच्छकटिक की भाँति भवनों का विच्छेद वर्णन नहीं है। सम्भवा के विकास के साप-साय बनता का स्थान आवासपूर्वों की सुन्दर वधाने की बीर भी गया पर संस्कृत के सेलक मोर कवियों ने अपनी कृतियों में आकृतिता मुख्य स्थानों का ही वर्णन किया है। ऐसीक आवास-वृह के वर्णन में जो संस्कृता दस विधा में मूच्छकटिककार ने आण्ड की है वह सब में लच्छनीय है। साथ में यह भी सोचने की बात है कि क्या वेदना का वर इच्छा सुन्दर है तब वनिक बर्ष का अस्तित्व सुन्दर होना।

अब भी बड़े बड़े विद्याल मन्त्र समनप छत समन जैसे ही है।

सगीत याद्य-वेद्य

साप्ताहिक जीवन में सगीत का प्रमुख स्थान है। मनोरजन के लिए इनका महत्व विविधकाठ से ही पठा था रहा है। वेदों में सामवेद सगीत के लिए प्रधान है। साहित्य और सगीत के समन्वय की ओर विद्वानों की बलि प्रारम से ही रही है। आज समाज में मनोरजन का सबसे बड़ा माधन समाजिन (मिमेमा) है। कबीर के विद्या बहू भी निष्ठाग है। अतः सगीत मनोरजन-प्रधान है। यह एक सर्वसम्मत विषय है। मूच्छकटिक में इसका समुचित वर्णन है। मूच्छकटिक के समय कलाओं का पर्याप्त विकास हो चुका था। नाट-

तमुन्नत ब्रजा में थी। समीत मनोरजन का सर्वोत्तम साधन नामा बाजा था। बसंतसेना-विषयक बिट और शकार के संभाषण में बिट की बसंतसेना के प्रति उक्ति समीत की बातबारी का प्रतीक है—

प्रहरधि मयविस्मया किमपं प्रचलितदृष्टसमृष्टगम्भपातरां ।

विटजननस्रवट्टितेव बीजा बलवरवसितभीतशारणीव ॥

मू० क० (१-२४)

बिट लोगों के लक्ष से अपित वीजा के त्याग भागने के कारण हिलते हुए मूकशब्दों के बार-बार स्पर्श से अपित कपोलों वाली तुम बादल के बर्बन से मयभीत शारणी की भाँति मयातुर होकर क्यों मायो जा रही हो ?

बाद के साथ मृत्यु की भी चर्चा है। बीजे भी बसंतसेना बधिका थी और बधिकाओं का शपोठ और नृत्य रुचिकर विषय है।

बिट ने बसंतसेना से कहा है—

कि त्व मयेन परिवर्तितनोक्तुमायां

नृत्यप्रयोगविशदी बरणी लिपन्ती ।

सद्रिग्नचपसकटास्रविसृष्ट-दृष्टि-

स्यैवानुसारचक्रिता हरिणीव यामि ॥ मू० क० (१-१७)

मय से मुकुमारता को त्याग देने वाली, नृत्य के प्रयोग से दृष्ट बरनों को शीघ्रता से रक्तता हुई, व्याकुल एवं बकल बटाओं से दुर्विपाठ करती हुई, शिकारी के पीला करने से चक्रित हुई तुम हरिणी के समान क्यों जा रही हो ?

समीत-विषयक स्वर-नैपुण्य की चर्चा करते हुए बिट बसंतसेना के सबब में कहता है—

इय एवप्रवेद्येन कलायां शोभमानया ।

ब्रजभाषणित्तत्वेन स्वरनैपुण्यमापिता ॥ मू० क० (१-४२)

इस बसंतसेना ने नाट्यशास्त्र में प्रवेद्य तथा कलाओं की मिला के द्वारा कुशलों की धमने में कुशल हो जाने के कारण स्वर-परिवर्तन में निपुणता प्राप्त कर ली है।

समीत के सम्बन्ध में बसंतसेना की चर्चा के साथ वृत्तों में भी यह बधिरबिध कम ल थी। बादरत रीतिरु के जाने हुए सुन्दर शपोठ के सम्बन्ध में बिदूषक से कहता है—

रक्तं च नाम मधुरं च समं स्फुटं च
बाल्याम्बितं च कनिष्ठं च मनोहरं च ।

किंवा प्रसस्तनपनीर्षुमिर्मधुर्षु-
रन्तश्चिन्ना यदि चनेत्रितितेति मन्वे ॥ मू० क० (३-४)

रैमिल का बहु पीत किलना धनुरापबर्क, मधुर, सुसदृश, स्पष्ट, भावमय, शोभन और पित्तास्फंका या। हमारे अधिक प्रयत्न करने से क्या लाभ? यदि रैमिल कहीं से छिपकर पाठा हो बरस्य अनुमान किमा बाजा कि कोई रपनी वा रही है।

इतना ही नहीं और भी-

रं तस्य स्वरतंकरा मुद्रितं स्थितं च ठन्वीस्वत,

वर्षाणामरि मृच्छंशान्तरमत्तं तार विरामे मुद्रुम् ।

हेलाहंमिष्टं पुनश्च कश्चित् रापत्रिरन्वारितं

यस्तस्य विरतेऽपि पीतसमये पञ्जामि मृद्वभिद ॥ मू० क० (३-५)

यद्यपि भावत समाप्त हो चुका है फिर भी उसको बहु स्वर परंपर, शोभन वाक्य, सुन्दर बीमा की ध्वनि, वर्षों के बायोस्यारोह के समय उबनी उच्चता तथा बरबात के समय उबनी शोभता, ठीलापुर्क पाती का संयमन तथा पुनः मनोहर राम का बोधो बार बरबारत इस समय तक ठीक हमारे हृदय में दूँक रहा है।

बहलसेना-विषयक बातोंबाप में वेद वादरत बनती बोधा और संपीड के विषय में कहूँगा है—

रंथं वायु वातन्धिर् सुदृग् बीमं वायु वाततन्धिं वरन्धिम् ।

बीमं वायु र्दह्मन्वापुर्णं के मे दामे तुम्बुम् पाचरे वा ॥^१

मू० क० (५-११)

यै छात्र छेद बाठी बांधुपी से मधुर ध्वनि निकलता है, छात्र वारों से बबने वाली बोधा को बबाता है तथा यन्त्र के तुष्य भाता पाठा है। हमारे मान के सामने प्रतिज्ञ पम्बरं तुम्बुक तथा देवपि नारद भी तुष्य है।

बोधा की प्रशंसा में वादरत ने भी किजना सुन्दर कहा है :-

१. वर्यं वायुमामि वातन्धिं सुदृग् बीमा वरपामि वातन्धिं वरन्धिम् ।

बीमं वायुमामि सर्वमस्यानुर्णं की मे दामे तुम्बुकरिरो वा ॥ (सं० अनु०)

भीमा हि नापाहमुदोन्मिर्त्तं रत्नम् । सुतः ॥ ॥

उन्मिर्त्तस्य हृद्यमानुमुषा वयस्या

सवेतने चिरयति प्रवरो विनोदः ।

वस्त्वानना त्रिपत्तमा चिरानुताया

रत्नस्य तापपरिवृद्धिर्त्त इमोद ॥ मू० क० (१-१)

यह मनोरञ्जक भीमा उन्मिर्त्त मनुष्य के लिये मनोनुकूल मित्र है । निर्विष्ट स्वाद पर गुप्त प्रेमों के माने में दिक्कत होने पर मन बहुवार का शासन है । विनोद से उद्दिग्धजन को धर्म स्थिति के लिए प्रेरणी तुम्हें है और अनुप्राणियों में प्रेम बढ़ाने के लिए यह सुखकर वस्तु है ।

सभीषण धीरे वाद्य उक्त समय समाप्त में मनोरञ्जक का विषय अवरण का पर कथाकारों की स्थिति अच्छी न थी । भारतम् में नृपचार की विद्या से यह स्पष्ट है—

नाम्नि शिष्य प्रातःपञ्चोऽस्माकं मूढे ।

प्रातः काल हमारे घर में बल्पाह्वर तक नहीं है । सचर अविनाश चारदत्त के प्रवर्त की हीवार में मेष कथाने के पक्षान् मन न पाकर अन्दर मुदय, बीना अर्धिर बेचकर कहता है—

(समन्तादवसोषण) ममे, नच मूर्खे । अयं दुर्दुः । अयं पयसः । इयमहि बीजा । एते वषा । अमी पुस्तका । कर्त्तं नात्र्याचार्यस्य बृहदिदम् । अयथा मयनप्रययात्प्रविष्टोऽस्मि । तन्नि परमार्थदीप्तोऽस्मि, उक्त राजमयाचरी-वयादा भूमिष्य इत्य आरयति ।—मू० क० (सू० अ०)

(चारों ओर देखकर) अरे यह मुश्किल है, यह खुर है, यह पगल है, यह बीजा है, ये बीमारियाँ हैं और ये पुस्तकें हैं अथवा अवन के विन्यास से प्रविष्ट हुआ है ती क्या वास्तव में यह निपट है ? अथवा राजा का और के अर्थ से इत्य पृथ्वी में पाइकर रत्नता है ।

वसन्तसेना के अवन के अनुर्ष इकोष्ट को देखकर विदूषक कहता है :—

(प्रविरयावसोषण च) ही ही जो हरो वि अउरडे पओरडे पुवतिर-ताहिदा अल्पय विअ यमोर अरति मुदया, हीनपुष्पाभी विअ पञ्जाओ तारमाओ निवदमि संसगात्रा महुअरविअ विअमदुर अउरि र्भनी । इअ अरग ईनाणअअनुविदतामिओ विअ अवारोविदा अरदहायमरिअ अरिअरि

वीणा । हमानो कवराओ कुमुमरसमताओ विह बहुबरिओ बदिमदुर पवीबाओ यमिभ्रादारिबाओ बन्विअन्ति, बन्दिम पठिअन्ति, ससिपारओ । ओवन्विवा वचकलेतु वार गैन्दिन्ति सन्निअणपीओ ।^१—म० क० (प० अंक)

हरे वाचस्पत्य ! यहाँ चतुर्थ प्रकोष्ठ में श्री युवतियों के हाथ से बजाये गये मुरंग इत्यादी के समान गम्भीर शब्द कर रही हैं । पुष्पघोष होने पर बाकाय से बिरसे बस्ते शारो के समान मजीर फिर रहे हैं । अंगर गुनव की भाँति बौधुरी मधुरता से बजायी जा रही है । मन्व ली की ईर्ष्या के कारण प्रभव कृपित कामिनी के समान पोप में रखी हुई बीजा तब के स्वर्ण से बजाई जा रही है । वृद्धों से पुष्परस से मठबस्त्री ज्ञानरिषो की भाँति अति मधुर गाती हुई बेस्वा पुष्पिणी बजाई जा रही है । शृंगाररसुक्त अनिलव जगहें सिखाये जा रहे हैं । बिरबिरियों में अटकते हुए बानी के बड़े बामु ग्रहण कर रहे हैं ।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति में नृत्य, उपीठ और नाच, कला के रूप में पुष्पों एवं महिषाओ शैलों के लिए बलि का विषय था । परन्तु वर्तमान काल में तो नृत्य और संगीत महिषाओ के लिए और नाच नृत्यों के लिए सीमित हो गया है । पहले प्रस श्रद्धा का बहुत सम्मान था पर मुयलकाल में विशेषतः औरपजेन के सम्म में इसे सम्मान नहीं मिला । जाने चतकर कुछ सामान्य वर्ग के द्वारा भी पहचान यह कला खाने-पाने का विषय बन गयो । प्राचीन समाज में उन्मत्तर्ष विरि प्रकार इसे अपमाता या बंसा नाच के समाज में नहीं है । यह तो सर्वमान्य है कि प्राचीन काल में नृत्य, उपीठ और पाप विद्वानों की बलि के विषय थे । नाच की देवबन्धियों में कहीं-कहीं प्राय इसका बसोबस देखने को मिलता है ।

लेखनकला, चित्रकला, शिल्प एवं काम कला

संस्कृत की यह कविता "सहिरवसमीतकलाविहीनः सासात्वसु पुष्पविपान-

- १ वाचस्पत्य ओ, इहानि चतुर्थे प्रकोष्ठे युवतिकरताविता अठपठ इव गम्भीर तदन्ति मुदवा, शोषपुष्पा इव वननातारकानिपठन्ति कास्यताका, मधुकरविषयविष मधुर वाचते बह । इयवपरेभ्योप्रभवकृपितकामिनीबा-
कारोपिता करस्वपरमसेन सार्यते बीजा । इना कपरा कुमुमरसमता इव मधुर्धर्मिषु मधुर प्रबोता बनिहाकारिका तर्कन्ते, नाद्व पाट्यन्ते अश्रुवारम् ।
अवबन्विता वचकलेतु वार गैन्दिन्ति सन्निअणवर्ष । (स० अनु०)

हीन" सांस्कृतिक बलि का प्रतीक है। समाज में साहित्य, सपीठ और कला का कामकाज ही देखने को मिलता है। मानव जीवन यदि इससे सम्बन्धित नहीं है तो निश्चय ही इसमें कला के प्रति बलिबलि का नयाव होना और वह पशु कोटि में बिना जायेगा।

केन्द्रबद्धता का उत पुन में पर्याप्त विकास हो चुका था। प्रवागम्यता तर्कों को खेदबद्ध करने की प्रथा थी। समिक द्वारा पृथकीका के प्रथम में गणनापत्र बस्तुतः किया गया था। बलियोग-सम्बन्धी वैज्ञानिक विवरण भी देखकर किये जाते थे। कायस्थ एक प्रकार से किरिच का ही कार्य करता था। साम्राज्य शाक्ति के मनुष्य अपने कार्य की बारी बार रखने के लिए देखकर पत्तियों की पहचान करते थे। पादरत्न के पर पुस्तकों का बच्चा उग्रह था।

चित्रकला भी उस समय पर्याप्त विकसित हो चुकी थी। प्रिय पादरत्न का चित्र बनाने में बसन्तसेना निम्न भाग्य का अनुभव करती है वह भी मनुष्य है। बसन्तसेना कहती है—

हृन्ने मदभिय, त्वि मुतविही इव चित्ताकिरी अग्रचारत्तस्व ।^१

मू० क० (प० अ०)

चेति मदभिके । क्या वह विद्युत् आहृति कार्य चारत्त के अनुरूप है ?

मदभिका के अनुरूप बताने पर बसन्तसेना कहती है, तुम कैसे जानती हो ?

मदभिका कहती है । 'जिन अग्रभाए मुसिभिन्ना विट्टी अनुत्तमा' ।^२

मू० क० (प० अ०)

जायीं की स्नेहपुत्र दृष्टि इसमें संकल्प है।

पादरत्न का पत्रच्छेप विवि के प्रति कितना अनुत्तम है। वेप पर दृष्टि पढ़ने से चित्र ही पीचर हुआ और एक आकर्षक कथा का ज्ञान हुआ।

संतर्भरिच चक्रमाकमिचुर्भैरुं प्रवीर्भरिच,

व्याधिर्भरिच भीमचक्रमकरैर्भैरुं भोक्तिवृत्तै ।

लेस्तराकृतिविस्तरेनुवर्तमैपे समम्भुत्तै

पत्रच्छेपमिबेह माति वगद विस्तेपितैर्वापुना ॥ मू० क० (१-५)

एक दूसरे से मिले हुए चक्रवाक के मोड़ों के समान, उठते हुए हमों, जैसे

१. चेति मदभिके । अपि मुदुसीय चित्ताहृतिचार्यचारत्तस्व । (सं० मनु०)

२. वेनायीवा कुस्तिग्वा दृष्टिरनुत्तमा । (सं० मनु०)

समुह की बहुरी से दूर-दूर फेंके हुए मत्स्य समुदाय और मयरी के समुदाय उन्नत बट्टासिकारों जैसे (जैसे) विभिन्न विस्तृत जातारों को प्राप्त करने वाले बामु द्वारा सिद्ध-निमित्त, तबसे हुए जातारों के द्वारा यहाँ माकाल नवभूय विधि द्वारा चिन्तित सा शोभित हो रहा है ।

पत्रकेव से प्राप्त होता है कि चित्रकार पहले पत्र को छेद-छेद कर चित्र बनाते थे । चित्रचित्र का भी उस समय प्रयुक्त था । फलक पर ही चित्र, चित्र पर भी चित्र बनते थे । चारुदत्त ने प्रेयचर्चा में बल्लसेना से कहा है—

स्तम्भेषु प्रचित्रितवेदिसंभवात्
 षोर्षत्वात्कममपि धार्यते चित्रानाम् ।
 एषा च स्फुटितमुषाद्रवानुमेमा-
 त्प्रचित्रिता सत्कचरेषु चित्रमिति ॥ म० क० (५-५०)

चित्रके स्तम्भों के आधार के लिए बसने वाले चित्रों समुह नीचे एक चित्र रहे हैं ऐसा चित्र बनाने के कारण स्तम्भों पर किसी प्रकार टहरा हुआ है और यह चित्रित बीमार सुवाचक के चित्र के फूट जाने की बचक बच से भीगने के कारण सोल नहीं है ।

यह स्वल्पत्वकला का प्रतीक है और चित्र का चोकर है । चित्रकला की शक्ति अन्य कलाओं की ची इसमें नहीं है । घुतकर और माचुर के बर्तामाय में इसमें शक्ति है जब कि घुतकर में माचुर से बेबचिदर में प्रवेश करने के समय पुष्प है :

‘कम कट्टमयी प्रतिमा’ ?^१ म० क० (दि० अरु)
 यमा काठ की मूर्ति ?
 माचुर में कहा—

‘वले घटु बहु । संतप्रतिमा’ ?^२ म० क० (दि० अरु)
 बरे नहीं नहीं पत्थर की मूर्ति है ।

बसंतसेना और बपाहक भी बातचीत में भी कल्प से नहीं है । सबकुछ ने कहा है—

१. कम काट्टमयी प्रतिमा ? (स० बामु०)
 २. बरे । न बालु न बामु शंकरप्रतिमा । (प० बामु०)

‘सबाहस्य वृत्तिं जवनीवामि’ ।^१

सबाहक (घटीर बनाने वाले) की वृत्ति के द्वारा भीषण मापन किया है । वसन्तसेना ने इस पर कहा—

‘सुसुमारा कसु कसा विनिस्तवा बन्नेन’ ।^२

कार्य ने वास्तव में सुसुमार कसा सीसी है ।

इस पर सबाहक ने कहा—‘बज्जए, कठेति विनिस्तवा । जाजीवजा शक्ति समुत्ता’ ।^३

शु० क० (वि० अक)

कार्ये । कसा कसा के रूप में सीसी की पर इस समय तो वह जाजीविका ही कमी है ।

कसा कसा के लिए है बचवा उसका कुछ उपयोग भी है । इसका परिभाषक इनसे अर्थ लिया गया है । कसा अभिरुचि के लिए सीसी बाठी है पर समय पहले पर सबसे देव भी करा या उपता है ।

सबाहक (शास्त्र) को उस वृत्ति में एक कसा थी । वसन्तसेना ने इसको कठित (dohecaio) के नाम से पुकारा है । सबाहक ने इसे कसा रूप में सीसा या पर उसने इस भाजीविका का भी एक साधन माना है ।

कपड़ों पर कपटीकरी के अतिरिक्त रेशमी और धातु के प्रकारकों (दुपट्टों) पर कपड़े और कढ़ाई का कार्य होता था । वास्तव और प्रकार के प्रकारकों पर उनके नाम भी इसी रूप से कहे थे ।

कामकला की भी चर्चा सुश्रुतकृतिक में है—

वसन्तसेना से विद ने कहा है—

‘सकलकलाभिज्ञाया न विधिदिह तपोपरेहम्यवस्ति । तथापि स्नेह प्रजायति । अत्र प्रविश्य कोपोऽवमृतं न कर्तव्यं ।’ सु० क० (६० अक)

समस्त कलाओं से परिचित तुम्हें वहाँ कुछ उपदेश देना नहीं है फिर भी स्नेह बोलने की प्रेरित कर रहा है । वहाँ प्रवेश करके तुम्हें तनिक भी कोप नहीं करना चाहिए ।

१. सबाहस्य वृत्तिमुपजीवामि ।

(श० अशु०)

२. सुसुमारा कसु कसा विनिस्तार्येन ।

(स० अशु०)

३. कार्ये कठेति विनिस्तवा । जाजीविके शक्तिं समुत्ता ।

(श० अशु०)

यदि कुप्यसि नासि रति कोपेन विनापवा कृत कामः ।

कुप्य च कोपय च त्व प्रसीय त्व प्रसारय च कान्तम् ॥

मृ० क० (५-१४)

यदि कोप करती हो तो सबसे प्रेम नहीं है वपवा कोप के बिना रतिपुत्र कहाँ ? स्वयं कुपित होकर प्रिय को कुपित करो, स्वयं प्रवृत्त हो और प्रिय को प्रवृत्त करो ।

दुष्टरी और दुष्टार के बिट का कथना है—

स्त्रीभिर्विमानितानां कामुष्याणां विवर्षते मरुत ।

तत्पुरुषस्य स एव तु भवति मूर्खत्वं ना भवति ॥ मृ० क० (८-९)

स्त्रियों के द्वारा तिरस्कृत हुए मरुत कायर पुरुषों की कामवासना अधिक बर जाती है किन्तु सम्बन्धों की कामवासना तो स्त्रियों से व्यभिचित होने पर कम हो जाती है वपवा रहती ही नहीं ।

इस जो यह है कि कामवासना में स्तुतता अभी मिलती है वह कानुन रति और कोप कोला में प्रवीण हो । इस सम्बन्ध में मूककण्टिककार ने वैश्या-व्यवहार का श्रेया सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है । वसतसेना के वर्णनके में वास्यत के घर पहुँचने पर बिट वसतसेना से कहता है :—

ताटीपकूटकपटानृतवन्मधुमे

वात्प्यात्मकस्य रतिकेचिच्छ्रुतास्यस्य ।

वैश्यापत्रस्य सुरतोस्तव वं प्रहस्य

वासिम्बपप्यमुकविष्कम्पसिद्धिरस्तु ॥

मृ० क० (५-३३)

जो हम सज्जित माया, झूठ तथा असत्य का बन्धनवान है, झूठता ही जिसकी वात्प्यात्मक्य है, रतिकेचिच्छ्रुतास्यस्य ने जिसको वाचक कथया है, वहाँ रजस के मुक का बहह है ऐसे वैश्यास्त्री वाचर या वैश्या व्यवहार की उदाहरणरूपी विज्ञेयस्तु के द्वारा ही मुखपूर्वक वृत्त्य सिद्धि हो ।

वपु कम्ब के ममत्त्व में वसिष्क ने वसतसेना से कहा है—

कार्ये वसन्तसेने । परितुष्ये यथा भवती मपूषाम्बेनानुब्रूयाति ।

मृ० क० (२० अंक)

कार्ये वसन्तसेना । यथा प्रसन्न होकर आपसे वपु वाम से अनुब्रूयित करते हैं । इसी वैश्याजीवन की अपेक्षा पुरुष्य जीवन की ओर प्रवृत्त होती है ।

निष्कर्ष

मूच्छकटिक के रचयिता की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। यह रचना अपने में सर्वांगपूर्ण है। यदि यह कदा जाये तो मत्सुक्ति न होती कि जीवन के सभी आवश्यक भागों पर इसमें प्रकाश डाला गया है। मानव जीवन की प्राप्ति ईश्वर की अनुमति से है। अतः उस जीवन को कर्मरहित रूप से बिताने में ही ह्य्याय गौरव है। जीवन को सुखवस्तित रूप से पसाना ही उच्यते कहा है। इस कला का अर्थन हीसे तो अनेक रूपों में होता है पर कुछ कलाएँ ऐसी हैं जो जीवन का अर्थ न समझती हैं। उच्चनकला, चित्रकला, शिल्पकला, कानकला आदि कुछ ऐसी कलाएँ हैं जिनसे जीवन कुछ आकर्षक बन जाता है।

मूच्छकटिककाल में निम्नवर्ग यदि एक ओर अज्ञानित या तो उच्चवर्ग इतना सुखिनित था कि निम्नवर्ग से अपने समाज एव व्यवहार को विप्लव से मुक्त-निष्ठा रहता था। कलाओं की जानकारी की दृष्टि से यदि कुछ कलाएँ उच्चवर्ग में विशेष आदरभाव थी तो कुछ निम्न-वर्ग में प्रचलित थीं। परस्पर आदान-प्रदान की भावना से कला उस युग में एक ऐसा माध्यम रही जिन्से सभी को एक तुल्य में बाँधे रखा।

चित्रकला, पत्रच्छेद, चित्रमिति, स्थापत्यकला, शिल्पकला एव सवाहन कला आदि ऐसी कलाएँ उस समय समुन्नत रूप में थीं जिनके द्वारा सामाजिक जीवन परिष्कृत हो सका था। अतएव आज जिन कलाओं को सामुहिक कला के नाम से पुकारा जाता है उनका सूत्रपात उस समय ही बुका था।

काम प्रसङ्ग पर प्रकाश डालते हुए उसे भी एक कला का रूप दिया गया है और इस भाँति कर्मरहित रूप से जीवन में अपनी अनुभूति की बनी।

तत्कालीन ज्ञानपान, वैद्यभूषा, आभूषण एव प्रसाधन

द्वैते-द्वैते भारत में सम्प्रदाय और संस्कृति का विकास हुआ द्वैते-द्वैते समाज का रहन-सहन बदलता गया। जीवन की आवश्यकताएँ पूर्ण होने पर उन्हें और परिष्कृत रूप दिया जाने लगा। अतएव जीवन और वस्त्र जनसाधारण की अनिवार्य आवश्यकता है और उसकी पूर्ति किसी न किसी रूप में सदा ही होती रही है फिर भी सम्य समाज उसका परिष्कृत रूप बाँधित विद्या में से जाने की और प्रवृत्त होता है।

मूच्छकटिककाल में ज्ञानपान और वैद्यभूषा प्रायः साक्षिक थी। चारक का प्रयोग अनेक रूपों में होता था। बुद्ध, यही और दृष्ट में से प्रायेक के साथ उसे

मिठाकर बिबिध रूप में खाया जाता था। मिष्ठान्न में जड़ों और पुष्पों का प्रयोग होता था। समस्त दूध से बनी मिष्ठान्तियाँ भी प्रचलित थीं। मछली, बास और मरिचा का प्रयोग भी किसी विधेय रूप में होता था।

अपने को बलवृद्ध करने की इति जनसाधारण में आरम्भ से रही है। वर जिस समय सोने, चाँदी और मूँगे-बोती का प्रयुक्त नहीं था तब भी पुष्पों से अपने को बलवृद्ध करने की इच्छा स्वामाधिक रूप में पायी जाती थी। बीरे-बीरे जैसे धातुओं का ज्ञान हुआ और उसमें भी सोने-चाँदी और मूँगे-बोती का वैशिष्ट्य सामने आया जैसे-जैसे इनके सामूहिक बनने लगे और स्थिरता अपने को बलवृद्ध करने लगी। उस समय प्रसाधन की ओर भी नर-नारियों का लक्ष्य था। पत्थर के जम्बू-काँचों के प्रसाधन के साथ-साथ केरों के प्रसाधन की ओर विशेष ध्यान था। नारियों का कैङ्क-दिन्वास चतुर्षी सोमा का प्रमुख रूप था। केरों में पुष्पों का मूँगना और कुल, बाघायेँ धारण करना स्थिरों के अन्तर्गत सीर्य की एक विधि थी।

भारतीय समाज में आर्यैतिक बलवृद्धि के अनुसार अपने ज्ञानपात और वैश्यापना को अपनाया तथा सामूहिक और प्रसाधनों से अपने को सुसज्जित किया।

मून्सकटिक के आरम्भ में आहार-विषयक सूत्रधार के विचार निम्न परिच्छेदों से ज्ञस्त होते हैं :—

हीनामहे । किं नु नसु सन्ध्याय मेहे जल्प विद्य सविहायर्म बट्टि । आध्यामित्तु-
 तण्डुलोदमभवाहा रन्धा सोहकटाहृदिरवर्तनकृष्णसाण्डिर्विद्वैतजा विज बुजरी
 बहिवरर योद्विभूमि । विविजमन्धेय उद्विबन्धी विज अहिम बावेदि न
 बुमुत्ता । का कि पुनश्चिद्व मिहाय उम्भान भवे । आहु नहं ज्येव बुमुत्ताये
 बन्धामत्र भीमभोज वेकसाभि । यतिव क्लिष्ट वाररातो भन्हाय गेहे । पात्राधिक
 बावेदि न बुमुत्ता इव सत्य नव सन्ध्यायर्म बट्टि । एतन्न यन्त्र नौवेदि
 बवत्त मुमुत्ताइ कुम्भेदि' ।^१

मु० क० (प्रथम अंक)

हमारे घर में तो कुछ दूधरा ही आबोजन हो रहा है। वही पत्तनों के जल

१ आन्यर्मम् । किं नु सत्यस्माक गृहेऽवदिव सविहायर्म बट्टते । आध्यामित्तु-
 कोरकप्रवाहा रन्धा सोहकटाहृदिरवर्तनकृष्णसाण्डिर्विद्वैतजा विज बुजरी
 बहिवरर योद्विभूमि । विविजमन्धेयोद्विबन्धी विज अहिम बावेदि न
 बुमुत्ता । का कि पुनश्चिद्व मिहाय उम्भान भवेत् । अपवाहयेव बुमुत्तायेऽन्यर्म
 भीमभोज वेकशोक पश्यन्नि । नास्ति क्लिष्ट प्राररातोऽत्राक गृहे । प्रात्राधिक बावेदि मां बुमुत्ता

के विस्तृत प्रवाह से ध्यात है। लोहे की कड़ाही को मीचने के लिए बुमामे से चितकबरी हुई मूमि कासा तिसक लनासे हुए पुबती के समान अत्यधिक सोमित हो रही है। बी आदि की स्निग्ध पन्थ से सदीप्त हुई मूख मुझे अत्यधिक पीडित कर रही है, तो क्या पूर्वजों द्वारा मन्त्रित अज्ञाना तिसक जामा है वा मैं ही मूख से उत्सार को अग्रमय दैत रहा हूँ। हमारे घर में तो कम्बेया है ही नहीं। मूख के मारे मेरे प्राण निकलते जा रहे हैं। यहाँ सब नया आयोजन है। एक सुवचिद इव पीस रही है, दूसरी फूसों को नूँप रही है। लखड़ुनों से सुप्त विह्वलक की बात भी इस सबष में ध्यान देने योग्य है :—

‘यो नाम बहु तत्तमबरो चास्त्रस्तस्य त्थीए अहोरत्त पबतपसिद्धोहि
उम्मारमुदहिगन्धोहि ओदकेहिज्जेप असिदोबग्गन्तरचदुस्साकज्जुभाए अणविट्ठो
मस्सन्नपपपरिनुरो चित्तमरो विव अज्जुनीहि त्थिविअ त्थिविअ अणवेमि।
अवरत्तारकुसुहो विव रोमन्वाअमानो चिट्ठामि’।^१ मू० क० (प्र० अ०)

जो मैं पूज्य चास्त्र की सम्पन्नता के कारण रात-दिन यत्नपूर्वक तैयार किये बने खाने के नाद बिनकी डकार भी सुवचिद है, ऐसे लखड़ुनों के खाने से परिपुष्ट हुआ, भीतरी चतु शाला के द्वार पर बैठ हुआ साध पदावों से पूर्व सैनकों पानों से विरा हुआ बित्रकार के समान अणुशियों से कू-कू करके छोड़ बैठा था, नयर प्रायस के साह की तरह बुनाबी करता बैठ रहा था।

इत मन्त्रि बहु निमित्त है कि जस समय साहार-विज्ञान का विषय भी कम खिचकर नहीं था। विशेष अवसर पर मौजान-म्यवस्था निम्न पद से ज्ञात होती है। सुनकार हाथ नटी से ज्ञात करने पर कि कुछ खाने को है क्या? बटी कहती है —

मुहोरत्त विव इहि तण्णुसा अग्गेअ अत्तम्मं रत्ताअप सम्म अत्तिवत्ति।
एव्णं वै वैवा आसात्तेनुः^२ मू० क० (प्र० अ०)

इह सर्वमव अविज्ञानक वर्तते। एका वर्षक पित्रन्धि, अथवा मुमननो मुम्पनि। (सं० अनु०)

१. यो नामार्हं तत्रवत्तारचदत्तस्य अद्दपाहीरात्त प्रपत्तसिद्धैरद्वारमुदवि
अणिविज्जोदकेरेवाविरोअग्गन्तरचदुस्साकज्जुभाए अणविट्ठो मस्सन्नपपपरि-
पुत्तविअनकार इवाज्जुकोमिः स्पृष्टा स्पृष्टापनवामि नवरत्तारकुसुम इव
रोमन्वाअमानमिहामि। (सं० अनु०)

२. मुहोरत्त वृत्त इति तण्णुसा आर्वेवात्तम्य रत्ताअप सर्वमस्तीति। एव एव वैवा
आसात्तानाम्। (सं० अनु०)

पुत्र, मातृ, वी, बहो, वास्तव कार्य के चले योग्य सब तरह प्रोजन है। इस प्रकार आपके बेरठा (अर्थात् पत्नी की प्राप्ति के लिए) आशीर्वाद है।

बसंतसेना के बीज के अक्षुण्ण उसके यहाँ की भोजन विधि भी बड़े ठाठ की है। अक्षुण्ण पाँचों कम में पाकघासा को बेककर रहता है :-

'ही ही मो. इको दि पंचमे पमोहे जम दक्षिणतलोत्पासकरी आदरह सबसिधो हिजुतेस्तमयो। विविहसुरहिमुमुगारेहि विचन सताविश्रमाय पीसमवि विम म्हाणस एवारमुहहि। अचिक अनुमानेवि म सतिश्रमाय- बहुविहकनमोवपमयो। अन्न कपरी पठनपर निम पोष्टि पोमवि कपि- पारको। बहुमिहाहारविचार सवसाहेवि सुवकारी अस्तमितोवप्रा, पञ्चमि अयुवमा'।^१

गु० क० (ब० अक)

बरे आश्चर्य। यहाँ पाँचों प्रकोष्ठ में भी यह निर्धन मनुष्यों की लौम अल्प करने वाली हीन और तेज की वीर्य गन्ध मुझे आकर्षित कर रही है। नित्य सन्ध्या की जायी हुई पाकघासा नाभा प्रकार के सुगन्धित पुँरे को प्रकट करने वाले द्वार खोली मुझों से निश्वास ले रही है। बनाने हुए बनेक प्रकार के साध पदार्थों एवं व्यक्तियों की गन्ध मुझे अधिक उत्सुक बना रही है। पुत्रपत्न्य कर्माई का लडका मारे हुए पशु की पैट की बेटी को पुत्राने पत्न की भाँति हो रहा है। एकोश्या भाँति-भाँति के आहार बना रहा है। अन्न के बीजे का रहे है। पुत्रे पञ्चमे का रहे है। लव म्हाणस के सुवकार का बही स्थापना को आज रसोहये कर। आहारविज्ञान में यह बुग पर्याप्त विकसित हो चुका था।

माँसाहार सम्बन्धः चन दिनों कुछ विविध माँसाहार मन्त्र गाया हो। वेद बसन्तसेना से रहता है -

१. आश्चर्य मोः। इजापि पंचमे प्रकोष्ठेषु दक्षिणतलोत्पासकरी आदरहपु- पवितोहिजुतेस्तमयो। विविहसुरहिमुमुगारेनित्य सताव्यमप नि कसितीव महामर्ष एवारमुहै। अचिकनुत्सुकपने मा साध्यमानश्कृतिजनकमोवप- मन्वा। अन्नकपरी पठनपरनिम हृदपशुन्दरेपेति पञ्चमि कपिरारक। बहु- विवाहापरिहारसुव साधवति सुवकारः। अयन्ते योवका पञ्चन्तेऽयुवका ॥

सामेहि ब मावबस्ततु तौ क्वाक्षिनि मच्छमराकम् ।
एदैहि मच्छमराकेहि मुचत्रा मन्वं न वैवन्ति ॥^१

म० क० (१-२९)

राधा के कृपापान दकार के माव रख करी तब मछली और मास खातीकी । इस मछली और मास से तुल सकार के कृते मृत-बीब का मांस सेवन नहीं करते ।

तबे हुए मास का भी उस समय प्रचार वा इतका उपवाहरण देते हुए दकार से बिरुपक की उन्नेत किया है—

करचातुका बोच्छडित्तवेष्टा शाके ब सुनसे तस्मिन्ने हु मये ।
भते व हैनन्तिबलतिप्रिडे कीने व वैने व हु होदि पूवी ॥^२

म० क० (१-५१)

बीबर से छित डठक वाका काशीफल (बूप्पाशुड), सुसा तुसा धाक, लता हुआ मांस, हेमन्त ऋतु की रात्रि में बनाया हुआ मांस अधिक काल बीत जाने पर भी बिकृत नहीं होते ।

दकार की इस उक्ति से उसके पात्रविद्यान की कुशलता जात होती है । पेट से उठने अपने मध्याह्न भोजन की भी चर्चा की है :—

मयेव तिकसामितनेव भते शाकेन मूयेव समच्छनेव ।
मुत्त मए बत्तचवदय भेदे शास्त्रिककूजेव पुनोदनेव ॥^३

म० क० (१०-२९)

मैने अपने घर तीखे सट्टे मांस, द्राक, मछली, दाल, धाजि के भात तथा कुछ मिथित खावस के साथ भोजन किया है ।

दकार को अपने घर के भोजन के सम्बन्ध में विस्वास था कि ऐसा भोजन

१. समय व रात्र्यशकर्म तत साक्षिन्वसि मत्स्ववातकम् ।
एताभ्यां मत्स्वमांसाभ्यां स्वामी मृतक न वेवन्ते ॥ (ब० बनु०)
२. बूप्पाशुडो बीबयन्तिपुष्पा शाक व शुष्क टन्तिष्ठ बज्ज् वाहम् ।
घस्त व हैमन्तिकरात्रिदिठं सोनाभ्यां व वेलायां न बज्जु नवति पृति ॥
(४० बनु०)
३. मयेव तिकसामितनेव भते शाकेन मूयेव समत्स्वनेव ।
मुत्त मदारपनो वैदे शास्त्रिककूरेव पुनोदनेव ॥ (म० बनु०)

ब्रह्मण मिच्छा सम्भव गहो हे इसी से वह वर्तवतेना को सुवाते हुए विट से कृता है—

वरिष्मो अम्बरसाक्षिणां प्रावारकं सुतपावेहि वृत्तम् ।

संभ च सातुं तह दुष्टि अम्बु पुरु पुर पुनुरु पुरु कृति ॥^१

मू० क० (८-२२)

वहि तुम सैकडों सूतों से बने हुए छम्बी किनारी वाले उत्तरीय (दुपट्टे) को पुरस्कार रूप में केना, मास खागा तथा मुझे प्रसन्न करना चाहते हो (तो मेरा प्रिय करो) ।

मास बीर वृत् को विधिष्ट एवं पीयूषक पदार्थ समझते हुए अक्षर में विट से कहा है—

अम्बरकालं यण पुनटे मरुत च विपुष च ।

अम्बे अम्बे अमुप्यम्बे वादे मे वीरिष् कथम् ॥^२

मू० क० (८-२८)

हर समय मास तथा भूत से मैंने तुम्हें पृष्ट किया है । नाच काम वा पढ़ने पर तुम मेरे बीरी कैसे हो बने ?

डा० जी० के० बाल ने विट को ब्राह्मण समझते हुए कहा है—

The Vira who is supposed to the Brahmin by caste-partook of meat.^३

अक्षर अत्र असम्भवेना के मारने के प्रयास में वा तो विट ने विशेष क्रिया, इसी से अक्षर ने उस पर आमार प्रदर्शन किया ।

अक्षर को स्वर मातृय के लिये विशेष मसखों से विधिष्ट सुचलित मीस का भी ब्रह्मा ज्ञात वा । अष्टु स्वर से जाने में अक्षर को दस समझते हुए उसने विट से कहा है—

१. यवीष्मति अम्बरसाक्षिणां प्रावारकं सुतपावेहिमुत्तम् ।

संभं च सातुं तवातुष्टि कर्तुं पुरु पुर पुनुरु पुरु कृति ॥ (सं० अनु०)

२. संभं कालं मया पुष्ट्ये मादेव च पूवेन च ।

अथ अर्धसमुत्पन्ने वातो मे वीरिष् कथम् ॥ (सं० अनु०)

३. Dr. G. K. Bhat : Preface to Mricchkatika, p. 248.

हिन्दुगुणैः श्रीसहस्रहपुरैः वचाह वपुः व मृच्छी ।

एते मए खेविद वपुःवृत्ती वप व हम्मे मपुःस्यसेति ॥^१

मृ० क० (८-१३)

हीन से मिथित खड़ेर तथा बोरे सहित मापर मोपा, वच की पाठ और मुच सहित घोंठ इस मुपधित मोग का मने वैचन किया है शब में मपुर स्वर बाका क्यों न होऊँ ?

विट में वच गाने की प्रयत्ना करते हुए उसे पम्बर्ष बटा दिया तो शकार कहने लगा—

हिन्दुगुणैः दिव्यमरीचनुलो वपुःवृत्तेः सेत्कविएव विस्ते ।

मुते मए वामहुरीवपये वप व हम्मे मपुःस्यसेति ॥^२

मृ० क० (८-१४)

मैने हीन से मुक्त काकी विर्ष के पूर्ण से वचारा हुआ तथा तेस और पी से मिथित लोमस का मांस खाया है फिर मैं मपुर स्वर बाका क्यों न होऊँ ?

शकार की शटपटे पराशों के जाने में रुचि थी । स्वर माधुर्य में भी अपने इन्हीं बातों का उल्लेख किया है ।

मदिरापान भी उस समय दूर प्रचलित था । कतिपय महिलाएँ भी इसका सेवन करती थीं । पेटों के यह कहने पर कि बसठैला को माता खोपिया खर से पीछित है विपुषव ने कहा कि यह तो अत्यधिक मदिरा पान से भोटी है—

सीधुनुरासवमतिमा एवावत्य ववा हि मतिवा ।

वइ वरइ एव मतिमा भोकि दिव्यान्वभुहस्त पञ्चमतिवा ॥^३

मृ० क० (४-१०)

सीधु, मुरा एवं भासव से बस वसठठैला की माता इस अतिशय सुन्धिभटा

१. हिन्दुगुणैः श्रीसहस्रहपुरैः वचाह वपुः व मृच्छी ।

एते मयो खेविता वपुःवृत्ति वप नाह मपुरस्वर इति । (८० अनु०)

२. हिन्दुगुणैः दिव्यमरीचनुलो वपुःवृत्तेः सेत्कविएव विस्ते ।

मुते मया वामहुरीचमपये वप नाह मपुरस्वर इति ॥ (८० अनु०)

३. सीधुनुरासवमतिमा एवावत्य ववा हि माता ।

वदि मिदयेज्य माता वचति मृदासमहुरववमितिवा ॥ (८० अनु०)

की प्राप्त हो गयी है। यदि यह सही मर जाती है तो हमारी श्रुतियों की पुष्टि के लिए पर्याप्त होगी।

सालमान के साथ उस युग की वैश्वभूषा की जलकारी भी आवश्यक है। यद्यपि इस सम्बन्ध में विद्विप विवरण उपलब्ध नहीं है तो भी पचासवाँ कुछ बस्तुओं की जलकारी प्राप्त होती है। पुरुष एवं महिलाएँ दोनों उत्तरीय (शाका-रक) का प्रयोग करते थे। विवाहित पारिवी एक अतिरिक्त बस्तु का प्रयोग व्यवपुष्ण (भूषण) के लिए करते थीं। कर्णपुरक तथा अकार के बस्तु जमक-दमक के पूर्ण से पर दूरक (बुझारी) का दुपट्टा चीर्ण-शीर्ण था। विद्विपक के स्नान के समय प्रयोग में आने वाली स्नानशाष्ठी भी कट्टे धी थी जिसमें बसतसेना के क्षामुबन्ध अट्टे बनी थी। आररक का उत्तरीय जमेतो के पुष्पों से सुगंधित था। महिलाएँ रगीन बस्तु पहनती थीं। अकार और विट द्वारा बिस समय बसतसेना का पीछा किया जा रहा था यह काक रम का रोगी बस्तु आररक जिसे हुए थी। विट ने पाठी हुई बसतसेना को रोक्ते हुए कहा है—

किं याति पाकज्यलौष विकल्पमाणा

रथाबुध परमलोचस्य बहन्ती ।

रक्तोत्पन्नप्रकरकुम्भसुसूत्रन्ती

लैर्मन. घिसपुहेष विदार्यभाषा ॥ ५० क० (१-२०)

सुन्दर नदीन केडे के पीने के समान, हिछी-दुबली हुई बर्तु बर से कापती हुई वायु के द्वारा हिछते छोरवाके जान रेष्मी बस्तु को वाररक करती हुई टांकी द्वारा छैरी जाती हुई मर विष्ण की कन्धरा से निकलने वाली विमवारियों के समान केवपात्र में गुँबे हुए रक्तकमलमें की कल्पियों की पैर से दीबने के कारण बिसराठी हुई कहीं जा रही हो ?

बसतसेना की मात्रा का दुपट्टा कते हुए पुष्पों से बसंहुष या मौर उसके माई का उत्तरीय रेष्मी (बट्टु प्राकारक) था। उत्तरीय समस्त सम्मान का बस्तु का और किसी पर प्रसन्न होकर उपहार रूप में प्रदान किया जाता था। पाकवत्त ने कर्णपुरक को उत्तरीय दिया था। अकार के भी बसतसेना की हृत्पा करने के लिए विट की सैकटीं सुर्षों से निमित्त विद्यमान उत्तरीय देने का बस्तु दिया था।

बापुर्षों की पोशाक और ही प्रकार की थी। बिनु पीवर पहनते थे। पारिवी को भी अकार से बस्वाकजित किया जाता था। बर्चमालक की वसी

मूत्र से जो कि लाले में हुए विकस्य के कारण बाहिर्वा बदल गयी और बसंतसेना उपनृत बाहो में म बैठ सकी ।

पैरों को मुष्कामय रखने के लिए महिषाएँ मृते पहनती थी । विदुषक के अनुसार बसंतसेना की माता ईश्वरिणी मृते पहने हुई थी ।

‘मोरि, एसा सप का कुन्तपाचारवपाठरा सववहनुबलविनिश्चततेरा विश्व-
वेदिं पारेदिं सव्वासवे उपविष्टा विष्टि’ ।^१

पृ० क० (प० अ०)

बायीं से बदन पर बनाये गये कुत्रिय पुष्पों से मुष्क उत्तरीय जोड़े हुए दोनों
पूतों में लेव से विरले पैरों को बाँधे हुए ऊँचे आसन पर यह कीमत बैठी है ।

बेहनुपा के विचार से उस समय का समाज पर्वत विकसित हो चुका
था । बामुष्यों की ओर भी ध्यान कम न था । श्रुवार के लिए धारण किये
जाने वाले बई प्रकार के बामुष्यों की खर्चा मुष्ककटिक में बामी है । बामुष्यों
की बोरी मुष्ककटिक के कमानक का एक विशेष अंग है । महिषाएँ वहाँ एक
बोर बामुष्यों के लिए शृङ्खल थीं वहाँ हुसरी ओर मबतर पर अपनी मात
मर्यादा के लिए उन्हें त्याग देने में भी शकोप नहीं करती थी । बसंतसेना ने
सनाहक की सुतकर और मानुर से बामुष्य बकर बुझाया था । बसंतसेना बैसी
सपन्न महिषाएँ मसंकारों में कुम्डल, मुपूर तथा मविनिमित्त करवनी का
प्रयोग करती थी । मुपूर की ध्वनि बड़ी मधुर होती थी और जलमें लगे बोली
नद्यों की मीठि बमकते थे । पुरुष बेंगुठी, नटक या ककप चारम करते थे
खन्दाही को हाथी से बचाने पर बगुठी उपहार में देने के लिए पादरत्न स्वभावत
अपनी बगुली छूने लम्बे बर बसके अनाम में कर्णभूक को उत्तरीय ही दे दिया ।
बगुठी का पहनना महिलाओं एवं पुरुषों के लिए मबल का प्रतीक था । स्वर्ण
की मधिकता उस समय इसी से ज्ञात होती है कि बसंतसेना ने जित पेटिका में
अपने बामुष्य पादरत्न के बर मियवाये थे वह स्वर्ण विभित थी । बसंतसेना
का छटा मकीष्ठ श्रुवार सामग्री के साथ बामुष्यों से बसङ्गत था विदुषक ने
बहा है .—

‘ही ही मो इरो वि छट्टे पबोट्टे बमु बाव नुदस्वरवनामं नम्मतीरवाह
पीतरवविभिन्निताह इन्दावहृदामं विव ररिमज्जि । वैदुरिबपोतिअपरात-

१. मबति, एसा नुन ना पुप्यमाचारवशावुतोनावनुपलविनिश्चततेविबववनाम्मां
वाराभ्यामुष्वासवे उपविष्टा विष्ति । (सं० अनु०)

अपुत्रा इत्येवमिदं नैवमपराधमराजपदुष्माह रत्नविसेसाह अत्रोप्य
विषारेण्ति सिन्धो । वज्रान्ति धारक्योहि मायिकाह । वज्रान्ति सुवप्या-
कंठार । एतमुत्तेय बलीभान्ति मोक्षिमातराह । वसीवन्ति भीरं वेदुरिमाह ।
प्रीतिवन्ति लक्ष्मी । लज्जान्ति पदात्तमा । पुस्तविमन्ति बोस्तविदकुसुम-
पत्तरा । क्षान्तिवन्ति कस्तूरिका विसेसेप विस्तवि वन्धवरो । अत्रोप्यन्ति पत्त-
पुतीती । वीरवि पयिवात्रामुक्त्या सकपूर ताम्बोत्तम् ।^{११}

मृ० क० (५० श्लोक)

बरे बरधर्म । यहाँ छठे प्रश्ने में भी ये शौक एतल बाँटि स्वर्गारत्नों के
विभिन्न रत्नगणुक्त शीरम इन्द्रवज्र की समानता भी प्रदर्शित कर रहे हैं । सिन्धी
वज्र केशुर्व, मोती, मूँया, पुत्रराज, इन्द्रनीळ, कर्कोटरक, पद्मराज, मरकट मादि
एतन्निषेधों का बरसार विचार कर रहे हैं । सोने के साथ एतल बटे का रई है ।
स्वर्णमुक्कण गडे का रई है । कुन्धमुक्कण सात बाये से बुने का रई है । केशुर्व केशुर्व-
पुरक बीरे-बीरे बिते का रई है । शंस काटे का रई है । मुँये साय से बिते का
रई है । नीले केसर की ठहें सुधायी का रई है । कस्तुरे मोकी की का रई
है । वज्र का एत विसेप एत से विज्ञा का रई है । विभिन्न रत्नों के निमन
किये जा रहे हैं । वेत्या भीर कामुकी को कपूर सहित पत्र दिना का रई है ।

इस बर्तन से यह निश्चित है कि यह सम्म अधिकता से केशुर्व, प्रभाप,
मोक्षिक, पुत्रराज, इन्द्रनीळ, कर्कोटरक, पद्मराज, मरकट इत्यादि बनेक रत्नों
व बहुराज से विभिन्न प्रकार के बामुक्कण बनाये जाते हैं ।

शुभार के लिए प्रतापन से कुलों का भी उपयोग होता था । एतल के सम्म
पत्तपुतीती कुलों की माता धारण करती थी । अन्धर और बिट के सहायन में
बिट में कहा है—

१. आत्तर्व्य मो, इहापि वन्ते प्रकोन्दैःभूति तावत्सुवर्षरत्नाना कर्मवीरवानि
मीळरलविनिविपानोन्नामुक्कणानिह दर्शयन्ति । केशुर्वमैत्रिकुसुमक-
पुत्रराजेन्द्रनीळकर्कोटरकपद्मराजमरकटममूठीरत्नविसेषामभ्योन्तं विचार-
यन्ति विम्वित । बध्यन्ते वातस्वीर्वाभिकमानि । वज्रान्ते मुदवात्तकारा ।
रक्तमुक्कण प्रयान्ते वीरिक्कामरमानि । क्यन्ते वीर केशुर्वानि । सिन्धान्ते
लक्ष्मीः । धार्पुप्यन्ते प्रवात्तका । शीभ्यन्ते वज्रकुसुमप्रस्तरा । सार्यते
कस्तूरिका । विसेसेप बध्यन्तेवज्ररत्न । अत्रोप्यन्ते वन्धमुक्कणः । वीर्यते
पयिवात्रामुक्त्या सकपूर ताम्बोत्तम् । (५० अनु०)

भीर, मद्रमुस्त, बन्धा, सौंठ तथा मिर्च काम में कायी जाती थी। कर्पूर (लाल मुली या बाबर) की चटनी बनायी जाती थी। हरे बालोंका भी होता था। मन्थार भी काम में लाया जाता था। सायान्ध सेवर्ष के अनुसार जनसमुदाय के लिए मच्छी, मास का बण भी पर्याप्त था। मास को सुस्वादु बनाने के लिए मसालों का प्रयोग होता था। सब खूब प्रचलित ही चुका था। सीपु, घुरा एव बाल्य रत्न के प्रयोग हैं।

बस्तों का वहीं तक सम्बन्ध है उन दिनों स्त्री और पुंस नटने का प्रयोग करती थीं।

बर्बुरक (जुबारी) का बपना उत्तरीय और मैत्रेय की सान बजायी चर्च बताए गये हैं। स्तर के अनुसार उत्तरीय की विशेषता थी। उत्तरीय चमेली के पुष्पों से सुगन्धित था। महिषार्यै रबीन बल पुष्ट इसकी पुष्टि मसतैमा के आरुण्य के रोगी बस्त से होती है। पीछा किये जाने के समय पहले हुए थी। कटे हुए पुष्प बाने जल। महिषार्यै पारण करती थी।

आमुषम भी उस समय सम्पन्न परिवारों में चारण किये जाते थे। कुडल, गुपुर और करवनी का प्रयोग करती थी। पुंस मूट्री से पहनते थे। मणि एव घनाहरत से स्वर्णामुषम बने हुए होते थे।

प्रसाधन के लिए पुष्पमाक्षार्यै चारण की जाती थी। प्रकार से होता था। महिषार्यै अपने केशों को पुष्पों से भरतुए बनाती थी। छाती आदि के साथ ताम्बूक सेवन में कर्पूर का प्रयोग रहता था।

अध्याय विश्लेषण

प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में शूद्रक सबकी रसोक से यह स्वीकार किया गया कि साहित्य, विज्ञान, पण्डित एवं ज्योतिष विद्या का बन्धन प्रारम्भ उसी रसोक से यह भी स्पष्ट है कि उस समय इतिविद्या का भी बन्धन समता गया। पण्डितों की चर्चा तो यथास्थान की गयी है। शूद्रक के उल्लेख प्रकरण में हैं। इस सबसे स्पष्ट है कि उस समय साहित्यिक विद्या केवल मानव-व्यवस्था का ही बन्धन ही बनता ही नहीं था। पण्डितों के ज्ञान की प्राप्ति में भी बन्धन ही होते थे। यह-पण्डितों को बन्धन था। बन्धनों के जाने बादप में पुष्पों के पीचे उपाने जाते थे। शूद्रक के

मुपुतों का बीडा फिर रहा है। मणिकटिक वैसकाएँ तथा कपुरलन समुद्र से भडे हुए अतिमुग्धर कगन निवसित होने से परस्पर सपर्यं होने के कारण टूट रहे हैं।

एकार का केसकिन्नास भी क्या ही बिचिन है ? यह स्वयं कहुता है—

एगेण मण्ठी कम्मजुत्ते मे अणेण वासा अणकुन्तळे वा ।

अणेण मुक्के अण उद्धपुणे पिसे विपिसे न्हे छावणाळे ॥^१

मू० क० १, २

किसी वग वारों को बाँव लेना है। तब मे जनका लुडा कण लेता है। वग में उन्हें स्वामाजिक रूप में छोड़ देता है। वग ने उन्हें बिसरा देता है तथा समय में ही उन केवपासो को बे-नी कण लेता है। इस प्रकार रय-विरपा अमृत राजा का सारा है।

मिष्कर्ण

मूत्रकटिक एक ऐसी रचना है जिसमें बीकम्पमीगो विषयों को चर्चा है। यहाँ तक कि खानपास, वेधमूषा एवं प्रसाधन का भी उसमें विधर विवेचन है। बाहार की चर्चा बारम में सूत्रभार के पर में अविस्मयति वाके एत से हीती है पर उससे एक सामान्य गृहस्थ के मोहन की कठक मिसरी है। सम्भ बरानो के मोहन का वर्नन बरतसेना के पाक इकोठ से ज्ञात होता है, फिर वामघी वृत्ति के मोहन की चर्चा एकार एवभी निमित्त बाहारो से ज्ञात हो जाती है।

इस समूह चावल क्य प्रयोग कविक और विभिन्न प्रकार से होता था। तन्दुल भक्त (भात), गुड कोरन (गुड मिथित), कसम कोरन (बही मिथित), चामस (दूध मिथित) एवं काठिकूर (चान का उवाका चावल) आदि उसके विभिन्न रूप बाहार के लिए प्रयुक्त होने थे। समस्त इसके सबके चावल का प्रयोग कसमकोरन और चावल के लिए किया जाता हो और सामान्य चावल अन्य विधियों से काम में लाया जाता हो। तेजमिथित चावल के लहडु हावियों को छिलाने जाते थे। मोरक और कपूरक भी विशेष कपठरो पर मिष्टान्न के रूप में काम में जाते थे। ठेठ क्य प्रयोग पटपटी वस्तुओं के वसन में किया जाता था। इन वस्तुओं में मसाले के लिए हीन,

१. एगेण एग्धि कम्मजुत्तिका ये अणेण वासा' एण कुन्तळा वा ।

अणेण मुक्के अण उद्धपुणे पिसे विपिसे न्हे छावणाळे ॥

बीरा, मरमुस्त, बपा, सोंठ तथा त्रिर्ष काम में छापी जाती थी। रसमूलक (सात मुसी वा पाचर) की चटनी बनायी जाती थी। इन्हे धारकों का प्रयोग भी होता था। कच्चार भी काम में लाया जाता था। साधारण भोजन में हवि के अनुसार बनसमुदाय के लिए मछली, मात का बरा ही वयस्य रूप में रहता था। मास को सुखादु बनाने के लिए मसालों का प्रयोग होता था। मद्यपान स्त्रिय प्रचलित ही भुका था। सीसु, सुरा एव आतब नामों से दमका उल्लेख है।

बस्त्रों का वही तक सम्बन्ध है उन दिनों स्त्री और पुरुष उभरोंय (दुपट्टे) का प्रयोग करते थे।

बहुंरक (बुधारी) का अपना उत्तरीय और मेवेम की स्नान साटी जीर्ण-सोर्ण बसाए गये हैं। स्तर के अनुसार उभरोंय की विधिवता थी। चाकरत का उत्तरीय जमेनी के पुष्पों से सुगन्धित था। महिलाएँ रबीन बस्त्र पहनती थीं। इसकी पुष्टि बसठसेना के आकरम के रेशमी बस्त्र से होती है जिसे वह अपना पीछा किये जाने के समय पहने हुए थीं। कडे हुए पुष्प बाने उत्तरीय सप्त महिलाएँ धारण करती थीं।

आभूषण भी उस समय सम्पन्न परिवारों में धारण किये जाते थे। महिलाएँ कुन्ड, नूपुर और करवनी का प्रयोग करती थीं। पुष्प मण्ठी और कर्ण पहनते थे। यत्रि एव अवाहृत से स्वर्णमूयक जड़े हुए होने थे।

प्रसाधन के लिए पुष्पमाळाएँ धारण की जाती थीं। वैराचिन्यास अनेक प्रकार से होता था। महिलाएँ अपने केशों को पुष्पों से अलङ्कृत एव लुबधित बनाती थीं। छात्री आदि के साथ ताम्बुक धेवन में बपुर का भी मिश्रण रहता था।

अध्याय बिश्लेषण

प्रथम अंक के प्रारम्भ में सूत्रक सबको बलोक से यह निश्चित है कि उस समय साहित्य, विज्ञान, नबिठ एव ज्योतिष विद्या का अच्छा प्रचार था। उसी बलोक से यह भी स्पष्ट है कि उस समय हस्त्रिबिद्या का भी ज्ञान बंध्य अमहा था। पत्तियों की अर्थां ही बचावपान भी पयी है। बीटागुओं का भी उल्लेख प्रचरण में है। इन सबसे स्पष्ट है कि उस समय साहित्यिक दृष्टि से म वैदिक मानव-संबंधी ज्ञान की उपलब्धि के ही अमता की हवि थी बरन् वे कनु-बनियों के ज्ञान की प्राप्ति में भी हवि लेते थे। वैद-बीचों की ओर भी ध्यान था। मरामों के आगे ज्ञान्य में वृत्तों के बीच लपाने जाते थे। कड़ी से पहने

मी पुष्पनाम्ना पहनाई जाती थी। चास्त्र के भी कनेर पुष्प की माला पहनाई गई थी। अती कुसुम से समृद्धि प्राधारक (बुपदटे) को चर्चा से भी पुरुषों की सुमन्निप्रियता स्पष्ट है।

मन्वों के निर्माण में जनसाधारण की चर्चा का पता बसतसेना के प्रस्तावों से सही भाँति प्राप्त हो रहा है। वास्तुविद्या भी पूर्व रूप से इस समय विकसित थी। मन्दिरों, बर्मशाळाओं, विहारों तथा ब्रह्म प्रासादों के उल्लेख से ज्ञात होता है कि स्थापत्य, इंजीनियरिंग आदि अथ भी व्योम्य विकास हो चुका था।

संयुक्त अपने गायत्र और वाच्य दोनों रूपों में उत्कृष्ट कोटि का था। ऐतिहासिक तथ्य का एक प्रसिद्ध मायक था। बसतसेना के महक के तीसरे प्रकोष्ठ में समीर का ब्रह्मास विनिष्कृत रूप में होता था। चास्त्र के चर में ऐतिहासिक को खोरी के समय इका, मूषम, पन्न, पट्ट, बच (वस्त्री), बीजा तथा सनी प्राप्त हुए थे। विद्वत्का का भी सम्प्रात परिवारों में सम्मान था। बसतसेना ने चास्त्र का चित्र स्वतः बनाया था। कला के दौर भी विविध रूप थे। मेकनकसा का भी लोपो को अच्छा ज्ञान था। काव्यत्व सम्यक् इसमें कुशल थे। कामकला को चर्चा बसतसेना और विट के समापन में है। वर निश्चिन है कि उत्काशीन समाज विविध कला-प्रेमी था। मधुरभाषी पश्चिमी को पाजने की भी प्रथा थी। बसतसेना के प्रासाद कला में दर्शनी चर्चा है।

धोन्न-सम्बन्धी सुस्तादु एवं मधुर पदार्थों की धोर भी जनसाधारण की चर्चा थी। अनेक प्रकार के सुस्तादु व्यवहन बनाये जाती थे। चावक साज पदार्थों में विशेषतः उपबोध में भाषा था। इसे कई प्रकार से बनाया जाता था। मछनी, बास का मोहन साधारण रूप में प्रचलित था। कुछ मसादों से निश्चित मास स्वर को मधुर बनाता है, ऐसा प्रकार का निश्वास था।

कस्त्रों में बिछे हुए कस्त्रों का प्रयोग मात्र बेबा व था। बुपदटे का प्रयोग स्त्रो-पुष्प दोनों ही करती थे। मिश्र नीवर पहनने से। बसकासे में कुम्भक, नूपुर तथा सन्निविमित करवनी का प्रयोग प्रचलित था। बसतसेना के छठे प्रकोष्ठ के चर्च में वैदूर्य, प्रवाक, शोणिक, पुष्पपद, मरकठ इत्यादि से बने विविध प्रकार के मानुषको की चर्चा है। साध ही छत्र, कुकुब, नस्तूरी, चन्द्ररस इत्यादि सुगन्धित केप के प्रयोग का भी उल्लेख है। कपूर के साथ पान खाने की भी चर्चा की गयी है। प्रसादन मतेक रूपों में आकर्षक था। अधिसारिका के रूप में अपने प्रेमियों से मिलने के लिए जाने से पूर्व प्रेमिकप्रेम स्पष्ट सामग्री से अपने को विभूषित करती थीं।

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

मुल्ककटिक काल में राज्य का छोटे प्रदेशों में विभाजन

मुख्यव्यक्ति परिवार नहीं है जिसका प्रमुख व्यक्ति बहुत गुलाम हुआ हो और अपने सम्बन्धियों को स्नेह एवं आश्रय की दृष्टि से देखता हो। ऐसा परिवार जिसमें सभी व्यक्ति अपनी अपनी कमाई करें और एक दूसरे को न गुलाम ही वह कभी मुनसुफ नहीं हो सकता।

सबसे बड़ा विचार सबसे अधिकतर है।

सबसे महत्वपूर्ण है ठीक-ठीक बसती है ॥ (प्रतीक)

प्राचीनकाल में राज्यों की स्थिति भी ऐसी ही रही है। कभी शासन मूल किसी एक सुयोग्य व्यक्ति के हाथ में चला रहा और रहा। कभी छोटा राज्य भी किसी सुयोग्य व्यक्ति के हाथ में चला गया तो पहले भी स्थिति ही रही। यही कारण है कि प्राचीन इतिहास में सम्राटों की शासन व्यवस्था प्रसिद्ध रही है और इसके विपरीत छोटे-छोटे राज्यों के शासन प्रणाली कम ही हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि मुल्ककटिक काल में राज्य छोटे छोटे प्रदेशों में विभाजित था। इन प्रदेशों के राजा शासन के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतन्त्र थे और इसलिए स्वतन्त्रता के होने से। इससे वे देश की राजनीति में बड़ी भूमिका लेते थे। कार्य में पाठक की हत्या की सम्बन्ध इस समय देश में सामंतीय शासन नहीं था। बनेक राजा थे और वे भी अलग-अलग थे। छोटी-छोटी बातों पर झगड़े रहते थे। शासन प्रणाली अलग नहीं थी। प्रत्येक राज्यकर्मचारी स्वामिनी का और अपने-अपने पद का गर्व करता था। वह सब चाहता था अपना कार्य छोड़ कर चला भी जाता था। औरक और अन्तर्क के कार्यकर्ताओं से राज्यकर्मचारियों की व्यवस्था पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता

१ सामंतीयता के युग में मूल मूल में रहता है।

पुस्तकालय की पुस्तकालय में है ॥ मू० क० १०, ५१

है। शासन प्रबन्ध की विविधता का एक बुरा प्रभाव यह भी था कि राज्य में विरोधियों की सक्रिय वृद्धि पर भी और पदबन्धनकारियों को अपना कुत्सित योबनाई पूरी करने का अवसर मिलता रहता था। इन पदबन्धनों में चोर, मुबारी, विरोधी राज्यकर्मचारी, असतुष्ट पदाधिकारी और राजा द्वारा अपमानित व्यक्ति सम्मिलित रहते थे। इस प्रकार के पदबन्धनों से राज्य जलजला ग्रहण था। सभी को अधिकार ने मरविद्य द्वारा धार्मिक की रत्ता के लिए राजा नामक का विरोध करते हुए कहा है—

जातोऽपि यदास्वमुषाविप्रमन्त्रवर्षा-
 म्नाबापमानकुपितान्च नरेन्द्रमुत्सवन् ।
 उत्तेजयामि मुहुदः परिमोक्षयाम
 पौन्यचयवच श्चौरयनस्य राजः ॥ मू० क० ४,१६

जिस प्रकार राजा उदयन को रत्ता के लिए पौन्यचयन ने प्रयत्न किया था उसी भाँति अपने मित्र धार्मिक के कष्टार के लिए राजा के कुटुम्बी पुत्र अपनी मुबा के पराक्रम से विख्यात और राजा के निजदर से मुक्त तथा मन्त्री बादि राजा के कर्मचारियों को उकसाता है।

और भी—

प्रियमुहुदमन्त्ररथे वृहीत
 रिपुविरसावुनिरभित्तात्मनःके ।
 धरमसममिपस्य भीजयामि
 स्थितमिष रज्जुमुत्ते ब्रह्माकविन्वन् ॥ मू० क० ४,२०

दुर्जन शत्रुओं ने धार्मिक से स्वयं सक्ति होकर विवा कारण उस प्रिय मित्र को कपटगार में डाल दिया है। इसलिये यह मुझ में पड़े हुए कन्धमन्त्र के समान मैं क्षीण बचकर धार्मिक का उच्चार करता हूँ।

इन सत्तियों से कविचक्र के बद्धूत साहस का परिचय मिलता है।

सब समय पदबन्धन का सम्बन्ध होने पर किसी भी वृक्ष को पकड़कर अनिश्चित कास के लिए भेज में डाल दिया जाता था। वही राजा पाठक ने धार्मिक को ऐसे ही भेज में डाल दिया है। राजनीतिक कैदी होने के नाते वेदियों से बचने धार्मिक को कहता है—

हित्वाह नरपतिबन्धवापदेव-
 व्यापत्तिम्पुनमहार्थव महान्तम्

पादाप्रतिबन्धननिबन्धकपादाकर्षी

प्रप्रष्टो गज इव बन्धनात् प्रमाप्ति ॥ मू० क० १,१

राजा के महाबन्धन रूप कपट की आपत्ति से उत्पन्न हुआ शायर को शरि करके बन्धन को छोड़े हुए हाथी के समान चरण के अप्रमाण में लम्बे हुए शृंगलापाय को भीखता हुआ मैं विचरण कर रहा हूँ ।

राजाओं की परस्पर कलह की स्थिति से देश का शासनरत्न उस समय प्राप्त न था । लकाधीन प्रमुख राज्यों में अज्जयिमी की चर्चा विशेष है । गुमरा राज्य गुजराती का है जो कि देवा नदी के किनारे स्थित है जिसे कि कार्यक ने शासनायक होते ही पादरत्न को चिया था । प्राचीन भारत की राजनीतिक दशा में दो राज्यों के बीच आन्तरिक विरोध एक सामान्य बात थी । दुर्बल शासक पर छोटा स्वयं शासक भी क्रोध भाँति आक्रमण करके उसे बसा बैठा है इसका परिचय निम्न उक्ति से मिलता है—

हृदि करसमूह से पाण्डुस्य मेघे

गुण इव पुरमण्ये मन्ववीर्यस्य राजी । मू० क० ५,१७

उसके राजा नगर के बीच मन्व पराक्रम वाले पशु का चर्चल वही प्रकार बध्दरत्न करता है बिना प्रकार आक्रमण में मेघ, मन्व तेज वाले चन्द्रमा को किरणों को डक बैठा है ।

अज्जयिमी राज्य तो राजनीतिक क्षामित का अज्ञात रहा है । वहाँ का राजा शक्ति अधिकारी बल के नेता के द्वारा मार शान्त गया । शासक अज्ञात शासक न था और उसे अपने सैनिक और मन्त्रियों से भी उहायता प्राप्त न थी । वही कारण था कि सारी प्रजा में और अधिकारी वर्ग के देखते-देखते उसे अपने शत्रुओं से हाथ मोल नई, गुलामी और श्रमानी और सैनी कार्यक के प्रति सभी की उदात्तमूर्ति थी । शासक के पञ्चान् मनीन शासक कार्यक का राज्यारोहण किठना सुनर है । अविनाशक सहाता मंच पर आकर रहता है—

हत्वा तं कुम्भजह हि बालक घो-

स्तत्राम्ये हृतमपि विष्य कार्यक तम् ।

तस्यानां गिरिषि विद्याय शैवमूर्ता

शौर्येऽह् व्यसमसत च पादरत्नम् ॥ मू० क० १०,४७

मैं कुछ राजा बालक की मारकर शीघ्र कार्यक को अभिपिन कर बनकी

जाहा मस्तक पर रसकार दु ख में पड़े हुए चाहरत का उद्धार करेगा । एतना ही नहीं, बनटा को यह भी बचाईगा—

हस्ता त्पु त् बलमग्निह्रीन वीराम्ममाभ्यास्य पुषः प्रकृषात् ।

प्राप्त सवद बहुपाधिरास्यं राज्यं बहारेतिव एतुरास्यम् ॥

म० क० १०,४८

सिद्धों के आदेशानुसार भाम्य के उत्कर्ष के श्रेता एवं भूमिगो से रहित सब शत्रु पाठक को मारकर तथा दुरवासियों को वीर्य धारण कराकर इन्द्र के राज्य के समान समु पाठक के, ससार में प्रेष्ठ समस्त राज्य को, मार्ग्य में प्राप्त कर लिया ।

इन्द्र की वर्षा से मूञ्जकटिककार ने यह दिखाया है कि जिस भाँति कभी सर्वत्र इन्द्र का राज्य था उसी भाँति भार्यक का राज्य भी सर्वभूमि होया । एतान्त्र वह मत्स्यदीक्षित ससके पौरव का प्रतीक है ।

निष्कर्ष

मूञ्जकटिक में वहाँ एक ओर वसन्तसेवा एवं चाहरत तथा मदनिका और दक्षिणक का वैदिक सम्बन्ध दिखाया गया है वहाँ दूसरी ओर राजनीतिक शक्ति में दुष्ट राजा के स्वान पर उन्नत शाठक के सिंहासनास्य होने की भी वर्षा है । इतिहास के प्राचीन पृष्ठों पर यदि बृष्टि डालें तो चारण्य से शत्रु एक यही देखने को मिलेगा कि सैन्य का सबसे बड़ा शत्रुदा सदा से गर वीर नारी से सम्बन्धित रहा है नके ही उसके स्त्रो में मिमता रही ही । दूसरी ओर यह विरोध एतको के बीच रहा है वहाँ एति का सर्वत्र वीरित्व और अन्धेचिरय को शक्ति के लिए सदैव रहा है । एही दोनो बातों को लेकर मूञ्जकटिककार ने अपनी कथावस्तु को संबोधा है । वही वृष्टि भिन्नी पनी रही, वही अपनी प्रतिमा से दोनों का समाधान बनटा के समस्त एक सुन्दर प्रकार के रूप में प्रस्तुत किया ।

स्वेच्छाचारिता के परम सोमा

यामन सदैव वही अन्धता माना जाता है जिसमें सुयोग्य अधिकारियों को जर्म और नीति के अनुकूल बनने अनोवीठ विचारों को पूर्ण करने का अवसर मिले । इसी विचार से महात्तन एतल की सराहना की जाती है । इस सम्बन्ध में एक ग्रीक विद्वान् हीरोडोटस का मत है—“Herodotus the Greek writer defined democracy as that form of Government in which

the supreme power of the state was vested in the member of the community as a whole "

इसके विपरीत तानाशाही राज्य को इसलिए दोषी ठहराया जाता है कि उसमें शासक की ओर से ईमानदारी नहीं बरती जाती बल्कि स्वैच्छाचारिता को अपनाया जाता है । इसी से कहा जाता है—

"Whatever the original need of a dictatorship was it has always degenerated into a reign of terror under which the most violent methods of crude repression are employed to intimidate the people."

स्वैच्छाचारिता शासको ही अन्याय करीब सप्ट पाती रही । पिने बुने लोग को उनको हों में ही मित्राणि बाडे होते बे बे ही प्रसन्न रहने बे ।

मूच्छ्रकटिक शासक के छोटे-छोटे प्रदेशों में बँटे हुए राज्यों के शासक स्वैच्छा-पारी होते थे । शासक भी इसी प्रकार का शासक था । मनु का तो यह मानना ही नहीं । अधिपत्यिक के कहने पर यो—

आर्य चाक्रेत्त । विभवे वय प्रमापम् । येये तु राजा । त्वादि
शोधनक विज्ञान्यता राजा पातकः—
अर्य हि वायकी । विरवैरसती, सद् ॥

आर्य चाक्रेत्त । निर्णय करने में हम लोग अधिकारी हैं और जाने राजा को इच्छा । फिर भी शोधनक ! राजा पातक को इसकी सूचना दे दो ।

'मनु के अनुसार यह पातकी शासन मारा नहीं जा सकता है; सम्पूर्ण ईश्वर के साथ इसे राष्ट्र से बहिष्कृत कर दो ।' पातक उसकी एक नहीं मुद्रता और आर्य चाक्रेत्त को सूची का कठोर दण्ड देता है यही तक कि उदार चाक्रेत्त को भी कहना पड़ता है—

अहो अधिपत्यकारी राजा पातक । म० क० (न० मर)

जरे राजा पातक अधिकारी है ।

और तो और राजा पातक के सम्बन्धी भी तो हम स्वैच्छाचारिता से दूर नहीं हैं । मित्रु (बौद्ध सम्प्रदायी) के शरोचर में कीर्तन होने पर राजा पातक के साथे उदार (अस्मानक) की बात से बचते हुए कहा है—

'एते ही लाभदायकदण्डये आहारे । एकेन मित्रुपा मदमाहे विदे
अप्य वि बहि बहि मित्रुपेरादि, त्दि त्दि होय विम गार्त विविच

जोवाइन्टि । ता कर्हि बसामय शल्प गमित्तम । अपवा मन्तानके प्नेव बुद्धे मे सरपे ।'^१
(मू० क० अष्टम अंक)

धारचर्य है यह वो राजा का सामा सम्बन्धक का बन्दा । एक मिथुन के अपराध करने पर दूसरे भी जिस किसी मिथुन को देखना है उसी को बिल के सम्मान नासिका छेद कर बाहर कर देता है । अब असहाय में किसी कारण में पाठे अपवा मयवाम बुद्ध ही मेर भाव्य है ।

ऐसे नृपति और शूर नासन की कल्पना ही सब मयावम् है तब सब में वह किन्तु पुर्बान्त रहा होया । एसा राजतन्त्र जिसमें राजा की अक्षीयित शक्ति हो नहीं निरक्षुयता के अतिरिक्त और रखन ही क्या हो सकता है ? इस समय राजा व भेदक शासन की कर्मपरिणी का प्रमुख या परम कर्तुतो का निर्माता भी स्वयं या । शो का प्रमाण या कि शायंके में भी यणिका वसतसेना को चारु-कत्त को बधु के रूप में ओचित्य प्रदान किया । स्वल्प-सम्बन्धी विषयो के राजा अन्तिम अधिकारी या । यहाँ तक कि न्यायाधीशों की नियुक्ति और उनका निरस्तोकरण सब कुछ राजा के अधिकार में । तभी तो शासन का अधिकारिक से करने का साहस हुआ—

(उद्धरण) 'या कि न दीधरि मम बवहाणे । अद् न दीगदि । त्तो वाउत्तं वावाग पावम बहिनीपरि विन्मदिब बर्हिनि अत्तिक न विण्णविम एव अणिवत्तपिब इत्थे ऐत्थिय एत्त'^२
मू० क० (न० अंक)

(अर्थ के साथ) मेरे अग्रियोग वर क्यों नहीं विचार होगा ? यदि विचार नहीं होया तो मयव भीजा अहित के प्रति राजापाठक से कहकर तथा बहिब एक माता को सुचित कर इस न्यायाधीश को निकलवाकर इसके स्थान पर किसी दूसरे न्यायाधीश को नियुक्त करवायेगा ।

बिना राजतंत्र में राजा और उसके सम्बन्धी नेबल इसलिये कि वे राज-

१. एय स राजस्थलसत्माक मायत । एकेन मिथुनरूपे इतेऽन्यमपि बध पत्त मिथु पश्यति, तत्र तत्र पामिन्व नग्निका विडवापबाह्यति । तत्कुत्र-शरक शरक नक्षिप्याति । अपवा मन्तारक एव बुद्धो मे शरपम ।

२. या कि न क्षयते मम स्वबहार ? यदि न क्षयत तत्राभुत्त राजान पाठक भविनीपरि विज्ञान्य भविनी मातरञ्च विज्ञान्य एवमधिकरत्तिक इरीकृत्या-न्यमधिकरत्तिर्ह स्वापयिष्यामि ।

घराने के हैं अपने अधिकारों का यदि असोमित रूप से दुरुपयोग करें तो क्यों न वह कुशासन जननीति के अर्थ में विलीन होना । वही दगा उस समय के स्वच्छ-भायी कुशासकों की रही ।

निष्कर्ष

मूच्छकटिक काल में राजाओं की स्थिति सुदृढ़ न थी । कोई सम्राट् नहीं था । प्रशासन भी विचलित था । स्वच्छभायिता, कुटिलता और निरकुशा सर्वत्र थी इसीलिए राजा पालक पर आश्रय की विषय विस्तारकर मूच्छकटिककार न जननीति पर नीति की विषय प्रदर्शित की है ।

सारकाण्डिक प्राति योजना

शासक अशक्त हो या कुछ अपिच्छपीयन एवं अन्याय में उसके शासन क प्रति प्रतिनिध्याएँ होना स्वाभाविक है । राजराम्य को लोच आन भी अच्छा कहते हैं और अग्नेयी, तैयूरी एवं नाबिरछाही शासन को कुछ बताते हैं । न केवल भारत में बल्कि छठार के सुदूर राष्ट्रों में इतिहास इस बात का समर्थी है कि अनेक प्रातियाँ हुई हैं । ये प्रातियाँ सभी हुई हैं जब कुशासकों के अत्याचारों से प्रजा नाहि नाहि करन लगी है और उसे प्राति के अतिरिक्त अपने अत्याचार का कोई भाव नहीं सुसा है ।

मूच्छकटिककाल में राजा पालक के अत्याचार से सभी प्रजा पीडित थी । अकार के अत्याचार से असम स्यावाधीनों के श्वाय की अवहेलना की । प्रथम तो आश्रय निर्दोष का अति भी अकार की कुत्सित योजनाओं न उसे दोषो बनाने में कोई और बरत नहीं रखी, जिसके एकस्वल्प अधिकारी अत्यन्त ही आश्रय को निर्दोष कहने में लकीच ही करता रहा पर मनु की अश्रम्यवस्था को ध्यान में रखते हुए अधिकारमयक में देश निष्कासन ही आश्रय के लिए अनेक समझा कर दुष्टशासक न उसे ठुकराया

लोकनक की निम्न उक्ति देखिए —

‘राजावाससो अपि—अथ अत्यन्तवत्सल कालमासो वसन्तसेना वावादिवा त्ताई अत्रैव आश्रयाद् गते अथिच विधिम् तादिच अल्पिगमनाथ परव गूढे अत्रैवति’ मू० व० (नवम अक्ष) ।

१ राजा पालक की अशक्ति से अत्यन्तवत्सल कालमासो वसन्तसेना स्यावादिवा त्ताई अत्रैव आश्रयाद् गते अथिच विधिम् तादिच अल्पिगमनाथ औरवा गूढे अत्रैव इति ।

राजा पासक कहते हैं कि जिस लक्ष्मणी बलकार के कारण बलभद्रदेव मारी गयी है उसके गले में बन्ही बलकारो को बाँधकर, बन्हा पीठकर बलिदान स्थान में के बलकर शूली पर बद्धा थी ।

इस प्रकार की राजा बनाने का प्रयत्न पहले से ही बल रद्दा का और अधिक बलका नेता था । उस समय का बलभद्र पीठ पर प्रजापति इस बात के लिए निश्चय था कि वह क्षति द्वारा बुद्ध राजा पासक को सम्भ्रमित करे और उसके स्वाम पर अधिकार के नेतृत्व में भारत को पदाधिकार करे । राजाओं की बातचीत से भी, जो कि बलभद्र को खींचे देने के लिए बलभद्र ने, इसकी सफल सिद्धि है ।

'क्यापि कोवि साधु बलं बहम बल्ल बोधानेवि । कथापि कण्ठो पुत्रे प्रावि, तेन बन्धानेन सम्भ्रम्यमान मोक्षो होवि । क्यापि हस्ती बन्धं सम्भ्रमि, तेन सममेन बन्धे मुक्तो होवि । क्यापि राजपरिवर्तो होवि, तेन सम्भ्रम्यमान मोक्षो होवि ।'

मू० क० (१० श्ल०)

कभी कोई राजा पुत्र्य बल लेकर बन्धु पुत्र्य को लूटा होता है । कभी राजा के पुत्र बलभद्र ही जाता है जिससे कि बने गद्दीराज के समय सभी बन्धु पुत्र्यों को छोड़ दिया जाता है । कभी हाथी बन्धनस्थान छोड़कर बिकक पड़ता है जिस बलभद्र में बन्धु पुत्र्य मुक्त हो जाता है । कभी राज-परिवर्तन हो जाता है जिससे सभी बन्धु पुत्र्यों की मुक्ति हो जाती है ।

मन में बलकार की कृतिरता के कारण और बलभद्र के निर्बोध होने के कारण पाण्डव भी बलभद्र को खींचे देने में निश्चयिता रहे थे । वे बलभद्र इच्छित तथा रहे थे कि समस्त कोई बात ऐसी हो जससे उन्हें बलभद्र को खींचे न देने पर बल और वह भीमित रह जाय । राज-परिवर्तन की समस्त उन्हें जाता थी बलः इत कथन में उसकी बर्धा है । मन में बलभद्र के कारण की पुष्टि भी किष्ट मुक्ति बलभद्र से पाण्डव के की है—

'अथे भविषो हिम पिहुणा रामा पञ्चमणे, बन्हा-पुत्र कीरज नद तुह

1. क्यापि कोवि साधुरं दत्ता पथ्य मोक्षयति । क्यापि राज. पुत्रो बधति, तेन बन्धिमहोत्सवेन सर्वबन्धाना मोक्षो भवति । क्यापि हस्ती बन्धं सम्भ्रमति, तेन सममेन बन्धो मुक्तो भवति क्यापि राजपरिवर्तो भवति, तेन सर्व-बन्धाना मोक्षो भवति ।

बन्धनरहितता होवि, मा घृता बाबादयसि बन्धनम्^१ । मू० क० (६० अंक)
 बरे । स्वर्गारोहण करते हुये पिताजी ने मुझे आदेश दिया था कि पुत्र
 बोरक ! यह बंध करने की तुम्हारी बाधे हो तो बन्ध पुरुष को सहसा मत
 थारना ।

बाबरस के प्रति बाग्दादी है लेकर बहिष्कारियों तक का औजस्यपूर्व
 व्यवहार इस बात का प्रतीक है कि बाबरस का मनो के हृत्प्यों में स्वाध था ।
 वहाँ तक कि बार्बक भी जगना आयाते था । एक बार इन्हीं की दाही में बउ-
 कर बह इनकी धरण में गया था । इसी के फलस्वरूप तो बार्बक ने पाण्डक को
 मारकर दण्डमित्री का राज्य पत्नी ही सबसे पहले बाबरस की बेना बनी के तट
 पर स्थित कुम्हारती भगरी का राज्य दे दिया । बार्बक ने राजदास्य होते ही
 अपने अनुकूल बातावरण बनाने में बड़ी कुशलता दिखाई । सड़की सफ़लता का
 एक मात्र कारण इसी में था, उसने सज्जनों से आत्मीयता और दुर्जनों पर बड़ी
 दृष्टि रखी ।

निष्कर्ष

तत्कालीन राज्य व्यवस्था में प्रशासकों द्वारा किए गए बातें सभी निर्बंध
 राजा को माल्य न थे । मही कारण था कि राजा पाण्डक में बाबरस-सबपी मृत्यु-
 रण के बीभत्स पर ध्यान न देते हुए उसे फँसो का आदेश दे दिया ।

राजा पाण्डक की निरकुशलता तथा राजा बार्बक का बीहार्ब मनसमुदाय के
 विरोध का कारण बना । इसी के परिणाम-स्वरूप सचिबक के सहयोग से बार्बक
 को प्रोत्साहन मिला और पाण्डक के स्थान पर बार्बक ने शासन का भार
 संभाला । बाबरस को बन्धन मुक्त हुए और बरतवहेना की उनके साथ वैवाहिक
 धीरन मापन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

विभिन्न यदाधिकारी एवं प्रजास्यक

उस समय समूचे देश का शासन राजा के हाथ में था और न्याय व्यवस्था,
 पुलिस व्यवस्था एवं नगरपालिका सभी से प्रेरित होकर बननी की देखभाल
 करती थी । राजबिधान के अनुसार शासन चलता था । बानून को बरबहेना
 करने वाले के विरुद्ध न्यायालय में बमिदोष पताया जाता था । पराश्रित बर्ष

१. बरे, बपितोऽसि पिता स्वर्ग बन्धनम्, बया—पुत्र बोरक, यदि तब बन्ध-
 पालिका भवति, मा सहसा व्याबादयसि बन्धनम् ।

को दण्ड का बावेष होता था। पुलिस के हाथ में दण्डव्यवस्था थी। दण्ड के लिए वह बलिमुक्त को विवश भी करती थी। सामान्यतः सभी राजकीय कार्यालयों का एक प्रमुख अधिकारी होता था जिसका सर्कल राज्याधिकृत उच्च अधिकारियों से होता था और वे उच्च अधिकारी अपना सीधा सम्बन्ध राजा से रखते थे।

मुञ्जकटिक में विद्यमान राज्य का प्रमुख वर्ण है वह है उज्जयिनी। वैसे कुशावती की भी बर्ण है। उज्जयिनी के विभिन्न पदाधिकारियों की बर्ण है। न्याय विभाग के उच्च अधिकारी को अधिकारधिक कहते थे। इसी अधिकारधिक की सहायता के लिए दो पदाधिकारी और होते थे जिन्हें धेष्ठिन् और कवस्य कहते थे। सामान्यतः न्यायालय के पदाधिकारियों के अधिकारधिक की बौद्धक कहा जाता था। न्याययुक्त अधिकारी-मण्डल (Panel of assessors) में राज्य के सम्मानित व्यक्ति होते थे जो अधिकारधिक के साथ बैठकर न्याय के सम्बन्ध में अपना दृष्टि परामर्श देते थे।

राज्य की सामन्तर और पाण्डु राजा के लिए जो विविध पदाधिकारी थे। बाह्य राजा के लिए सैनिक व्यवस्था थी। वसन्तसेना के सेवक पैट के व्यवस्थापन प्रणाली पर—

‘सुसमृदाया गामाया उज्जयिनी ।’ मू० क० (पंचम अंक)

सुसमृदा नामों की कौल राजा करता है? विदुषक ने उत्तर दिया—रव्या (गल्पि)। इस पर चेट होता। विदुषक भी समुद्र में पड़ गया और चाकल से पुछने लगा। तब चाकल ने कहा, सेना।

राज्य की ओर से मुहम्मद विमान की भी व्यवस्था थी। राजनीतिक विरोधा को रोक्ने के लिए और राज्यसम्बन्धी सभी बातों की जासकारी के लिए मुहम्मदों का सीधा सम्बन्ध राजा से था। इसका परिपक्व आर्षक के संरक्षण में उत्तर चाकल के कर्ण से प्राप्त होता है—

हृदयैर्न मनुरूपसेर्नहृदयकीक

स्थातु हि क्षयमपि न प्रशस्तमस्मिन् ।

सैत्रैश्च सिद्ध नियम पुराणकौ

पस्येन्नु धित्तिपठनी हि चाकलया ॥ मू० क० ७, ८

राजा पाण्डु का इत प्रकार भ्रष्टान् बनाने करके (भार्यक की राजा करके)

इन जयहू सज्जनर की ठहरना उचित नहीं है। हे मनेय ! इस बन्धन (बेड़ी) को पुराने रूप में गिरा दो। कहीं राजा झूटपो दृष्टि से इसे दैस न लें।

राजा एवं राज्य की सुरक्षा के लिए पुस्तकार व्यवस्था थी। राज्याधिकारियों के अतिरिक्त नगर की प्राकृतिक सुरक्षा भी दुर्गों से होती थी और नगर बापों और प्राकार से घिरा था जिसके विभिन्न स्थानों पर घूम फिर कर सदेह के बखसरो पर नगर की देखभाल की जाती थी। चारों दिशाओं में नगर के पास घबोली द्वार से जहाँ बाहरी प्रवेश की देखभाल के लिए पदाधिकारी प्रचारसको (पुलिस बफसरों) का कमा पहरा रहता था, कुछ गुप्त स्वख (Sentry posts) भी बने थे जो सम्मन्त सभी प्रवेश द्वारों पर थे। इनकी बर्षा छठे बर में बोरक और बन्दनक के प्रबन्ध (Carts) निरीक्षण काल में जाई है।

रसक (Sentries and Guards) नगर की कल सपाते से और विशेषतः रात्रि के समय सबको पर सजातार बूमते रहते थे। यह सब व्यवस्था तो बाह्यरक्षा के सम्बन्ध में रही। इसके अतिरिक्त आन्तरिक व्यवस्था प्रचारसक पदाधिकारियों (Police Officers) के द्वारा निरूपे रूप से होती थी।

पुलिस पदाधिकारी बनेक से जो अपने-अपने विभागों की समुचित देखभाल करते थे। पुलिस विभाग का सर्वोच्च मुख्य पदाधिकारी प्रधान बण्डबारक बखवा पुष्पी बण्डपालक कहलाता था जिसके अधीन पूरे पुलिस थी। यह बंद बीरक को प्राप्त था। यह राजिक कहलाता था। नगर की सुरक्षा का भार इसी पर होता था। अतः यह नगर-रक्षाधिकर्ता होता था।

बलपति बखवा मन्तर का एक पद था। यह एक बकार का कमान बखवा प्रधान पुलिस अधिकारी होता था। यह पर उस समय पन्तरक को प्राप्त था।

ये बीरक और बन्दनक राजा के विश्वास पात्र थे अतः राजप्रत्यक्षित कहलाते थे।

राष्ट्रीय (Superintendent Police) का पद सामान्यतः राजा के साथे ही दिया जाता था। बकार को इस पर पर रहने का अधिक सौभाग्य प्राप्त था। राष्ट्रीय बखानक के जाने ही उसरी अतिरिक्त पेशकों ने बसठकेना की चाह थी आदरत को विरोधी बनाना। अन्य छोटे पदाधिकारी से मिल कर बर्षों का नियन्त्रण था। ऐसे ही पदाधिकारियों द्वारा राज्य की व्यवस्था सुचारु रूप से चलती थी पर सर्वोच्च नियन्त्रण राजा का ही था।

निराकरण

पातक का साधन प्रसारण ही वा बहु निमित्त है। इसका मुख्य कारण स्वयं पातक वातक था। इसकी जादू और पर जो पड़ो। पदाधिकारियों की उद्देश्य है ही ही राज्यकर्मिता का विरोधियों को बचकर प्राप्त हुआ। यदि प्रत्येक पदाधिकारी अपने अपने स्थान पर अपने कर्तव्य का पालन करता तो क्यों राज्य की व्यवस्था मजबूत होती। जिस गलती पर बसतसेना को बैठकर पुष्प-करणक बीजोद्यान जाना या उष पर बरीबुह से माना हुआ वार्षिक बैठ गया और राजा के साथे सत्पातक की बाड़ी पर बसतसेना बैठकर पक भी। व्यासक के सम्बन्ध में अदनक के सचेत करने पर जब पालीवान से पुत्र तो जात हुआ कि इसमें बसतसेना पुष्पकरणक बीजोद्यान जा रही है। अदनक ने जो यह सुनकर पाती देखते में उद्देश्य दिखाई और बसतसेना एक आठरस के प्रति मन्नाभाव व्यक्त करती हुए बीरक से कहा—मायवर्ष है, तुम उन्हें नहीं जानते इस पर बीरक ने कहा—

बागामि पारवत्त बसतसेना न सुट्टु जानामि ।

पत्ते न राज्यकर्म पितरमि अह न जानामि ॥^१ मू० क० ६, १५

मैं वार्षिक पारवत्त को जानता हूँ और बसतसेना को भी अच्छे तरह जानता हूँ किन्तु घना का कार्य उपस्थित होने पर मैं अपने पिता को भी नहीं जानता।

बीरक के ऐसे विचार उसकी राजभक्ति के निरन्तर ही लोचक हैं, पर अदनक को वार्षिक को पहचानकर उसके गिराविलाने पर उसे अममदाल से बुलाया, मन्त्र-बीरक के निरीक्षण हेतु प्रयास करने पर उसने उसके हाथ छोड़कर भूमि पर गिरा दिया और पैरो से पीट दिया। इस पर बीरक ने कहा—

ता सुत्तु ऐ, बहिक्करमन्ने बह दे

बहरम न कम्पामेनि, ततो य होदि बीरको ॥^२ मू० क० (प० अ०)

वत्तुर्न दण्ड मैं मस्तक मुण्डन, बैठ से मारना, घन सेना और बहिष्कार की कम्पा की जाती है।

१. बागामि पारवत्त बसतसेना न सुट्टु जानामि ।

प्रत्ये न राज्यकर्म पितरमप्यहं न जानामि ॥

२. वत्तुत्तु ऐ, बहिक्करमन्ने यदि ते वत्तुर्न न कम्पयामि, तदा न कपामि बीरकः ।

तो सुनो यदि व्यापारिक में मैं सुनूं चतुरय रथ न दिखलाई तो मेरा नाम बीरक नहीं ।

इन बर्षोंके से चन्दनक अपने को अपमानित समझकर बीरक को नाई होने के नाते बुरा कहने लगा और बीरक चन्दनक को अपमान होने के नाते धिक्कारने लगा । यद्यपि दोनों हीमर्ष वे तथापि ऐसा ज्ञात होता है कि नाई अपने को खेष्ट समझते थे और अपमान को कुछ एक अस्पृश्य समझा जाता था । जैसे धी पदाधिकारी के नाते बीरक पर चन्दनक से खेष्ट था । बीरक और चन्दनक का पुत्रिक विभाज में होना यद्यपि इस बात का प्रतीक है कि इन समय राज्य की दृष्टि में राज्यसंभारियों की नियुक्ति में भेदभाव नहीं था ।

नगरराजों का प्रभाव तो अधिकतरिक को "बहुमयराजिनाप्रमादः" उक्ति से भी स्पष्ट है जिसमें आरभ्यपूर्वक नगरराजों की असावधानता व्यक्त की गयी है । यहाँ तक कि पुष्करभङ्ग जीर्णोद्योग जैसे सार्वजनिक स्थान में किसी एक का पाया जाना अपरिचित है । यह कोई आचार्य बात नहीं कि स्वयं नगर रसायिष्ठ बीरक आकर अधिकतरिक से कहता है—'दृष्ट च जना स्वीकृतेषु स्थापयैवित्पुष्कमानम्' । म० क० (न० अ)

प्रभाव का एक कारण यह भी हो सकता है कि जब अधिकारी जानते थे कि राजा स्वयं व्यवस्थापक हैं तो इनका पूर्ण उत्तरदायित्व नहीं है । जब इनकी देखभाल चरुती किरती थी । यदि आजकल पुलिस विभाग में कोई दुर्घटना है तो आरभ्य इसलिये नहीं कि भारत में ही यह विभाग स्वीकृतापारी रहा है । इसका अर्थ है कि बड़े बड़े (रिश्ते का रूप) नहीं था । उस समय के न्याय विभाग के पदाधिकारी अपने स्थान पर अत्यन्त निर्भीक और दिग्गज होते थे । पूर्णतः वे भी अपनी स्थिति सुदृढ़ नहीं समझते थे । इसीलिए राजा का रथ देखकर न्याय करते थे ।

आजकल के न्याय विभाग में भी कहीं-कहीं यह दोष देखने की दिग्गता है । यद्यपि प्रभाव में ऐसा नहीं होना चाहिए पर स्वार्थ और प्रलोभन में धार न्याय का सिंहासन भी हिलकर अत्याय की ओर झुटने लगा है ।

नगर व्यवस्था समिति (नगरपालिका)

सर्वप्रथम को व्यवस्था तो राजा के नाम पर प्राचीनकाल में न्याय विभाग एक पुलिस विभाग द्वारा होती थी पर नगरों की आवश्यकताएँ और इनकी पूर्ति आवश्यकताएँ द्वारा होती चाहिए । संभवतः इनकी सामान्य

व्यवस्था उस समय सिष्ट समुदाय की योजना से होती होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि नगरों के मकान निर्माण, बस और जहाज व्यवस्था, स्वच्छता, शिक्षा, कर वसुली, शिक्षा कवचन, मन्डिर, कुएँ, शार्पवर्णिक मकान, घुलपूह खादि की उत्कृष्ठीय व्यवस्था उत्तम थी। बसतसेना के मकान इसके प्रतीक हैं।

यह सिद्धि किन्ती न किन्ती रूप में बहुत शायीलकाक से चली जाती है। ठीक भी है किन्ती अक्षी व्यवस्था नागरिक बचमे नगर की स्वय कर सकते हैं सतनी और लोपो के दिवारो में वा की नहीं सकते। सम्भ हो नगरो के सिष्ट इस सम्बन्ध में विभिन्न बतराशि ही व्यय कर सकता है अपवा कुछ और दिवस बना सकता है पर समुचित देखमाक वो स्वानीय नागरिक ही कर सकते हैं।

यही कारण है कि इस प्रकार की सासन व्यवस्था में सुरक्षा और शाति का पूर्ण साधान्य वा एक सार्वजनिक कार्य अपने-आपने विभागों द्वारा सुधार कर से चलते थे। निस्चय ही सड़कें और पत्थिर्मा पाठावाक के लिए पानी और शार्प कल्पनी जाती होगी जिसे पानी इकट्ठ न हो पर सम्भवतः ऐसा राज्य-कार्यालयो के सामने होगा, सामान्य रूप से न होवा। उनके दोनो ओर बाकिर्वा होनी जिन्से बरों का और बरसात का पानी बहता रहे। यही रूप बाबकन भी देखा जाता है। राजपम बचवा राजमार्य (Range high way) और बतुम्प (Public square) की सुम्बवस्था भी होमी पर तरकाकीन बलिर्वा सुठी नहीं थी बरन् बरनों के निर्माण से बन्ध थीं, यदि ऐसा न होठा वो बाबदत की गाली दूसरा मार्ग बबन्धन क्यों जाती? इसका कारण ही यही था कि बहसा मार्ग माये स्तम्भ से बबन्धन था। कर्वा कहु में सड़कों पर क्रीचक ही जाती थी। इसका प्रमाण बही है कि जब बाबी और कर्पा में वसंतसेना बाबदत के घर पहुँचती है तब उसके मकान में प्रवेश करने से पूर्व अपने पैरो को धो लेती है। इससे सात होगा है कि नगर की सभी सड़कें पक्की नहीं थी। बचपि यह स्पष्ट मही है कि सार्वजनिक मकान, घुलपूह, मन्डिर, शाकाब, कुएँ, पार्क और मन्डिर खादि का निर्माण जो नागरिको द्वारा ही हुई कतराशि से होता था किम के निरीक्षण में था. पर यह निश्चित है कि नगरपालिका की सासन-व्यवस्था पर ही यह साधारण्य था। सम्भवतः इसका कोई पुबन् विभाग हो जो नगरपालिका की ही सासन-व्यवस्था के बतर्भव हो। यह ही स्पष्ट है कि बगारोवम और अक्षमे देखमाक, बाब ही पुम्पकरवक जैसे उबनों की व्यवस्था समुचित थी। बरों के पुम्प और कचो की देखभाल उदात्तरूपक करते थे। बिट

ने सम्राट को काबेडीपुत्र से सम्बोधित करते हुए उद्यान की घोषा किंतु क्व मे रिन्दाई है यह भी देखने योग्य है—

वसो हि ब्रह्मा एकपुण्योमिता

कठोरनिप्यन्दस्योपवेदिता ।

नृपाजना रक्षिभनेन पालिता

मया साराय इव शान्ति निर्वृष्टिम् ॥ सू० क० ८, ७

एक एक पुण्यो से बोधित, निरिन्दत उद्यानों से भी बली मति अलङ्कृत ब्रह्म राजा की भाषा से रत्नों द्वारा रक्षित सपत्नीक पुरुषों के समान गुण को प्राप्त कर रहे हैं ।

यह भी स्पष्ट है कि द्युतयुद्ध का व्यवस्थापक समिक था । यह विप्लव की निम्न शक्ति से डरा हुआ है जो कि स्वर्णयुवकों के खो जाने के सम्बन्ध में बसवसेना के प्रति उद्धत है—

‘सो न सन्निभो राजवात्सवहारी न धानिवादि कहि बजोति ।’^१

सू० क० (ब० ब०)^१

द्युत का समाप्यय यह समिक राजदूत न मासूम कहीं जमा गया ।

मगर के नाते बाप एक द्युतयुद्ध भी नगरपालिका वही व्यवस्था के अंतर्गत थे । उस समय की कर व्यवस्था भी समीचीन थी । चाकरत ने गुण वर्णन में उद्यमा व्यक्तकार द्वारा कौशा सुन्दर कपक इत सम्बन्ध में प्रस्तुत किया है—

बन्निभ इव शान्ति तरव, पम्पानीव स्थिताभि कुमुमानि ।

दुस्वमिभ सापन्नन्ती मयुक्तपुण्या प्रविचरन्ति ॥

सू० क० ७, १

गुण बाणिज्य के समान सुपोषित हो रहे हैं । कुछ विक्रीय वस्तु के तुल्य वर्तमान हैं और सम्राट राजपुरुष के समान राजभाषा लेते हुए परिभ्रमण कर रहे हैं ।

बनेक भ्रमर कपी पुरुषों के राजभाषा ग्रहण ने समान बहून से इस बात की प्रतिपत्ति है कि कर बलुनी एक-दो व्यक्तियों के द्वारा नहीं बरन् बनेक व्यक्तियों द्वारा की जाती थी । सम्भवतः मुरगा के लिए साब से पुत्रिभ भी रहती हो ।

१. स न सन्निभो राजवात्सवहारी न धामते द्युत गत इति ।

वर्तमान नगरपालिकाएँ निस्तब्धेह उत्तमयोग सम्बन्धित सञ्चन-व्यवस्था की प्रतिरूप हैं। यह विभिन्न हैं कि इनका यन्म वर्षों पूर्व इस देश में किसी रूप में हो चुका था।

निष्कर्ष

मूच्छकटिक में जिस युग की खोजें हैं उस समय राज्य छोटे थे। अठ-व्यवस्था समीचीन प्रयुक्त होती है। नगर-व्यवस्था में सभी कर्मचारी अपने-व्यपने कार्य में कुशल थे। नगरपालिका और जिन्ना परिवर्द्ध का वर्तमान स्वरूप उत्कालीन सुभ्यवस्था से परिवर्द्धित होता है।

भारतीय नरेशों की प्रतिष्ठा उनके शोचनिय शासन के कारण रही है। बसंदासों के अनुसार बारम्बार है ही यहाँ के शासकों को इस बात का ध्यान रखा है कि वे ईश्वरीय प्रतिनिधि हैं। अतः उनका सर्वम्य बलता की सेवा करना है।

न्यायाधीशों की योग्यता एवं फौजदारी न्याय विभाग

उत्कालीन न्यायाधीश यन्सृष्टि एवं कर्मचारियों की श्याय का आचार आते थे। इसी विचार से विवाहसन्ध विषयो में उनके निर्णय धर्मसङ्गत और निष्पक्ष होते थे पर कभी-कभी किसी विशेष स्थिति में वे पूर्णरूप से न्याय करने में स्वतन्त्र न थे। उन पर राजा और उनके कुपानाजल व्यक्तियों का आतक था। अतः कुछ शीघ्र न्यायव्यवस्था निर्णय देने में यह सोचा करते थे कि राजा के इच्छानुसार उनका निर्णय हो। अकार ने इसीनिष्ठ हो अधिकारिक को बुरी तरह धमकाया और यह कहने का साहस किया—

‘एव भणामि—अपराह्णस्त्वि न च मे किंपि करिष्यति ।’^१

यै कहता है मेरे अपराह करने पर भी राजा मुझे कुछ बण्ड नहीं दे सकेंगे। मूच्छकटिक का मन्म बक उस समय की न्याय व्यवस्था से मरत पठा है। न्यायस्य में एक अधिकारिक बचवा न्यायाधीश होता था। उसकी सहायता के लिए एक प्रेषी मणेशर के रूप में होता था तथा अन्तस्य देशकार के रूप में कार्य करता था। यह त्रिपिक होता था। सोचनक बहो का एक भिन्न कर्मचारी होता था। न्यायस्य में सञ्जात बनों को बंधने के लिए आसन दिने जाते थे। न्यायाधीश ने आदरत का परिचय पाकर कहा है—‘स्वानतमार्यस्य । यह घोषनक आर्यस्यसनमुपनय ।’ मू० क० (न० अ०)

१. एव भणामि—अपराहस्त्वापि न च मे किंपि करिष्यति ।

जापका समिनन्दन करता है। भद्र जीवनक ! कार्यं वाहरत्त के लिए आरतन जाओ। न्यायाधीश निष्पल होते से एव जनता के साथ सहानुभूति एव सिष्टता का व्यवहार करते से। प्रायो-प्रतिवादी के कथन को सिद्ध कर लिया जाता था और सामी का भी ध्यान रखा जाता था। न्याय निःकुन्क था और उसमें अधिक समय नहीं कबता था। मृत्युव्यय का भी छोड़ निर्णय कर दिया जाता था किन्तु न्यायाधीश के निर्णय को अंतिम स्वीकृति राखा ही होता था। यों तो राजा का निर्णय ही सर्वोपरि विधान था पर न्यायनिर्णय अनुस्मृति के आधार पर किया जाता था। कभी-कभी न्यायाधीश अधिकारियों को बात सुनकर और अभियोग को पूर्ण रूप से समझकर उच्चका सब विवरण अपनी संस्तुति के साथ राजा के समीप भेज देता था और उस पर राजा का अंतिम निर्णय होता था। यद्यपि अधिकारिक का न्यायसम्बन्धी प्रयास अवैकृतिक समुचित होता था फिर भी वह सबकी प्रसन्नता का पात्र न था और अनाई के स्थान पर उसे बुलाई ही मिलती थी।

अधिकारिक ने स्वयं कहा है कि व्यवहारपराधीनता से न्याय-प्रतिवादी का मनोगत भाव जान लेना हम जैसे न्यायाधीशों के लिए बड़ा कठिन है -

छन्न दौषमुपलिपन्ति पुण्या न्यायेन दूरीकृत

स्वाम्बोवान्कथयन्ति भाषिणरभे सगामिभूता स्वयम् ।

ते पलापरपसबधितबसेर्बिर्नृप. स्पृश्यते

छत्तेपारपवाद एव मुक्तो इष्टुर्गुणो दूरत ॥ म० क० ९, १

बाओ एव प्रतिवादी नच तस्य बाध को छिपाकर जनोतिपुत्र अक्षय अभिषेप को उपस्थित करते हैं। स्वाय के अनुराग क बसीमूठ होकर न्यायालय में वह अपने दोषों को नहीं कहते। पक्ष और विपक्ष से परिवर्धित दौष ही राजा तक पहुँच पाता है। यही कारण है कि पक्षित न्याय का होना असम्भव है। सारांश यह है कि न्यायाधीश पर शाय दोष लगाये जाते हैं पर उच्चै पुकों को नहीं देना जाता। छय तो यह है कि विजेता अपने प्रमाणसबधी प्रपत्रों और कारण-बोझ को प्रकाश करती है और पराजित निर्प्राय न्यायाधीशों की निन्दा करते हैं। हमने अतिरिक्त और भी बंधन—

छन्न दौषमुपलिपन्ति कृपिता न्यायेन दूरीकृत

स्वाम्बोवान्कथयन्ति भाषिणरभे सगामिभूता स्वयम् ।

ये पलापरपसबधितबसहिता पापालि कबुर्वते

छत्तेपारपवाद एव मुक्तो इष्टुर्गुणो दूरत ॥ म० क० ९, ४

बादी-प्रतिवादी श्लेषित रूप में सत्व की छिपाकर जग्यापगुणी बसत्य अभि-
योग उपस्थित करते हैं। अर्थात् वे परस्पर एक दूसरे के दोषों को कहते हैं और
अपने दोषों पर पर्दा डालते हैं। सम्मान भी न्यायालय में अपने दोषों की मढ़ी
कहते। अतः निश्चय ही वे गलत हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में निर्णायक भी
उचित न्याय करने में सफल नहीं होते। अतः वे दोष के चापी होते हैं और
अज्ञान में अपमान के पात्र बनते हैं। उन्हें फिर कीर्ति कैसे प्राप्त हो ? यह तो
उससे दूर ही रहेंगे। अतः न्यायाधीश को बहुत समझदार होना चाहिए और
सुझाव से दूर होना चाहिए।

शास्त्रज्ञ रूपटानुमाकुललो वक्ता न च श्लेषित-

स्तुत्यो मिथयास्वकेषु चरितं दृष्ट्वै बल्लोत्तर ।

स्त्रीबान्यालमिस्ता म्मन्म्यायदिता म्म्यो न लोमाश्रितो,

द्रामादि परतत्त्वबहुवयो रागरच कोपबह ॥ मु० क० १, ९

अधिकारविक (निर्णायक न्यायाधीश) को धर्मशास्त्र एवं नीतिशास्त्र का
ज्ञान होना चाहिए। बादी प्रतिवादी के कपट-स्यबहार का समझने में रक्षक बनना
उपयुक्त श्रेयस्कर ही होना चाहिए। मित्र, शत्रु एवं स्वजनो को सही तुल्य दृष्टि
से देखना चाहिए। बादी-प्रतिवादियों के अभियोग का उचित रूप से निर्णय
करना चाहिए। दुर्बलों को सहाय देने वाले, वृत्तों को दण्ड देने वाले, धर्मार्थ,
श्रीमरहित विचित्रिक को उपाय रहने निर्णय के लिए उनके वास्तविक उत्सव को
जानने में सफल एवं राजकीय क्षेत्र को दूर करने वाला हीना चाहिए।

मुञ्जकटिकालय में न्याय की विस्तृत एवं वास्तविक व्यवस्था का दर्शन
आसक्त और राक्षस के अभियोग से स्पष्ट देखने को मिलता है। नृत्युयम्ह जैसे
शमीर दम्ह का भी निर्णय तुरत कर दिया जाता था। अभियोग की सुनवाई
एक विशेष न्यायमण्डल में होती थी जिसे अधिकार्य मध्य करते थे। न्यायालय
से सम्बन्धित एक सेवक दीवानक होता था जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है।
इसका कार्य इस न्यायमण्डल को स्वच्छ रखना और न्यायाधिकारियों के बैठने की
सुविधा व्यवस्था करना था। यह सम्बन्धित, अर्बन्धी जैसा होता था। यह न्याया-
धीश का उपेक्षाग्रहक भी होता था और बादी-प्रतिवादियों को आवाज नदाने
का काम करता था। इसी में अधिकारविक से शकार का परिचय कराया है और
असंतोषना की भाषा को भी यही देने पड़ा था। उक्त समय के न्यायमण्डल विहास
होते थे जिनके चारों ओर दरी बांध होती थी। इस नृमि-शाय को दुर्वा चस्कर
कहते थे। यह बहू स्थान था जहाँ न्यायकाल में अधिकार्य की सुनवाई से पूर्ण

उत्संबन्धित व्यक्ति प्रतीक्षा में अपना समय बिताते थे। वे लोग जो न्यायालय में साब-साब रहते थे बातक कहलाते थे। तमबन यह मुख्यतः अपना बकीर रहते थे।

न्यायालय के पदाधिकारी सामान्य रूप से अधिकरण भोजक कहलाते थे। न्यायाधीश को अधिकरणिक कहते थे। अलेक्जेंडर का मन्वस (Pauci of Alexandria) जो न्यायसबधी वैधानिक परामर्श में न्यायाधीश के साथ रहता था उसे न्याययुक्त कहते थे। इन मन्वस में दोप्टी और कामरु होते थे। बर्म-सबत न्याय की पुष्टि से सल्लुत के एक विद्वान् शाहज का हुता भी इसमें आवश्यक था, जिसे अधिकर्ता कहा गया है। इसकी दिवुक्ति राजा के द्वारा होती थी। वेता कि कहा था बुका है कि केवल कमियोनों के वैधानिक निर्णय में न्यायाधीश आवश्यक अधिकारी होते थे पर उनकी स्थिति सुदुर्द न थी। कित्ती भी समय राजा के आदेश पर उन्हें राजकीय सेवाओं से पूयक कर दिया जाता था। शावरुष की बुष्टि अवका इससे मुक्ति केवल राजाज्ञा पर थी। न्याय-सबधी निर्णयों में राजा ही अन्तिम अधिकारी होता था। अधिकरणिक बाव का निर्णय देते थे और राजा उसकी पुष्टि करता था।

जनता की पारस्परिक बल-अबल सशक्ति एवं स्त्री विवादी को जाने बढ़ाने के लिए और एतद्विषयक न्याय प्राप्त करने के लिए विशेष पद्धति थी। सामान्यतः ऐसे वैधानिक विरोध कमियोप नही जाती है पर मूष्ककटिककाल में इन्हें व्यवहार के नाम से पुकारा जाता था। वैधानिक रूप-रेशाओं को व्यवहार के नाम से संबोधित करते थे। न्यायालय में बारी कबने कमियोप को प्रतिवारी के विरोध में स्थिति रूप में देता था। धकार और भीरक के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि न्यायाधीश के समक्ष में कमियोप उत्पन्न प्रस्तुत होते थे। बारी (Plaintiff) न्यायाधीश के समक्ष व्यवहारार्थी कहलाते थे। प्रतिवारी को (Defendant) प्रत्यर्था कहते थे। न्यायाधीश दोनों दलों के प्रश्न करता था। न्यायाधीश और प्रत्यर्था से लर्क-विठर्क भी करता था। न्यायालय में बुलाये हुए साक्षियों को बुका जाता था। साक्षियों ने कथन, वेता ऊपर कहा है, ऐलबड हीते में और उनपर विचार किया जाता था। अनेक कानूनी बावों को कमियोप के समय उपस्थित की जाती थी उन्हें न्यायक ऐलबड करते थे। न्यायाधीश का निर्णय साक्ष्यों की तुलनात्मक पुष्टि पर होता था। बावविषय तथ्य सोअकर ही निर्णय दिया जाता था। इससे विचार के लिए न्यायाधीश के उदाहरण असेसर होते थे। व्यवहार में वैधानिक ताय की लोड के

किए बड़ा प्रयास किया जाता था। दो ही ब्रह्म है इत पर विचार होता था। एक ही इस सम्बन्ध में शार्वाकी और प्रत्यक्षार्थी के प्रस्तुत प्रपत्तों पर विचार किया जाता था। दूसरे श्यामाधीन समूहित विन्दुको पर आचारित मुक्तपुत्र कार्यों है अपनी प्रतिभा के बल पर सचाई सोचने में तत्पर रहते थे।

अपराधी को पकड़ने में दो बाटें बड़ा काम करती हैं—एक तो वह सदास्तन मूहीत (Red handed) हो और दूसरे अपराध को स्वीकार करने वाला स्वयं प्रतिपाद हो। स्वयं की सोच के सम्बन्ध में अधिकतरपिक ने आखिरत से कहा है—

अपराधं सनिष्काम्य शयं कञ्चा हृदि स्थितम् ।

हृदि सत्यमथ धैर्यं कथमथ न युज्यते ॥ मृ० क० १,१८

यह अपराध विघ्नबुद्ध है। हृदय में स्थित कञ्चा को छोड़ दो। सब कही। विघ्न मत् करो। अपना सत्य कहने के लिए फ्यास धैर्य धारण करो। अपराध में कर्म को स्वीकार नहीं किया जाता।

यह निश्चित है कि श्यामाधीन अपराध अधिकतरपिक अपन पद की कार्यक बनाते हुए उत्तरदायित्वपूर्ण होता था। वह सबैव यह प्रयास करता था कि उसका निर्णय सक्षय के परीक्षण पर आचारित और विधान की शार्यों के सम्मर्गत हो।

निष्कर्ष

निर्णायकों का निर्णय सदापि विषयक होता था तथापि उनमें कुछ लोग ऐसे भी थे जो राजा की सचि देकर निर्णय देते थे। ऐसा होना उस समय आमरणक सा हो गया था क्योंकि निर्णयिक यह जानते थे कि यदि उनके निर्णय में राजा ने कुछ परिवर्तन किया तो वह शोचनीय न होगा और निर्णायक की प्रतिष्ठा पर टैम नुंवेरी।

किर भी कुछ श्यामाधीन अपन निर्णय सक्षयों के आचार पर वैधर्निक शार्यों के अन्वर्त लिखते थे कि लिखते निर्णय भी समुचित हो और राजा भी सते बरतने का साहस न कर सके। कुछ श्यामाधीन यह जानते हुए कि सम्मदर उनका निर्णय समुचित होने हुए भी राजा द्वारा बरत किया जाए के निर्णय होकर अपना निर्णय प्रथम लिखते थे। आखिरत के सम्बन्ध में यही हुआ। अधिकतरपिक ने मनु का सम्बन्ध देकर आखिरत के लिए प्रापदण्ड की संस्तुति नहीं की थी पर राजा ने सकार के पणपात से मनु के आदेश को बरहेलना करते हुए श्यामाधीन के निर्णय को न मानकर आखिरत को प्रापदण्ड का आदेश कर

हो दिया। श्यामाचीत अपने किसी भी निर्णय देने से पूर्व अच्छेतर समुदाय
 लोपी, कायस्थ और मनुस्मृति के विषयज्ञ ब्राह्मण से भी परामर्श कर लेता
 था। राजा को सम्भवतः श्यामाचीत द्वारा दिए हुए निर्णय को देखने का
 अवकाश मिल जाता था क्योंकि अभिवीरों को सज्जा उस समय विधेय न थी।
 आजकल की भाँति न तो बाद के निर्णय में अधिक समय लबटा था और न
 चक्रवर्ति ही विधीय ब्यय होती थी। अपीस भी उस समय नहीं होती थी।
 इसकी आवश्यकता भी न थी क्योंकि राजा की दृष्टि तो प्रत्येक बात के निर्णय
 पर पड़ती ही थी।

अधिवरणमण्डप में वर्तमान श्यामाच्य के अनुकूल ही था। वर्तमान
 श्यामाच्य व्यवस्था तत्कालीन श्यामाच्यों का विकसित रूप है। इतना मध्य
 है कि वर्तमान काल की भाँति उस समय तर्कोच का बाजार धर्म न था और
 न एक पक्ष के बलीकृत तत्त्वज्ञान की दृष्टि के दूसरे पक्ष से मिलना तबिन सम्भव
 थे। अपने अधिकारों के लिए उस समय में मानव प्रवृत्तियों रहता था।
 उसकी प्राप्ति में बाधा देकर उसे श्यामाच्य को धरना पड़ती थी।

वर्तमान काल में तो श्यामाच्यों के विविध रूप हैं। बीजानो में बर-संरक्षित
 एवं बाबदाब आदि के अभिबोध होते हैं। फोजदारी में मार-पीट एवं स्त्री
 अपहरण आदि के विरुद्ध उपासम्भ सुने जाते हैं। माऊ के अधिकारों के भी
 श्यामाच्य पुनर्कृत होते हैं। खेतिहर बरती की सीमा निर्धारण के लिए बरती
 के श्यामाच्यों में आवेदन किया जाता है। भावकर के श्यामाच्य में कुछ दिनों
 से आरम्भ हो पय है जिसमें लघुवित्त बाव न दिखाने पर घातन की घोर
 सज्जा जाती है। सैस टैक्स के भी अभिवोध अब आरम्भ हो गये हैं जिसमें
 बिन्दी कर पर अभिवोध होते हैं। मजान एवं बुलाओं के सम्बन्ध में मजानदार
 और किरायदार के बीच विरोध को समाप्त करने के लिए और वस्तुआ पर
 निर्बंध रकन के लिए भी श्यामाच्य हैं जहाँ बिलापूर्ति अधिकारी एतत्सम्बन्धी
 अभिवोध मुक्त हैं। बिना टिकट बाधा करन वालों एवं रेलवे की हानि पहुँचाने
 वाली जनता के विरुद्ध भी अभिवोधों की सुनवाई होती है जिसका निजय
 रेलवे मजिस्ट्रेटों के अन्तर्गत है।

विवाद के अन्तर्गत पर साक्ष्य एवं मित्र सहयोग

विवादेऽर्थात् व्ययते वन, तदभावेऽपि साक्ष्ये ।

साक्ष्यभावात्ततो दिग्ग्य प्रवर्तन्ति बनीविज ॥^१

१ बरतव, निजमेव, अथन त-३, पृ० १८१।

विवाद में पहले पत्र (बर्मिसेस) देखा जाता है । उसके समाप में छाबी, साही के मतत्व में वापस लेनी पड़ती है—ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है ।

बर्मियोर्बों में गन्नाहों का प्रचलन प्राचीनकाल की भांति आरंभ भी है । यह पचाही बिस्ने प्रतिष्ठित व्यक्ति की होती है अन्तो प्रमावित मानी जाती है । मित्र का सहयोग भी सामान्यतः और व्यापतिक्रम में वह युग में सहायोगीय था ।

मूळकटिककाल में वाद का निर्णय सादय के आचार पर सीधे होता था । एक सम्भव प्रयासों से अनेक प्रकार से माध्य के आचार पर वाद का निर्णय किया जाता था । निर्णय के लिए जब प्रत्यक्ष साक्ष्य अपर्याप्त होता था तब अपर्याप्त सबवा विस्तृत साक्ष्य इसके लिए प्रयुक्त होते थे । अपने सटोप के लिए अधिकतरविक्रि कियों को साक्ष्य के लिए बुला सकना था । अपराधी पीडित होने पर आवश्यकतानुसार इसके लिए वह कौहीं से अधिक होता था । अपिक्रमिक में कार्य वादवत्त को भी इसका संकेत दिया है—

इदानीं मुकुमारप्रैस्मिच्चि एक बर्तवा कथाः ।

तव वात्रै पतिध्वनिठ सहस्रस्माक मनोरथैः ॥ मु० क० ९, ५६

इस समय तुम्हारे इस क्रोमस संरोर पर कठोर कोड़े ह्वारे मनोरथों के साथ ही मिलने लपेंगे । किसी भी ओर से जब, सादय अपूर्ण एवं सम्भिराव होता था तब बिस्व पटीया के चार साधनों (विव, धन, तुला और बर्तन) में किसी एक को अपनावा जाता था जिससे अत्रियुक्त की सरसता की सक्ती परीक्षा हो जाती थी । वादवत्त के मुकुन्दबट प्रसङ्ग पर 'सामाजिक विमल की एक छाबी' में इसका उल्लेख है ।

मूळकटिक काल में सत्य के निर्णय के लिए निम्न चार विधियाँ प्रचलित थी । याज्ञवल्क्य कृति में इनका उल्लेख है ।^१

- १ तुसास्यापोविपकीयो दिग्बलीहविशुद्धे ।
गहाभियोवेधैषानि शीर्षकस्यैप्रिमोवगरि ॥
तुलाधारणविद्विरुयुक्तस्तुमाधित ।
इतिमानसमीभूतोरेसा इत्यावधारित ॥
तव तुके उत्तपयान्ति पुरा वेदविमिता ।
तत्सत्त्वं वदन्त्यासि तदयान्मा विमोचय ॥

१. अनादिष्ठ अपराधी को बिच सिद्धया घाता वा पर निष्पाप होने से उर पर बिच वा कोई अभाव नहीं होता वा ।

२. ऐसे व्यक्ति को नाशिवर्धनत भल में अनादित उरमें समय तक दुर्बन्धियां ही जाती ही बिचने समय तक कोई वेपवान् अनुपायी तत्काळ फेंके बने बाग की से जाता वा । यदि यह सत्य में अपराधी होता वा उर तो भल में दुर्बता वा अन्धया नहीं ।

यद्यस्मि पापकृत्मातस्ततो मा त्वमघो नम ।
 वृद्धश्चेद्भगमयोर्ध्वं वा तुष्कामित्यभिमपयेत् ॥
 करीबिमुदितशीर्षैर्लज्जमित्वा ततोभ्यसेत् ।
 सताम्बत्वस्य वनास्त्रिंशत्सुबाणि वैद्ययेत् ॥
 स्वमन्ने सर्वभूतानामंतश्चरति पापक ।
 शान्तिपत्सुम्भवापेभ्यो ब्रुहि तत्त्वं कवे मम ॥
 तस्त्रैस्त्रुवउषतो लीह पचाद्यत्पठिक समम् ।
 इतिवचने न्यसेत्पिण्डं हस्तयोश्चयोरपि ॥
 इतमादाय सप्तैव मडलानि धनीर्हजेत् ।
 पोडशाशुक्रं श्रेय मडलं तावदतरम् ॥
 बुद्धत्वाग्निमुदितशीर्षैर्हृदयं पुष्टियमाप्नुवात् ।
 अतरापरिते पिष्टे त-वेहे वा पुनर्हरेत् ॥
 सत्वेनमात्रिरुत्स्य वरुदे अग्निघातकम् ।
 नात्रिदशश्रीदशस्वस्त्रं ब्रुहीत्पौदकं विपेत् ॥
 अमवातमिषु मुक्त्वाग्नौवाग्नेः कधीवर ।
 वते तस्मिन्निदग्नांश्च पश्येन्नेच्छुश्चिन्नात्पुवात् ॥
 स्व बिच ब्रह्मण पुषः मत्पश्येन् अयत्स्वित ।
 आयन्वास्मादभीशावात्नत्वेन नम भोजतम् ॥
 स्वमुक्त्वा बिच शान्तिं अक्षयेत्पश्येन्निदग्नाम् ।
 यस्य वेदविना शीयेच्छुश्चिन्नात् तस्य विनिर्हरेत् ॥
 देवान्वाग्नेश्चमन्त्रैश्च तस्त्वानोरकमाहरेत् ।
 इत्याभ्य वाचनेतस्कारमप तु ऽनुष्ठितवम् ॥
 अर्वाद् अशुभंशादज्ञो यस्य गो राजैर्बिचम् ।
 अतन वापते शोर त वृद्धः स्यात्त वश्य ॥ पात्रवस्त्र स्मृति, ३० अ०

३. ऐसे व्यक्ति को गुला के एक पकड़े में बिठाकर उसके भार के तुल्य बाटों से छोटा बाटा था। यदि वह निरपराध होता था तो उसका पकड़ा हल्का रहने से ऊपर रहता था।

४. ऐसे व्यक्ति के हाथ पर अभिमनित पीपल के सात पत्ते चुन से बांधे जाते थे और फिर उस पर नियतकाल तक तथा हुआ स्नेह भोक्तक रखा जाता था। यदि वह निष्पाप होता था तो नहीं बल्लता था।

चौदह दिन से पूर्व बिसे राधा था दैव से कोई दुःख प्राप्त न हो उसे भी मुक्त सम्प्राप्त जाता था।

यदि अधिकाधिक के मन्त्राचार के निर्गम के लिए पर्याप्त साधनी होती थी तो वह क्षिप्रपरोक्षा के छात्रों का आश्रम नहीं लेता था और छोटे राजा के पास बलिभ्रम निर्गम के लिए अभियोग को अपनी सत्सुति सन्निव भेज दिया करता था।

बृहस्पतिक में वास्तव, मैत्रेय और आर्षक, अधिकाधिक न्य वही तबत्र भी बहुत सुदर विद्याया गया है और इसे वही महत्ता दी गयी है। विष्णुता तो यह है कि इसमें सामान्य वर्ग का विशेष धर्म से मैत्रेय का विश्व प्रस्तुत किया गया है जबकि मित्रता के अन्तर्गत सामान्य में सामान्य स्तर में इसकी उचित कहा गया है—

मयीरेव सम विद्म यबोरेव तत्र कुपम् ।
 तयोविवाहनेत्री य न तु पुटविपुटयो ॥१

समान आर्थिक स्थिति में और समान वर्ग में मित्रता और विवाह उचित है अथवा अनुचित है। इस कथन में बृहस्पतिक इसका अन्वय है। मैत्रेय वडा विलक्षण विद्वान् है। वह कैवल्य बोधनमदृ नहीं अस्तित्वा वास्तव का सर्वकारिय है। आरम्भ में जब वास्तव अपनी निर्बलता के कारण अपने सहयोगियों एवं मित्रों को सदासीनता पर प्रत्यात्तान् व्यक्त करता है तभी तहसा विद्वान् को देखकर यह कह उठता है—

‘अये एर्षकात्मिनः मैत्रेय प्रातः । सत्ते । स्वावतम् मास्वताम् ।’
 मू० क० (प्रथम मङ्क)

जरे, सब समय के मित्र मैत्रेय का नये। सदै, स्वागत है। वैश्वि ।

१. पञ्चतन्त्र, मित्रसम्पत्ति, द्वितीय सर्ग, पृ० २१४।

मित्र से उम मुझ में बड़ा सहाय बनकर खिचा जाता था। उसका मित्र सबसे बड़ा द्वितीय सम्राट् जाता था। चाकरत न बिदूषक ने कहा कि मैं देख नहीं हूँ मते ही हम समय पल का अभाव है।

विमवानुपता मार्या सुन्दरु लघुहृन्मवान् ।

सत्य च न परिभ्रष्ट यद्विदेषु दुर्लभम् ॥ सू० क० ३,२८

सर्पति क अनुसार खलन वाली पत्नी, सुन बुझ में समान रहने वाले साथ जैसे मित्र और सत्य का परित्याग न होना, ये सब निर्भयों के लिए दुर्लभ हो हैं, किन्तु हमारा पाठ ये सभी पदार्थ वर्तमान हैं।

आशुतिकाल में अथवा आशुतिकाल में समस्त मित्र की उपयोगिता सैकड़ों पत्नियों से भी अधिक समझा जाती थी। अशुतिक में जब यह सुना कि उनका मित्र मार्यन राजा बालक के द्वारा पकड़ा गया है तब वह किशोर्त्थविमुक्त हो गया। इसपर बापक की सहायता का प्रकृत लक्षर लक्षरिवादिता पत्नी का साथ। सीधे ही उनसे मदनिका से स्वीकृति पाकर उसे पेट के साथ रखित वैश्य के घर पहुँचा दिया। मदनिका भी किशोर्त्थ समझदार थी। वह मित्र की सहायता में बापक नहीं बनो। इसी समय अशुतिक में कहा है—

द्वयनिदमनीय मोके प्रिय मयदां मुहूर्ध्व यमिना च ।

मयदि तु मुन्दरीणां गणदधि मुहूर्ध्विषिष्टतम् ॥

सू० क० ४,२५

हमारे दो अनुजों के लिए स्त्री मोर मित्र यही दोनों बन्धि प्रिय हैं किन्तु हम समय जबकि मित्र कारागार में हैं सैकड़ों स्त्रियों से भी मित्र कष्टप्रद है।

निष्कर्ष

मूष्कटिकशास्त्र के आशुतिक का समय एसा रहा है जिसमें वर्मशास्त्रों के अनुसार शास्त्रप्रचाली अथवायी जाती थी। विशेषतः अनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति व आचार पर विवाद के लक्षणों पर जमी और अक्षर के प्रमाण के आधार से विवादों का निर्णय शास्त्रियों के मतों पर ही आधारित था। विशेषतः अशुतिक इस सम्बन्ध में वाद-प्रतिवादी के एक लक्षके माणियों के अक्षयों का तुलनात्मक अध्ययन करके अपने महायज्ञों व प्रमाणों में निर्णय देते थे। इस विषय में उनका अशुतिक प्रमाण यह रहता था कि निर्णय निष्पन्न होत वास्तविक हो।

शास्त्रप्रथा इस रूप में अद्यतन आज भी प्रचलित है पर दिव्य परीक्षा

वेही कोई विधि इस समझ नहीं है। हाँ, कुछ पहले ऐसा बकस था कि हिन्दू अपनी सबाई के लिए मोठा और मुसलमान कुचन अपने हाथ में लेकर अपने बाज की सबाई के लिए शत्रु द्वारा अपने कर्म को प्रमाणित करते थे पर आज सबाई के निर्णय में यह आचार नहीं माने जाने। यद्यपि बाद की बाजे बहने के रोक्ने के लिए वे ठेक से पर आज के बौद्धिक युग में अपनी द्वारा बाद की उच्चतम ग्यायालय तक बढ़ाया जा सकता है और उन्का निर्णय ग्यायाधीशों के ही हाथ है। यही और प्रतिवादी को अपने प्रमाण, प्रपत्रों के रूप में अपना समझ के रूप में अनुत्तर करने के अतिरिक्त कोई दूसरा अधिकार इन सम्बन्ध में नहीं रहते।

बोधकाळ में अत्यतिप्रसन्न होने पर मित्रों का सहयोग सत्य से जका माया है। मूच्छकटिक में यह सिद्धाया गया है कि सदैव अपने से तीन स्तर का भिन्न कठिन बमसर पर अधिक सहायक होता है यहाँ तक कि वह प्राप्त होने को भी उदात्त हो जाता है। आदर और आर्यक के कर्मकः यथेय और शक्तिक ऐसे ही भिन्न थे। विशेष स्थिति में उस समय पत्नी से भी बहकर भिन्न माना गया है। तत्कालीन अच्छे विद्वानों में निम्न उदाय सब में दिलाये थे —

पापानिवारयति योमयते द्विषाय,
गुह्यं च यूरति गुमान्प्रयोजकयेति ।
आपदस्तं च न बहानि वदानि काले,
सम्पन्नस्तगमिव प्रवर्तन्ति सन्तः ॥

मर्दुहति (भी० शतक, ७३)

आवकल ऐसे भिन्न सोनाय से ही प्राप्त होने हैं।

विभिन्न धर्मियों में मनु द्वारा समर्थित अण्डप्रणाली एवं रक्षाधिकारियों (पुलिंस) द्वारा उसकी व्यवस्था

शासन की सुव्यवस्था के लिए नहीं एक और ग्याय ही समुचित व्यवस्था व्यवस्था है बड़ी बुरी और उसका पालन भी बहुत आवश्यक है। यदि ग्यायाधीशों द्वारा दिए गए निर्णय का समुचित पालन न हो तो शारी व्यवस्था भंग हो जाय। यह व्यवस्था सुवर्द्धित पुलिंस द्वारा ही व्यवस्था है। मूच्छकटिक काल में बह विधान एक पुलिंस व्यवस्था समीचीन थी।

उस समय अपराधों के लिए बड़ी सबाई थी जाती थी। अपराधियों के दोषों के छिपाये जाने पर सार्वजनिक स्वार्थों में कोई नगराये जाते थे।

हत्या के अपराध में सट्टन से बरदान लहाने, प्यौरी पर बहाने, कुर्तों से जुबानों और सारे से बिरवाने तक की बहानों की जाती थी। प्यौरी पर सट्टकाने का काम आगवाह करते थे। सम्प्रदाय स्मरण पर होते थे। प्रायश्चित्त का आदेश मिलने पर अपराधी अभियुक्त की बन्ध स्वाम पर विशेष प्रकार से के आया जाता था। आगवाह अपराधी के मस्तक पर काक चढ़ाने लगाकर करबौर (कौर वृक्ष) की आया पहनाकर उसके कंधे पर झूल रखकर जिसे वह स्वयं छठता था वाने बजात हुए समझाने के आते थे। मार्ग में अपराधी का परिचय देकर बहाने अपराध और दण्ड की घोषणा की जाती थी। यही कारण है कि पुलिस का उस समय बन्धा आधिपत्य था और दण्ड का प्राप्ति करने में प्रयास आया पीछा नहीं करती थी।

मूल्डफटिककाल में विभिन्नविधित अपराधों पर प्रचलित परम्परा के अनुसार दण्ड दिये जाते थे —

१ घूठ का बन्ध न देना,

२ गारी हुरमा और

३ राजनीतिक अपराध

(क) सांख्यीय कर्तव्यपरायण अधिकारी से विवाद और

(ख) राजनीतिक सज्जु की धिमात्मक रूप से सहायता जन्मा उते आसय देना।

१. अब कभी घूठ में विजयी बन्ध को पचावित व्यक्ति से बन्ध प्राप्त नहीं होता था उस वह उसके साथ कड़ा व्यवहार करता था। घूठकरमण्डली (gambling assembly) के द्वारा बचावित बुजारी को बन्ध बुझाना आवश्यक होता था और वह उसे बिना दिव सट्टकाने नहीं जा सकता था। इसी प्रकार सजाहक अपने घूठकारों के लिए घाना और घूठकर (Master of the gambling house) की बातों में सब समय जासादियों द्वारा उतने फूल भी न बने का व्यवस्था बिना परम्पु क्रिड की बन्ध से घूठकारा न बिना धर्मात् शून्य के घुग टान से न बन्धा। इन सम्बन्ध में उतने बन्धों विद्यमान थे कि पाहे व्यक्ति को मोक्ष बान्धनी पडे, बजार कैना पडे, बोरी बरनी पडे जन्मा स्वयं को बंधना नडे फिर मो घूठ का शून्य बुराना ही होना। एतद्विषयक अपराधी को उतने स्वामी घूठकर द्वारा सार दिन बन्धनी भी बिना जाता था। उते सज्जुओं पर पनीटा भी जाता था बित्तै कि बसकी पीठ सज्जुओं और पावरों से छिप जाती थी, कभी

कमी बर्बतो कुत्ते भी उता पर छोट दिये जाते थे जो कि उसकी चपाबो में काट डेते थे ।

दूत के प्रबंध में बर्दुरक ने सबाहक के सचब में कहा —

य स्तब्ध दिवसान्तमानतद्यितो नास्ते समुत्कम्बितो
यस्योर्ध्वबल्लोष्टकैरपि जया पृष्ठे न श्यात क्रिय ।
यस्यैतन्म न मुन्युरैरहृत्त्वैर्बान्तर चम्यते
वस्यत्पायतुकोबठस्य सवत दूतप्रसंगेन किन् ॥ मु० क० २, १२

हमारे समान जो खबरकाल इक मित्रक क्तमस्तक होकर नहीं रह सकता है । मुकीछे पत्थरों पर बसीटे जाते से जिसकी पीठ पर बिह्ल नहीं पड गये है तथा जबा क्य मध्यमाय कुत्तों से बड़ी काटा गया है उस कन्वे एष कोमठ सरीर वाले मनुष्य के निरन्तर बुधा खेतन से क्या लाभ ?

दूत में पराजित व्यक्ति को दी हुई यह भबकर दाख बेचना दूत बात का प्रतीक है कि इस सचब में दण्ड व्यवस्था कठोर हो ।

२. बेसे लो उत समय किसी प्रकार भी भी हुत्वा एक बडा अपराध माना जाता था वर पिछेय क्य है नारी-हुत्वा एक वृषिष अपराध माना जाता था ।

३. स्वामालय में अम्बनक के बिबड एक अभिधीन वीरक प्रस्तुत करता है जिसमें स्पष्टक्य से उठे इस बात के लिए दीवी उह्यता है कि उसने उय पर वैदिक प्रथाय बाकरी हुए सासकीय कर्तव्य को पालन करने से रोका । ऐसा करना एक भयावक अपराध है । इस अभिधीय क्य परिणाम हो नहीं बिहाया गया पर वीरक को महु पमकी कि वह अम्बनक के दुकडे वर देना बीर वह कल्पता कि अम्बनक को अपने परिवार के साथ मापना पडा, इस बात के सूचक है कि उसका अपराध बडापारण था । वीरक ने अम्बनक से कहा था—'ता कुबु रे । बहिबरकमश्चे जइ व अजरय व कल्प्येमि, शरो न होमि वीरको' ।^१

आधुनिक सम्प्रदायता को देखते हुए उस समय अपराधियों को दिये हुए दण्ड निरपेक्ष ह्ये बनेगाकृत कठोर थे । वामिक दुरत्यों को भी सामान्य ही बात पर बरक्य सेने की जानता है कठोर दण्ड दिया जाता था । पुनरुत्पन्न सदान के सरोवर में क्रोश के बोलने वर अकार की दंष्ट कुबकर किन्तु के भव से जाप उठने की बर्बा पडके ली था कुबि है ।

१. वग् मुग् १ । बविकरकमश्चे यत्रि है अतुरङ्ग व कल्पयामि तथा न नवाभि वीरक ।

उस ही यह है कि पशु की घांति बलि के लिए अपराधी को मृत्यु दण्ड के लिए ले जाते थे । इतना ही नहीं, स्वयं अपने कान्धे पर धूम रखे हुए पाण्डवों की आग्राहकों के साथ बड़े समारोह में बभ्रुस्थान बना पड़ा था । नगर में चारों ओर प्रमुख स्थान थे, वहाँ एक-एक कर अपराधी के अपराध की बौध्वा की जाती थी और लोगों को सचेत किया जाता था कि वे इस प्रकार का अपराध न करें । निर्दोष आठवत्त को इस बात के लिए विषय किया गया कि वह यह कहे कि उसने बसठसेना को मारा है । इस भाँति प्राणदण्ड के व्यवहार पर विशेष प्रकार की ध्वनि करन वाले बभ्रु पट्टों को बाध की सपत्नियों से बजाते हुए बभ्रु स्थान पर ले जाया जाता था । इसे प्राणदण्ड से पूर्व अपराधी को विवृत रथा में अपमाना पड़ता था । प्राणदण्ड के समय सबसे पूर्व शिर पर कुरहाड़ी से घातक प्रहार किया जाता था फिर शरीर को धूम पर बटका दिया जाता था । पशु, पत्नी उस सब को गोचर कर ला जाते थे ।

इस प्रकार की क्रूर और भयकर दण्ड सम्बन्धी व्यवस्थाएँ उस समय की । उस दण्ड दण्डभ्यस्त्या का वैभव एक ही उद्देश्य का और वह यह कि जनता राजा से न बेबल आतंकित रहे अपितु सर्वत्र हृदय से भयभीत रहे । शासकों का यह विश्वास था कि अपराधों को रोकने के लिए ऐसी कठोर दण्डभ्यस्त्या परमावश्यक है । उस समय वर्मात्या आक्रमण एवं मित्रक को भी दण्ड के संबन्ध में कोई झूट न थी ।

इस दण्डभ्यस्त्या की कठोरता इस सीमा तक पहुँच गयी थी कि मैत्रवाच सन्देश होने पर किसी भी व्यक्ति को अँधेरी साई में डाल दिया जाता था । पटवत्र का भेद लुप्त पर तत्क्षण मृत्युदण्ड दे दिया जाता था । प्राणदण्ड देने वाले पाण्डव सद्गुण होने पर भी अपने वर्तव्य का पालन करने में कठोर होते थे । पाण्डवों ने इस सम्बन्ध में शास्त्र से कहा है —

तस्मिन् न कल्प्य काल्य नवबहवदग्ममयने गितया ।

अपिसेन श्रीउच्छेयमृलाकीवेनु कुपलह्यै ॥ मृ० क० १०, १

हम लोगों हत्या और बधन के आनन्द में दण्ड है तथा यहना मारने एवं गुमी पर चढ़ाने में निरुक्त है अर्थात् हम लोग मनुष्यों का बध करने के लिए उन्हें नहीं जाते हैं । ऐसा कहकर पाण्डवों ने बहवत्त यह दिखाया है कि वर्तव्य के भाव हमें सुज्ञता ही पड़ता है ।

१. तस्मिन् न कल्प्य काल्य नवबहवदग्ममयने गितया ।

अपिसेन तं श्रीउच्छेयमृलाकीवेनु कुपलह्यै ॥

निष्कर्ष

सूक्ष्मकृतिक राजनीति-प्रधान प्रकरण है। सूक्ष्मकृतिक की तारी कथाबस्तु राजनीति पर आधारित है। राजनीति के स्तर पर जाने के लिए इसमें वास्तव और अस्तित्व के त्रेम की कहानी का आश्रय लिया गया है। राजा पालक की राजनीति, ग्याय एवं दण्ड व्यवस्था वास्तव में बड़ी सराहनीय थी पर उस समय की शासन व्यवस्था में एक कमी थी वह यह कि समुचित युवज्वर विनाश न था। इसी कारण पालक की योजनाएँ सफल न हो सकी और वह अपने कुटिलों से मारा गया।

दण्ड व्यवस्था की कठोरता का समर्थन एक मात्र कारण यह था कि राजा पालक यह चाहता था कि मेरे आसक्त से कोई भी निरस्त पर्यन्त न बन पाये।

उस समय की दण्ड व्यवस्था यद्यपि मनु के अनुसार थी फिर भी राजा पालक अनाधिकार सुरक्षित रखने हेतु उसे और कठोर बनाये हुए था। तभी ही उसने अधिकारपिक द्वारा वास्तव की दुनिया के सम्मुख में मनु के उद्देश्य की उन्मत्ता करके उसे प्राणदण्ड का आदेश दे दिया।

दण्ड का प्रचार उस समय बहुत था। नारी-हत्या का अभियोग वास्तव पर बना ही हुआ था। राजनीतिक विरोध राजा पालक और राजा आर्मक के बीच तक ही रखा था। मृत वास्तव केरनापूर्वक दण्डव्यवस्थाएँ इन्हीं से सम्बन्धित थी। अपराध के लिए निरत दण्ड की दृष्टि से न तो ब्राह्मण के लिए और न भिक्षुक वारि किसी सामिक के लिए कोई छूट थी। चाण्डालों पर नर्तक्य बड़ा अपमान था फिर भी वे शोध सहज्य होते थे, पर पश्चात्तर नर्तक्य पालन में कठोर हो जाते थे।

पुत्रित विनाश की विद्विष के लिए अतिवत्त कोई श्रेय न था पर उनमें अर्पितगत होन आवश्यक थी। पुत्रित कर्त्तव्यारी दण्डव्यवस्था में क्रूर होती थी। निर्दोष अभिभूत दिव्य परीक्षा द्वारा छूट भी जाते थे। प्राणदण्ड की व्यवस्था संयोजित होती थी। यह कार्य इतने व्यापक रूप से होता था कि बालक, बुढ़े, गर, नारी सभी को उसकी आलकाएँ मली भाँति ही जाती थी।

राज के अनन्त से यह राजतन्त्रीय दण्डव्यवस्था पत्रित कर्त्तव्यारी मिस थी। राजतन्त्र से दण्ड व्यवस्था जहाँ अपराधों को रोक्ती है वहाँ आसक्त एवं अय न होन से अनन्त में प्रमादहीन इतीत होती है। दिव्य राजतन्त्र में दण्डव्यवस्था में सभी दुष्टियों पर काबु पाया जा सकता है। अनन्त तो नैतिक जीवन विनाशे वाली बनता के लिए ही उपयोग्य हो सकता है।

अध्याय विश्लेषण

मृच्छकटिकनाटक में देश में छोटे-छोटे राज्य थे जो साधारणतः आरमन्निर्भर होते थे। उज्जयिनी का भी एक राज्य था जिसके अधीनत कुशावती का छोटा राज्य था। भार्यक ने इसे सिंहासनासक्त होने पर बाह्यरक्ष को प्रदान कर दिया था। राजतंत्र हीन रूप भी स्थिति अच्छी न थी। जनता की रक्षा-व्यवस्था शासन द्वारा समुचित रूप में नहीं होती थी। बहर एक अधिकारी मनु मित्र को परखने में सिंघितता बरतते थे। कमी-कमी अपने अधिकार का दुरुपयोग भी करते थे। जब चम्बलक की व्यापकारों में यह जा चुका था कि भार्यक वही बाही में नहीं बैठा है उस भी अपने अपने कर्तव्य की उपेक्षा की और औरक से विरोध किया। इस कुशावती के कारण राजा को भी अधिकारियों पर विश्वास नहीं था। बहर अधिकारी-वर्ग को राजा का विश्वास नहीं था। प्रजा अनिश्चित बसा ही थी। इन परिस्थितियों में सिंहासन उत्कृष्ट बेर नहीं लगती थी। राजा अपने मंत्रियों की सहायता से राज्य-संरक्षण करता था। सर्वत्र मनु की प्रामाणिकता थी। अनुस्मृति के आधार पर उस समय अधिनियमों का निर्णय होता था। ब्राह्मण तथा बनी असेसर होते थे जो अधिनियमों के निर्णय में अधिकारणिक की सहायता करते थे वर उस कुछ राजा को इच्छा से होता था। राजनीतिक परिस्थितियों की विपन्नता के कारण ही तो एक और प्रकार को इतना बल मिला और दूसरी ओर भार्यक ने समय से लाभ उठाया। बहर व्यवस्था और बुद्धि प्रकाशन पर भी इच्छा प्रभाव पड़ना स्वामाधिक था।



सप्तम अध्याय

शूद्रक एवं मूच्छकटिक

संक्षिप्त समीक्षा

शूद्रक भीमासा

मूच्छकटिक की रचना प्राप्त शशाङ्गों के आचार पर अनुभावत. पद्यब
धराब्दी के अन्त एवं बह के पूर्व बानी जाती है। चतुर्थांश में शूद्रक-रचित
पद्यशानुत्क सम्मिश्रित है। यह पुस्तक्यत के अन्तिम चरण में और ह्यं के
उत्तरकाल में लिखा गया है। अतः पद्यशानुत्क के समकालीन ही मूच्छकटिक
समझा जाता है। यह भी उल्लिखित है कि मूच्छकटिक का प्रारम्भिक अंश
माघ पर आधारित है। माघ की चर्चा काडिवात में यासकिकाभिर्मिन की
प्रस्तावना में की है। अष्टिवास-रचित ग्रन्थ भी इसके पूर्व ही लिखे गये थे।

इस अंति मूच्छकटिक का निर्माण निश्चित हो जाने से शूद्रक का समय-
ज्ञान सरल हो जाता चाहिए था पर इस नाम की संस्कृत साहित्य में इतनी
परोक्ष व्युत्पत्ति एवं लोक-विश्रुति है जिससे अभी तक यह विषय विद्वान्मन्य बला
हुमा है। इस नाम के अनेक छोटे-बड़े कवि अथवा नाटककार हो पर हैं।
इसका समय अभी तक अनुमान पर ही निर्भर है। विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध
शूद्रकों के आचार पर डा० सुतलकर ने सहाईत शूद्रक माने हैं किन्तु वे तीव्र
ऐतिहासिक हैं। दम्पी ने जो पद्यशानुत्कपरित में शूद्रक के विभिन्न नामों का
वर्णन किया है।

मूच्छकटिक की प्रस्तावना के अन्तर्गत से जिसमें 'शूद्रकोर्द्धिन प्रविष्ट' कहा
गया है पालक सम्बन्ध में यह बातें हैं। शूद्रक को ही रचयिता माना जा रहा
है और बड़ी बननी रचना प्रवर्धित करने से पूर्व अपने सम्बन्ध से ऐसा कहता
है। अतः इस सम्बन्ध के निराकरण के लिए यही समझा जाये कि या ती इस
रचना को शूद्रक ही म माना जाये और इसे किसी कविथ व्यक्ति द्वारा रचित
कम्पन लिखा गये पर फिर भी तन्त्र की विद्वान्मनी पढ़ी है अथवा ओ०
स्टेनपेनों एवं डा० सलिवोर के मतानुसार इसे किसी पश्चिमी नवीय विद्वान्
द्वारा रचित मान लिया जाये—बैसा कि मूच्छकटिक के कुछ प्रबन्ध, विविध
आहत माध्याय, अर्थक पोषाक का विवरण एवं सहायकिकी की चर्चा इसनी

पुत्रि में सहायक है, पर इसके प्रस्तावना के अन्तर्गत केवल गूढक नाम चरितार्थ नहीं होता था फिर रचना किसी ब्राह्मण नरेश की मानी जाए जिसके अपना नाम पुरानी परम्परा के अनुसार मूच्छकटिक में देना ठीक नहीं समझा, पर बाद में इस लक्ष्य की जानने वाले किसी विद्वान् ने मूच्छकटिक के आरम्भ में तत्सम्बन्धी विशेषताएँ सम्मिलित कर उसको प्रकाशित कर दिया, ऐसा अनुमान भी स्वभाविक है। ऐसी स्थिति में वास्तविक रचयिता को क्यों न प्रकाश में लाया जाय।

गूढक भी अनेक हुए हैं और सभी प्रतिष्ठित विद्वान् नरेश थे। जब यह भी सम्भव है कि गूढक धर उपाधि के रूप में नाम के आगे सम्मानित समझकर प्रयुक्त किया जाने लगा हो और इस मते रचना को महत्त्व देने के लिए यह ब्राह्मण नरेश के आगे गूढक जोड़ दिया गया हो। इन विचार पक्ष में गूढक धर उपाधिरूप से भास्तिजनक होना और विशिष्ट नाम ज्ञात करने की स्थिति भी बालासागरी नहीं है। ऐसी विचित्र स्थिति में किसी गूढक राजा को 'गूढकोद्भिन्नि प्रविष्ट' के आधार पर नहीं मान सकते और दासिणी विद्वान् को भी सहसा इस लिए स्वीकार नहीं कर सकते कि प्रस्तावनाम्बर्त गूढकत विद्येयार्थ और गूढक राजा जैसे अविश्वसनीय ठहराये जाए। सब फिर यह देखा गया कि मूच्छकटिक का रचयिता शिष्य ऐसा व्यक्ति है जिसका नाम गूढक है और यह राजा तथा विद्वान् कवि भी है, साथ में यह भी देखा है कि यह ही है और जोड़ दर्शन का शास्त्री भी है। उसका द्विज-मुरदास होना भी आवश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि गूढक के जीवनोपरान्त उसके किसी आत्मीय के द्वारा प्रस्तावना में गूढक सम्मिलित किया गया है।

जिस भाँति संस्कृत व्याकरण में आर्ष से आर्यक और गोपाल से गोपालक धर लिट होते हैं ठीक उसी प्रकार गूढ से गूढक भी सम्भव है। मूच्छकटिक के अम्बर्त आर्यक, गोपालक राजाओं की बँटि चर्चा है बँटि ही गूढक नाम का जोड़ कोई और सम्भवतः रहा होगा। राजा होने के साथ-साथ यह बड़ा प्रतिभाशाली, विद्वान् एवं शिष्यप्रक भी था।

दक्षिण की आभीर भाँति गूढ समझी जाती थी। पितृवत् से यह ब्राह्मण और मातृवत् से गूढ माने जाती थी। इसी परम्परा में सम्भवतः केवल गूढक नाम से ही कोई विशिष्ट नरेश हुए, शिष्योंने मूच्छकटिक की रचना की, जो बाद में प्रकाश में आई। प्रतिष्ठितता सभी के व्यक्ति रहे जहाँ अपना परिचय जोड़ अन्तिम रूप में नहीं देना, इस मते उन्हें अपने पितृवत् का आशय है।

द्वयक को द्वित्रमुष्णतम कहा है। शुरुक तो साम वा बठ, वह अपने स्थान पर बैठा ही रहा। मूञ्जकटिक का कथानक भी इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि चाणदत्त ब्रह्मण द्वारा यशिका वसन्तसेना को मयनाता उषवर्ष का मित्र-वर्ष को मयने में मिथ्या है।

मूञ्जकटिक का नाटकीय स्वरूप

संस्कृत में अनेक रूपक हैं पर भिन्न होते हुए भी वे किसी एक ही विद्या की और तीव्र मति से सुन्दरे हुए दिखाई देते हैं। यद्यपि उत्तरायणपरिच, मुद्रा-राजह और मूञ्जकटिक मयने कथावस्तु के स्वरूप वैशिष्ट्यपूर्ण हैं फिर भी मूञ्जकटिक घटनाचक्र की दृष्टि से अद्भुत है। इसकी लफणता एक प्रतिबिम्ब इसके घटनाचक्र की तीव्रता के ही कारण है। नाटक में प्रमुख वस्तु-व्यापार है। यही नाटक को मति देता है। व्यापारिक मति की लफणता भी इसी में है कि उससे कथीपकथन में चिपितता न जाने पाये। अतिसय के ठाण कथा काये बहनी चाहिए। यही बात मूञ्जकटिक में परितार्थ हुई है। इस प्रकार में रचयिता ने सांवाहिक कौतूहल वृत्ति को निरन्तर धरना देने का मयसर किया है। शीर्षक भी इसका अटपटा है जो एक घटना पर आधारित है।

चाणदत्त का पुत्र पदोसी के छत्रके को खोने की नाडी से खोजते हुए वैश्वकर स्वयं मिट्टी की नाडी से खोजना नहीं चाहता और इसके लिये मयल जाता है और यशिका के साव वसन्तसेना के पास पहुँच जाता है। वह उधे खोने के कामुचचारि देती है जो बाव में ग्यमालय में निहूयक के पास पकड जाते हैं और जिनके स्वरूप परिच चाणदत्त पर वसन्तसेना की हत्या का आरोप सिद्ध होता है।

अन्य रूपको भी मति इसमें राजासो की कदागी नहीं है बल्कि मयमक्यं से कथावस्तु को खना मया है। यह संस्कृत का अकेला यथार्थकारी नाटक है जो आदर्श की ओर बल्ला हुआ दिखाई देता है। इसमें अय्य तथा मायना की उत्कृष्टता के साव-साव बीरव की क्योरता के वास्तविक दर्शन होते हैं। संधार वास्तव में खोर, बुबारी, फुठ, राजनीतिक बयनी, मित्र, उषवर्षक, जाबाय, पुलिब कर्मचारी, वासवाचिबों एवं वैश्वार्थों मयि से परिपूर्ण है। इन्हीं का चित्रण इन प्रकार में कराया गया है। इसमें अनेक सुन्दर प्रसय भी हैं जो काव्य की दृष्टि से उष्व कोटि के हैं। अविद्यानशाकुन्तल की मयि इसमें विपादपूर्ण प्रेम और भवमृत्ति की मयि परमौर बावर्ध प्रिय नहीं है बल्कि एक नागरिक और यशिका के प्रेम का विषय है जो उष में पवित्र, मयोर और कोमल

है। जैसे तो उच्चदर्शन के नागरिक का गणिका के साथ प्रेम दिखाने में कोई उतसहन नहीं थी, वही सरलता है वह विज्ञान का सरलता का पर जिन परिस्थितियों में यह हो सके वह बड़ी पेशोदा थीं। एक और गणिका कर्तव्येना तब-न एव समूह को फिर दुखी और रामा का स्वाकक धकार इसे बाह्यता का विमल विरोध करना एक दुस्साहस का। उपर धर्म कापरिक बाह्यता होते हुए भी अक्षरत निर्जन और बसहाय का। पर इस प्रकार की स्थिति में इस प्रेम का निर्वाह सरल नहीं था। मास के बादरत में क्या का यह रामनीतिक भल नहीं है। कुछ विचारणीय विद्वान्^१ पाकक की कथा इसके अन्तर्गत आते हैं पर ऐसा है नहीं। पाकक की अर्थक काशी रामनीतिपूर्ण कथावस्तु बादरत और बसतसैना की प्रेमकथा से उल्लिख्य है। इसके बस समय की सामाजिक व्यवस्था का भी ज्ञान होना है। मूच्छकटिक समाज के सभी वर्गों के पाशों की चर्चा के स्वाभाविक प्रतीत होता है। इन सब पाशों के सम्बन्ध-साथ इसके चरित्रों की भी एक प्रमुख विशेषता है। अन्य संसृल कथकों में पाश प्रायः प्रविष्टि पात्र होते हैं किन्तु मूच्छकटिक के पाशों का अपना अस्तित्व है। युद्धरूप विट केवल भीति के लिए लीज सरकर का नोकर बनना है और उहते अपमन्य होना है। बाह्यवपुष अविजक शौर्यकार्य को बुरा समझते हुए भी प्रेम के अक्षरत अक्षर्य प्रवृत्त होता है। गणिका बसंतदेगर निर्जन बाह्यवपुष का बादरत के साथ प्रेम करने को उठावती है। उच तो यह है कि मूच्छकटिक में एक अपूर्व सम्मिश्रण है प्रवृत्त और विपार का, व्यस्य और कथना का, अक्षर्य और प्रतिभा का, क्या और मानवता का।

मूच्छकटिक के जैसे तो सभी पात्र अपने-अपने स्थान पर अतिप्रपूर्ण हैं पर इसमें कुछ पादरत और गणिका बसतसैना का अदभुत सम्बन्ध विशेष है। बादरत काठि से बाह्यवपुष और कर्म से अक्षर्य व्यापारी है। बाह्यवपुष एक दुस्कोचित अस्तित्व का उद्यम अक्षर्य आर्ष्य है। श्रुतारपूर्ण विद्वान्मिता का उद्यम अक्षर्य है। यह मातलीबाकर के माचन को गति प्रलयव्यवहार में स्वर्य प्रवृत्त नहीं होता। उसमें चारित्रिक दुष्टता है। प्रेम-सम्बन्धी सभी उद्यम अक्षर्य गणिका बसतसैना की ओर से उद्यकी कुछवपुष बनने हेतु रितामे नर है। यदि यह नर्य का कि उद्यता के कारण हीन मानना हीने के यह गदुचित रक्षा तो भी उचित नहीं क्योंकि बसतसैना की अपनी ओर उद्युत दैगकर भी यह गमोर ही

एह है। इसकी कुसीलता, सम्मता एवं सच्चरित्रता आदि महनीय गुणों ने समस्त उग्रयिमों के मन को जीत लिया था। एक समूह खेपड़ी से दखि भी वह अपने व्यापशोच स्वभाव के कारण ही बना पर उसके चरित्र की विशेषता यह है कि वह सब विभ्रम है। वह अपने को उस जाति के समान समझता है जिसने मक-सक से अनेक मीरों को गुप्त किया है किन्तु अब गण्यत्वस के बृष्ण हो जाने से कोई मीरा उसके पास नहीं फटकता।^१ कमी-कमी खरिदता से उसका मन विचलित हो जाता है और वह मृत्यु की इससे अच्छा सम्झने लगता है, फिर भी उसका मन असंतुष्ट नहीं होता। वह बीरम के उत्थान-पथन को समझता है। उसका भाग्यत्व आदर्श नायक की भाँति नहीं है। वह उत्तम खेपी के मध्यम वर्ग के चित्र को उपस्थित करता है, जिसकी खिण्टि साहित्य, सपीत और कला में रही है। विदुषण की भाँति यमिका बसतसेना को वह शक्तिशुक्ति से नहीं देखता और न यमिका प्रेम को ठेस पहुँचाकर उसे खरिददेव जानता है वरन् एक दुहायत्वा की मूक समझता है।

‘मया कममीदुर्ण वनपथ, यथागणिका ममसिन्नमिति अथवा यौनव-
मनापराधमिति न खरिदम्।’ मू० क० (१० अ०)

नायिका बसतसेना का खरिद को विदुषण प्रेम, अमूर्ख स्वाम और उत्पत्ता से भरपूर है। यमिकाशक्ति को धुर समझ कर वह बृहणी जीवन स्थिति की मही उत्सुक है। न तो उसमें सीता की भाँति यमीर पत्नीत्व है और न मासती की भाँति परलम्बता से आरत किशोरी की असक। वह लज्जता की भाँति बालमुल्लभ मुख बबोहारिता से मुक्त भी नहीं है और न मासबिका की भाँति ऐसे ही स्वाम में फँक दिए गए हीरे के टुकड़े के तुल्य है। विरुमोर्बखीय की सर्वती की भाँति होखे हुए भी उसमें कुछ वैशिष्ट्य है। वह उसके तरह खरिदक बिलासिनी नहीं दिखायी देती। वह स्वयं और उबारता से सर्वती से बहकर है। मके ही सर्वती ने अपने पुत्र को लियाकर प्रथम के लिए स्वधर्मत्याग की असक दिखाई थी। बसतसेना और सर्वती के जीवन में साम्य होते हुए भी बसतसेना की बुद्धि सर्वती से बहकर है। उसका प्रेम युद्ध एव गभीर है। राव-
बासक तस्थानक द्वारा भेजी गयी स्वर्णराशि का तिरस्कार करते हुए बसतसेना छन्दर की उत्सुति में लीन अपनी माँ से यही कहती है कि यदि वह उसे बीवित बेचना चाहती है तो इस प्रकार का प्रस्ताव कभी न रखे।

‘यद् म बीह्वन्ती इन्द्रसि, ता एव्य न पुनो बहु अताए आण्वाविदम्वा ।’

कपने समुद्रिणीयानी पुर्ण, पर पहिल बीवम से ऊपरत बहु पावरत की पत्नी बनने में बीरम सम्पत्ती है । उसे इस बात की चिन्ता नहीं कि पावरत निर्बल है । बिट भी उसका यह स्थान देखकर प्रसन्न है और उसके प्रकार से बनने में सहायक होता है ।

राष्ट्रियस्वायत्त संस्थानक प्रकार पावरत और बहउतेना के बीच दीवार की भाँति ऊँचा होने वाला पात्र है । यदि उसे मुसँठा, जामरता, हठबिना, इत्म, क्रूरता और विस्मयिता के सम्पन्न की प्रतिभूति कहा जाय तो ठीक हो होगा । यह राजसर्वकारियों को नहीं तक कि ग्यावाधीस को भी राष्ट्रियस्वायत्त होने के नाते उनके पक्षों से हटवाने की चमकी देने में नहीं द्विचक्रिवाता । दिवावे की विद्वता और बीरता प्रदर्शित करने को यह इन्द्रुक रहता है । बीच कुलोत्पन्न होने से और माता-पिता के अज्ञान से यह जागेसीमालुठ (ग्लेसी का पुत्र) कहलाता है । उसका अमिनव, बालबाल, बाउचीठ आदि सभी कुछ हास्यजनक है । बिट और पेट भी उसे मुसँ समझते हैं पर दुराग्रही होने के कारण डरते हैं ।

यदि अकार का हास्यमूर्च्छनापूर्ण है तो विद्वक (मैट्रैव) का हास्य बुद्धिमत्ता से मग्न है । यह भोजन भट्ट इच्छाय पावरत की बरिदावस्था में भी उसका बीमा ही सच्चा साथी है बीमा कि उसकी समुद्रिणीयता में था । पावरत के घरों में वह अनन्य सर्वकारमित्र है । इसीलिए बिल में अन्वय का पीवर रात्रि में बहु पावरत के पास ही सोट जाता है । बीच पार्श्वों में अन्म से ब्राह्मण और बर्म से और पवित्रक भी कपने नाचें में श्रवीण है । बीह्व निम्न के रूप में संवादक, घूठरातों का सचिक भाबुट, दोनों रसक चन्द्रक और बीरक, अपने-अपने स्थान पर कार्य-व्यापार में रत है । बार्बिक का अरिज भी प्रभावोत्पादक है ।

स्त्रीपार्श्वों में पावरत की पानी पुत्रा वास्तव में प्रतिबन्धा है । इनमें पावरत और बमउतेना के प्रेम के प्रति कोई अरवि एव हीन नहीं दिनाई ।

डा० गार्डर ने मुकुटकटिक के पात्रों की लार्बैथिन कहा है—

“Shudraka, alone in the long time of Indian dramatists has a cosmopolitan character”^१

१. यदि श्री बीह्वन्ती मिच्छति तदैव न पुनरह माथा ज्ञावविदम्वा ।

२ The Little Clay Cart (Introduction— Characters are also remarkable.)

डा० श्रीप मूञ्जकटिक को पुर्नस्फेग भारतीय विचार और भारतीय जीवन का प्रकरण मानते हैं, पर कि वे काठियास के पत्रों को साबदेयिक (Cosmopolitan) मानते हैं —

‘मूञ्जकटिक अपने पुर्न रूप में ऐसा रूपक है जो भारतीय विचारवारा और जीवन से घेरे-घेरे है ।’^१

मूञ्जकटिक के पत्रों में साबदेयिकता की शक्त निश्चित है। विस्व के किसी भी भाग में इन्हें देखा जा सकता है। भारत के बड़े नगरों में तो सत्सागर, दक्षिणक और समिक माधुर जैसे पत्रों की आरम्भएं आम नी विभिन्न रूपों में देखी जा सकती हैं ।

सविधानक शिल्प

मूञ्जकटिक की रचना पारशत्य नाट्यशला के आदर्श से सर्वथा विभे है। मुगली नाट्यशला की विविध अव्यवस्था जैसे परिचयीय नाटकों में पायी जाती है वैसे ससृत नाटकों में बनक नहीं है और व मूञ्जकटिक में उनका वास्तविक पूर्णत रचन होता है। इस प्रकार के प्रवेता में कुछ अटनारक दृश्यों का समावेश केवल साहित्यिक विचार से किया है, किा भी यह निश्चित है कि इसका कपलक केवल एक विषय के प्रतिबन्धनार्थ नियोजित नहीं हुआ है। इसमें तो अनेक विषय एक प्रयोगों की पूर्ति का सकुल प्रयाम स्थित पाया है। प्रशस्तता से बहु स्पष्ट अदित है ।^२

इसमें तात्कालिक सबाज, जासन और भाग्य के अनियमित घड्ये भी कहानी अन्तित की गयी है। इसी को ध्यान में रखते हुए इसका वस्तु विधान प्रभावपूर्ण है।

इसके विषय में यह बोजता कि एक बीटक में इसका अन्तित सम्भव नहीं

१. ए० बी० श्रीप . ससृत नाटक, अगु० डा० अरयमानुसिंह, प्रबन क्वाटर पु- ११८ ।

२. अपतिपुर्नो द्विज सार्थवाही मुवा दरिद्र निज आवसत ।
 दुधानुरता अमित्य व यस्य अस्तजोवेष अस्तसेना ॥
 तयोरेव सतुल्लोत्साधम अथप्रचार अथहारुहताम् ।
 अस्तवमाय अविश्वया तथा अथर नर्ब निज दूहको वृषः ॥

है मरु नाट-छाँट दिया जाये अथवा जो अमिनकों में इसे प्रस्तुत किया जाये विचारणीय है। श्री हेनरी रज्जु वेल्स ने इसका विरोध किया है —

The whole is very much of a piece and far more than the some of its constituent parts. Although part one, than many conceivably be given without part two, the latter cannot be given, without part one. Effects are to a remarkable degree accumulative. The relation is not more than of a pedestal to its statue, it is that of a growing organism from the trunk spring the many branches with their surprisingly abundant foliage.^१

डा० राइडर ने भी अत्र से यही कहा कि नाटक से है किसी दृश्य को छोड़ा नहीं जा सकता —

"In the Little Clay Cart, at any rate we could ill-afford to spare a single scene"^२

इस प्रकार की वस्तु विन्यास कला अपने दब को निराधी है। इसकी वास्तविकता को समझने के लिए हमें पीठर से बाहर जाये की अथवा बाहर से पीठर आना पड़ता है। अस्तव्य प्रतीत होमै वाली घटनाओं अथवा व्यापारों के आशय से पाठक को धर्म के साथ उठ खण्ड पर पहुँचना पड़ता है वहाँ से घटनाएँ मूल से लब्ध विसाई देती हैं।

वस्तु-विन्यास की परोक्ष पद्धति को मूल्य से स्वीकार किया है :—To use an arboreal metaphor, the eye of an audience is led to realise the construction of the tree not by proceeding from the stem outwards but by proceeding from the tips of the branches inwards.^३

मूकशब्दिक के कलात्मकयोजन और वस्तु-विन्यास का औचित्य देखिए—
आचारमृत मित्रांत निवृत्ति का निर्दोष घासन है। छोटी-मोटी घटनाओं से

१. Henry W. Wells : The Classical Drama of India p 133

२. Dr. A. W. Ryder : The Little Clay Cart (Introduction)

३. Henry W. Wells : The Classical Drama of India.

विकास का स्वाभाविक क्रम बूझता है। धारणा में ऐसा समझा है कि अंगरेजों ने नगर की गलियों में बसतसेना अपने पीछे घुसने वाले सकार एव उनके अनुचरों से बकड़ की आँखों पर बकस्मात् वह चाकर के घर पहुँच जाती है और समय से बँधे हुए दरवाजा खोले जाने पर चाकर का सामाजिक कर सेती है। बुआरियों वाले दुख में भी सबाहक समय से ही बसतसेना के घर में प्रविष्ट हो जाता है और सन्धिक के उत्पाचार से छुट्टी पा जाता है। प्रबन्ध-विपर्यय वाला समस्त काय नियति पर निर्भर है। कार्यक बन्धोपुह की दीवारों को तोड़कर मापते हुए चाकर के घर पहुँचता है और उसी बाड़ी में बैठकर भीषीयान पहुँच जाता है। पित्र का बुरा रहन भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। श्याप का सम्पूर्ण प्रकरण आकस्मिक परिस्थितियों के व्यक्त है। औरक मन्त्रक श्यापमन्त्र में पहुँचता है और श्यापक के विरुद्ध आरोप प्रस्तुत करता है। दण्ड ही नहीं, चाकर की बाड़ी में उसके मातृ समय के छिपे अज्ञान में जलै वाली बसतसेना का सबाय सुनाया है। बुल के पीछे किसी स्त्री का कुपसा हुआ शरीर भी केवल एक समय है। सबसे बड़कर नियति का अनन्तर जो उस समय सामने आता है वहकि मध्य बन्ध के सामूहिकों के पिटारी कुक्षि में बबाये श्यापमन्त्र में पहुँच जाता है और वह पिटारी बिसक कर भरती पर गिर पड़ती है बिससे वह प्रभावित हो जाता है कि चाकर के पात बसतसेना के सामूहिकों का होता निश्चय ही उसके अपराधी होने का प्रमाण है। बाटकीय श्याप की कठोरता से सहृदय उस समय कपल बढते हैं जब चाकर जैसे सरल, सभन एव निरपराध शक्ति को, बोपी हुई स्त्री-हत्या के आरोप में फाँसी पर अटकवा जाव की कल्पना करते हैं। न केवल नागरिक इस श्यापपूर्ण शासनादेश से हुंसी हैं बरन् श्यापधीय भी अपनी सारी सद्भावनाओं तथा सहायुक्तियों के होते हुए भी परिस्थितिकय श्यापों के आधार पर चाकर को मृत्युमुख से बबाने में अपन को असमर्थ अनुभव कर रहे हैं।

हिन्दू दर्शन 'सत्य विजयते नामुक्तम्' पर व्याख्या रखता है। अथ इसमें सर्व-विघ्न की भावबकता नहीं समझता। नियति की प्रबलता से सारा दुख ही बरत जाता है। सबाहक समय वचानक बहाँ पहुँच जाता है और पुत्रों उपकार का आमाण प्रकट करता है। बन्ध भी सद्यो ही वा कि दण्ड बसतसेना का बबा पोंटने पर उसको मृत्यु निश्चित प्रबल देता है और बसती पुष्टि आवश्यक बहाँ समझता।

नाटक का अंतिम रूप भी आप्य का ही खेक है। जाण्डाल के हाथ से लम्बार भवानक फिर जाती है और सबाहक समय इतने में लम्काल बसतसेना को लेकर राज्य स्वतः पर पहुँच जाता है। सद्दा बुद्ध ही बदल जाता है। योंसी के पदके से जाबदल नीचे उतर जाता है और अपनी आमाजीठ मधुर नामवामों से बसतसेना से जहने लगता है :—

त्वदयमेतद्विनिपात्यमाग देह त्ववेव प्रथियोवितं वै ।

बहो प्रयाव प्रियसवमस्य मृतोऽपि को नाम पुनर्जयेत् ॥

मू० क० १०,४३

पुम्हारे कारण मृत्युमृत में जाता हुआ यह छोड़ पुम्हारे हाथ ही जीवित कर दिया गया। बहो! प्रियजन के सम्मिलन का कैसा प्रयाव है! बग्यबा जरा हुआ भी कोई जीवित हो सकता है ?

और भी प्रिय बेशो :

एवं तदेव वरवत्प्रमिव च पाठा

जाण्ठापमेव हि वरस्य बधा विवाठि ।

एते च बध्यपटहृष्मवपल्लर्षव

जाता विवाहवटहृष्मभिविचि समाताः ॥

मू० क० १०,४४

प्रियवता की प्राप्ति के अवसर पर विवाह के समय जिस प्रकार वर की सजावट होती है वही प्रकार यह सजल वस्त्र और माला है। बैठे हो वर के समय नवार्थों की ध्वनियों में विवाह के समय के शार्दों की ध्वनियों के समाप हो गयी है।

मूककटिक को यही बद्धुत विचोरा है।

इसी से तो डा० कोप ने कहा है —

The real Indian character of the Drama reveals itself in the demand for conventional happy ending which shows us every person in a condition of happiness with the solitary exception of the evil king.¹

शास्त्रीय विधान

मूककटिक ऐसा प्रकार है जिसमें नायिका दुःखरूपा तथा बेराया दोनों

है, साथ ही घुर्छ, धुबारी, मिट, पैट इत्यादि भी हैं। इसी से यह जर्मनीय प्रकारण है। बायक चाकरत बीरइजाण्ट है जो तखि होने पर मी घर्म, खर्च एव काम-छात्रता में लीन है। अग्रिका वैस्या है, जैसे दूसरी नाविका बूटा कुकनवृ है। हर्षमें घुर्छो, कुमारियों, जित्तों और पैठी का बमबट है। नाअ्यवस्तु के विचार से चाकरत और बसतसेना की श्रेयकया सचिकारी बयना प्रचान इतिवृत्त है। गौण वस्तु के रूप में लीन छोटी नवो सहायक कर्षाएँ हैं। एक बरनिका बीर अदिलक के प्रथम की बिसे पठाका बयना प्रासंगिक वस्तु कह सकते हैं, दूसरी लखा पाठक की हत्या लखा मायंक के छात्रारोहण की और तीसरी बपाहक मनष की कया है जिसे प्रचारी कहना उचित होया। ये तीनों कर्षाएँ पूर्वतः प्रासंगिक वस्तुएँ हैं। अदविका-अदिलक पाठा गुत पठाका गुत है और मुख्य गुत का सर्वथा उपकारक लिख हुआ है। इसका कलात्मक गुण्यन सर्वथा ठीक है। वर्ष प्रकृतियों के विचार से यकार का बिट से बसतसेना-विषयक निम्न कथन इस प्रकार का होत है—

माये । माये । एसा बरुनबासी कामवेवामरनुग्वाचाओ
बहुदि ठाह बलिहवास्तुवताह वपुत्तता न म कामेदि ॥^१

मू० क० (प्र० ब)

विद्वन् ! विद्वन् ! यह गौण बसतसेना अयवेकमदिर के उद्यान से ही बखि चाकरत में अमुररत है, मुझे नहीं चाहती। कर्मपुरक द्वारा दुष्ट हापी के उत्पात से अमन की बचाये लखा पुरस्कार रूप में चाकरत से प्राचारक पाणे की अर्था बसतसेना से करने पर मुरबकया निस्वित रूप से बहसर होती है क्योंकि इसके बरुवात् बसतसेना पैठी के साथ चाकरत के बरुन के लिए अग्नि पर चढ जाती है। अत कर्मपुरक का प्रस्तुत प्रथम छात्रोय मापा में विद्वु कहा जा सकता है। अकरत का मुख्य छात्र्य चाकरत एवं बसतसेना का पति-पत्नी भाव है, क्वाबी अग्निबयन है। यही उद्येका कार्य समझा जात है। अयावस्तु के कार्य की अर्थ बवस्थाएँ हैं — धारम्ब, यत्न, प्राप्पाद्या, निमतासि एवं क्वावीय अयवा क्वावय ।

कार्यावस्थाओं में धारम्ब की स्थिति उक्त समय जारी है जब कि यकार का कथन सुनकर बसतसेना अपने मन में कहती है—

१. माय । माय । एसा बरुनबासी कामवेवामरनुग्वाचाओ प्रमृति उत्त बखिवास्-
वतास्य अमुररता न मा कामवति ।

‘अम्महे । वामरो तरस पैर्हं ति व अण्णम्, अवरत्तमसत्तेण वि दुज्जवैव
अवकिरम्, वेन पिअद्यमपविबम् ।’^१ मृ० क० (४० अक्ष)

यदि अण्णम् वामों ओर अक्षका वर हूं तो अपद्यम करते हुए भी दुष्ट वे
उपकार कर दिया । जिससे त्रिय समागम तो प्राप्त हो गया ।

इससे अक्षकैना की त्रिय मित्रता की उत्पत्ति स्पष्ट होती है । यह
उत्पत्ति उक्त समय और भी स्पष्ट हो जाती है जब चाचरत्त का अक्षरोम
हाथ में लेकर वह कहती है —

‘अम्महे, चादीहुमुववासिरो वावारयो । अनुदासीय से अणोवण पठिवा-
सेदि’ । मृ० क० (३० अक्ष)^२

महा । अवेधी के फूली की तुलना से सुवासित वह अक्षरीय । अक्षका
वीरव अयो अण्णम् ही प्रतिभासित होता है ।

चाचरत्त का औरमुण्य भी इसी अवसर पर प्रतिभासित होता है । विदुष्य
के मुख से अक्षर की बसकी सुनकर वह अपने ही आप कहता है—

‘अञ्जोऽप्री (स्ववचम्) अये क्व देवतोपस्थानयोग्या पुवतिरियम् ।’

मृ० क० (२० अक्ष)

रामस्यास मुखं हूं । अहो ! देवता के समान अक्षी अक्षरनायोग्य यह
बुझती है ।

चाचरत्त और अक्षकैना का औरमुण्य परस्पर अक्षित होने के कारण कार्य
के आरम्भ की अवस्था का लौकिक है ।

वत्त की प्रक्रिया उस समय देखने में जाती है जबकि चाचरत्त के यह कहने
पर कि यह अण्णम् वर अरोहर रखने योग्य नहीं है अक्षकैना कहती है :—

‘अच्छ अनीअम् । पुस्सेनु नामा गिक्खिअिअन्ति, व उअ पेह्णु ।’^३

मृ० क० (४० अक्ष)

१. आचर्यम् । वामतावस्य नृहमिति यत्प्रथमम्, अपद्यम्यापि दुर्जनैर्वीरवत्तम्,
वेन त्रियसपम प्राप्त ।

२. आचर्यम् । चादीहुमुववासितः प्राचारक । अनुदासीनस्य वीरव
प्रतिभासते ।

३. कार्यं, अणोक्म् । पुस्सेनु स्थाना विनिष्पन्ते, न पुनपुस्सेनु ।

आर्य ! यह बसंत है । बरीदर, योग्य पुरुष के यहाँ रही जाती है, नकि योग्य घर में । यह कहकर यह चास्वत के घर आमुषम छोट बेटी है । यह कर्मप्राप्ति के लिए निश्चित प्रयास का मारम्भ है क्योंकि इसी आमुषमों के बहाने यह भविष्य में चास्वत के घर पुनः जा सकेगी । यत्न की स्थिति आये भी बसन्त-सेना की ओर से निरन्तर चल्ती रही है, पर छठे अंक में प्रबल बसन्तसेना को ओर से नहीं चास्वत की ओर से किया गया है और छगमग पूरा कर्म सन्तुष्टि का है ।

छातवें अंक से प्राप्ति का प्रारम्भ होता है और वसुधै कुरु कुर्वन् चास्वत के लिए विद्या का विषय रहता है । आर्यक को अपनी गाड़ी से घेनकर चास्वत बसन्तसेना के लिए निश्चित होकर रहता है—

(आयुधस्वयम्भुवसिन्धु) वसुधै कुरु कुर्वन् चास्वतसेना दर्शितोऽनुकोऽप्य जन ।
(बाँधी बाँध छटकमे का अनुभव करके) ससे मेरेय । मैं बसन्तसेना को देखने के लिए उत्सुक हो रहा हूँ । यह प्रादुर्भावा है । इसके आये अन्तिम अंक में आम्नातो के यह कहने पर कि मारे जाने से पूर्व यह मनचाही बातें कर ले, चास्वत कहता है :—

प्रवर्षति यदि धर्मो कृषितस्वापि मेऽथ,

प्रवृत्तपुरुषवान्प्रीत्योपास्वतकृषित् ।

पुरपठित्वमस्या वक्त्रे तत्र स्थिता वा

म्यपगततु कर्कशं स्वस्वमानेन तैव ॥ मू० अ० १०, १४

राजपुरुषों के बचनों से कठकित आत्र मेरे धर्म में यदि कुछ भी प्रभाव हो तो दम्भ के बचन में स्थित या कहीं भी बसन्तसेना हो मेरे कर्मक को बुर करे ।

इस उक्ति में भी चास्वत के मन में आत्म-विश्वास की शक्ति है । फिर बसन्तसेना जब विशु के साथ बन्धुत्व पर पहुँचती है तो धार्त स्वर में पुकारती है—

‘अग्ना । मा दत्त मा दत्त । अग्ना । एषा मह मन्महाद्वी, चाए कारणावो
ऐसो वावादीमधि’ ।^१ मू० अ० (६० अंक)

देना न कीजिए न कीजिए । अग्नी ! यह मैं अमायिनी हूँ जिसके कारण वे मारे जा रहे हैं ।

१. धामीः मा दत्तमा दत्त । धामी । एषाह मन्महाद्वी मस्या कारणादेव म्यपासते ।

प्राप्त्यासा के प्रारम्भ से यहाँ तक आरम्भ की बसतसेना दोनों, प्रेतकों के लिए कुतूहल बने हुए हैं। यही तो इस प्राप्त्यासा का वास्तविक रूप है। इसके पश्चात् निम्नलिखित बोलिए। बसतसेना के यह कहने पर—

धरे। आरम्भ कीवित्त है। मैं पुनःकीवित्त हो गयी। यहाँ प्राप्त्यासा का समस्त विष्णु बुर हो जाता है। प्रकार भी बसन्तसेना को देखकर यह कहते हुए नाम जाता है—

‘हीमादिने, केम गम्भवासी धीवाविदा ? धक्क ठाह मे पाणाह बोदु पठाइयधम’ ।^१

पृ० ५० (१० अंक)

हाय ! यह अक्षय्य दानी कैसे खोजित हो गयी ? येरे प्राण निकलना चाहते हैं। इधर नामक नाविका का स्वामी मित्रव निहित होने पर और धरर छविकक के प्रकट होकर यह सबाव गुमाने पर कि कार्यक ने राजा पातक का बध कर दिया है जिसने आरम्भ के प्राप्त्यासा का आरिष दिया था, निम्नलिखित की बयस्या और प्रत्यक्ष हो गयी।

इसके अंक की समाप्ति फलायोग का महीम्न है। यहाँ मृच्छकटिक का मन्त्र-म पुष्प हो चुका है। बसतसेना आरम्भ की बधु खोजित हो गयी। दूसरे महत्त्वपूर्ण पात्रों को भी पुरस्कार किया गया। इस माँति आधिकारिक कथा का प्रस्तुत फलागम सुन्दर और सुखर रूप में सामने आया है।

अर्घ्यप्रदुष्टियों और नामोत्सवों के संयोग में पाँच छवियों का आविर्भाव होता है।

बनधन ने कहा है—

समप्रकृतसपत्ति कृत्योभी बपोरित ।

अर्घ्यप्रदुष्टय पद्म पञ्चावस्थासन्निवताः ॥

यथासक्येन आवन्ते मुखाया पञ्च-अक्षर ।

अपुत्रैरपसम्भ-व. सन्निरेकान्धये सति ॥ १० अंक, १, २२-२३

पाँच प्रकार की अर्घ्यप्रदुष्टियों का क्रमस पाँच प्रकार की बयस्याओं से समन्वय होने पर मुष्प, अतिमुष्प, गर्भ, अक्षय्य तथा उपसहस्रि नाम की पाँच दूधियाँ उत्पन्न होती हैं। इनका निवेदन त्रितीय अध्याय में है।

१. आरम्भम् । येन गर्भवासी धीवन् आविता ?

उत्पन्ता मे प्राणा । यदनु पनादिप्य ।

प्रथम अंक में आरम्भ से लेकर चाण्डाल के यहूक होने तक कि बेवता के समान कैंसी तपासनायोग्य वह मुबती है औरतुल्य म्यबिध होने पर मुखसधि की म्यबिध समझे जाती है। इसी अंक में जहाँ बसन्तसेना अपना मानुष्य पाश्चत के पर छोड़ने का प्रस्ताव करती है, प्रत्यक्ष के आरम्भ से छठे अंक तक अर्थात् पाश्चत द्वारा बर्लोजान में बिहार की योजना एक प्रतिमुखसधि रहती है। इसी बीच में दूसरे अंक में बुभारियो और कर्गपुरक के प्रथम से बिन्दु है। तत्पश्चात् तपा प्राप्ताया की अवस्था से इसमें अंक के सम्पत्त तक अर्थात् पाश्चत के हृष्य से तन्नार गिरती है और धनश के माय बसन्तसेना का साक्षात्कार होता है गर्भसधि का प्रकरण है। इसी में पञ्चकान्तिबानी मुख्य पताश के प्रभावपात्र व्यर्थक के अपहरण का दूरम धरने माया है। दूसरे अंक में पाश्चतों के इस कथन है कि कल्पे पर केष छितराये यह कौन था रही है, धकार की मयाकुस स्थिति में पाश्चत की धरण में आ जाने तक अचमर्त सधि है। इसी बीच संवाहक वाली प्रकरी का भी प्रधान यथा के साथ विस्मय-पूर्ण संयोग हुआ है। अन्त के वास्तवसमर्पण से लेकर अन्त तक निबर्तन उपमहृति नाम की अन्ति समती यावैरी क्योंकि इस स्वर पर नाटक का मुख्य साध्य फलानाम यथा को प्राप्त करता है।

नाट्यवस्तु से पूर्ण नाट्यकारण के विष्णो को दूर करने के लिए कुलीकनो द्वारा सम्पन्न उपचार पूर्वकन कल्प थाता है। नाट्यी उप उपचार का मन्त्रिम महत्वपूर्ण अय है, जिसे विष्णुसति के हेतु आवश्यक समझा गया है। प्रस्तुत नाट्यी के मीरकच्छ धरकर और गौरी, प्रकरण के नायक नायिका के विरैद्यक समझे गए हैं, उनका मिकम नाट्यी के दूसरे कोक^१ से अकैठित किया गया है। नायक चाण्डाल और नायिका बसन्तसेना के सम्पन्न में अमेरिकी सातोचक हेनरी वेल्स का मठ है कि पुरुष चाण्ड और भारी विन्सी है। भारी बसन्तसेना की विन्सी को मुख्य चाण्डाल चाण्ड से अचार के किया है। बसन्तसेना की धक्ति की माय से उसके भीतर की माय अंक रही है।^२

नाट्यी के बाद अमुक्त अथवा प्रस्तावना जाती है। इसमें नरी का सूत्रधार के साथ धर्मावण है। मूञ्जकटिक की प्रस्तावना सार्थक है। इसमें लेखक का

१. यमु को मीरकच्छस्व कच्छ स्वामाम्भुषोचम ।

गौरीमुक्तता यन विदुश्चेतेर एवते ॥

२. Henry W, Wells The Classical Drama of India, p138-40.

परिचय देने के साथ ही मूञ्ज कथानक तथा उससे सम्बन्धित अन्य कथाओं की सुन्दर विवृष्टि है। प्रस्तावना के पाँच अक्षर उद्घाटक, कबीरुवात, प्रयोवातिशय, प्रवर्तक तथा अवयवित्त में है मूञ्जकटिक में प्रयोवातिशय नामक प्रस्तावना है। इसमें एक ही प्रयोग में दूमरा प्रयोग भी प्रारम्भ हो जाता है और उसी के द्वारा पाठ का प्रवेश होता है। मूञ्जकटिक में सुत्रधार के निम्न कथन से—

‘एव चाक्यतस्व मित्र मीमेव हत एव सापञ्छति’ मीमेव रङ्गमञ्च पर अर्पित्वत किया गया है। अतः यहाँ प्रयोवातिशय वाचि की प्रस्तावना मानना समीचीन है।

अन्य उपकरणों की चर्चा में यह कल्पना आवश्यक है, कि मूञ्जकटिक का द्वासीय विधान के अनुरूप जगी (प्रधान) एक श्रुतार है, जिसके धातक अक्षरों में दसवें अक्षर में कल्प, धकार की एक विरूपक को चक्षियों में हास्य तथा बसन्तसेना योत्तन वाले प्रसङ्ग में बीजतत्त्व है वाच्यों के इस नियम का मूञ्जकटिक में पालन हुआ है फिर इसमें प्रवेशक अक्षरा विष्णुअक्षर का उपयोग नहीं है। यही हम नाटक की प्रमुख विशेषता है। अन्य नाटकों की भाँति भरत-वाक्य के साथ इसकी भी समाप्ति है।

द्वासीय विधान मूञ्जकटिक में यहाँ सुन्दर जन पदा है वहाँ कुछ बातों की उपेक्षा भी दिखायी देती है। कुलकल्या तथा बभिसा का एक साथ रङ्गमञ्च पर मिलन निमित्त है—

सचिदश्रेष्ठि शाङ्गन-पुणेहितायात्यसार्थबाहानाम् ।
 बृहदार्या यत्र भवेत् न तत्र वेदमायना नार्या ॥
 यदि वेदमुच्यन्तिमुक्त न कुलस्त्रीसम्भो मनेत्तत्र ।
 अथ कुलजनप्रयुक्त न वेदमुच्यन्तिवेत्तत्र ॥

ना० द्वासीय २०, ११-११

पूजा और बसन्तसेना न केवल रङ्गमञ्च पर साथ आयी हैं बरन् कुछ प्रश्न के पश्चात् उन्होंने आदिगण भी किया है। इन अक्षरों प्रस्तावना के स्तोत्रों की भाँति प्रसिद्ध भी कहा जाता है। अतः मूञ्जकटिकधार दसवें शिल्प उत्तरदायी नहीं बल्कि का सचता। बड़े दोनों का परस्पर मिलन एक प्रकार से लीहार्दबाव का प्रतीक है और प्रकरण की विशेषता का लोचक है।

रूपक का नाम सामान्यतः नायक मायिका पर होता है पर मूञ्जकटिक का नाम एव ऐसे वेग्य शिल्प पर आधारित है वहाँ शङ्कर के शङ्कराचार्य का मनोवैज्ञानिक चित्रण है और साथ ही बसन्तसेना की इशारता का परिवारक भी

जिसने सौम्य के धामुख्य उद्ये लिए और विन आमुषकों द्वारा आदरत न्यायालय में अनियुक्त मित्र हुवा । अत इस अभिपाम की सार्थकता प्रत्यक्ष है ।

मूच्छकटिक के अनुशीलन से बहु स्पष्ट जात होता है कि इसमें व्यस्तोच मान-भर्यावा का अचिह्नय मे अनुनाशन है । यहाँ एक तो राज्यविपन्न तथा पावन का बच प्रत्यक्ष नहीं दिखाया गया । हुसरे अनेक विषय परिस्थितियों में नायक-नायिका का अन्वित सुखद मित्रय चिहित किया गया है :

नाटकीय अन्वितियाँ

मरस्तू द्वारा निर्धारित संकल्पनय के विज्ञात पर आचारित परिचामीय साहित्यिक विज्ञानो मे नाटक की रचनाओं मे तीन प्रकार की अन्वितियों को मूल्य दिया है जिन्हें संकल्पनय कहा जाता है । एत जाति स्थान को अन्विति, सबय की अन्विति और कार्य की अन्विति नाट्यरचना मे उल्लेखनीय है ।

यद्यपि भारतीय नाट्य विद्या मे अन्वितियों की जपा नहीं है फिर भी इस विचार से देखा जाये तो मूच्छकटिक मे स्थान की अन्विति का वाचन समुचित है । मूच्छकटिक के अमस्त कार्य व्यापारों का स्थान उन्नतियों है । यान सबहित स्थानों से स्रष्ट है । न्यायालय बाटे कृष मे औरक घोष कोर्पोरेशन मे पहुँच जाता है और रनो के शय के विषय मे अपेक्षित सूचना केकर सोड जाता है । पीठ की पीठ पर औरक का उदाल मे मैना जाना भी प्रकरण की दूरदृष्टि है ।

समय की अन्विति का बहुत तक सबय है भारतीय विद्या के अनुसार तो इनका पासन हुआ है पर नाट्यशास्त्र के पाठशास्त्र पण्डितों के अनुसार द्वितीय तथा तृतीय मरु मे समय उदालय के व्यवधान हो जाने के कारण नहीं हो पाया है । मूच्छकटिक मे यह बात खटकती भी नहीं क्योंकि कस्तुसयतन इतना समीचीन है कि इसका बोध नहीं होता । प्रसिद्ध नाटककारों मे एकके अन्वित मे मिलने है बीडे देवसपीयर के नाटकों मे ही इसका पावन नहीं हुआ है । अत प्रकरण द्वारा समय अन्विति को रक्षा मान्य है ।

कार्य अन्वित व्यापार को अन्विति का पावन इसमें पूर्वतया हुआ है । पावन और अन्वितके का अन्वित परिपाक का विषय परिस्थितियों मे आ नहीं करानेय है । एक और तो पुनर्पठित समय का मैय के प्रत्येक पाठक का अन्वित भारतीय औरक के अनुकूल है दूसरी ओर मैया होते हुए भी अन्वितके विचारित आदरत से प्रेम के लिए विनयोचित वैधित्य मे सब है । दोनों का प्रेम-

व्यापार धरकर श्री करतूतों के कारण अनुबाधित हुआ पर वास्तव की पत्नी पुता में तो सहयोगपूर्ण परिचय दिया ।

एक साथ ही इसमें कई जटिक समस्याएँ आकर बतझड़ भी पैदा करती हैं । वास्तव और बतझड़ेना के प्रथम के साथ नीति का प्रचार, दुष्टाचरण, दुर्जन-स्वभाव, माग्य का उलट-फेर आदि कभी-कभी व्यापारों की पूर्ति में तरिख से जगत हैं पर अंत में सभी अपने अपने रूप से सममित हो जाने हैं और मुख्य पर्येय की पूर्ति में सहायक होते हैं । वास्तव के व्यक्तित्व का विकास और अंतिम सफलता जिस रूप में प्रकरण में प्रदर्शित की गयी है उसको देखते हुए यह कहना निश्चित रूप से उचित है कि इसमें व्यक्तियों का पासव समुचित रूप से हुआ है ।

जनजीवन की शैली

संस्कृत के अन्य नाटकों में तात्कालिक जीवन का तथा सामाजिक एवं राजनीतिक चित्रण का इसका विप्लव रूप देखने को नहीं मिलता बिना कि मूकजटिक में उपलब्ध होता है । प्रस्तुत प्रकार में लोक जीवन, दम्पता, संस्कृति तथा जातकीय व्यवस्था का स्पष्ट संक्षेप मिलता है ।

धार्मिक व्यवस्था का बहुत ठक संकेत है इसमें हिन्दू धर्म का प्राचीन रूप देखने को मिलता है । वास्तव ने वैदिक मंत्रों के उच्चारण एवं यज्ञादि से अपने परिवार के पवित्र होने की चर्चा की है—

मत्स्यपरिवृष्टं पौनःपुन्यसिद्धिं मे

सर्वसि निश्चिन्तयन्तुः प्रस्तात् ।

मम मरणदण्डात् सतंमानस्य वापि—

स्तवनदुष्टमनुष्यैर्भुञ्जते योपचामाम् ॥ मृ० क० १०-१२

चण्डक ने कार्यक की रक्षा के लिए देवताओं की आराधना की है ।

‘अथवा तूह देव हरो विष्णु ब्रह्मा रबी अ चण्डो, अ

हत्वा एतुपय सुम्भनिगुम्भे यथा देवी’^१ मृ० क० ९, २९

शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य और चण्ड एतुपय को मारकर तुम्हें उसी शक्ति अथवा शान से विद्व शक्ति सुम्भ और निगुम्भ को मारकर दुर्गा देवी से दिया ।

१. अथवा तव रक्षा; हरो विष्णुर्ब्रह्मा रविषण ।

हत्वा एतुपय सुम्भनिगुम्भी यथा देवी ॥

पदान्त कर्तव्येय सौं बचाने बाके जोरो के देवता है तथा कीव स्वतं का खेयन करने बाके बताये परे है । यहाँ देवमूर्तियों की पूजा का भी उल्लेख है । सुबारियो बाके द्रुम्य से एक मन्दिर की चर्चा की है । मूर्तियाँ सबसत काठ बनवा पत्थर की बनस्यो बाठी थी । नगर में कामदेव का मन्दिर या बहुत पत्थर-देवा, सकार तथा भास्वत को पद्मश्री मेट हुई थी । चर की देहली बनवा मपर के नीचे पर मासुदेवियों तथा अन्य देवी-देवताओं को बलि तथा उपहार बचाने की प्रथा थी ।

नाम तथा ब्राह्मण को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था । मनोरथों की सिद्धि के लिए ब्राह्मण की सबसे पहले पूजा आवश्यक मानी जाती थी । लक्ष्मिक ने मनु का सहारा लेते हुए कहा है कि हत्यास भी अपराधी ब्राह्मण बाप नहीं का मन्त्रा बरन् उधका देस से निकालन ही किना जा सकता है । वेदों के सम्बन्ध का बर्णिकार ब्राह्मणों को हो पा । वृशसि के धियु से नियिद्ध से । ब्राह्मणों के लिए सम्प्राप्तन का विशेष महत्व था । पुनर्जन्म तथा कर्म-सिद्धान्त में उनका सामान्य विश्वास था । भास्वत कैसा बर्मात्मा ही नष्टे बरन् विट तथा स्वावक जैसे भी इस जन्म में कुछ कार्य करने से उरते थे । बरलोक में स्थित पिठरों के प्रति भी सम्मान प्रदर्शित किया जाता था और उनकी तुष्टि के लिए पुन-जन्म का विशेष महत्व था । मात्र में क्षेत्रों की जात्या को । उनके अनियमित खेस का निरूपण सम्पूर्ण नाटक में प्रतिष्पानिष्ठ है । यह निरवज्ञ भी सर्वप्रथम था कि उत्तम कार्यों का परिणाम दण्ड में बचन ही होता है और पाप का दण्ड भी भोगना पड़ता है । ब्रह्मचर्य भी उस समय उन्नत अवस्था में था । बर्षि, बानु बनवा सामाजिक स्तर का ध्यान न रखते हुए भी व्यक्ति बिसु बनवा भयस बच सकता था । तभी हो सबहुक अन्तम नत गया । स्त्रियों की त्रिसुयी बन जाती थी । वे त्रिसु बीचन के समी शैक्षिक सम्बन्धों तथा ज्ञाननों का प्रतिपाप कर केते थे एक बर्षीजनों का पठ करते हुए स्वर्ष प्राप्ति की कामना में लीन रहते थे । एक त्रिसु के उत्तम विचारों की परिष्कारिका निम्न बलिनी है ।

‘शंभन्मव पितृपोट निम्न अन्वेष क्षानपकद्वैय ।
विद्यया इन्धिमपोका हलन्ति बिलसचिदं वग्मन् ॥
पद्म बल देव माळिया इत्येव माळि म पाम कश्चिदै ।
बदते म बन्धाळ माळिसे बनस वि से पळ सग्व माळिदि ॥

एक मुखिदे तुष्ट मुखिदे चित्त न मुखिदे कोष मुखिदे ।
 बाह उच न पित्त मुखिदे साधु दुष्टु विष्ट ताह मुखिदे ॥^१

मृ० क० ८७, १-३

नगर के समीप मठ बनवा बिहार होते थे। इन बिहारों पर राजा का नियन्त्रण रहता था और उन्हें सभ्यत राज्य से प्रोत्साहन एवं आर्थिक सहायता मिलती थी। सबाहक समय बार्बरक के सम्भारोह्य पर बंस के सम्पूर्ण बिहारों का कुम्पति बना दिया गया था। इसका सब कुछ होते हुए भी बर्मानुयायो जमघमुराय बिचार नर से बोड समर्गो का दसन अपघकुन सम्भता था। तब-वत् सनकी दृष्टि में वे आदरणीय नहीं थे।

जनता में अनेक चारबाएँ प्रचलित थीं। सिद्धों की मदिष्पयाथी पर राजा पालक न बार्बरक को बड़ीयुह से डाल दिया था। बाँड का कडकना, कौबे का बीडना, साँप का दैखना इत्यादि अपघकुन समये आते थे।^२

इन्द्रजित्त का पतन, पाल का प्रसव, नक्षत्रों का पतन तथा कज्जल मनुष्प की मृत्यु का दसन चाण्डाल के द्वारा निश्चित बताया गया है।^३

ज्योतिषशास्त्र में जनता का विश्वास था। ज्योतिषशास्त्र ने कहा है कि प्राण वाक का सूर्योह्य किन्ही ब्रह्मन् पुष्प की विचिती का शरीक है।^४ विचिन्न व्रत भी प्रचलित थे। मूषधार की पत्नी ने ज्योतिष्मपति नाम का व्रत किया था।

सामाजिक स्थिति

जातियों में ब्राह्मणों की विशेष मान्यता थी। वर्ण के अन्तर्गत पर उन्हें जोवन एवं दक्षिणा से सम्मानित किया जाता था। समूह ब्राह्मण दक्षिणा स्वीकार नहीं करते थे। बसगात्रों की मान्यता से वे जनता के सम्मान के पात्र

१ उदञ्जित विबोदर निरय बाणुत ध्यानपटहेन ।

विचिता इन्द्रियधौरा हरति चिरमचित्त धर्मन ॥

पञ्चजला मन मारिठा स्विप मारविस्ता द्वायी रजित ।

अदल नर चाण्डालो मारितोऽस्यमपि स नर स्वर्गं बाहूते ॥

गिरो मुग्धित्त तुष्टं मुग्धित्त चित्तं न मुग्धित्त किमर्थं मुग्धित्तम् ।

यस्य पुनश्च चित्तं मुग्धित्तं साधु तुष्टु गिरस्तस्व मुग्धित्तम् ॥

२ उच्यते ' ' ईवत् । मृ० क० ९, १५

३ इन्द्र - - - इष्टया । मृ० क० १०, ७

४ सुदीर्घे अपराधो महापुरुष विनिपातयेन कचयामि । मृ० क० (न० अ०)

दे। दार्शनिक ज्ञान के विचार से ब्राह्मण मिलन-मिलन वर्णों को भी अपनाने में उत्साहित रहते थे। चाणक्य एवं उसके पूर्वज शार्ङ्गवल्ह (म्यापारी) थे। धर्म-तक शत्रुबंदों का आठ। और दक्षिणा न लेने वाले श्राद्धों का पुत्र वा पर बोरी करने में भी प्रवीण था। इससे निश्चित है कि विचार एवं कार्य के अनुसार वर्गव्यवस्था उस समय शिथिल हो चुकी थी। फिर भी चाणक्य और शक्तिशाली दोनों ने शक्ति विवाह कर लिया। राजकीय उत्तरदायी पदों पर जाति के विचार से विमुक्तियाँ नहीं होती थी। बीरक और चन्द्रक, नापित तथा चर्मकार होते हुए सम्माननीय पदों पर आसीन थे। शासकीय दृष्टि में अस्पृश्यता की भावना नहीं थी। वैश्य विदेशों से म्यापार करते थे। जहाजों से बात आता आता था। स्वर्णकार और कायस्थ जनजातों की दृष्टि में अच्छे नहीं समझे जाते थे। सामाजिक पाण्डित्य उस समय शूद्रवर्ण के प्रतिनिधि माने जाते थे।

उत्साहीन नाटिका तीन स्त्रियों में थी। एक प्रकाशगारी अथवा पम्पिन और शेरया, दूसरी अप्रकाशगारी अथवा बभ्रु और तीसरी मुञ्जिष्वा। गणिका एवं शेरयाएँ समूह थी। वे मध्य प्राकारों में रहती थी। अपने प्रेमियों से इन्हें पर्याप्त रूप प्राप्त होता था। गणिकाएँ मूल्य, समीत इत्यादि कलाओं से अपने प्रेमियों का मनोरञ्जन करने वाली कही जाती थी। मसन्तसेना इन्हीं वर्ग में थी। वे दूसरी श्रेणी की ओर अपने प्रेमियों की उपासीया थी। शेरयाकन शरी के लिए खुले हुए थे। इस कृति से कृपा करनेवाली मुञ्जिष्वा अपनी सुगीक्य और सम्भवहार से कुलवधु भी हो जाती थी। गणिका बसन्तसेना का सम्बन्ध चाणक्य से इन्हीं रूप में हुआ था। बभ्रु एक कुलवधु का समान में सम्मान था। वे प्रतिव्रता होती थी और पति की मृत्यु होने पर सती होता मसन्त करती थी। तीसरी विम्बक्षेत्री की नाटिका मुञ्जिष्वा को ओ दासियाँ होती थी और अपने स्वामी अथवा स्वामिनी की सेवा करती थी पर ऐसा जीवन उन्हें शक्ति नहीं था। मरगिका ऐसी ही थी जिसे सत्सक ने अपनी बभ्रु बना लिया। कही कही वैवाहिक सम्बन्धों में जाति का कोई प्रतिबन्ध नहीं था। विवाह उत्कार सामिक रीति से होने थे। बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। वैश-विवाह भी होते थे। चाणक्य और धर्मिक के उदाहरण हम इन्हीं में उल्लेखनीय हैं। गणिकाओं से उत्पन्न मसन्त बभ्रुस कही जाती थी। मृत्यु से सम्बन्धित रीतियों का अनेक ब्रूता के विना प्रवेश की योजना से मिलता है। उत्कार में विमोचक का प्रयोग होता था। जिसका अर्थ इन्हीं अक्षरों पर है।

सूतकीया सवान में प्रचलित थी। उस समय यह एक मनोरञ्जन का मायन थी और त्याग्य नहीं मानी जाती थी। मोक्षसाधक यह खेल चलना या और प्रत्येक बुधारी पर पूर्ण नियमन रहता था। समाज के बड़े-छोटे सभी स्तर पूजा खेलते थे। इसका अभ्यस्त सन्निक कहलाता था और इसी के विरोधक से यह होता था। इसने आर्य की व्यवहारा पर बुधारी बढोर बण्ड के साथी होते थे। यह ज्ञान, पाप, गर्हित तथा कर नामक चूर्ण के दावों से खेल चलता था। निम्न शक्ति से जात होता है कि चूर्ण भी कुछ रीतियाँ थी प्रचलित थी जैसे बर्दमी और शक्ति। परंतु में बुधारी यथे के समान कोठी से मारा जाता था। और शक्ति में बह मग्न प्रकवा किसी शक्ति से छोटे यथे बाण के सवान मारा जाता था।

अथअभ्ययनमुक्त्वापि विम

गह्रोए हा ताडितो म्नि बह्रीए ।

अथमा अमुक्त्वाए विम सतीए

अथदकी विम शक्तिो म्नि सतीए ॥' सू० ५० २,१

सूतकर्म की शक्ति शौर्यकर्म भी अत्यन्त विकसित था। इनने एक व्यवस्थित वैज्ञानिक रूप ग्रहण कर लिया था। कार्टिरेव, मननशक्ति तथा भास्कर बन्धी शौरों के देवता एवं आराध्य थे। सैन्य उद्योग की भी विवेक विधियाँ थी। अखिलक द्वारा सन्निकछेद उद्योगी कुशलता का प्रयोग है। शौरों की भी अपनी एक आचरणमहिता थी। जिस घर में शक्तिवाँ होती थी उनमें सैन्य नहीं लगाई जाती थी। अथवा एवं शक्ति की शक्ति में परे आचरण का अचरण नहीं किया जाता था। यज्ञ के लिए आशीर्जन सामग्री की शक्ति नहीं को जाती थी। अखिलक ने मन्त्रिका का विस्वास दिखाया है कि शक्ति करने में सतही अत्यन्त-अचरुष्य बुद्धि विवेकपूर्ण रहती है।

श्यापार भी उस समय प्रचलित रहा था। दुकानों सामग्री से सभी रहती थी। विवेक बस्तुका का आयात निर्यात होता रहता था। अथवा श्यापार हनु विदेशों में जाती थे। अथवा भी विदेश प्रमण के लिए, अथवा श्यापार के लिए एक प्रशासकीय सेवा में कोई पर प्राप्त करने के लिए अपना घर छोड़ कर बाहर चले जाते थे। भारत में उद्योगियों की बड़ी शक्ति थी। एगिया के विभिन्न

१. अथअभ्ययनमुक्त्वापि परश्या हा ताडितोऽस्मि बर्दस्या ।

अथअभ्ययनमुक्त्वापि अथवा अटोरकच इव शक्तिोऽस्मि शरत्या ॥

जाचों है बा-बाकर आदिवाँ वहाँ नीतिकोमार्जन करतो थी दिवस प्रभाव यह होगा वा कि कसो-इको एक व्यक्ति बनेक भाषाओं का आनन्द हो जाता वा । अस्तनक यद्यपि राभिषास्य वा फिर मी खम, खतो, कर्षाट, इर्बर इत्यादि अनेक आदिवाँ की बापाईं सोन ठकठा वा बीसाकि उसने बीरक से स्वय कहा है ।

बरे की मध्यममो तुह ? वय दनिबपता अन्वयमाविणो । अतसनि-
 तदसदृशो विरुद-कषाट-कर्म प्पावरमय दमिद-बोम-बीम-वावर खैर-खान-
 मूल-मनुष्याय पशुवाण मिरुदकज्जारोग अनेकदस भासाभिष्या बहुदु मन्त्रमाम-
 विष्टो विष्टा वा, मन्त्रो अन्वया वा ।^१ मू० क० (प० अक)

दिन को सीनि रात को भी उजबसिमी में प्यहल-पहल रहती थी । वहाँ बडी-बडो दुकानें, बडे-बडे पार्क तथा सार्वजनिक स्थान थे । सबके चौडो तथा पतलो थे । उन पर जाने जाने के लिए बैकगाडियों की भीड लगी रहती थी । सम्भवत रात को रोडनी के लिए प्रबोधिवाएँ काम में लायी जाती थी । कहीं कहीं मासों पर शकाय का प्रबन्ध भरी वा अत चोरो का मय शूटा था ।^२

शिष्टसभान्त व्यक्ति रात में मूल समीप आदि का अन्वय करते थे । नाटकों का अभिनय होता था । अनी मानो व्यक्ति पणियों को पापने में अभि-
 रचि रखते थे ।

आर्थिक दशा

भारत हाथिप्रधान देश है । इसी पर भारत की समृद्धि निर्भर है । उपोस के अत अथय कृषको की दशा अकतो न थी । एक बीर ली ऊतर भूमि में बीबों के अर्ध जाने से बीर बुणरी बीर समय पर कृष्टि न होने से कहीं-कहीं अन्न के अभाव में बडी कठिनाई पडती थी । आक्यत ने दुष्परिणतक अभाव में समने बाके कुशों को व्यापारी तथा अने रोमित कुर्को को विवेक से उपमित

१. बरे । क मप्रत्यमल्प ? वय दानिबपत्या अन्वयमाविणः । अत-अति-
 अत-सदृशो-विरुद-कषाट-कर्म-प्रावरण-दमिद पोम - बीम-बडी-खैर-खान-बुध-
 मनुष्याय-मनुषीना म्लेच्छभातीनाम् अनेकदसभासाभिष्या मयैष्ट मन्त्रमाम —
 कृत्यो कृत्य वा, वायं बापाईं वा ।

२. रात्रमादी हि मूमोप्य रक्षित अचरमित य ।

अथवा परिहर्षया बहुदोषा हि धर्बरे ॥ मू० क० १,५८

क्रिया है जिससे वाणिज्य की समृद्धि का ज्ञान होता है।^१

उग्रजिनी का एक मुन्हा श्रेष्ठित्वर का वहाँ जाकर उस जैसे सम्प्राप्त व्यक्ति विवाह करते थे। उनका अपना एक समुदाय था और उग्रहो में स एक व्यक्ति प्रतिनिधि रूप में स्वाबाधोष की तहायता के लिए ग्यायमण्डप में बैठता था और स्वामकार्य में भाग लेता था। सेवक भी दो प्रकार के थे। एक समृद्धि परिवारक जो अपनी सेवाओं का बेतन पाते थे। दूसरे बर्भदास या बमदासी जो आश्रम अपने स्वामी की सेवा में उस समय तक उत्तर रहते थे जब तक कि उन्हें नि गृहक अपना पुत्र लेकर मुक्त न कर दिया जाए। उत्तरी शीतरी तथा कबिलारियों में अधिकारिक, त्रिपिक, सेनापति, पुस्तिक इत्यादि के साथ नार्द, पमार, राजपौर, बडई, वास्तुकार इत्यादि अपनी अपनी सेवायुक्ति से जनोपार्जन करते थे। छिस्त्रिक की दसा भी अच्छी थी। बामुवकों की बिरबसनीय तकक में वे दक्ष थे।

राजनीतिक व्यवस्था

मूच्छकटिक काल में देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। ये राज्य सामान्यतः आत्मनिर्भर होते थे। उग्रजिनी एक ऐसा ही राज्य था जिसके अन्तर्गत कुशावती की जमीर कार्यक में राज्यारोहण के पश्चात् पादरत्न की प्रदान कर दी थी। राज्यों को हदपने में राजाओं में बरस्पर स्पर्धा थी। बुईल, नृत्तक एवं अयोध्य राजाओं के विरुद्ध अत्यन्त एवं विप्लव की योजनाएं बनना शक्य था।

राज्यारोहण के समय राज्याभिषेक की प्रथा प्रचलित थी। कार्यक का पीय ही विधिबन्त अभिषेक क्रिया दया।^२ कालन राजतम्न था। राजा पूर्णरूप से अपने राज्य का स्वामी था। समस्त विभागाधिकारियों के निर्णय की पुष्टि राजा द्वारा होती थी। अधिकारिक ने इसी से पादरत्न के अभियोग में निषय मुदा देने के बाद में कहा था—

१ कथित इव वाग्नि तटव पयानीव स्थितानि कुमुदानि ।

मुन्हामिष माचयन्तो मन्वृत्तपुत्रा इतिचरन्ति ॥ मू० प० ७, १

२ अदित्य-हस्ता उ कुनुपमहृ हि पाञ्च कोरुद्राम्ये इतमिषिष्य चार्यं नम् ।

तस्यात्रा पिरनि निचाय शैवभूता मोरुवेऽहृ अयवतर्ष व पादरत्नम् ॥

'निर्णयि बयं प्रमाणम् येष तु राजा ।' अपनी अनिश्चित शक्ति का राजा दुर्बलता भी कर सकते थे ।

नगर की सुरक्षा के लिए सेवा थी । पुण्यवरो का जो बछ मोपनीय वास्याईं देता था । राजा इन्हीं के माध्यम से सुरक्षा एवं व्यवस्था करता था । पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो युद्धभर विनाश उस समय सुदुर्लभ नहीं था या राजा मजबूती करती थे, कम्बुवा सुम्बस्यया हेतु निर्णय वास्तव के तबब से मुत्सुदर का निर्णय क्यों किया जाता ? नगर के चारों ओर प्रकाश और चार दूरी बड़े दरवाजे प्रतीकितार होते थे । गुम्बस्थानो पर पहुँचकर ठनाठ रहते थे । विशेषवाचिकारी, प्रमाणदर्शाधिकारी, पुण्योदयपाठक, मपररसाधिकारी, बसपति तथा राष्ट्रीय (पुस्तिक मधीक) थे । राष्ट्रीय प्रमा राजा का सत्कार होता था ।

नगर परिसरों में भी मपर व्यवस्थासमिति द्वारा नागरिकों की समुचित व्यवस्था का प्रयास किया जाता था । सड़कें, मस्जिदें, राजमार्ग एवं चतुष्पथो (चौराहों) की देखभाल विविधता होती थी । बरसाती मौसम में सड़कें कच्ची होंग के कारण कीचड़ से भर जाती थी । जलता से कर बसूब करने के लिए विधेय अधिकारी होते थे । इसका यत्नहीत विषय मूञ्चकटिक के सप्तम अध्याय के आरम्भ में है ।

उन समय के न्यायालय "मधिकरण महल" रहते जाते थे । इससे सम्बन्धित एक तीकर था जो बहो की सफाई खादि ने शाय अपराधियों को जामान देकर न्यायालय के अन्दर बुलाता था । मूञ्चकटिक में यह कार्य शोधक ने किया है । न्यायालय में जाने से पूर्व सप्त हुवाबत्तार (पास के दीवानों) में बैठते थे । न्यायालय के अधिकारियों को सामूहिक सम्मान "मधिकरण मोजक" कहलाती थी । न्यायाधीश अधिकारिक कहलाते थे । कादम्ब निर्णय का कार्य करते थे और वेदित के साथ अधिकारिक भी अपराध निबन्ध में सहायता करते थे । वे खेब न्यायमूल अधिकारी (Assessors) कहलाते थे । अधिकारिक के विशेष गुण होते थे । वे निकटत समी की समान समझने वाले और मधीर प्रकृति के व्यक्ति होते थे एवं मजिमाय की वास्तविकता को समझकर निर्णय देते थे । वहीं एक ओर उन्हें यह सब देखना था वही सुष्ठो और राजा का त्रिय हाना भी उनके लिए आवश्यक था । न्यायकार्य की व्यवहार तथा कानूनी तथ्यों को

उठ बीषण को बचना नहीं समझती । अतः उसका अनुसार धर्म चारुस के प्रति एक स्वामात्रिक प्रेम का उदाहरण है ।

ससृष्ट के अन्य प्रसिद्ध नाटक अभिजातशाकुन्तल, उत्तररामचरित, मुद्राञ्जलि आदि यद्यपि अपनी विशेषताओं से भरपूर हैं पर मूञ्चकटिक किन्हीं बातों में उनसे भी बड़ बड़ा है । इसकी कवयस्तु फटफटे हुए बटनाचकों से ढीठ-प्रीत है । यही कारण है कि यह नाटक अपने भारत देश में ही नहीं बल्कि पश्चिमोत्तर देशों में भी बहुत लोकप्रिय हुआ है ।

इसमें अन्य नाटकों की भाँति सब सामग्री तो है ही साथ ही यथार्थवादिता को लैठे हुए सामाजिक एवं राजनीतिक चित्रण इसकी एक अपनी विशेषता है । यदि अभिजातशाकुन्तल एवं उत्तररामचरित में केवल प्रकयकथा है, मुद्राञ्जलि तथा रत्नावली में कोरी राजनीति है तो मूञ्चकटिक में यथार्थवादिता के आधार पर प्रेम कथा, राजनीति और सामाजिक चित्रण सभी कुछ है । इसमें उत्कामीय भारतीय समाज का उद्वार हुआ दिव्य प्रस्तुत किया गया है । वर्म-व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का सचिठ सम्पन्न था । पुत्र सेवाकार्य में उत्तर थे । चाण्डाल की गणना पञ्चम वर्ग में थी । कुछ श्रेष्ठ ब्राह्मण राम्याधर में रहते थे यतवान् थे । चारुस ब्राह्मण होते हुए भी सार्वपाह (व्यापारी) बन गया था ।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, मनु की वर्म-व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण वृत्तुण्ड से मुक्त था उसे सबसे अधिक सम्पन्न एवं समस्त वैभव के साथ राष्ट्र से बहिष्कृत करता था । जाति व्यवस्था का उष समय कड़ाई से पालन नहीं होता था । खजाने तथा माई राज्य में उच्च पदासीन थे । गोपासक बार्बक के राजा पर पर सम्मानित होने का कारण भी यही था । बसुरय्या नहीं थी । कही कुओं पर साहसों के साथ तिम्र वर्म के लोग भी पानी पर एकट्टी थे । स्त्रियों का समाज में पराधीन सम्पन्न था । यह कुलवधु और यशिका के रूप में होती थी । कुलवधु का एक सम्मान-नीय था । यशिकार्य भी सम्पन्न होते थे । पुत्र का प्रचार सुते रूप में था । जोरियाँ भी वैज्ञानिक उम्र से की जाती थीं । इनके भी कुछ तिम्र से बिनके अनुसार स्त्री की मारना, सोते हुए एवं भयभीत व्यक्तियों पर शोष करना ब्राह्मण या राजा का एक कुराना एवं वर्मों का अग्रहण लिपिद था । नीरी दिन में नहीं बरन् बाधोष्ठ के समय की जाती थी । बाध प्रया प्रकलित थी पर उन्हें पैसा देकर छुड़ाया जा सकता था । श्रेष्ठ वर्म व्यापक रूप से प्रकलित था पर शोष विमुक्त का वर्धन अग्रहण

मान्य जाता था। वैदिक धर्म के अनुयायी भी कम न थे। राजतन्त्र के आधार पर शासन होता था। राजा सर्वव्यक्तिमान् शासक एवं प्रधान स्वामशाहीध होता था। उसके सम्बन्धी शासन जैसे व्यक्ति अनुचित लाभ उठाने के लिए उत्पन्न रहते थे। राज्य कर्मचारियों के परस्पर विरोध से परिस्थितियाँ कमी होती दिवम हो जाती थी कि वद्व्यत्र द्वारा राजा को मारकर बिरोही नेता राजपक्ष मेंमान होता था।

संस्कृत में कथावित् कोई ऐसा नाटक नहीं जिसने समाज के उच्च और निम्न वर्ग को एक साथ समुक्त किया गया हो और समाजनीति, धर्मनीति, एक राजनीति को एक स्थान पर प्रस्तुत किया गया हो फिर वहाँ नायक चारवत्त होता स्पष्टवाची हो कि बह कहने लगे—

वाञ्छिष्या-मरणाऽऽ मरण मम रोषते न चारिष्यम् ।

अस्पकनेर्म मरण चारिष्यमस्तक दुःखम् ॥

मू० क० १, ११

यहाँ चारिष्य की अपेक्षा मृत्यु को भ्रष्टा करके अत्यन्त रूप से सम्पन्न जीवन को अदभ्य लज्जा बताया है पर चारवत्त ने विचार से सम्बन्धित और त्यागपूर्ण जीवन अच्छा है।

मूञ्जकटिक का अनुपम वैशिष्ट्य एवं दृष्टिकोण

संस्कृत के प्रचुर साहित्य में नाटकों का भी अपना एक विशेष स्थान है। संस्कृत नाट्यसाहित्य में जैसे ही एक से एक मुन्डर रूपक है पर मूञ्जकटिक निरालो इति है। यह अपनी हीली का अकेला प्रकार है। इसमें एक ठाम प्रथम कथात्मक प्रकरण, शूर्तसङ्ख्यात्मक तथा राजनीतिक नाट्य का आतावरण दिखायी देता है। यह एक ऐसी अनेकी रचना है जो अपने समय की मध्यम वर्ग की सामाजिक स्थिति को पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित करती है। कुछ दिग्दर्शों के विचार से मूञ्जकटिक ही संस्कृत का सर्वप्रथम प्रकरण है और इसकी रचना कालिदास से पूर्व की है पर वह मत्र प्रामाणिक न होने से सर्वसम्मत नहीं है। मूञ्जकटिक के नाटकीय सविधान, धुँधी, भाषा और विशेषतः उसकी प्राकृत के आधार पर यह निश्चय हो चुका है कि यह कालिदास के बाद की रचना है।

कालिदास के अविज्ञानशामुञ्जक, विद्यासदत के बुझाउलत और गूडन के मूञ्जकटिक के अतिरिक्त संस्कृत के सभी नाटकों में अटमाचक सामान्य है पर मूञ्जकटिक की सफ़लता और प्रसिद्धि का यह भी कारण है कि इसमें

घटना की प्रतीति तीव्र होती हुई दिखायी गयी है। नाटक में प्रमुख वस्तु व्यापार (Action) है जिससे नाटक की रक्ति को बल मिलता है। यही व्यापार इनके अभिनय के द्वारा भावें बढता हुआ दिखाया गया है। प्रकरण की दूसरी विशेषता है कौतूहलमूर्ति बनना जिज्ञासा में खिंचे। पाठकों को यथा वर्णों के अर्थ में भावों आकर्षण के लिए आकाशा बनी रहने, यह भी उच्च नाटक के लिए बड़ा आवश्यक है। मूच्छकटिक की यह विशेषता है कि इसमें आकाशा निरन्तर तीव्र होती जाती है।

यह सस्कृत का एकमात्र पार्ष्णादी नाटक है। काश्मिर के बंशित-शाकुन्तल और मन्मथि के उत्तररामचरित में काव्य और भावना का सुन्दर वातावरण मिलता है। कठोर जीवन की वास्तविकता देखने को नहीं मिलती। इसके विपरीत मूच्छकटिक में जीवन की चमक-चमक को कठिनाइयों के साथ काव्य और भावना का उदात्त वातावरण भी देखने को मिलता है। सामाजिक समस्याओं के उदात्त हेतु इसमें विषय-वास्तव्य के साम पात्रों की भी बहिष्कारा है। शास्त्रीय एवं काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से यह सस्कृत का है। इसका प्रथम चित्रण भी कुछ अपूर्व है। यह बंशितशाकुन्तल में प्रदर्शित दुष्कृत तथा उपोवन सुन्दरी शकुन्तला के विवाहपूर्व प्रेम शैली नहीं है और उत्तररामचरित में वर्णित राम एवं सीता के गम्भीर आदर्श प्रेम की भाँति है। यह तो एक सामाजिक और गणिका के प्रेम की ऐसी कथा है जो प्रकरण के रूप में समोजित शैली से चित्रित की गयी है। इसमें परिवर्तन, गम्भीरता और कौमल्य का सुन्दर समन्वय हुआ है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें प्रेम-कथा के साथ सामाजिक पहलूय भी सम्मिलित है। इसके रचयिता को यह एक बड़ी दुष्कृता है। मास के बादरत में देखल गया है उसके मास सामाजिक मास नहीं है। इसमें पाठक और पाठक से सम्बन्धित सामाजिक कथावस्तु का यह अर्थ बादरत और वस्तुतः की प्रेमवाचा से इतना बहिष्कार है कि उच्चकथा के रूप में होते हुए भी यह उर्षी का एक प्रतीक होता है। इसमें बनाव के सभी बर्णों से पुनः हुए पात्रों का समावेश है। यदि एक ओर पर्य-परम्य ब्रह्मण और परिवर्तनता सम्बन्धी बहिष्कार और परिवर्तन के वर्ण होते हैं तो दूसरे ओर पठित, चोर, ब्राह्मण, गणिका और पापी शकार भी हैं जो इनमें बर्षि के पात्र हैं। चरित्रों का ऐसा वैविध्य्य अल्प नाटकों में देखने को नहीं मिलता। संस्कृत नाटकों के अध्ययन से सात होता है कि इनमें प्रति-विधि पात्र (Type) हैं पर मूच्छकटिक के पात्र व्यक्तिगत रूप से पुनः-पुनः

अपना अस्तित्व रखते हैं। मूञ्जकटिक में प्रहसन और विषाद एक सत्ता और मुटिलता का अद्भुत समोग है।

मूञ्जकटिक के पात्रों में प्रमुख नायक चारदत्त और प्रयास हैं। यह बन्म से बाह्य है पर कर्म से अन्दर है। माण्डव्यायस के माधव से चारदत्त में बड़ा भेद है। चारदत्त माधव की भाँति स्वयं प्रेम प्रदर्शित नहीं करता बल्कि बसतसेना सहको प्राप्त करने के लिए सामानित है। बसत माय्य संसृष्ट नाटकों के नायकों की भाँति चारदत्त नहीं है। वह तो कुल्लोम, सत्य एक सञ्चरित है। त्याग की मनीषा मूर्ति है। इसी से वह निर्धन भी हो गया है पर फिर भी उसे चिन्ता नहीं। हाँ, चिन्ता तो इस बात की है कि अपने निर्धन समयकर उसके सुन्दर भी सोहार्थ में विचित्रता दिखाने हैं।^१

दूसरा संसृष्ट नाटकों के नायक कोरे भावार्थ है पर मूञ्जकटिक का नायक चारदत्त ऐसी नहीं है। वह उच्च मध्यम वर्ग के बिच को उपस्थित करता है। साहित्य और सगोत्रकला में उसकी स्वाभाविक रुचि है। दृष्ट कीया की वह बुरा नहीं समझता। बसतसेना की अपनाकर उसने न केवल निम्न वर्ग को पक्षे लपाया बल्कि अपने व्यक्तिगत से मनास का नाय वर्धन किया। उचिच्छक न भी मरतिवा की अपनाकर दूसरा एक और उदाहरण इस सम्बन्ध में प्रस्तुत किया है। यदि यह परम्परा और चरती रूठी तो सम्भव है बास के उच्च वापारियों एवं दासन के समस्त विस्वाहनों को समझा ही उत्पन्न नहीं होती। दूसरी ओर नायिका बसतसेना भी अपने स्वाम पर वृत्तत मरिणा है। उसके चरित में दृष्टता, सत्यता, विभूय प्रेम, अपूर्व त्याग एवं पुनो का अपूर्व सामयस्य है। इन्ही बातों से वह चरमपुत्री होने हुए भी यक्षिका के माते चरममा के ककक की भाँति बहुविध है। उत्तररामचरित की सोठा की भाँति वह यभीर न होते हुए भी ययस नहीं है। माण्डव्यायस की माण्डव्यायस की तरह विठा की पणवीनता में माण्डव न होते हुए भी उच्चपुत्रक नहीं है। अमिनामजाकुल्लोम की भाँति बालकुल्लोम मय्य-मनोहारिता से पुत्र न हीर्षी हुए भी बहु मय्यदीरित नहीं है। भावविकल्पि-मिन की माण्डव्यायस की भाँति वह परिरदल होर के दुकके के समान नहीं है, अपितु बभ्रुम्य से सम्मानित है। यद्यपि वह विष्णोर्वीर्य की उर्वरी की भाँति अद्वय है फिर भी उसमें उच्च जैती विष्णोर्वीर्य नहीं है, न वह पंथा प्रणोम्य। प्रविद्या और दाम्नीनता में बसतसेना की उचिते बहुकर सिद्ध हुई

है। यदि बन की ही वसन्तसेना सर्वोपरि समझती तो कथिद्यवृत्ति से वह पर्याप्त बन प्राप्त कर सकती थी। वैसे भी नम्यप्रासाद में खूबो हुई क्या वह समृद्धि में किसी से कम थी और चाकसत तो वैसे ही उस समय निर्जनता का बीजन बिठा चुका था पर सब तो यह है कि पहिउत पणिका-वृत्ति से उसे पुगा था। नम्य बान की अपने चरित्र बिचन में बहुत खरे खतरे हैं। विश्विद् मूञ्जकटिक के चरित्रों में एक ऐसी विशेषता है जो अन्य संस्कृत नाटकों में अशक्य है। इसका श्रेय कुचल शाहक को है जिसने नियम स्थिति में भी वसन्तसेना और चाकसत को मिलाकर अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त की।

कथावस्तु के संयोजन की दृष्टि से बिचार करने पर मयमूर्ति के आलसी-पाषण्ड एवं उल्लररामचरित नाटकों में दोषपूर्ण विस्तृत वर्णनों की उपलब्धि होती है पर मूञ्जकटिक इस बिचार से निर्दोष है क्योंकि उसमें वर्णनों की विवक्षितता का अनाद नाटकीय प्रवाह में बाधक नहीं होता। काव्यशीर्ष के विचार से भी मूञ्जकटिक उत्तम कृति है। संस्कृत नाटकों में प्रायः व्यंगिचित्रों एवं बुद्ध-पर्यवसानी (Comedy) नाटकों के उपयुक्त वातावरण का अभाव है पर मूञ्जकटिक में ऐसा नहीं है।

संस्कृत के सभी नाटकों में प्राकृत भाषाओं का प्रयोग उपलब्ध होता है पर ऐसा कोई नाटक नहीं जिसमें सभी प्रकार को प्राकृत भाषाएँ हों। इस बिचार से मूञ्जकटिक एक ऐसी रचना है जिसमें प्रायः सभी प्राकृत भाषाओं का प्रयोग उपलब्ध है।

मूञ्जकटिक प्रकरण ने अपनी कथावस्तु से एक बड़ा परम्परा प्रचलित की पर अभी वह स्थिर न रह सकी।

संस्कृत के विद्याय नाटक संहित्य में मूञ्जकटिक अपने जग का एक अमूर्त प्रकरण है। इसने पुरातन नाटकीय परम्परा का परिचय है। कथाक बिच पणिका की अनादर की दृष्टि से देखा है यहाँ इसे वधु का रूप देते हुए सम्मान प्रदान दिया गया है। प्रकरण का मूञ्जकटिक नामकरण भी ऐतक की सूक्त-बुन का परिचायक है। सामान्य से विज्ञेय की ओर बढ़ने वाली यह प्रवृत्ति संस्कृत नाटक में शोभप्रोत् है। इसकी अत्युत्तरी सुन्दर एवं स्वाभाविक है। माया चेतो की शक्त है।

अन्य रूपों में भी परम्पराओं का त्याग स्पष्ट है। अन्य संस्कृत नाटकों की भांति चाकसत प्रत्येक अंक में उपस्थित नहीं होता। नाटकीय प्रतिबन्ध का बालन भी इसमें अशक्य नहीं हुआ है। इसने रामच पर विविध निश

और हिंसा के प्रदर्शन के साथ बुद्धि की बर्बादी का कारण तथा वसन्तसेना का कारण मानिये करते विश्वास करते हैं। सुनवार अन्य नाटकों में संस्कृत बोधता है पर मूच्छकटिक में संस्कृत में आरम्भ करके प्रयोजनवशात् गयी से प्राकृत में बोलने लगता है। मूच्छकटिककार को मास से यद्यपि इस प्रकार का आघात बिना फिर भी परम्पराओं के बहिष्करण का विचार उसकी अपनी एक विशेषता है।

मूच्छकटिक में यद्यपि कालिदास जैसा सुकुमार सौन्दर्य, भवभूति जैसा पात्रों का चित्रण, बाण जैसी कल्पना का साहित्य एवं क्षितिपसमुद्रि का भयानक कुछ अवश्य है पर यद्यपि में समाज की लज्जतबाती हुई नीच की ओर बहती कलाकारों का ध्यान न था तथा बहती मूच्छकटिककार की प्रतिभा में अपूर्व चमत्कार दिखाया है। कालिदास और भवभूति इत्यादि इसकी कल्पना भी नहीं कर सके। फिर विशासदत्त के मुद्राराक्षस एवं भट्टनाटयच के वेणोसहार जैसी रचनाओं से तो यह श्रेष्ठतर है।

“पूरेक जगत्ते ससार का एकमात्र स्वामी है और वही कालिदास जगत्ते भवभूति द्वितीय श्रेणी के नागरिक (Second Class Citizens) समझे जायेंगे।”^१

पूरेक के समीप अपना नाट्य एवं काव्य सौन्दर्य दिखाने का अवकाश नहीं था वह सौन्दर्य तथा प्रेम के मादक चित्रों को ही प्रस्तुत करना चाहता था। उससे तो जो कुछ भी निम्न सामाजिक सुधार के विचार से निम्न।

संस्कृत के अन्य नाटककार समाज के अति विष को प्रतिबिम्बित न कर सके और दूसरी बातों में ही चलते रहते वही पूरेक से यह ठिठ कर दिखाया कि नया जला के लिए नहीं बरतू कसा जीवन के लिए है। इसी से वह संस्कृत के सभी नाटककारों में अग्रगण्य है।

मूच्छकटिक में वास्तविक जगत् की ललक

जैसे तो संस्कृत में एक से एक बढ़कर नाटक हैं पर मूच्छकटिक के अतिरिक्त ऐसा कोई नाटक नहीं जिसमें यद्यपि जगत् का चित्रण प्रस्तुत किया गया हो और सामाजिक समस्याओं को मुद्दा बनाया हो। प्रेम की बहुनिर्वाही तो नाटकों में सिद्धी पर वह प्रेम केवल बहरी इच्छा बुद्धि की कहानी बन कर रह गया

है। यदि कही कुछ सामाजिक बर्तन उनमें है तो वह मुख्य नहीं केवल बौद्धिक रूप में है।

बृहत्कटिक एक ऐसी रचना है जो शास्त्रियों बाद भी ऐसी सगठो है बानो बाब के बन्धु का वास्तविक चित्र है। इसमें भारतीय समाज की दुरियों का विश्लेषण करते हुए बृहत्कटिककार ने सुभारत्मात्मक दृष्टिकोण से समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है। यह कहना अनुचित म होया कि इसमें समाज का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत किया गया है। इत्यादि नहीं, इसमें कुसमता से प्रेम के कथानक को रामदीनिक पठनाश्री से सम्बन्ध किया गया है। एक रचना में सभी प्रकार के पात्रों की दृष्टि द्वारा लक्ष्मीय समान के सभी श्रेणियों के पात्रों का यथार्थ निरूपण है। प्रायः शास्त्र के बन्धु शास्त्रों में समान के उच्च एवं सम्प्राप्त वर्ग का ही चित्रण देखने को मिलेगा पर इसमें राजा, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चोर, जुमारी, दुर्त, आत्मिकारी, कुट्टिनी, बेरवा एवं पृथिवी के अधिकारी आदि सभी वर्गों के पात्रों के कार्य-कलापों का चित्र तथा सम्बन्ध एक सत्य समाज का चित्र बाब प्रेता बर्तन रूप में प्रस्तुत है।

साधुनिक सामाजिकता की दृष्टि से बृहत्कटिक की उपादेयता

बृहत्कटिक ब्रह्मसूत्र के लगे अत्यन्त लोकप्रिय है और विश्वव्याप्तिय के इसका अनुपम सुन्दर स्थान है। सामाजिक के दृष्टिकोण से बही रचनाएँ सर्वोत्तम मानी जाती हैं जिनमें समाज की समस्याओं का समाधान दिखाया गया हो फिर इसमें तो वह अनेक रूपों में दृष्टिपूर्वक ही रही हैं।

इसके सम्पार भी सुसज्जित हैं। सम्पूर्ण नाटक में प्रयुक्त शक्ति एवं स्फूर्ति पूर्ण सम्प्राप्तों की सजी है। विशेषतः बसन्तसेना, बरनिका, बिट, मैत्रेय और संस्वानक के सम्पार अत्यन्त सजीव एवं प्यारे हैं। ये सम्पार लोकनायक की कसूरत एक सृष्टिपूर्ण होने से अत्यन्त प्रभावशाली हैं। इससे पात्रों की मानसिक स्थिति एवं चारित्रिक विशेषताएँ स्पष्ट हुई हैं। ये विषयसदृश एवं व्यापहारिक हैं। इनके द्वारा चिह्नहास्य बृहत्कटिक को अत्यन्त मजेदार, सरस और मोक्षप्रदपूर्ण बना रहा है। पात्रों की भाषा भी उनके अनुकूल है और अनेक रूपों में प्रयुक्त हुई है।

इसके विशेष की योजनाएँ भी इसमें सुन्दर हैं। इससे नाटक में सजीवता का बर्त है। एक ओर हास्य चर्चा विशेषतः विद्वान्क आदि प्रिय पात्रों द्वारा सामने आया है वहीं दूसरी ओर हास्यास्पद परिस्थितियों से पूर्व कुछ पात्रों के कार्य

व्यापार है जो मानन्द प्रदान करते हैं। हास्य विनोद का तीसरा रूप पाशों का मधुर व्यस्यपूर्ण सहाय है। सकार और विदुषक अपनी बेसमूया, भावनात्मक, तर्क-वितर्क एवं भाषिक अभिनय के द्वारा दर्शकों के हृदय में हास्य-विनोद उत्पन्न कर मानन्द प्रदान करते हैं। सकार के हास्ययुक्त प्रश्नोत्तर, बाणी की विडम्बित्त एवं पुरुषों के उल्टे सीधे सदाहरण प्रथम शक में बरि ह्यारे मनोरञ्जन के कारण है तो अष्टम शक म तर्क वितर्क एवं व्यस्य को उत्पन्न करते हैं। विदुषक का हास्य आरम्भ में अष्ट तक हास्य विनोद का मधुर आम्बावन कराता है। उसके हास्य में शिष्टता है, व्यस्यव्यंजक है एवं स्वाभाविकता है। तृतीय शक में रदनिका से चोरो का समाचार सुनकर बह क्यूता है। आ दाधीय भीए, कि व्यस्यि चोर कम्पिअ सन्धी विनकन्तो।^१

मू० क० (तृतीय शक)

है। बासी की पुत्री क्या क्यूती है चोर कोड कर सेंव विनक वई। विदुषक की विदयता बह है कि बह गम्भीर बालावरण को भी अपने सरक हास्य से सरस बना दता है। वह अपने मोक्षेपन से परिस्मित को पुनतया न समझकर को बासे क्यूता है जनसे भी बेडा विनोद होता है। सकार की भाँति उसका हास्य पूना एवं व्यस्यि उत्पन्न बनी करता बल् विडम्बिता का शोचक है। हम व्यक की लोकाप्रियता का कारण हास्यविनोद की शोभना भी है।

मूच्छठिका रूप का अभिनय विश्व के जनक राष्ट्रा में हुआ है। पूनीवासी और साम्यवाणी दोनों ही प्रकार के राष्ट्रा ने इसको सहायता की है। साम्यवासी दोनों में तो मू-छठिका को विशेष साकश्रियता प्राप्त हुई है। इसका एकमात्र कारण यह है कि हमने यथार्थवादी मनोवृत्ति तथा समाज के पिछड़ हुए शोषित वर्ग का सहानुभूतिपूर्ण विचार विचार है।^२ अपने कुशों के कारण हमे मार्क्सवादी होने का बीरब प्राप्त है।

आधुनिक छायाचित्रों का बचालक जिन विद्वेषताओं के कारण सर्वप्रथम समझा जाता है वे सभी इसमें विद्यमान हैं। घटनाओं के घात प्रतिघात से हमने रोषवता, प्रवाह एवं पति है। इनका अनापत्यक विरदार न होकर स्वाभाविकता है। यद्यपि बहस्यकेना के बधों का दर्शन कुछ विस्तृत न प्रतीत होता है पर नाम्यदृष्टि से उसका अना वैदित्य है। मार्क्स

१ आ दास्या बुनिके कि व्यस्यि चोर कर्तयिन्वा सविनिव्राम्त ।

२ विद्यालय निबन्ध नमुनाबते। मू० क० १, १४

का उपकथानक वाक्यत और वसन्तसेना के मूक कथानक से बड़ीमूर्ति लपक है। इसके जमाथ में वाक्यत के चरित्र की महत्ता सम्भव नहीं। इसीलिए यह कहना समीचीन सचता है कि नाट्यमञ्चा की दृष्टि से मूच्छकटिक सर्वथा उपयुक्त है। इसमें स्वात, समय और कार्य की बन्धितियाँ हैं। सज्जवित्ती का सीमित स्वाम है। इसका सिन्ध विधान रगमय की विद्येयता से मोत-प्रोत है।

यद्यपि संस्कृत के अनेक नाटकों को छायाचित्र में विद्यमाना गया है पर मूच्छकटिक का कथानक जिस स्थित हृद रूप में प्रस्तुत किया जायेगा उस दिन एक स्वर से सब बही कहेंगे कि इस का अधिकतम बाला एक प्रस्तुत लक्ष्य के समी नाटकों की अपेक्षा कहीं अधिक सफल है। कथावस्तु की दृष्टि से नाटक को सम्झाई के कारण छायाचित्र में किए ऐसे उपयुक्त रूप देना होना और वसन्तसेना के बन्ध प्रारम्भ कथो का एक दृष्टि इत्यादि बर्णनी का संक्षेप करना होगा।

मूच्छकटिक की व्युत्पत्ति

मूच्छकटिक नाम अथवा स्वाम पर पूर्वतया सार्थक है। वाक्यार्थिक दृष्टि से भी इनका महत्त्व कम नहीं है। सध में हमारा शरीर जिसका निर्माण पचपूत से हुआ है, मिट्टी है। जन्म पर वा कल्पाने जाने पर सब कुछ मिट्टी में ही परिवर्तित हो जाता है। बीपात्मा की स्थिति शरीर कभी मिट्टी के कर्मस्वर में है।

मिट्टी की पाटी का नाम बैसे यथाशय्य छठे अंक में कल्पकार ने प्रकट किया है पर कुम्हिका पट्टे बक से आरम्भ हो जाती है। इसी से प्रथम अंक का नाम भी अमकारम्बास रखा गया है। पट्टी से वसन्तसेना का वाक्यत के प्रति अनु-राग भी आरम्भ होता है। अतः मायाशोह की शक्य यही से बिछने सचतो है।

बीशिविष्णुस्त्री शान के द्वारा जन्त में मज्जान क परवे को हृदकर वास्तवि-यता वा बोध होता है अतः द्वितीय अंक सूतकर सहाहक के नाम से प्रसिद्ध है। यह संवाहक वाक्यत का पुराना संवक है बी अपना बहुत सा धन जुए में हारकर वसन्तसेना की शरण में पहुँचता है। वसन्तसेना उसका श्रुण चुका बेती है और वह फिर वीशिविष्णु बन जाता है। संसारिक मज्जान से बुर भादि में उसका प्रवृत्त होना स्वाभाविक है।

द्वितीय अंक के कथानक का नाम सन्धिच्छेद है जो अज्ञान जुए की ओर चला है, वह बोरी की ओर क्यों न के जायगा। स्वार्थ सिद्धि के लिए बुरे से

बुरा काम भी किया जा सकता है। इसीकी सतक सर्बिज्ञक द्वारा आनुपम प्राप्ति हेतु मदनिका को श्रास करने के निमित्त वास्तव के यहाँ से तपाकर दिखाई गयी है।

प्रकरण का पूर्वार्ध पतुर्न अंक में प्रायः समाप्त हो जाता है। इस अंक का नाम मदनिका शब्दिक है। सर्बिज्ञक की इच्छा बसन्तसेना को चोरी किये आनुपम देकर और बासी पक्ष से मदनिका को पुष्टकर प्रेयसी के रूप में उसे अपनाकर पूरी हो जाती है। सर्बिज्ञक की यह कल्पवृत्ति एक ओर नायावी दृग् से होती है, दूसरी ओर यह धुरामे नए आनुपम वास्तव को लक्ष्य में ग्राह देते हैं। जहाँ वास्तविक ज्ञान से ही घूटकारा हो पाता है। इस वास्तव की पत्नी बुरा आनुपमों के सबसे रस्तावसी विद्वेषक द्वारा बसन्तसेना के यहाँ मिनवायी है। इस घाति घसार के मायाबाह में पडकर और अज्ञान की ओर ही प्रवृत्त होता है और वास्तविक ज्ञान से दूर हटता जाता है।

पञ्चम अंक का नाम बुद्धि है जो इस बात का प्रतीक है कि जब वास्तव और बसन्तसेना के लिए बुद्धि का प्रारम्भ है। यहाँ के बुद्धि में बसन्तसेना और वास्तव का प्रेमसमाधान भविष्य में विरोध के रूप में बुद्धि देनेवा यह कीम ज्ञानता या? जब कि सामारिक मुख में हम अपने की मुठे हुए हैं जब वही बुद्ध का उपाग बनेवा, यह मुख जाना ही हमारा सबसे बड़ा अज्ञान है। इसको सतक यहाँ मिनवायी है और इन आचार्यों का जब वास्तविक कथानक आरम्भ होता है। यही अज्ञानमार्य आने चलकर ज्ञानदीपक की चोरी से आलोचित होता है।

छठ अंक से कथानक कुछ पन्नीर होता गया है और इसी अंक में मूकशब्दिक को चर्चा है। इस अंक का नाम प्रवृत्तविपर्यय है। ठीक भी है मिट्टी की गारी के तबान पर सकार की गारी में बैठ जाना ज्ञान के स्थान पर अज्ञान की प्रवृत्ति का सूचक है।

सप्तम अंक का नाम आर्षकापहरण है। राजा सतक मित्र की गारी पर विद्यास करके सोपास के पुत्र आर्षक को जेल में बंद कर देता है। आर्षक का अपहरण ठारी स्थिति हो बदल देता है क्योंकि आर्षक कम्भीवृत् से भावकर उपयोग से वास्तव की गारी में बैठ जाता है जहाँ वास्तव से उसकी विपत्ता हो जाती है। इस गरी से शुभकल्प आरम्भ हो जाते हैं। मायामोह ने ज्ञान का एक ओर अपहरण से किया, पर दूसरी ओर सही ज्ञान ने अपने प्रवृत्त आलोच से अज्ञान को समूह नष्ट कर दिया।

महम अक्ष का नाम बसन्तसेनासौटन है । इसमें अक्षर के प्रथमनिबेदन को जब बसन्तसेना टुकड़ा देती है तब वह उसका एका शौट देता है, पर मिस्रु बैचवारी सबहुक म्पोरित्त उपचार से उसे पुन भीवित कर देता है । अहाँ अक्षर कपी बुद्धि के बसन्तसेना कपी ज्ञान को बबोबा बाता है ।

बवम अक्ष का नाम व्यबहार है । यद्यपि बसन्तसेना भीवित है छिर भी जब तक व्यबहार से छिद्र नहीं होता तबतक कीम इसका विश्वास करेबा ? श्याशक्य द्वारा उम्बर के बभियोव से चास्वत्त पर बसन्तसेना की हत्या का आरोप लगा दिया जाता है । बबोबा से विद्वदक की कोश से गिरे हुए बसन्तसेना के बामुमन हणकी पुष्टि कर देते हैं । अब किसी को बाता नहीं रही थी कि जब चास्वत्त भीवित रह सकेबा वर वज्रान के प्रपन्न में फेगा हुआ व्यक्ति परिचगत पैर से बामससोव बामुमन करता है ।

बसम अक्ष का नाम सहर है जिसका अर्थ एक ओर बुद्ध-सहार है ती बुद्धी ओर अक्षरण का उपसहार अर्थात् समाप्ति है । इसमें उपपरिवर्तन की घटना में पासक मारा जाता है और चास्वत्त का मिन मार्यक राखा बन जाता है । अक्षर के कुकुरयो से उसे मार्यक द्वारा अकिष्ट म्त्सुबन्ध, उदार रूप उपकारो चरकस्त द्वारा निरस्त कर दिया जाता है । बसन्तसेना और चास्वत्त के मिलन की कहानी वहाँ बरत बरत के साथ समाप्त होती है ।

इन सब विशेषताओं के साथ यह एक ऐसी प्रेरणादा है जिसमें दुर्भाग्य के साथ अक्षम का संघर्ष है । बसन्तसेना का दूसरी बाड़ी में बैठ जाना निजय ही दुर्भाग्य का प्रतीक है । पर संघर्ष करते हुए बूझते रहना और अन्त में सफलता पाना इसके अदभ्य सक्षुस का परिचामक है । अहाँ एक ओर यह स्थिति है वहाँ दूसरी ओर माप्य से मार्यक का चास्वत्त भी बाड़ी में बैठ जाना ही एक बद्धुत घटना है ।

बाल्य, बाली, कानिबास तथा मरमृष्टि से बिसली बपेबा की, मूञ्जकटिक-कार की दृष्टि में बहो अपेक्षित रहा । जोरी की घाँटि बह काव्यरूपी कन्वेनर के प्रसाशन में नहीं पुठा रहा । उसके अन्त-करण में तो एक पाहू की ओर बह थी काव्यरूपी अरीर के अन्तर्गत उसकी बीबादमा की ठीक से पहचानना । अन्त में बह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि मूञ्जकटिक के अनुभव कथानक में मानव जीवन का वास्तविक चित्र, बर्ष की परिधि को छिन्न-विघ्न करके, प्रस्तुत है । इसमें मानव को नहीं बरन् मानवता को बहुत्व दिया गया है । यदि सस्तुत

में नाटकों का वैशिष्ट्य है तो मूच्छ्रुतिक से समृद्ध का वैशिष्ट्य है। प्राच्य
 मापाओं को विभिन्नता यदि एक ओर साधारणक एका व्यक्त कर रही है तो
 दूसरी ओर प्रसाधयुक्तपूर्ण संस्कृत की भावमयी सूक्तियों इसके भावपूर्ण
 शोचन की सङ्गामिनी है।



परिशिष्ट १

सूत्रकृतिक की भाषा

नाटकीय भाषा का औचित्य

बचन के विस्तार के अनुसार भाषा के रूप भी विभिन्न हैं। उदाहरण बहुत बड़ा है। इनमें अनेक देश हैं। इन देशों में भी अनेक इलाक़े, बड़े और छोटे नगर एवं ग्राम हैं। भाषा के विचार से भारत के एक प्रदेश को ही लीजिए। पूरे इलाक़े की एक विशेष भाषा होना हुए भी विभिन्न नगरों एवं ग्रामों की भाषाओं में अन्तर पाया जाता है। स्थानों में विभिन्न पात्र होते हैं। सब उनकी भाषाओं में भी भेद होता है।

प्राचीन काल में जबकि वैदिक भाषा के परवान् लौकिक भाषा का विस्तार हो चुका था तभी संस्कृत के अनेक नाटक लौकिक संस्कृत में लिखे गये। संस्कृत के अनेक नाटक में ऐसे पात्र बिलंबे जो गुप्त संस्कृत बोलते हैं पर वे संस्था में कम होते हैं क्योंकि स्पर्शों में निहित और अतिशय अनेक प्रकार के पात्र होते हैं। विहित पात्र संस्कृत बोलते हैं। अविहित पात्र प्राकृत बोलते हैं। संस्कृत और प्राकृत भाषा का अन्तर ऐसे ही समस्तान्त्र चाहिए जैसे कि नापरिक और ग्राम्य भाषा का अन्तर। बहुधा स्थानों में नायक यादि विहित पात्रों की संस्था कम होती है जब अविहित पात्र उनमें अधिक दिखाई देने हैं। ये अविहित पात्र प्राकृत भाषा के अन्तर्गत अनेक भाषाएँ बोलते हुए दिखाते गये हैं। यदि एक ही भाषा बोलने वाले का अनुदाय नहीं हो तो समस्तान्त्र उनकी भाषा को सुनने में सतना आसन्न नहीं प्राप्त होना बिना कि बहुभाषानायी अन्तःसुदाय की आवश्यकता में प्राप्त होता। यही कारण है कि नाटकों में संस्कृत और प्राकृत के भेद से विभिन्न भाषाओं का प्रयोग होता है। इस दृष्टि से सूत्रकृतिक एक महत्वपूर्ण नाटक है। अनेक भाषाओं का प्रयोग इन नाटकों में किया गया है अनेक भाषाओं का प्रयोग अन्य नाटकों में अत्यन्त नहीं होता।

सूत्रकृतिक की भाषा

भाषा की दृष्टि से सूत्रकृतिक महाकवि कालिदास की अपेक्षा सरल है। सूत्रकृतिककार ने एतदसम्बन्धो विषय शंती का अनायास है वह नाट्य और

कामिन्द्रास के मध्य की सीमा है। मूच्छकटिककार ने भाषा की सरलता का जोर विशेष ध्यान दिया है। संस्कृत की विविध बोध्यता को उसके धार्ष्ट्य-विशेषित और भाषरा जैसे मन्ने उन्को से कही-वही स्पष्ट ही रही है। यदि वह पाइता तो संस्कृत साहित्य की सीमा से अपने प्रकरण को संस्कृत कर सकता था पर उसने ऐसा नहीं किया। भाषा के समास-प्रधान न होने से इसमें स्वाभाविक सरलता है। प्रसाद और माधुर्य गुण उसमें विद्यमान पडा है। केवल कुछ ऐसे स्थल मिलेंगे जहाँ भाषा की कृत्रिमता और असंस्कृत शैली दिखाई देती है। भाषा के प्रयोग में बड़ी कृच्छ्रता से काम लिया गया है। पापों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग है साथ में परिस्थितियों का भी ध्यान रखा गया है। जैसे वसन्तसेना ने प्राकृत के अन्तर्गत हीरालेनी भाषा का प्रयोग किया है पर वह संस्कृत भी जानती थी। वसुधं बक में उत्तका विदूषक से संस्कृत में सम्भाषण और चावतल विपन्न संस्कृत उन्को का प्रयोग उसके वाच्यत्व के प्रतीक है। सम्भवतः विदूषक से संस्कृत में बात-चीत करके उसने अपनी विद्वता का सिक्का उसके हृदय पर बना दिया जिससे कि वह वह न सोच सके कि वसुध के नाते वसन्तसेना चावतल के शौच नहीं है। सूचमार और चावतल भी कहीं परिस्थितिक प्राकृत का प्रयोग करते हैं। शब्द बोधवा की वृष्टि से और वाक्य विन्धास के विचार से भी भाषा प्रकरण के लिए सर्वथा उपयुक्त है। मूच्छकटिक ने संस्कृत प्राकृत की वच-वच की वनेक वृष्टिमाँ इस बात की चेष्टा है कि मूच्छकटिककार का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। निम्न सूक्तिमाँ सबमुक्त बरी रोचक है—

गुप्त हि तु साम्प्रमुव घोमते । १, १०

बाधस्तेषु मरुत दाष्टिभयनस्तक तु बम् । १, ११

अहो निर्धनता तवैषशामास्वदम् । १, १४

वसन्तसेना—पुस्त्येनु स्वाता मिलिप्यन्ति न पुनर्भेहेषु । १, पद्य

कीला द्वि आभासमुद्गोलित रानम् । (१ पद्य)

घाहमे यो प्रतिबधति । (४ पद्य)

सिद्धेभ्यनर्वा बहुनीमयन्ति । ९, २९

सर्वभार्जव घोमते । (१० पद्य)

सूक्तिमाँ का प्रयोग भाषा की मजीब बनाने की पूर्ण चमत्ता रखता है। कही-वही तो सम्पूर्ण स्तोत्र ही सूक्ति के रूप में है। कवि का उच्च भाष्यार रचना अभाव है कानी उसके आगे उच्च-सूची प्रस्तुत है, वही बाह्यता है

उपका प्रयोग करता है। जलधर्म तो यह है कि संस्कृत और शास्त्र के अन्तर्गत मनेक भाषाओं के प्रयोग में उसे बाधातोड़ सफलता मिली है। कही-कही व्याकरण की दृष्टि से भाषा में दोष हैं पर वे नग्न्य हैं। कही समास कुछ बसवत से छगते हैं और कही मध्यम कन्दो 'हि', 'तु', 'सत्', इत्यादि का प्रयोग शेषिन्म्य व्यक्त करता है, कुछ बी दो भाषा की विधिवता से मूञ्जकटिक आन्तरिक रूप के साथ बाह्य रूप में भी प्रवृत्त प्रकरण है।

संस्कृतभाषी पात्र

प्रस्तुत प्रकरण में संस्कृत भाषा जोरने वाले पात्रों की संख्या बहुत कम है। स्वयं की दृष्टि से छाहीर्यक संस्कृत के स्मान पर बीकबाळ की व्यवहार में जाने वाली भाषा का प्रयोग समुचित एक सुन्दर हो नहीं तरन् तरळ है। सामान्य संस्कृत के छाडाओ के लिए भी यह उचित है। ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा के सम्बन्ध में प्रकरणकार का विशेष ध्यान रहा है।

सूत्रधार, पादरत्न, बार्थन, अधिकरणिक, शेषिन्म्य, बहुरक, विट, इत्युप विट और बन्धुन ने समस्त प्रकरण में संस्कृत-भाषा का प्रयोग किया है। गालक में संस्कृत-भाषा के कथोपकथन सम्ये नहीं हैं। व्याकरण की दृष्टि से भाषा में कोई दोष भी दिखायी नहीं देता। सूत्रधारों के कारण भाषा उचीक और परिष्कृत हो पयी है।

सूत्रधार ने पद्य में संस्कृत का और पद्य में अधिकतर प्राकृतान्तर्गत भाषा का प्रयोग किया है, बीसा कि प्रस्तावना से सात हो रहा है। पादरत्न ने अधिकतर संस्कृत का ही प्रयोग किया है। शास्त्र का प्रयोग बहुत कम किया है। बन्धुन ने बहुरक में बहस्य विदुषक से सम्भाव्य करते हुए गद्य और पद्य में संस्कृत का प्रयोग किया है, बीसे सर्वत्र प्राकृतान्तर्गत शौरसेनी भाषा का प्रयोग किया है। अन्य पात्रों ने अपनी कितनी एक निश्चित भाषा में ही कथोप-कथन किये हैं।

प्राकृत भाषा और उसके दोरने वाले पात्र

रूपकों में प्राकृत और अपभ्रंस का प्रयोग देखने को मिलता है। प्राकृत के अन्तर्गत मागधी, मगधिका, शाक्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, बाह्लीका और वलिनात्या सप्त भाषाएँ हैं। महाराष्ट्री आदि केवल काव्यों में ही प्रयुक्त होती हैं।

अपभ्रंस में गतापी, कामीरी, चाण्डीली, चाबरी, डाबिडी, उब्बा और डक्की (हीमा) वगैरहों की भाषा—साठ भाषाएँ^१ सम्मिलित की जाती हैं। इन अपभ्रंसों को बिजाया भी कहते हैं^२।

मूच्छकटिक में प्राकृत भाषा के अन्तर्गत घोरसेनी, अवन्तिका, प्राच्या और मावडी का प्रयोग है। अपभ्रंस भाषाओं के अन्तर्गत हमने चकापी, चाण्डीली और डक्की का प्रयोग किया गया है। इस भाँति मूच्छकटिक में संस्कृत के अनिश्चित चार प्राकृत और तीन अपभ्रंस कुल साठ भाषाओं का प्रयोग किया गया है। नाटककार ने नाट्यों के अनुकूल समस्त भूमि पर प्राकृत एवं अपभ्रंस भाषा का प्रयोग किया है। मूच्छकटिक के संस्कृत टीकाकार पुष्पीवर के अनुसार मूच्छकटिक में प्राकृत भाषाओं का विवरण इस प्रकार है।

प्राकृत के अन्तर्गत घोरसेनी भाषा बोलने वाले पात्र

म्यारह पात्र घोरसेनी बोलते हैं। इनके नाम मूत्रचार, मटी, रत्निका, मदगिका, वल्लभगैमा, लक्ष्मी माता, पेटी, घुता, कर्णपुरक, घोषणक और घेष्ठी हैं। इस भाषा में छ, प, स इन तीनों के स्थान पर म ही होता है। प्रथम अक्षर में मूत्रचार की संज्ञि में लसृष्ट के प्रविद्यामि के स्थान पर घोरसेनी के प्रविद्यामि में ठालभ्य शकार के स्थान पर दस्य सकार का प्रयोग है। इसी प्रसव में वृत्तविधेयका के स्थान पर घोरसेनी के किचिचिसेसबा में ठालभ्य और मूर्धन्व के स्थान पर वस्त मकार का प्रयोग है। लसृष्ट के सर्वम् के स्थान पर घोरसेनी में लम्पु का प्रयोग है। प्रथम अक्षर में ही नदो के अक्षर में मर्दनु मर्पार्याः संस्कृत के स्थान पर मरिसेदु मरिसेदु अञ्जो का प्रयोग है। इसी भाँति अन्यत्र भी ऐसे ही प्रयोग हैं।

प्राकृत के अन्तर्गत अवन्तिका बोलने वाले पात्र

इसने बोलने वाले दो ही पात्र हैं बोरक और चम्पक। इतने भी छ, प के स्थान पर स होता है। यह भाषा ऐपवडी और सोनीविडवडुमा है। इतने क के स्थान पर र का प्रयोग नहीं दिखायी देता। अष्ट अक्षर में बोरक और चम्पक की भाषा में प्रयुक्त बरोलीदुषार, अरलोहरो, लम्पिनी और पम्पारोपकवद इत्यादि पदों में क के स्थान पर र का प्रयोग मही है। यह

१. पैगापी और बुलिका, बिजायाएँ अपभ्रंस के उपभेद प्रतीत होते हैं।

२. बिदिभा भाषा बिजाया।

भाषा में रे, अरे का प्रयोग अधिक होता है। अन्वयत इसीलिए इसको रक्तती कक्षा कहा है।^१ इस भाषा में लोकोक्तियाँ भी अधिक दिखायी देती हैं। एक अक्षर से शीरक और चन्दनक के भावना से यह बात स्पष्ट होती है। 'शीरक' यह वे अक्षरगण कल्पायेति तथा न होमि शीरको' अर्थात् यदि तेरे चारों ओर की न बटवा हूँ तो शीरक नहीं रहूँगा। 'चन्दनकः किं तुण्यसुषुभरिमेज' अर्थात् कुत्ते पीते तुमने क्या। इस भाषा में र के स्थान पर क का प्रयोग भी दिखायी देता है। यह अक्षर में खान्दो और खामूडा दोनों प्रयोग मिलते हैं। पहले में तो संस्कृत का र अपने ही रूप में है पर हमारे में र के स्थान पर क का प्रयोग हुआ है।

प्राकृत के अन्तर्गत प्राच्या बोलने वाला पात्र

विशुद्ध इस भाषा को बोलता है। इसमें भी स, य, म के स्थान पर ष होता है। इसमें स्वरिक ककार का प्रयोग अधिक बताया जाता है पर मूच्छकटिक के विशुद्ध की भाषा में ककार की अधिकता नहीं है। प्रथम अक्षर में ऐसा 'समुपज्जा सहितज्जा पदपादभरतकुडिरा सुत्तपात्तिव'—इत्यादि में कक्षे क के स्थान नहीं होते।

प्राकृत भाषा के अन्तर्गत मागधी का प्रयोग

इस भाषा को यह पात्र बोलता है। संज्ञक (सिमु), अक्षर एक उच्छेद तथा अन्वयेता और आदरत के तीनों शब्द तथा आदरत का पुनः दोहराने मागधी के बोलने वाले हैं। इस भाषा में स, य, म के स्थान पर तान्त्र्य अक्षर होता है। प्रथम अक्षर में शब्द की उत्पत्ति में 'एयेमट्टासके यिच्छुं य मट्टके अस्मिन्' यहाँ एय के स्थान पर एये, अस्मिन् के स्थान पर अस्मिन् का प्रयोग है। इसी भाँति द्वितीय अक्षर में उदाहरण की उत्पत्ति 'अगल्लममुक्काए विव शत्तीए मत्तुक्को विव वादिपो मिह शत्तीए' में शत्त्या के स्थान पर शत्तीए का प्रयोग है।

अष्टम अक्षर में मुल्लिदीये के स्थान पर मुल्लिदीये का प्रयोग है। यहाँ मूच्छकटिक के स्थान पर तान्त्र्य य है। प्रथम के स्थान पर पश्चिम में इत्ये अक्षर के स्थान पर तान्त्र्य अक्षर का प्रयोग है। द्वितीय अक्षर में उदाहरण की उत्पत्ति 'अग्या विवविम म इमरसा सहिअस्म इत्यायो वत्तीहि मुदयककेहि' में अक्षर य का प्रयोग कई बार किया गया है।

१ वास्तुनाथ झाखी ठाकुर . मूच्छकटिक लक्षणा, पृ० ५० ।

अपञ्च श मायाभायो पात्र

इस शब्दा का प्रयोग सकार ने किया है। इसमें तात्पर्य सकार अधिक प्रयुक्त हुआ है। ए के स्थान पर छ का प्रयोग भी इसमें किया गया है। अथवा अत्र म सकार की उक्ति—

अथो भुक्तिवसे वसिदे म मत्वके
कर्मम शीघ्र उद मलएव वा।

में वसिः वा अथो और मारवादि का मास्यम हो गया है। यहाँ इत्य सकार के स्थान पर तात्पर्य सकार और ए के स्थान पर छ का प्रयोग हुआ है।

आण्डाली का प्रयोग

दशम अक्षर में दोनों आण्डाल इसका प्रयोग करते हैं। इसमें भी व, स, ए के स्थान पर तात्पर्य सकार ही होता है और ए के स्थान पर छ का प्रयोग होता है। दशम अक्षर में आण्डालों की उक्ति 'वाचस्प्य अदि शष्प नचाति' में ए के स्थान पर छ और ए के स्थान पर छ का प्रयोग है। यही आण्डालों की उक्ति में शोभनम् के स्थान पर शोभयम् के प्रयोग में ए के स्थान पर छ ही रह गया है। इन्हीं दोनों की उक्ति में इमी अक्षर में सागरवत्त्व के स्थान पर सावसवत्त्व का प्रयोग है। यहाँ इत्य सकार के स्थान पर तात्पर्य सकार वा और ए के स्थान पर छ का प्रयोग किया गया है। इसी प्रसंग में एय के स्थान पर एये का प्रयोग भी है। यहाँ मूर्धन्य ए के स्थान पर तात्पर्य छ का प्रयोग है।

छन्दो (वनेशरो की भाषा) का प्रयोग

छूटकर और मापूर की व्यक्ति इन भाषा का प्रयोग करते हैं। इस भाषा के सवर्ण में भी पृष्ठीभर रहते हैं—

'बकाप्राया छन्दविभाषा। ससृष्टप्राय वे इन्वतात्पर्यसकारइयमुत्ता च' अर्थात् इस भाषा में बकार वा अधिक प्रयोग होता है और यह ससृष्टप्राय जाती है तथा इसमें इत्य मकार और तात्पर्य सकार दोनों का प्रयोग होता है जैसे नहीं। त्रितीय अक्षर में मापूर की उक्ति 'अतिव ह्यमुदय्य पापेदि। वितस्म' में ए और इत्यमकार वा ससृष्ट के समान ही प्रयोग हुआ है। यहाँ इनकी विभाषा ससृष्टप्राय है। सामान्य त्विति में इत्य सकार की तात्पर्य सकार हो जाता है जैसे—मूर्धन्य अक्षर में ही मापूर की उक्ति 'अथे, नचोपै त दुष्पुत्तम्' में ए वा ए हो गया है। यहाँ यह न सवर्णता बहिए कि यहाँ ससृष्ट में ए

बीर स जाता है वहाँ डकती में भी स बीर स ही जाता है । यहाँ बोमो का प्रयोग देखा जाता है । प्रस्तुत प्रकरण में बखरप्राय होने की बात नहीं गात होती बरन् बखरप्राय होता दिखायी देता है । द्वितीय अक्ष में नेपथ्य के कवच 'बके मट्टा बन्धसुपण्याह मूठ बूबकह पपलीनु' में मायुर की छक्तिसे ये 'बिन्दीवु पावु. पडिमा बुन्नु देरधु, बहु म्हु, को बोसु, मायुव वह भित्तु सुर वाम्बुबन्नु कम्बन्नु, मए एसु बिठनु' में सबों के अन्त में उ दिखायी देता है । व की अधिकता दिखायी नहीं होती । श्री कल्याणमाच बास्वो संकम के विचार से या तो पुष्पीवर ने बधुधि की है या टीका अपने बातों ने उ को व पह लिया है । इनका वह भी कहना है संस्कृतप्रायस्वे के स्थान पर संस्कृतप्रायस्वेव शोभा चाहिए ।

अ० श्रीर का विचार है कि डकती के स्थान पर टकरी होता चाहिए । त्रिपि की बधुधता से इसे टकरी कहा गया होगा । पिछेके ने डकती को पूर्वी बोली समझा है । त्रियर्शन के अन्त के अनुसार यह पश्चिमी बोली मानी जाती है । बाटघघास्व में डकती माम की माया की बर्णों नहीं है । बनीबरी की उकारवाच्य भाषा तो पहिले में जाती है । यम्भीर बम्पयन के पत्रात् मही निष्कर्ष निकलता है कि यह बिभत्पा और परिचमो बोली है ।

कुछ अक्षरों के मिले-जुले होने से वचनस भावार्थ अकारो और बाग्वासी प्राकृत के अन्तर्गत मायवी की ही विभाषार्थ प्रतीत होते हैं, अन्तर केवल मही है कि इनमें र को उ ही जाता है ।

मौनपात्र

मूञ्चकटिक में कुछ पात्र ऐसे हैं जिसकी बर्णों मात्र है । उनके कवोपकवचन इसमें उपलब्ध नहीं है अतः वे किञ्च भाषा के ज्ञाता होंगे इनकी वागवारी सम्भव नहीं है । इनमें पञ्चक बधुधती का राजा है । रिमिच उरबकिनी का एक व्यापारी है । यह चाइवत का मित्र है और एक विशिष्ट पात्रक है । सुर्मूठ चाइवत का मित्र है । सिद्ध बाबक की राज्य-शांति का अनिश्चयका है । इसके अतिरिक्त राबबुदय और मावरिक हैं । वे सभी मौनपात्र हैं, इनकी बर्णों प्रस्तुत प्रकरण में तो हैं पर इनके वर्णन मत्र पर नहीं होते ।

भाषाविबसेपण

मूञ्चकटिक में संस्कृत भाषा के साथ प्राकृत का प्रयोग है पर यह प्राकृत अधिकतर कर्णों में और विभिन्न रूपों में प्रयुक्त हुई है । इसके सहायित पात्रों में

केवल पाँच सङ्कृत बोलने हैं और दोष सभी प्राकृत । कुछ पात्र तसकृत बोलने-
 बोलने प्राकृत बोलने लयते हैं और प्राकृत बोलते-बोलते सङ्कृत बोलने
 लयते हैं । प्राकृत यद्य के लिए ही नहीं बरन् यद्य के लिए भी प्रयुक्त हुई हैं ।
 यद्यमय ही यद्य विभिन्न छन्दो में प्राकृत में रचे गये हैं । प्रकरण की साम्यपूर्ण
 सरल एवं स्वाभाविक है । इसकी पद्यावली विविध तथा विस्तृत है । इसमें
 सङ्कृत के पुष्पों तथा अप्रचलित छन्दों का प्रयोग ही नहीं है परन्तु
 इसके प्राकृत में अप्रचलित प्रयोग बहुत हैं, जैसे मस्तक, बरट्य,
 मत्पि, मत्पि, कविन्, तलित, कृतद्वय इत्यादि । रामस्तैना
 का प्रासार वर्गन ही अत्यन्त जोडगुणपूर्ण होने के लम्बे छमासों वाला है बने
 सरल है । प्रवाहपूर्ण, सुन्दर एवं सजीवमय भावों तथा यद्यों में साधारण तथा
 लोचनिय सुन्दरों यद्यों में सुन्दर है । पाणिनीय भाषा का साम्यम अगौरव
 करते हुए भी इसकी रचना में यद्येष्ट स्वतन्त्रता बरती गयी है । इसमें प्रकृत न
 लिखकर प्रकृत एवं वेद के बरते देवता लिखा गया है । इन प्रयोगों से वेदवाणी
 की एक ऐसी भाषा भी प्रचलित हो गयी है जिसमें धातुभ्रीय विद्यमों की बढोढ़ता
 को विविध कर दिया गया है और इसमें अन्तर्धारण के भाव स्वतन्त्रतापूर्वक
 अभिव्यक्ति पाते रहे हैं । इसके अन्तर्धों में जैसा धीबन है वैसा सङ्कृत के अन्य
 नाटकों में उपलब्ध नहीं होता ।

अन्तर्धारीय भाषा के अन्तर्धारीय की दृष्टि से मूकडरिटिक में जालिदास
 धीनी भाषा धले ही न हो पर सङ्कृत के भाव भाषा के विविध लौकिक रूप हमें
 इसमें अत्यन्त देखने की मिलते हैं ।



परिशिष्ट २

मृच्छकटिक की प्रमुख सूक्तियाँ

प्रथम अंक

१. पृथमपुत्रस्य मूर्धं, चिरबुध्नं वास्ति यस्व सग्मिवम् । (बघ)
- मूर्धस्य रिष्य कृत्वा. सर्वं सून्यं वरिदस्य ॥ (१,८)
२. सुखं हि दुःखात्पुनश्च शोभते, धनान्धम्बरोधिष्व षीपदर्शनम् ।
कुमात्तु यो याति मरौ वरिष्ठताम्, पृथु क्षरीरैष्य मृतं च जीवति ॥ (१,१०)
३. धत्पुत्रस्यैव मरणं वारिष्ठ्यमनन्तरं तु बन् । (१,११)
४. बहो । विपत्तया सर्वापि वामास्तदम् ॥ (१,१४)
५. पुत्रः कस्त्वनुत्पत्स्य कारणं, न पुनर्वकात्कारः । (बघ)
६. वारिष्ठ्येयं विहीनं. माह्वोऽपि च दुर्गतौ ममति ॥ (१,४३)
७. यथा तु भाग्यस्यपोढिता दद्यात् मरु कृतास्तोपहिता प्रयत्ने ।
तरास्य मिनाप्यपि यात्कर्मिणताम्, चिराद्बुरक्षोऽपि विरप्यते चरः ॥ (१,५१)
८. न बुक्तं परककवर्जनम् । (गघ)
९. पुत्र्येषु न्यासा निहित्व्यन्ते, न पुनर्येषु । (पघ)

द्वितीय अंक

१०. वरिष्ठपुत्रस्यैव वामात् कस्तु पत्निका कोकेऽप्यभोवा ममति । (गघ)
११. पृथु हि नाम पुत्र्यस्वार्थिहासत रान्यम् । (बघ)
१२. य मात्स्यश्च जलदा मारं तुजितं बहति म्नुत्तर । (बघ)
१३. कुर्त्तमा कुपा विप्रबाह्वं अपेक्षेपु लक्ष्येषु बहुतरमुदकं ममति । (बघ)

तृतीय अंक

१४. सुवनः सङ् मूल्यानुकम्बकः स्वार्थो निर्जनकोऽपि शोभते ।
मिनुनः पुनर्वस्वगमिणोऽप्युत्तरः कस्तु परिणामशास्य ॥ (३,२)
१५. शोषा हि नावाप्युत्तरेति रत्नम् । (बघ)
१६. पञ्चोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महत्पुण्यकरणम् ॥ (गघ)
१७. मनतिऋषयोया ममवती मोक्षाम्ना ब्राह्मणताम्ना च । (पघ)

- १८ एकधीया हि लोकेऽस्मिन् निष्पत्ताया दक्षिणा (१,२४)
 १९. भात्ममात्मगतद्वय स्त्रीद्वयेवानुकम्पित ।
 खर्षत पुदवो नारी या नारी खर्षत पुमान् ॥ (१,२७)

चतुर्थ अंक

१०. सखोरनचिदानुवर्त्यबसादयो भवति । (पद्य)
 २१ स्वीदोर्वीर्यवति हि लक्षितो मनुष्यः । (४,२)
 २२. साहसे श्री इतिवचति । (पद्य)
 २३. इह सर्वस्वच्छिन्न कुलपुत्रमहाद्रुमा ।
 निष्कम्बत्वमकं बान्ति वेत्यादिहृयमक्षितः ॥ (४,१०)
 २४. अत्र य सुरतन्वात् क्षमाणि व्रथयेन्वचः ।
 नराणां यत्र हृयन्ते योवनानि धनाणि च ॥ (४,११)
 २५. अपचित्तास्ते पुत्रया यता मे, ये स्त्रीषु च श्रीषुच विश्वसन्ति ।
 धियो हि दुर्बलित्त लयीव नारी, भुङ्क्तेऽप्यपरिचर्षणानि ॥ (४,१२)
 २६. स्त्रीषु न राम नारी रक्त पुत्रय स्त्रियं परिभवंति ।
 रक्तं च द्वि रक्तव्या विरक्तमावा तु हातव्या ॥ (४,१३)
 २७. एता हृतमि च पदन्ति च विततहेतो-
 विस्वासयन्ति पुत्रय न तु विश्वसन्ति ।
 तस्मान्नरय कुलशीलसमन्वितेन,
 धिया स्वज्ञानसुदना ह्य बर्षनीया ॥ (४,१४)
 २८. समुद्रलोपीव चन्द्रव्याया, स्रग्भ्याघलेखेव मूर्धरताया ।
 स्त्रियो हृताश्रीं वृष्य निरर्षं निष्पीडितालच्छकृत्वर्यवन्ति ॥ (४,१५)
 २९. न परतापे नृजिनी प्ररोद्धति न बर्षय नानिभुर बहुन्ति ।
 यथा प्रसीर्षा न चवन्ति पाळ्यो न वेद्यताता पुत्रयस्त्रियावता ॥ (४,१७)
 ३०. स्त्रियो हि नाय कस्मेता निजपदिय पण्डिता ।
 पुत्रयानां तु पाण्डित्यं सास्त्रैरेवोपरिचयते ॥ (४,१९)
 ३१. न चन्द्रादावयो भवति ॥ (पद्य)
 ३२. निघासां कष्टवद्वासां दुर्तयो मार्यदर्यक । (४,२१)
 ३३. दुणेत्यत्र हि शर्तव्यं प्रयत्नः पुत्रये सदा ।
 नूनैर्वुस्तो दत्तियैः नैवैरेवैः सदा ॥ (४,२२)
 ३४. दुणेपु यत्नः. पुत्रयेण नारी, न किञ्चित्प्राप्तयं मुद्यात् ॥ (४,२३)

३५. व्ययिबमहीय लोके विव वराणा सुहृन्व बनिता च । (४,२५)
 ३६. क्वम् हीनकुमुमादपि सहकारपादपाम्यकरन्व्विन्रनो निपतन्ति ? (गघ)

पंचम अंक

३७. बकन्वतपुस्विता पत्रिणी, अशंचको वयिक् धचौरः सुवर्षकार, बबकहो
 ग्रामसबायम, बबुववा यचिकेति बुक्करमेते सम्भाष्यन्ते । (बघ)
 ३८. सर्वत्र यान्ति पुस्वस्य चत्ताः स्वभावा ।
 मित्रास्ततो ह्ययमेव पुब्रिवाग्निः ॥ (५,८)
 ३९. कास्ये वाज ? (गघ)
 ४०. मेधा वर्पन्तु, वर्बन्तु, मुंचन्त्वद्यनिमेव वा ।
 गणयन्ति शीतोष्णं रमनादिमुखा. रिभ्यः ॥ (५,१९)
 ४१. व राषया हि स्थिवो रोयु प्रत्यिता ददितं प्रति । (५,२१)
 ४२. बनेदिमुक्तस्य वरस्य लोके, किं बीषितेनादित एव तावत् ।
 यस्व प्रतीकारनिर्येकृत्वात्, कोपप्रसाद्य विक्रमीभवन्ति ॥ (५,४०)
 ४३. पसन्तिहृत्तव पत्नी, बुम्भरच ठरु, सररच मन्प्रीन्तु ।
 यपदिबृत्तबहृन्तुस्यं लोके बरिक्त्वा ॥ (५,४१)
 ४४. दुर्यैर्गुहै. लक्ष्म यवा पुस्वा ददिता।
 क्लृप्तं चोपराहृत्स्वचमिबच धीर्षे ।
 बर्बृत्-पूर्वजन्तर्गय-विस्मृताता-
 येनं मबन्ति विक्रमा परितोदकावा ॥ (५,४२)

षष्ठ अंक

४५. वरं व्याप्यजलो मत्पुर्नं पृष्टेत्स्य बन्वते । (६-१७)
 ४६. त्यजति च क्लिप्त नपभीबंहति च नित्रापि बन्पुवर्बन्व ।
 मबति च तरोपज्ञात्यो व क्लृप्त धरपावत रयवति ॥ (६,१८)
 ४७. मीतामबप्रद्यन इरतः परोमकाररतिक्त्वा ।
 बदि मबति मबतु नासस्त्यजानि बतु लोके पुव एव ॥ (६,१९)

सप्तम अंक

४८. व काठमेजते स्नेहा । (गघ)
 ४९. स्वात्नादि चित्त्वर्पते ? (७,७)

अष्टम अंक

५०. विवसा इन्द्रिचौराः हरन्ति चिरसचित्त वर्मम् । (८,१)
५१. पचन्ना येन मारिता. स्थिय मारयित्वा शबोरलित्वा ।
अवत स्व वाष्वाढो मारितोऽप्यक्षमपि स नरः स्वयं माहते ॥ (८,२)
५२. शिरो मुष्यत, तुण्ड मुष्यत,
पित्त व मुष्यत किमर्थं मुष्यतम् ?
यस्य पुनश्च चित्त मुष्यत
साधु मुष्टु शिरस्तस्य मुष्यतम् ॥ (८,३)
५३. विपर्ययतमस्यैष्टे प्रिक्काप्यकथयिष्यामि ।
मासकुरीरिव मूर्खैर्भार्याभ्यन्ता वसुन्धरा ॥ (८,४)
- ५४ स्त्रीर्निर्विकल्पितायाः कापुत्रायाः विपर्यये अदनः ।
सत्पुत्र्यस्य स एव तु भवति मृदुनेन वा भवति ॥ (८,५)
५५. बुध्कर विवसोवधीकतुम् । (गद्य)
५६. अद्याद्या मूर्धजेप्येता स्थिवो गुणसमन्विता ।
न क्ता पञ्चमप्येदमहंनमुपवगोद्भवता ॥ (८,२१)
- ५७ किं दुर्भोपदिष्टेन शीतमेवात्र कारणम् ।
भवन्ति गुणय स्पीता. सुक्षेमे कष्टकिदुमाः ॥ (८,२९)
५८. विदित्तविद्यम्बरसो हि काम । (८-३०)
५९. सुचरितपरित विगुह्येष्टु,
न हि कमल मपुपाः परिरवन्ति ॥ (८,३२)
६०. यत्नेन सैवितम्ब पुरव बुकलीकवान् दरिद्रोऽपि ।
शोभा हि पचस्त्रीणां सद्गुणसमापय नाम ॥ (८,३३)
६१. पितृ प्रीतिं परित्यज्ज्वालितामनसाम् । (८,४१)
६२. हस्तस्यतो मुखस्यत इन्द्रियस्यतः स कर्तुं मनुष्य ।
किं करोति यत्रबुल ? तस्य परकीर्णी हस्ते निरपक ॥ (८,३७)

नवम अंक

६३. महाहृति मुसदुग विजहाति कुलम् । (९,१९)
६४. यदैव पुप्य प्रथमं विकारो, शत्रैस्य पार्तुं मनुष्या. पतन्ति ।
एवं मनुष्यस्य विपत्तिवति तिन्देव्यनर्वा. बहुली भवन्ति ॥ (९,२९)

१५. उत्प्रेतं सुखं ससु उन्मते, सात्यावाये न भवति पादकम् ।
सत्यमिति द्वे मन्वसरे ना सत्यमशीकेन गूह्य ॥ (९, १५)
१६. ईदुष्टे मन्वहाउगौ मन्वित्रि. परिपाठिता ।
स्वाधे ससु मन्वीवाता रञ्जन्ति हृषणा ब्रह्मम् ॥ (९, ४०)
१७. ईदुष्टे स्वैतकाश्रीपी राज्ञा वासनहृषयै ।
वपामानां सहस्त्राणि हृष्यन्ते च हृषाणि च ॥ (९, ४१)
१८. कुटे छिन्ने कुटः पादपत्तं पाठनम् ? (पद्य)
१९. मृषा मोक्षप्ररस्याना ईदुष्टविकृति. सुव । (९, ४२)

दशम अंक

७०. सर्वः ससु भवति लोके लोके सुसर्वास्मिन्नाद्य विस्तृतम् ।
मिक्विपठिताया वरुणा विस्कारी दुर्बलो भवति ॥ (१०, १९)
७१. अन्वुद्ययेऽप्यहाने लवीव रात्रिर्विचनहृषमार्चः ।
सहामैव किचोटी निवति। ससु प्रत्येपिषुं याति ॥ (१०, १९)
७२. पादुपुहीतोऽपि वसुतो च कन्दनीयो वनपदस्व ? (पद्य)
७३. ईदुष्टवभवन्ति छाद्यु ते पाप्यसी च पातवत्ता. । (पद्य)
७४. इत्ं कस्तोहसर्वैव सममाहृष्यरिषयोः ।
वचन्तमोसीर हृष्यत्सवमुत्तेवत्तम् ॥ (१०, २३)
७५. हन्त । ईदुष्टो वरुणस्य , पदवत्य कमवि न प्रःवायवति । (पद्य)
७६. कार्यवाह्यत्त । वचनवसे प्रतिवसुतो वचनसुर्वाविव विपति छबेते,
किन्मुत्तारवमीरका वातवा वा ? लोके कोऽनुत्विपः वदति । कोऽपि
वतितोऽमुपतिष्ठते । (पद्य)
७७. अहो । प्रमावो विवसंबमस्य,
मृत्तोऽपि को वाम पुनस्त्रियेव ? । (१०, ४३)
७८. सर्वनाथं च वीमते । (पद्य)
७९. ससु हस्तापघनः वरुणमुपेत्य पारम्यैः पठितः ।
सस्वेष च हन्तव्य , उपकारहृषत्सु कर्तव्य. । (१०, ५५)
८०. समोद्विर्वाहृषवे प्रकृतेन ब्राह्मणेऽपि वरुण. । (पद्य)
८१. वग्मोमिमी लोववसुरव किं वातावनस्तपमिये वृषेवि ? (१०, ५८)

८९. अपरिचरतु लज्जति प्रपूरयति वा काश्चिन्नपरबुद्धतिम्
 काश्चित्वातविधी करोति च पुन वाञ्छितयत्पाकुलाम् ।
 अग्नोत्पद्यतिपञ्चतहृतिमिमां लोकस्विति बोधव-
 श्मेव प्रीयति कूपयन्वचटिकाप्यावसक्तो विधि ः (१०,१०)

❖

परिशिष्ट ३

मृच्छकटिक के विषय में पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के विचार

मृच्छकटिक अपनी दृष्टि से अनुपम है इस सम्बन्ध में पहले पाश्चात्य समीक्षकों के विचार और तदनुसार भारतीय विद्वानों के विचारों का यहाँ क्लेश समीचीन होगा ।

Dr. Arthur William Ryder (American Writer) अपनी पुस्तक *The Little Clay cart* के Introduction में लिखते हैं ।

1 Kalidas, Shudraka, Bhavbhuti—assuredly these are the greatest names in the history of Indian Drama. So different are these men, and so great, that it is not possible to assert for anyone of them such supremacy as Shakespeare in the English Drama.

2. Kalidas and Bhavbhuti are Hindus of the Hindus the Shakuntla and the latter acts of Rama could have been written no where save in India; but Shudraka alone in the long line of Indian dramatists has a cosmopolitan character Shakuntala is a Hindu maid, Madhava is a Hindu hero; but Sansthanaka and Maitreya and Madhika are citizens of the world. In some of the more striking characteristics of Sanskrit literature in its fondness for system, its elaboration of style, its love of epigram—Kalidas and Bhavbhuti are far truer to their native land than is Shudraka.

3. Shudraka's limitations in regard to stylistic power are not without their compensation For love of style slowly strangled originality and enter-

prise in Indian poets and ultimately proved the death of Sanskrit Literature. Now just at this point, where other Hindu writers are weak Shudraka stands forth prominent. No where else in the hundreds of Sanskrit dramas do we find such variety and such drawing character, as in the Little Clay Cart, and no where else in the drama at least, is there such humour.

4 In the very title of the drama he has disregarded the rule that the name of a drama of invention should be formed by compounding the names of heroine and hero. Again the books prescribe that the hero shall appear in every act; yet Charudatta does not appear in acts II, IV, VI and VIII. And further various characters Vasantsena, Mastraya the courtier and others have vastly gained because they do not conform too closely to the technical definitions.

5 Shudraka's men are better individualized than his women, this fact alone differentiates him sharply from other Indian dramatists. He draws on every class of society, from the high souled Brahman to the executioner and the house maid.

6 The breadth of treatment which is observable in this play is found in many other specimens of the Sanskrit drama, which has set itself an ideal different from that of our own drama. The lack of dramatic unity and consistency is often compensated indeed by lyrical beauty and charms of style, but it suggests the question whether we might not more justly speak of the

Sanskrit plays as dramatic poems that as dramas. In 'The Little Clay Cart' at any rate, we could ill-afford to spare a single scene, even through the very richness and variety of the play remove it from the class of world's greatest dramas

७. शूद्रक के हास-परिहास को अमरीकी सीरस से पूर्ण बताना—

(It) runs the whole gamut, from grim to farcical, from satirical to quaint. Its variety and keenness are such that King Shudraka need not fear a comparison with the greatest of Occidental writers of comedies

From farce to tragedy from satire to pathos, runs the story, with a breadth truly Shakespearean

Dr. A. Bernadac Kieth अपनी पुस्तक The Sanskrit Drama में लिखते हैं ।

1. Though composite in origin and in no sense a transcript from life, the merits of the *Mricchakatika* are great and most amply justify what else would have been an inexcusable plagiarism (p 134)

पाश्चरत एव बहुश्रुतेना की प्रेमकथा और आर्यक को राज्यविच्छेद-पर्याय बन्धित को पोटक है ।

२. वस्तुतः शूद्रक स्वश्रुत्या पौराणिक व्यक्ति थे । यह बात इस स्वीकृति से स्पष्ट है कि उन्होंने अग्नि में प्रवेश किया । कोई इन बातों में विश्वास नहीं कर सकता कि उन्हें अपनी मृत्यु का निश्चित समय पहले से ही ज्ञात था, जबकि वह स्कार उनके सम्बास ग्रहण पर ही किया गया अथवा प्रस्तावना का वह अक्ष उनकी मृत्यु के बाद बोझा पया है । यदि ऐसा हुआ हो तो इसका क्या निष्कृत भिन्न होता । यह बात और भी कम सम्भाव्य है कि उन्होंने उस रूप की रचना रेभिस द्वारा श्रेष्ठिक की सहायता से की । (हिन्दी अनुवाद, पृ० १२७)

३. अरिषा अग्नि की विच्छेद कालिदास और बल्लवाह मरभूति से आगे बितना अन्तर हो किन्तु मूल्सङ्घटित के उच्छेद की तुलना में इन दोनों का परस्पर भावनात्म्य कही अधिक है, शुकुन्तला और उत्तररामधरित की

रचना भारत के अतिरिक्त किसी देश में सम्भव नहीं थी। शकुन्तला एक हिन्दू नायिका है, माचन एक हिन्दू नायक है जबकि सत्यानक, मीनेय और रदलिका विश्व नायिका हैं परन्तु यह दावा स्वीकार्य नहीं है। मूल्यांकन अपने पूर्व रूप में एक ऐसा रूप है जो भारतीय विचारधारा और जीवन से अलग अलग है। उपरोक्त दोनों पात्रों में से कोई ऐसा नहीं है जो अतिरिक्त द्वारा उद्भावित कतिपय पात्रों को अपेक्षा अधिक विश्वनापरिक होने का दावा कर सके। इन रूप के पात्रों की विविधता निर्दिष्ट रूप से प्रकटनीय है परन्तु उसका आसिक अर्थ मात्र को है, उनके उत्तरवर्ती (पुरुष) को नहीं। रूप की मापन सरलता का अर्थ भी उन्हीं को सिद्धना चाहिए। इस सीरी के विश्व कालिदास में कुछ अतिरिक्त पात्रों वाली है और सबमूर्ति में उसकी मात्रा और भी अधिक है। कथावस्तु की विविधता मात्र से पूर्व मासिक है किन्तु रूप के विकास का अर्थ पुरुष को है। (हिन्दी अनुवाद, पृ० १३८)

अमेरिकी लेखक Henry W. Wells द्वारा अपनी पुस्तक *The Classical Drama of India* में उचित विचार

1. Historically speaking, it comes extremely close to being two plays (p 132)

2 It is the sophisticated manner of indirection. (p 151)

3 The plot of the Little Clay Cart rejoices in bringing indirection to a goal ~~crossing~~ the incidents with the utmost caprice (p 154.)

4. In the broader outlook, the 'Little Clay Cart' belongs to the same category—their highest category as 'Shakuntala', 'Vikramorvaci', 'Rama's later history, the vision of Vasavadatta and all the most serious and poetic of Indian dramas, the relatively naturalistic setting and ample humour in Sudrak's work notwithstanding the simplest and truest statement his that a rough road leads to human felicity.

(p. 151.)

5. The 'Little Clay Cart' is a long play singularly lacking in longeurs. (p 150)

१. सूक्ष्मकटिक के नाम्नी के मर्म का रहस्योद्घाटन—

यकर के कठ के उत्तेज से कवि नाटककार ने शिव ऐ बापी के बरवान की पापना की है और बाबूत तथा बिबली की उपमा से इस स्थापना की पुष्टि की है कि पुंस्य बाबूत है और नारी बिबली है। पवन शक में पास्वत ने स्वयं पसन्तसेना का ध्यान मेष तथा विद्युत के मिश्रण दुस्व की ओर भाकर्मित किया है जिनसे उकेत प्रथम कर पसन्तसेना उसके नुबपाथ में छिपट गई है।^१

(बनुवात्र) पृ. १३९-४०

M. Winternitz द्वारा अपनी पुस्तक A History of Indian Literature, Vo III, Part I में उचित विचार :

1. 'The Drama of the Clay-cart' attributed to king Shudraka, is a general, elaborate and late adaptation (perhaps a continuation of Bhasa's Daridra-charudatta). In any case, the four acts of the Daridracharudatta and the first four acts of the Mrichhakatika are related together in a way, that is as close as that existing between two different recensions of one and the same work (p 224.)

2. It is not improbable that there was a raja, who bore the epithet Shudraka, on account of being of lowly origin, and had adapted the drama of Bhasa afresh (p. 225)

3. On the contrary in Europe, the drama has enjoyed high grade of popularity and has been always held in esteem. The work fully merits this honour. It deviates from the model more than any

१. श्याम्बोरुववापनप्रनमिनी स्वच्छन्दवन्मागता ।

रत्नाकान्तमिदाम्बरं प्रियतमा विद्युत्तवातिङ्गति ॥

other Indian drama and it has been fashioned wholly on actual life. The characters are presented in a lively manner (p 226)

4 The drama *Mrichhakatika* is of extraordinary value in respect of cultural history, above all for our knowledge of the ways of harlots and that of their social status in ancient India. (p 231)

5. The end of the drama leaves the impression that Charudatta was leading an honourable and family life with his two wives, both of whom, he loved equally and both of whom loved him equally. (p 231-32)

6. The drama is very much instructive also for a knowledge of relationship existing between the different castes and for that of religious practices. (p. 232)

7 The poet Shudraka appears to be a liberal Hindu with strong Buddhist inclinations (p 232)

Dr. Arthur A Macdonell एतत् A History of Sanskrit Literature में वर्णित विषय पृ० ३४६, ३५०

1. It is probably the work of perhaps Dandin's as Prof Pischel thinks.

2 To the European mind the history of Indian drama can not but be a source of abundant interest; for here we have an important branch of Literature which has had a full and varied national development, quite independent of Western influence, and which throws much light on Hindu social customs during the five or six centuries preceding the Muhammadan conquest,

3. The earliest forms of dramatic literature in India are represented by those hymns of the Rig-veda which contain dialogues such as those of Sarma and the Panis, Yama and Yami, Pururavas and Urvaci, the latter, indeed being the foundation of a regular play composed much more than a thousand years later by the greatest dramatist of India. The origin of the acted drama is however, wrapt in obscurity. Nevertheless, the evidence of tradition and of language suffice to direct us with considerable probability to its source.

4. The words for actor (nata) and play (nataka) are derived from the verb nat, the Prakrit or vernacular form of the Sanskrit nri 'to dance'. The name is familiar to English ears in the form of nautch, the Indian dancing of the present day. The latter, indeed probably represents the beginnings of the Indian drama. It must at first have consisted only of rude pantomime in which the dancing movements of the body were accompanied by mute mimicking gestures of hands and face. Songs, doubtless, also early formed an ingredient in such performances. Thus Bharata, the name of the mythical inventor of the drama which in Sanskrit also means "actor" in several of the vernaculars signifies 'singer' as in the Gujarati Bharot. The addition of dialogue was the last step in the development which was thus much the same in India and in Greece. This primitive stage is represented by the Bengal Yatras and the Gita Govinda. These form the transition to the fully developed Sanskrit play in which lyrics and dialogue are blended.

5. The earliest references to the acted drama are to be found in the Mahabhashya, which mentions representations of the Kamsavadha, the 'slaying of Kamsa' and the Bahubandha or 'Binding of Bali' episodes in the history of Krishna. Indian tradition describes Bharat as having caused to be acted before the gods a play representing the Svavatvara of Lakshmi wife of Vishnu. Tradition further makes Krishna and his cowherdesses starting point of the Sangita a representation consisting of a mixture of song, music and dancing. The Gita Govinda is concerned with Krishna and the modern yatras generally represent scenes from the life of that deity. From all this it seems likely that the Indian drama was developed in connection with the cult of Vishnu, Krishna and that the earliest acted representations were therefore, like the mysteries of the Christian Middle Ages a kind of religious plays, in which scenes from the legend of the god were enacted mainly with the aid of song and dance, supplemented with prose dialogue improvised by the performers.

6. The drama has had a rich and varied development in India as is shown not only by the numerous plays that have been preserved but by the native treatises on poetics which contain elaborate rules for the construction and style of plays. Thus the 'Sahitya Darpana' or 'Mirror of Rhetoric' divides the Sanskrit dramas into two main classes, a higher (rupaka) and a lower (uparupaka) and distinguishes no fewer than ten species of the former and eighteen of the latter.

7. The characteristic features of the Indian drama which strike the western student are the entire absence of tragedy, the interchange of lyrical stanzas with prose dialogue and the use of Sanskrit for some characters and of Prakrit for others.

8. The Sanskrit drama is a mixed composition in which joy is mingled with sorrow in which the jester usually plays a prominent part, while the hero and heroine are often in the depths of despair. But it never has a sad ending. The emotion of terror, grief or pity with which the audience are inspired, are therefore always tranquillised by the happy termination of the story. Nor may any deeply tragic incident take place in the course of the play; for death is never allowed to be represented on the stage. Indeed nothing considered indecorous whether or a serious or comic character is allowed to be enacted in the sight or hearing of the spectators such as the utterance of a curse, degradation, banishment, national calamity, biting, scratching, kissing, eating or sleeping.

9. Sanskrit plays are full of lyrical passages describing scenes or persons presented to view or containing reflections suggested by the incidents that occur. They usually consist of four line stanzas. Shakuntla contains nearly two hundred such representing something like one half of the whole play. These lyrical passages are composed in a great many different metres. Thus the first thirty-four stanzas of Shakuntala exhibit no fewer than eleven varieties of verse. It is not possible as in the case of the

simple vedic metres, to imitate in English the almost infinite resources of the complicated and entirely quantitative classical Sanskrit measures. The spirit of the lyrical passages is therefore probably best reproduced by using blank verse as the familiar metre of our drama. The prose of the dialogue in the plays is often very common place serving only as an introduction to the lofty sentiment of the poetry that follows.

10 In accordance with their social position the various characters in a Sanskrit play speak different dialects. Sanskrit is employed only by heroes, kings, Brahmans and men of high rank; Prakrit by all women and by men of the lower orders. Distinctions are further made in the use of Prakrit itself. Thus women of high position employ Maharashtri in lyrical passages, but otherwise they, as well as children and the better class of servants, speak Shuraseni. Magdhi is used for instance, by attendants in the royal palace; Avanti by rogues or gamblers; Abhiri by cowherds, Paishachi by charcoal burners and Apabhramsha by the lowest and most despised people as well as barbarians.

11 The Sanskrit dramatists show considerable skill in weaving the incidents of the plot and in the portrayal of individual character, but do not show much fertility of invention, commonly borrowing the story of their plays from history or epic legend. Love is the subject of most Indian dramas. The hero usually a king already the husband of one or more wives, is smitten at first

sight with the charms of some fair maiden. The heroine equally susceptible, at once reciprocates his affection, but concealing her passion keeps her lover in agonies of suspense. Harassed by doubts obstacles, and delays both are reduced to a melancholy and emaciated condition. The somewhat doleful effect produced by their plight is relieved by the animated doings of the heroine's confidantes, but especially by the proceedings of the court jester (Vidushaka) the constant companion of the hero. He excites ridicule by his bodily defects no less than his clumsy interference with the course of the hero's affairs. His attempts at wit are, however, not of a high order. It is somewhat strange that a character occupying the position of a universal truth should always be a Brahman.

एष० एष० विन्सन द्वारा दि पियेटर भाव् दि हिन्दूज मे धर्णित विचार
(पृ० ५३-५७)

शिवरथ रूप मे एक समय मूकशरटिक संस्कृत का सबसे पहला नाटक माना गया था। (अनु०)

उपाधि नाटक की सर्वश्रेष्ठ सृष्टि राजा का साक्षात् स्थापक है। इतना पूर्वजना प्रवास्यद धरिण सायव साहित्य मे कभी अंकित नहीं किया गया है। उसके पुंज भवकर है। वह नितांत निर्भय एव सुश्रेष्ठ है—धीरे तो भी यह इतना हार्मस्वर है कि हमारा क्रोध उत्तेजित नहीं करता, ऐसे बुद्धि व्यक्ति पर किया गया अंधे धर्म जाता है। धीरे जब उसके अपराधों के अतिरिक्त दृष्ट को नहीं आती है तब पाश्चात् के साज हम भी यह कहने के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं, हमें मुग्ध करो धीरे छोड़ दो। यह एशिया के प्रत्येक मुक में पायी जान वाली प्रविष्टा का उत्तम उदाहरण है जहाँ कि राजा-महाराजा आशय्य तथा सासुर्य मे शिथिल हुए हैं तथा स्वार्थपूर्ण आत्मसृष्टि के अतिरिक्त अग्य निधो विदागत मे डेन करना जिन्हें विनाया नहीं गया है। (अनु०)

Dr B A Saletore

1 We might unequivocally assert that King Sivamara II was himself the author, who completed that drama which had been left either incomplete by King Shudraka, Sivamara I, or which the latter had deliberately written in brief.¹

२ मृच्छकटिक का सेबक उत्तर भारत का निवासी न होकर दक्षिण का है। जिसकी पुष्टि उसके दक्षिण की दो छोटी-छोटी नदियों के ज्ञान से होती है।

हमें अब से 'बिगाहटे कुशावती पण्यमतिवृहम्' का उल्लेख है।

हमका विवेचन—

कुशावती दक्षिण का विशिष्ट शब्द है और यह परिश्रमी समुद्रतट पर बहने-वाली एक छोटी नदी का नाम है और इस प्रकार प्रस्तुत वाक्यांश का अर्थ होगा 'बिगा तथा कुशावती नदियों के बीच में स्थित पण्य'।² (अनुवाद)

3. That Shudraka, the alleged author, was a real person, who wrote the drama, seems most impossible. The obvious conclusion is that the rewriter and reviver of the Charudatta preferred to remain nameless, and to ascribe his work to the legendary Shudraka.³

Dr G K. Bhat द्वारा अपनी पुस्तक Preface to Mricchakatika में दत्त विचार :

1. Thus it is not possible to hold that the two plays are only two versions of the same dramatic material. They are different works and their

-
1. Journal of the University of Bombay, Vol. XVI Part IV, No 32, 9 (Jan 1948)
 2. Journal of the University of Bombay Vol. XVI. (New Series) Part I No 31 10-20 (July 1941).
 3. Bulletin of the School of Oriental Studies, Vol. III, Part II (1924)

relationship has to be explained on a different hypothesis (p. 24)

2 Karmarkar too assumes with Keith that Shudraka is mythical; but there are reasons to believe that Shudraka must have been a historical figure. Above all it is difficult to imagine Dandin's motive in passing his own composition in the name of some mythical king. An author who wrote *Dasakumara-charita* and *Kavyadarśa* and acknowledged their authorship should certainly not hesitate to own a great play like *Mrichhakatika*. (p. 177)

3 He (Shakara) is a Caliban, without the master. He has not drunk the liquor of civilization, But he has its vain boast and its lust. Or perhaps, out of the pages of *Panchatantra* a wily fox has come alive in the shape of Shakara (p. 101)

4. It is not, therefore, surprising that *Mrichhakatika* as a whole is a drama redolent of Indian thought and life. It cannot but be so. But Shudraka, unlike most of the Sanskrit dramatists has chosen as the background for his play a cosmopolitan city like *Ujjayini* and has created an unconventional world where a rogue and a monk, a pious Brahmin, a virtuous maid and a wicked villain jostle with one another (p. 166-67)

R. V. Jagirdar एतद् ग्रन्थो सुश्रुतः Drama in Sanskrit Literature में अस्ति विचारः :

१. Those who hold the opinion that *Bhasa's Charudatta* is an abridged version of *Mrichhakatika* maintain that *Bhasa* deliberately omitted the politi-

cal episode. As the play does not suffer by this omission, it is implied that it must be loosely connected with the main story of among others.

2. वसन्तरेणा, जीवन के आनन्द (joy of life) का प्रतीक है जो शालीनता (nobility) के प्रतीक (वासस्त) के साथ प्रति वरिष्ठ हो गई है।

M. R. Kale द्वारा संपादित 'मृच्छकटिकम्' के Introduction में वरिष्ठ विचार :

1 We are then left with the task of finding out who this Shudraka was to whom this play is ascribed, and what may be the age in which he should be held to have flourished (p. 18)

2. In his anxiety to show off Charudatta as a gallant lover, attentive to his mistress our poet has exhibited on the stage a rather improvable journey between the residences of the two lovers; this can not be said to a happy improvement. (p 38)

Dr Devasthali द्वारा अपनी पुस्तक Introduction to the Study of Mricchakatika में वरिष्ठ विचार -

Nilakantha and Gauri of our nandi are said to be suggestive of the hero and the heroine of our play; their union is suggested by the second half of that verse, the cloud and lightning convey the idea of the storm, and the dark and the bright complexions remind us of the similar modes of life adopted by the wicked and the good respectively. We may go a bit further and suggest that the author, by referring to God Shiva by the names Nilakantha and Shambhu, is perhaps suggesting that the God will ultimately suppress all evil and make all happy just as he did it for the gods by swallowing the deadly poison. (p. 45)

Dr. I. Shekhar द्वारा अपनी पुस्तक Sanskrit Drama : Its Origin and Decline में बर्णित विचार :

1 It is strange that despite being a king Shudraka shows some kind of anti-aristocratic feelings by elevating the character of all the minor actors (p 117)

2. Whatever be the date and the achievements of the play the fact remains that Shudraka could never have been a Kshatriya or a Brahman a king as depicted in the prologue of the play. Instead of showing any bearings towards the Brahmanical priesthood, he supported the plebians in their upheaval and introduce a large number of characters drawn from the lower order of society, which otherwise were ignored by more famous Dramatists.

(p. 120)

3. It is intriguing that Kalidasa takes no notice of him but then the Shakespeare of India is equally reticent about Asvaghosa who certainly flourished before him. Strange though it may appear, it is a hard fact that the first dramatist of Sanskrit Literature was a Buddhist and a close second half, as far as can be seen from a non Aryan stock of which so little is known. (p. 121)

S.K.De द्वारा अपनी पुस्तक History of Sanskrit Literature में बर्णित विचार :

१. प्रस्तावना में बर्णित करि परिचय, परम्परा पर आधारित न होकर कर्णिक बर्णित न हूँ या 'ब्रह्मसूत्रीय' नहीं है। ऐसा मानने का कोई मुस्लिम-तत्व कारण नहीं दिखाई पड़ता। (समुच्चय) (पृ. २४० पाद टिप्पणी)

2. What is more important is that the episode is necessary to create the general atmosphere of the

lezzarre society in which the whole host of rascals are capable at any moment of all kinds of acts ranging from stealing a gem casket to starting a revolution (p. 245)

एस० एम० दासगुप्त और एस० के० डे० द्वारा अपनी पुस्तक A History of Sanskrit Literature, Classical Period Volume I में वर्णित विचार .

1 Shudraka who flourished centuries before Kalidas did not feel any compunction in making the love of a courtesan the chief theme of his drama. (Introduction)

2. Indian drama as a rule does not end tragically; and to complete the effect we have often a benedictory verse to start with or a verse of adoration and a general benedictions for all in the end so that the present effect of the drama may leave a lasting impression on the mind. (Introduction)

3. The Sanskrit drama is essentially of the romantic rather than of the classical type and affords points of resemblance to the Elizabethan rather than to the Greek drama. The unities of time and place are entirely disregarded between the acts as well as within the acts (Introduction)

4. Whatever may have been the date and whoever may have been the author, there can be no doubt that the Mrichhkatika is one of the few Sanskrit dramas in which the dramatist departs from the beaten track and attempts to envisage directly a wider fuller and deeper life (Chap Sanskrit Drama)

5 The drama is also singular in conceiving a

large number of interesting characters, drawn from all grades of society from the high souled Brahman to the sneaking thief they are presented not as types but as individuals of diversified interest and it includes, in its broad scope, farce and tragedy, satire and pathos, poetry and wisdom, kindness and humanity (Chap. Sanskrit Drama)

R. D Karmarkar द्वारा अपनी पुस्तक *Mrichhakatika : Introduction* में वर्णित विचार .

All the characters, even the low ones are of the same Hindu stuff, creating the same atmosphere, though their acts are rather out of the way.

भारतीय विद्वानों के विचार

डा० मोसास्कर व्यास द्वारा अपनी पुस्तक 'संस्कृत कविदर्शन' में वर्णित विचार :

१ संस्कृत व्यक्तियों में पात्र प्रायः प्रतिनिधि हीने हैं किन्तु मूच्छकटिक के पात्र व्यक्ति (Individuals) हैं । प्रत्येक पात्र अपना विशेष व्यक्तित्व लेकर सामने आता है । (पृ. २८९-९०)

२ मूच्छकटिक अपने दृश का लक्ष्यता नाटक है, जिसमें एक साधु प्रभाव-क्यात्मक प्रकरण, पूत संकृत भाव तथा राजनीतिक नाटक का घाटावरण बिखार देता है । यही लक्ष्यता ऐसा नाटक है जो उस काल के मध्यवर्ष की सामाजिक स्थिति को पुनः प्रतिबिम्बित करता है । (पृ. २७८)

श्री बन्धुवर्षी पाण्डेय द्वारा अपनी पुस्तक 'सूत्रक' में वर्णित विचार :

१. कवि ने सुवर्ण को उद्योग और मूर्तिका को परसरा ली बरबन नाम का मूच्छकटिक । सचमुच मूच्छकटिक की मिट्टी की पहचान कितनी को है ? है न मद्भुव यह सविधान । मूच्छकटिक और कुछ नहीं इसी सुवर्ण की लीका है । इसी सुवर्ण की खोहर यशिका लम्ब बनती है और दही सुवर्ण के घनत्व में दण्ड बाधित पानी । (पृ. ९९)

२. स्मरण रहे यह वह नाटक है जो खोले घर नहीं सीक पर चलता है और इसी से अपना असम्य परिवर्तन भी बना जाता है। (पृ ६०)

डा० रामेय रामय द्वारा अपनी पुस्तक मूञ्जकटिक अथवा मिट्टी की पाटी में दर्शित विचार :

१. इस नाटक का नाम मूञ्जकटिक अर्थात् मिट्टी की पाटी है। नायक है चावडत, नायिका है पद्मलसेना फिर नाम मिट्टी की पाटी क्यों रखा गया ? पुरी कथा में मिट्टी की पाटी का नाम छठे अंक में आता है और नामुत्तरी भी बात समझती है। परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। मिट्टी की पाटी ही कथा की कहलती है। न मिट्टी की पाटी की बात बांधी, न पद्मलसेना सुवर्णकटिका बनवाने के लिए अपने बामुहय देती, न शीके पर व्यावायव में विदूषक की क्रांति में दबे गहने नीचे गिरते और न चावडत का अपराध प्रमाधित होता। परन्तु वह मिट्टी की पाटी ही केवल चावडत कथा का प्राण बन सकती है फिर आर्यक कथा का इतसे क्या सम्बन्ध हो सकता है ?

२. बैला भाये तो सारा प्रकरण ही नाटिको की कहानी है। आर्यक भी नाटिको से ही बन्ध पाया है। माथो लेखक कहता है कि जीवन में कोई बांधी छीक पगह पढुंघती है, कोई पल्लव जनह, सब कुछ भाव्य वा खोस है। इमीसिए मेसक कहता है कि वास्तव में जीवन मिट्टी की पाटी में ही चलता है। चलता और कोई बाहल नहीं। बाबमी खोले की बांधी के लिए मन्धता है परन्तु खोस छिलाठी है मिट्टी की पाटी ही। नाटक में भाव्य वा हाथ बांधी है और विशेष बात यह है कि पाप पुण्य वा खावार मनुष्य वा लोक परलोक वा तीव्र विश्वास है। उल समय क्यों की विषमता समझने का यह भारतीय प्रयत्न वा कि क्यों कोई बनो और क्यों कोई बरिदर होता है। स्वावरक कहता है कि यह भाव्य के अरल बात है और दास यह पूर्ण जन्म के पापों के कारण बना है। अच्छे कर्म करने से इस जन्म में राजा का लला संत्सामक इतनी ऊंचो बगह भग्न लेता है पर वह अविचारो है। चावडत परलोक से डरता है क्योंकि वह अच्छा बादमी है। वास्तव में परलोक का भय उल युग में लष्व भनों की निरकुणता की रोबने के लिये वा। ' ' ' ईवही यहाँ सोच रहा है। यह लेक नाटिको के बदल जाने से है। यदि स्पष्ट कहता है अब युद्ध बिल यह उठता है कि राजा के सारे की बगह स्वावरक की होना चाहिये वा। मेसक ने अपने युव के समान पर तोया प्रहार किया है। पयिका

ये तुल्यवत् के तुल्य हैं, न केवल बसंतसेना में यत्कि बसंतिका में भी। इसलिये नाटक का नाम बहुत उचित रखा गया है।

३. (क) यह नाटक संस्कृत साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। यशिका का प्रेम है। विमुक्त प्रेम धन के लिये नहीं क्योंकि बसंतसेना बहिष्कारदत्त से प्रेम करती है। यशिका कबलौ जापने वाली थी। ऊँची रत्नों की शिष्यायें होती थी यिनका समाज में आरंभ होता था। श्रीक लोचो में ऐसी ही 'हितापरा' हुआ करती थी।

(ख) यशिका बृहस्पति और प्रेम की बधिकारियो धनती है, यशु बनती है और कवि बसंतका समाज के सामाज्य पुंस्य बाह्यम धारकत से विवाह करता है। रत्नों नहीं बनाता। स्त्री विरोध के प्रति कवि की सहानुभूति है। पञ्चमै रत्न में ही बासंत और बसंतसेना मिला बाते है परन्तु शिष्यक का उद्देश्य पूरा नहीं होता। वह यशसे एक एक कथा बहाकर राजा की सम्पत्ति बिलमाकर प्रेममात्र नहीं विवाह करवाता है। बसंतसेना धन-पूर में पहुँचना चाहती है। शिष्यक ने इच्छतन यह नहींका अपने सामने रखा है।

(ग) इस नाटक में कचहरी में होने वाले नाम और राजकाज की पीठ का बड़ा मयार्थवादी चित्रण है, जनता के विरोध की कथा है।

४ इस नाटक का नामक राजा नहीं है व्यापारी है जो व्यापारी वर्ग के उत्थान का इतीक है।

ये इसकी विशेषताएँ हैं। राजनीतिक विशेषता यह है कि यशसे कविप राजा बुरा कताया गया है। गोपपुत्र कार्यक एक लाला है जिसे कवि राजा बसंत है। यद्यपि कवि बर्चस्वम को मानता है, पर वह गोप को ही राजा बनाता है। (मूत्रिका)

आचार्य बलदेव उपाध्याय द्वारा अपनी पुस्तक 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' में वर्णित विचार :

१. पूरक नाम का राजा संस्कृत साहित्य में बहुत लोकप्रिय है जन्मोके मूच्छकटिक की रचना की। 'गुरुकोशनिप्रविष्टा' स्वयं शिष्यता की कैलनी इस मूच्छकत का प्रयोग कीं कर सकती है। (पृ० ५४०)

२. बिल प्रकार बिलमादित्य के विषय में मनेक दण्डकभार प्रख्यात है उही प्रकार मूच्छक के विषय में भी है। (पृ० ५४०)

३. विष्णुमूर्ति के समान ही गुरुक की ऐतिहासिकता से छठकर कल्पना बनने के पाप माने जाने से और जिस प्रकार ऐतिहासिक लोग प्रथम शतक में विष्णुमूर्ति के अस्तित्व के विषय में शंकाहीन से उसी प्रकार गुरुक की भी रक्षा थी। साधुनिक लोग से दोनों ही ऐतिहासिक ध्वजि मिटते हैं। ऐसी रक्षा में गुरुक को मूच्छकटिक का रक्षिता न मानने वाले डा० सिद्धासेनो तथा श्रीम का मत स्वयं प्रस्त हो जाता है। (पृ० ५४१)

४. इन सब प्रमाणों का सार यही है कि गुरुक, दम्भी (सप्तम शतक) बराह मिहिर (षष्ठ शतक) के पूर्ववर्ती से अर्थात् मूच्छकटिक की रचना पंचशतक में मानना उचित है। (पृ० ५४१)

५. नगर की रक्षा करने वाले पुरुष नहीं बरसब विद्यमान थे वरन्तु शत्रु बिन की परत करने में बड़ी दिक्काई की जाती थी। राजा इस कुप्रवच के कारण हो बड़े से सिंहासन उमट जाता था और बुरा राजा का बनता था। बाट्ट में प्रदर्शित राज्य परिवर्तन का रहस्य इसी दुर्बल राज्य शक्ति के बाहर छिपा हुआ है। (पृ० ५४८)

६. उनके पात्र दिन प्रतिदिन हमारे सड़कों और नसियों में पसने फिरने वाले रक्तपास से निर्मित पात्र हैं बिनके काम की जीवने के लिए न तो कल्पना को बीजाना पकता है और न उनके नामों को समझन के लिए मन की बीज की बकरत होती है। वास्तव में वास्तविकता का इस यथार्थवादिता और वैयक्तिकता के कारण ही मूच्छकटिक पात्रात्प आलोचकों की विपुलप्रशंसा का मानन बना। (पृ० ५५१)

७. डा० श्रीम मरै ही इन्हें पूरे भारतीय होने की राय है वरन्तु पात्रों के चरित्र में कुछ ऐसा भाव है कि वह वर्तकों के सिर पर बढ़कर बोलता है। वास्तव में यह है कि गुरुक के मध्यम तथा प्रथम श्रेणी के लेखक पात्र हैं बिनका इतना गुदर बिना ससुत के रूपकों में फिर नहीं हो सका। गुरुक की नायकता वस्तुतः स्वाधनीय तथा स्नुहनीय है। (पृ० ५५१)

सम्बन्ध प्रन्व

संस्कृत

मृच्छकटिक

बन्नु० वी महाप्रभुलाल गंतवायी एव
श्री रमाकान्त द्विवेदी, श्रीलम्बा, बाराणसी ।

मृच्छकटिक

बन्नु० डा० श्री विद्यास सास्त्री, साहित्यप्रचार, मैरठ

मृच्छकटिक

बन्नु० श्री ए० ब्रह्मानन्द शुक्ल, मास्टर सीकराहीस्यस एण्ड
सन्स, बाराणसी

बनुर्मापी

सम्पादित, म्बास १९२२, बम्बई १९४९

कन्यासहित्वापर

रोमवेर बट्ट, निर्मलसागर प्रेस, बम्बई

भविष्यलघुशुद्ध

महाकवि कालिदास

मनुस्मृति

मुजरात प्रिन्टिंग प्रेस, बम्बई १९१९

साहित्यस्य स्मृति

श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

नाट्यशास्त्र

श्री मण्ड मुनि, श्रीलम्बा, बाराणसी

नाट्यदर्पण

श्री रामचन्द्र कुशात्र

साहित्यदर्पण

श्री विद्यानाथ (श्यास्वाकार, डा० सत्यव्रत)

धर्मपुराण

श्री हृदय ईशायम म्बास, श्रीलम्बा बाराणसी

काव्यप्रकाश

बाचार्य मन्वट

रसकण्ठ

श्री वल्लभ (श्यास्वाकार डा० पौर्वविश्व विद्यालय)

रसकण्ठ

श्री वल्लभ (श्यास्वाकार डा० भोयलकर म्बास)

रसकण्ठ

श्री वल्लभ (श्यास्वाकार हजारीप्रसाद द्विवेदी बीर भूमीवत्स)

व्यवहारिक

श्री बालकृष्णनारायण : श्यास्वाकार डा० रामसामर विनायी

संस्कृत

Mrichhakatika

Nirnaya Sagar edition with
the commentary of Prathivi-
dhara.

Mrichhakatika

Dr V. G Paranjpe

Mrichhakatika

R. D. Karmarkar

Preface to Mrichhakatika Dr. G. K. Bhat

U. G. C. BOOKS

शुद्धिपत्र

पृ०	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	१३	अमीर	अमीर
१३	२	राजिष्ठ	रैरिष्ठ
१४	२१	राकार - करबाया है	बाक्य निरस्त अर्थों
१७	२५	पुषा	पूषा
२१	९	अवत्तम्	अवृत्तम्
४	पारटिप्पणी	रिक्त	१. C.R. Devadhar, Charudatta, Intro- duction, p. 61
२३	पारटिप्पणी	१. C.R. Devadhar Charudatta, Introduction, p. 61	१. डा० सुधीश कुमार रे हिस्ट्री ऑफ़ अस्तुव लिटरेचर, पृ० २४९
"	"	२. मनुस्मृति	२. मनुस्मृति ३, १३
२४	७	नुपुर	नूपुर
२५	पारटिप्पणी	१. लिटरेचर पृ० ४८	१. हिस्ट्री ऑफ़ अस्तुव लिटरेचर पृ० २४८
२९	२९	वाक्य कृत्य	" - बर्द है। चौथे अक्षर के कार्य के लिये दो तीस वटे का समय प्राप्त-स्थल व्येक्षित है और चौथा
३१	२१	इवादि	इत्यदि
७७	पारटिप्पणी	बहिष्ठ	विधिष्ठ
७८	८	अस्तुव	अस्तुव
१११	२१	अशुद्ध - अस्मिन्निष्ठ है। अज्ञेयिष्ठ	बाक्य निरस्त अर्थों

१२८	१	पादटिप्पणी सङ्घ झूटा	Preface to Mrichhakatika
१२९	१.	पादटिप्पणी नरसिंह	संस्कृत
१३६	५	समहित	समीहित
"	८	स्वामिनिमान	स्वामिमान
१३८	९	पुत्रपीठे.	पुत्रपीठे.
१४४	४	सुविभेति	सुविभेति
"	२५	कुपल	रङ्ग
१५६	२३	हो ययी	हो यया
२०८	१०	सञ्चरित्त	सञ्चरित्ता
२२६	२१	पञ्चश्रेष्ठ	पञ्चश्रेष्ठ
२३५	१२	नयम्	नयम्
२६३	२४	मैत्र्युतम्	मैत्र्युतम्
३०२	२६	मृच्छकटिक रचना है	नाम्य निरस्त सप्तमे

U. G. C. BOOKS